सुमरन सुरति लगाय दे, मुखसे कछु ना बोल;
बाहेरके पट देय के, अंतरके पट खोल. ४

नेह लगी तब जानीये, कबहू छूट न जाय;
जीवत हि लागी रहे, मुवा मांही समाय. ५

बुंद समाना समूद्रमें, जानत है सब कोय;
समूद्र समाना बुंदमें, जाने विरला कोय ! ६

---

(४) भक्ति केम करवी ते बतावे छे. प्रभु साथे एवी सुरति लगाव के म्होडेथी कांइ न बोलवुं पडे. बहारनी सर्व क्रियाओ मोकुफ राखी अंदरना पडदा खोल. देहना बाह्य धर्मोने विसारी आत्माना आंतरीक धर्ममां लीन था. जेम कोइ माणस जगतथी कंटालीने पोताना घरमां पेशी, बारणां बंध करी, पोतानी पतिपरायण स्त्री के हसमुखां बाळकोमां सुख शोध, तेमज हे भक्त ! तुं बाह्य प्रवृत्ति छोडी, इंद्रीयोनां द्वार बंध करी, अंदर प्रवेश कर; त्यहां सुमति रुपी स्त्री के सार्वत्रीक प्रेमना विचारो रुपी बाळको साथे कल्लोल कर.

(५) परमात्मानो खरो प्रेम लाग्यो छे एम बोलनारा तो घणाए होय छे; पण त्हेनी कसोटी शी ? जे माणस जीवतां सुधी तो परमात्माना प्रेममां मस्त रहे एटलुं ज नहि पण मृत्युबाद पण ए प्रेमनां राज्योमां ज जाय ए ज माणस खरो प्रेमी समजवो. मतलब के खरो प्रेम समय, जगा के संजोगोथी मर्यादित नथी होतो.

(६) पाणीनुं एक बिंदु समुद्रमां समाय ए तो समजाय एवी वात छे; पण समुद्र आखो एक बिंदुमां समाइ जाय ए समजावुं मुश्केल छे. छतां ध्यानमां मस्त रहेनार पुरुष अने परमात्मा ते बेनी बाबतमां उपर मुजब न बने छे. ध्यान धरनार मनुष्यनुं हृदयाकाश के जे एक बिंदु अथवा बुंद समान छे त्हेमां परमात्माने के आखा विश्वने भाळी शके छे. पवित्र थयेला--[illegible]मीत हृदयमां

भक्ति द्वार है सांकरा, राइ दसमा भाय;
मनहि मद मावत हो रहा, क्यूं कर सके समाय ? ७

राइ बांटा बिसवा, फिर बिसनका बिस,
ऐसा मनका जो करे, ताहि मिले जगदीश. ८

माला जपुं न कर जपुं, मुखसे कहुं न राम;
राम हमारा हमको जपे, मै बेठा करुं विश्राम ! ९

आखा विश्वनुं भनिबिंब भळाय छे. आ 'योग' नो विषय अति गहन छे, तेथी वीरला--योगी जनो ज ते समजी शके छे.

(७) 'भक्ति द्वार' एटले जे दरवाजे थइने भक्तो परमात्मा पासे जइ शके छे ते दरवाजो एटलो तो सांकडो छे के जाणे राइना दाणानो दसमो भाग जोइ ल्यो ! एवा सांकडा दरवाजामां थइने जवानुं छे छतां मन तो कहे छे के हुं हाथी उपर मावत बेसे छे ते जगाए बेसीने दरवाजामां पेसुं ! आ वात केम बने ? माटे मन जो अभिमान रुपी हाथीथी नीचे उतरीने न्हानुं थइ जाय--नम्रता शीखे तोज ते सांकडा दरवाजाथी प्रवेश करी परमात्मानी हजुरमां आवी शके. ' नमे ते हरिने गमे ' अर्थात् नम्रता राखे--अहंपदथी दूर रहे ते माणस परमतत्वनी प्राप्तिनो अधिकारी थाय.

(८) वळी आगळ वधीने कबीरजी कहे छे के, राइना दाणाना दशमा भाग जेटलो दरवाजो छे माटे ते दरवाजे थइने जवानी इच्छा राखनार मन तो राइना वीसमा भागना पण वीसमा भाग जेवडुं बनाववुं जोइए.

(९) म्हारे लोकोनी माफक हाथथी माळा जपवानी जरुर नथी अने मुखथी पण जपवानी जरुर नथी. हुं तो शान्त बेठो रहुंछुं अने म्हारो राम उलटो म्हने जपे छे. ध्यानारुढ थइ परमात्मस्वरुपमां लीन थवाथी आत्मस्वरुप जोवाय छे.

साधु कोने कहेवा ?

(१)

केशो कहां बिगाडयो, जो मुंडे सो वार ?
मनको काहे न मुंडियो, जामें विषय विकार ? १

मन मेवासी मुंडिये, केश हि मुडे काहे ?
जो किया सो मनहि किया, केश किया कछु नाहे. २

स्वांग पेहरे शुरा भया, दुनिया खाइ खुंद;
जो सेरी सत् निकसे, सो तो राखे मुंढ. ३

---

(१) हे द्रव्यसाधुओ ! हे साधुवेषधारीओ ! त्हमारा माथाना केश एटले वाळनो शो वांक छे--तेणे त्हमारुं शुं वीगाडयुं छे, के जेथी त्हमे सो वार--वारंवार एना उपर वैर लेवानी माफक मुंडवामां ज 'धर्म' ने समाप्त थतो मानो छो ? मुंडवुं होय तो 'मन'ने मुंडो, के जेमां विषय विकार भरेला छे. व्हारथी साधुनो वेष राखनारा घणाए ढोंगीओ मनथी तो विषयविकारथी भरपुर छे--ए केश कढाडवानी एमनी इच्छा नथी !

(२) खरो मेवासी—खरो लुटारो तो 'मन' छे; एने मुडे तो खरो साधु कहेवाय. केश मुंडेथी शुं थवानुं हतुं ? बीचारा केशे तो कांइ कर्यु नथी, जे कांइ करेछे ते तो पेलुं मन करेछे.

(३) साधुनो स्वांग पहेरवामां तो शुरातन घणुंए छे; पण साधु थया पछी खाइ-पीने दुनीआंने मुंडवानुं-पजववानुं ज आवडयुं ! जे सेरी ([illegible]) मां 'सत' याने 'परमतत्व' प्रगट थइ शके छे ते सेरीने तो अर्थात् मार्मिक शरीरने तो मूढ दशामां-मुनमुन दशामां [illegible] [illegible] शरीरद्वारा 'सत'नो प्रकाश थइ शके छे ते छतां [illegible] [illegible] [illegible] माटे कांइ प्रयत्न करतो नथी.

हाथ मनी माला फिरे. हिरदा डामाडूल:
पग तो पालामें गला. भान न लागे सूल. ४

माला पहेरे मन सुखी. तासे कछु न होय:
मन मालाको फेरते, जग उज्याला होय. ५

माला पहेरे कौन गुन. मनकी दुबधा न जाय:
मनमाला कर राखीये, हरि चरन चित लाय. ६

---

(४) हाथमां माळा रही गइ छे पण हृदय तो डामाडोळ दशामां छे, एमां तो कांइ वांट जानना संकल्प विकल्पनां मोजां उठे छे. अने साधुमहाराजना पग वळी मायामां खुची गया छे, ह्हेने बहार कहाडवानु भान पण त्हेने नथी.

(५) माळा पहेरवाथी मन सुख मानी ले तो भले; बाकी तेथी कांइ दहाडो वळे नहि. पण जो मन रूपी माळाना मणका एक पछी एक फेरवे तो आखा विश्वमां प्रकाश–प्रकाश ज नजरे पडे. मनना खराब भावने एक पछी एक तपासी जइ त्हेने मणकानी पेठे आंगळा-मांथी छटकी जवा दइ बीजा मणकाने पकडवो, त्हेने पण तपासी-ने पछी सरी जवा देवो; छेवटे म्होटो मणको के जे एक ज होय छे–जे सर्वोपरी ‘ सत् ’ छे त्यहां जइ स्थीर थवुं. त्यहांथी आगळ जवानुं ज नथी. आ स्थितिमां आवनारने विश्व मात्रमां ‘जीवता प्रेम’-नो प्रकाश साक्षात् जोवामां आवे.

(६) माळा पहेरवाथी जो मननी दुवधा दूर न थइ शके तो ते क्रिया शा कामनी ? ते करतां तो मनने ज माळा बनावीए अने परमात्मानी भक्तिमां तल्लीन थइए ए केवुं ?

मनका मस्तक मुंड ले, काम क्रोधका केश;
जो पांचोको वश करे, तो चेला सबहि देश. ७

माला तिलक बनायके, धरम विचारा नाहिं;
माला विचारी क्या करे ? मेल रहा मन मांहि ! ८

मुंड मुंडावत जुग गये, अजहु न मिलिया राम;
राम विचारा क्या करे ? मनके और हि काम ! ९

काष्ट काट माला किनी, मांहे पिरोया सूत;
माला विचारी क्या करे, जो फेरनहार कपूत ? १०

(७) वीचारा वेशधारीओने चेला मेळववानो शोख बहु होय छे तेथी अनेक अनर्थ सेवीने पण चेला मेळववा दोडे छे; परन्तु कबीरजी कहेछे के, एम तो मात्र बे चार चेला मळशे पण जो त्हारे आखी दुनीआने चेला बनाववानी इच्छा होय तो हुं कहुं तेवो साधु बनः प्रथम मन रुपी मस्तक परथी काम--क्रोध रुपी केशने मुंडीने दूर कर. जो तुं मन अने पांच इद्रियोने वश करशे तो आखी दुनीआना जीवो त्हारा चेला बनशे.

(८) माळा--तीलकनो देखाव तो सारो कर्यो अथवा मुहपति--रजोहरणनो देखाव पण सारो कर्यो, पण धर्मनुं रहस्य तो विचार्युं नहि. मनमां तो मेल रही गयो त्यहारे पछी माळा वगेरे बाह्य उपकरण वीचारां त्हने शुं करी शकवानां हतां ?

(९) आम माथुं मुंडावतां--मुंडावतां अनेक जुग वही गया पण हजीए 'राम'--परमतत्वनी प्राप्ति थइ नहि. (ओघा--मुहपति तो मेरु पर्वत जेटला कर्या पण हजीए आत्माने चीन्यो नहि.) मन जहेंज रहने भटके त्यहां वीचारो राम शुं करे ?

(१०) मालामां कांइ जीव नथीः ए तो लाकडाने कापीने अंदर

माला तिलक तो भेख है, रामभक्ति कछु और:
कहे कबीर जीने पहन लिया, पांचो राखो ठोर. ११

माला तो मनकी भली, और संसारी भेख:
माला पेहेरे मन खुशी, तो बोहोराके घर देख ! १२

माला मुजसे लड पडी, काहे फिरावे मोहे ?
जो दिल फेरे आपना, तो राम मिलावुं तोहे ! १३

भरम न भागा जीवका, अनत धरावे भेख:
सत् गुरु समजा बाहेरा, अंतर रहा अलेख. १४

दोरो परोवीने बनावेली छे; माटे जो माळा फेरवनारो ज कपूत होय तो माळा शुं करी शकवानी हती ?

(११) माळा–तीलक–मुहपति–रजोहरण ए सर्वने धीक्कारवानी जरुर नथी, पण ए सर्व ' भेख ' छे: अने रामभक्ति–आत्मैकता ए कंइ ओर ज चीज छे. जे लोको भेख पहेरे छे न्हेमने कबीरजी कहे छे के, भला थइने पांचे इन्द्रिओने ठेकाणे राखजो, रखेने कोइनां घर मारता !

(१२) माळा तो मननी ज सारी; बाकी तो संसारीनी पाघडी–कोट वगेरे जेम वेष छे तेमज आ पण वेष छे. छतां पण कोइने माळा पहेरवाथी ज सुख लागतुं होय तो कहुंछुं के, पेला बोराजीनी दुकाने जा, त्यहां घणीए माळाओ टांगी राखी छे !

(१३) कबीरजी कहे छे के, एक दिवस माळा म्हाराथी छेडाइ पडी अने म्हने टपको आपवा लागी के, हे मूर्ख ! तुं म्हने शा माटे फेरव फेरव करे छे ? म्हे त्हारुं शुं बगाडयुं छे ? फेरव त्हारा दीलने, अने पछी जो के हुं त्हने 'राम' मेळवी आपुंछुं के नहि !

(१४) पार सगरना भेख पहेर्या–घडीमां धोळा–घडीमां

तनको जोगी सब करे, मनको करे न कोय;
मनको जोगी जो करे, सो गुरु बालक होय. १५

मन मेला तन उजळा, बगला कपटी अंग;
ताते तो कउवा भला, तन मन एक हि रंग! १६

पीळा--घडीमां दीशारुपी वस्त्र एम अनेक भेख धर्या पण हजीए जीवनो भ्रम तो भाग्यो नहि ज! कारण के र्हें मूरखाए 'सतगुरु' अथवा परमात्माने बहार ज ढूंढया, पण ते तो म्हने खबर न पडे एवी रीते 'अंदर' ज हता !

(१५) ल्यो सांभळो, कबीरजीए कथेलुं मार्मिक रहस्य. तेओश्री फरमावे छे के, जेनुं 'मन' ज योगी होय ते तो 'बाळक' जेवा याने राग--द्वेष रहीत--'हुं' पणा रहीत होय; एवाने म्हारा 'गुरु' मानुं. बाकी शरीरने 'जोगी' बनावनारा पाखंडी तो बार लाखने बाणु हशे ह्हेने म्हारी बलारात नमे छे ! रळवुं कठण लागे के संसारमां आवी पडेलुं कोइ दुःख वसमुं लागे एटले तुरत माथुं मुंडीने वेप पहेरी लीधो अने बन्या 'तरणतारण' ! पण पोते तर्या सिवाय 'बीजाने तारनारा' एवो खीताब शरुआतमां ज आ लोको शी रीते लइ शकता हशे ते कांइ समजातुं नथी.

(१६) तन एटले शरीरने उजळुं अथवा टापटीपवाळुं अथवा साधुतानो देखाव करनारुं राखे अने मन तो मलीन राखे, आवा साधुडाओ खरेखर 'बगला' जेवा छे. एमना करतां तो पेला कागडा सारा के जेओ मनना मेला छे तो बहारथी शरीर पण काळुं ज राखे छे. के जेथी एमनाथी कोइ दगादा पामे नहि. अने आ धूतारा साधुओ तो बहारथी साधुतानो स्वांग पहेरी अंदरनी मलीनता राखी जगतने भरमाना खाडामां होमवानो धंधो आदर्यो छे !

कविता कोटी कोट है, सिरके मुंडे कोट·
मनके मुंडे देख कर. ता संग लिजे ओट. १७

मस्तक मुंड मुंडायके. काया बादल चोट:
मनको काहे न मुंडिये. जामें सबहि खोट ' १८

(२)

गुरु लोभी शिष्य लालची. दोनो खेले दाव:
दोनो डूबे बापडे. बेठ पथ्थरकी नाव. १

(१७) ज्ञाननी कविता बनावनारा पंडीतो कोटानकोटी छे, शिर मुंडावनारा पण क्रोडो छे. पण जे मनने मुंडे-तावे करे ल्हेनी ज तुं सोबत करजे.

(१८) माथुं-मुंछ वगेरे मुंडावीने कायानु रुप बदली नाखनारा त्यागीओ मनने केम मुंडता नहि होय? खरी खोट तो मन मुंडनारनी छे: ए खोट-ए तंगी कोइ पुरी पाडतुं नथी.

(१) गुरु अने शिष्यनी जोडी घणेभागे एक सरखी ज मळे छे. गुरु 'लोभी' होय अने शिष्य 'लालचु' होय. आ सिद्धांत बराबर समजवा जेवो छे. जे माणस जे चीजने लायक होय ते ज त्हेने मळेछे. आकर्षण (Attraction) ना नियम प्रमाणे समान प्रकृतिओ एकबीजाने पोता तरफ खेंचे छे. गुरु पैसानो लोभी होय के पछी (ज्यहां अन्न--वस्त्र मागवा पहेलां बमणां मळतां होय तेथी लक्ष्मीनी जरुर न रहेती होय त्यहां) मानना लोभी होय; अने शिष्य 'लालचु' होय एटले के थोडे खर्चे के थोडी महेनते (मात्र आ गुरुराजनी पगचंपी करवाथी के एना चेलाने दिक्षा आपवामां बे चार हजार रुपीआनुं खर्च करवाथी के एनो गमे तेवी बाबतमां पक्ष करवाथी) स्वर्ग मळी जशे एवी लालचवाळो ते शिष्य थाय छे.

जाका गुरु है लालची, दया नहिं शिष्य मांहि;
ओ दोनोको भेजिये, उज्जड कुवा मांहि ! २

गुरु गुरु सब कहा करो, गुरुहि ' घर 'में भाव,
सो गुरु काहे किजीये, जो नहि बतावे दाव ? ३

बंध से बंधा मिला, छुटे कौन उपाय ?
संगत कीजे निर्बंधकी, पलमें दिये छुटाय. ४

दुनीआना साधुओ अने भक्तोनो म्होटो भाग आवो ज होय छे. पथ्थरनी होडीमां बेठेला शिष्यो डुबे एमां शुं आश्चर्य ?

(२) वाहरे कबीरजी वाह ! त्हमारा जेवा सत्यकथन निडर-पणे करनारा पुरुषो थोडा ज थया हशे. जेना गुरु पैसा के मानना लालची होय त्हेना शिष्यने दया तो होइ शके ज नहि; कारण के पैसा के मान रळवा माटे अनेक दगाफटका अने काट--कूट करवी पडे; एमां शिष्यो गुरुनी भक्ति खातर--थोडी महेनते मोक्ष सुंदरीने वरी बेसवा खातर--हथीआर तुल्य बने ज. माटे एवा गुरु अने एवा चेलाने तो उज्जड कुवामां पधरावी दो, के जेथी कोइ कहाडनार पण न मळे !

(३) हे लोको ! त्हमे बधा भल्रा माणस छो, त्हमे ' गुरु-गुरु ' एवा पोकार कर्या करोछो; पण त्हमारा गुरुना भाव एटले लक्ष तो ' घर ' एटले संसारमां-संसारी जेवा काममां छे. जे गुरु संसार भावने अळगो करी परमतत्त्वनी प्राप्तिनो ' दाव ' बतावे नहि त्हेने 'गुरु' कयो मूर्ख कहेशे ?

(४) बांधेला बांधेलाने केम छोडवी शके ? कर्मोथी खरडा-येलो बीजाने कर्मरहीत केम करी शके ? लोहीथी कपडां धोवाय ज नहि. माटे निर्बंध-मुक्त पुरुषोनी संगत करो के जेथी पळमां त्हमने पण 'मुक्त' करशे.

पूरा सद्गुरु ना मिला, रहा अधुरा शिश्य.
स्वांग जतिका पहेरके, घर घर मागे भिक्ष. ५

सद्गुरु ऐसा किजीये. तर्त दिखावे सार:
पार उतारे पलकमे. दर्पन दे दातार. ६

(३)

दया गरीबी बंदगी, समता शील स्वभाव.
एते लक्षन साधके. कहे कबीर सद्भाव. १

---

(५) हे साधुनामधारी ! त्हने कोइ 'पुरो' सद्गुरु मळ्यो नथी जणातो: तेथी तुं पण 'अधुरो शिश्व' एटले ' अपूर्ण शिष्य ' बन्यो अने जतिनो—साधुनो स्वांग पहेरीने घेर घेर टुकडा मागी खावा मांडया !

(६) सद्गुरु एवा मेळववा जोइए के जे जल्दी जल्दी 'सार पदार्थ'—आत्मपीछान मेळवी आपे अने भवजळ पार उतारी दे. कारणके सद्गुरु तो बीजुं कांइ देता नथी, मात्र दर्पण देछे. एटले के हृदयनी निर्मळता करी आपे छे. जेम कोइ बाळकना हाथमां दर्पण आपवा छतां एमां पोतानुं म्होां जोवानो परिश्रम तो बाळके पोते ज लेवो पडशे; तेम सद्गुरु कांइ आत्मानुं दर्शन करावता नथी, पण हृदयने अरीसा जेवुं बनावी आपे छे, के जेथी करीने शिष्य ते अरीसामां पोतानुं स्वरुप जोइ शके.

(१) अत्यार सुधी साधुनामधारीनां लक्षण बतावी भोळा लोकोने चेतव्या; हवे साचा साधुनां लक्षण बतावी एमना शरणे जवानी सलाह आपेछे. कबीरजी 'सद्भाव' कहेछे अर्थात् जेवुं छे तेवुं--यथारुप सत्य जणावे छे के, दया, नम्रता, भक्ति, सम--ता!

मान नहि अपमान नहि, ऐसे शितल संत;
भवसागर उतर पडे, तोडे जमके दंत. २

आशा तजे माया तजे, मोह तजे, अरु मान;
हर्ष शोक निंदा तजे, कहे कबीर संत जान. ३

संत खरे सोही कहो, जीने कनक कामीनी त्याग;
और कछु इच्छा नहिं, निशदिन रहे विराग. ४

अथवा सुख--दुःखमां मननी अडोलवृत्ति अने शीलः आ पांच, 'साधु'नां लक्षण समजजो. (कबीरजीए आपेला आ 'कसोटीना पथ्थर' उपर पोतपोताना गुरुने घसी जोवाथी दरेक माणसने खात्री थशे के ए ते साचुं सोनुं छे के कथीर छे !)

(२) जे पुरुषने मान--अपमाननी लेश मात्र असर थती नथी एवी शीतलता प्राप्त थइ छे, ते ज पुरुष भवसागर तरी शके अने जमना दांतने तोडी शके; अर्थात् फरी मरवानी जरुर त्हेने रहे नहि.

(३) कबीरजी कहे छे के, जे पुरुष आशा (इच्छा) ने तजे, मायाने पण तजे, मानने पण तजे अने हर्ष--शोक नामनी लागणीओ साथे निंदाने पण तीलांजली आपे एने ज तुं 'संत' जाणजे.

(४) जेणे कंचन अने कामीनी त्यजी छे, त्यजी छे एटलुं ज नहि पण ते ते चीजोनी इच्छाने पण त्यजी छे अर्थात् बाह्य तेमज अभ्यंतर त्याग कर्यो छे अने परमात्मा साथे ज जेनो तार लागेलो छे त्हेने 'संत' कहेवो.

हरिजन हारा ही भला, जीतन दे संसार,
हारा हरिपै जायगा, जीता जमकी लार ! ५

सुखके माथे सिल पडो ! हरि हिरदेसे जाय.
बलिहारी आ दुःखकी, पल पल राम संभराय ! ६

आपा त्यां अवगुन अनत, कहे संत सब कोय,
आपा तज हरिको भजे, संत कहावे सोय. ७

(५) 'हरिजन' एटले हरिनो दास अथवा विश्वव्यापक तत्त्व ए रूपी जे हरि त्हेनो दास एटले जगतमात्रनी सेवा एज जेनो जीवन-मंत्र छे एवो पुरुष. एवो हरिजन तो ' संसार ' थी एटले के स्थूल संसारमां मग्न रहेला मनुष्यथी हारे ज. एवानी साथे चर्चा करवा हरिजन के जेने दुनीआनां अनेक परोपकारी कामो करवानां होय छे ते मुद्दल फुरसद मेळवी शके नहि. माटे एवा पुरुषोथी तो हरि-जन हारे एज ठीक छे. अने ' हारेलो ' हशे ते हरि तरफ चित्त दोरवशेः जीतेलो तो जमनी तरफ जवानो. जेने संसारी जनो ' जीत ' कहे छे ते तो नरकनो रस्तो छे. संसारीओ जेने निंदे छे एनामां ज प्रायः कांइ माल होय छे.

(६) सुखना उपर म्होटा पथ्थर पडजो ! कारण के सुखनी मीठी केफने लीधे हृदयमांथी हरि जता रहे छे. वलीहारी तो दुःखने छे, के जे क्षणे क्षणे रामनामने याद करावे छे.

(७) सघळा संतजनो पोकारी गया छे के, ज्यहां 'आपा' अथवा 'हुं' पणुं छे त्यहां अनेक अवगुण भर्या छे. जे 'आप'ने भज-वानुं छोडी दइ 'हरि'ने भजे ते खरो संत कहेवाय. अही शब्दार्थ विचारवा जेवा छे. 'हुं' पणानी सांकडी जेलमांथी मनने मुक्त करी परमात्मतत्व के जे विश्वव्यापक छे त्हेने 'भजवुं' एटले ते भावमां जवुं (भजवुं = जवुं,)

हरिजन ऐसा चाहिये, जैसा फोफल भंग;
आप करावे टुकरा, और पर मुख राखे रंग. ८

तन ताप जीनको नहि, न माया मोह संताप;
हरख शोक आशा नहि, सो हरिजन हर आप. ९

चंदन जैसा संत है, सर्प जैसा संसार;
अंग ही से लपटा रहे, छांडे नही विकार. १०

एक घडी आधी घडी, आधी उनमें आध;
संगत करिये 'संत'की, तो कटे कोट अपराध. ११

---

(८) हरिजन तो एवो होय के जाणे फोफल अथवा भागेली सोपारी जोइ ल्यो! पोताना टुकडा थशे ते सहन करीने पण बीजाने फायदो करशे. 'जग--सेवा' एज एनो 'धर्म' होय छे.

(९) हरिजन अने हरि बे एक ज छे, बेमां भिन्नभाव नथी; पण व्यवहारे के रहेने शरीरनो ताप एटले पीडा लागी शके ज नहि एवो तल्लीन भाव पेदा थयो होय अने माया--मोहनो पण संताप दूर थयो होय, अने हर्ष--शोक--आशा रही न होय.

(१०) 'संत' अने 'संसारी' ए बे वच्चे तफावत बतावे छे के, संत तो चंदन समान छे अने संसारी जन सर्प जेवा छे. चंदन पोते घसाईने पण परने शान्ति आपे छे. सर्प पोताने दूध पानारने पण करडे छे. बस एटलो ज तफावत. बाकी कांई मेलां लुगडांनो के सरळतारहीत रहेणानो के एवो कोई बाह्य तफावत नथी.

(११) अने एवा साचा 'संत'नी सोबत एक घडीने माटे ज मळे--अरे अडधी के पा घडी ज मळे तो पण एनी संगतथी करोडो पाप नाश पामे.

साधु थवुं कांइ रस्तामां पडयुं नथी.

जब लग नाता जातका, तब लग भगत न होय,
नाता तोडे हरि भजे, 'भक्त' कहावे सोय. १

हाट हाट हिरा नहि, कंचनका नहि पहार;
सिंहनका टोळा नहि, संत विरला संसार. २

संत संत सब को कहे, संत समुद्र पार;
अनल पंखका को एक है, पखका कोट हजार. ३

(१) 'हरिभक्त' अथवा साधु बनवुं कांइ रस्तामां पडयुं नथी. ज्यहां सुधी 'जात' साथे 'नातो' रहे छे एटले के संबंध रहे छे त्यहां सुधी 'भक्त' थइ शकाय ज नहि. 'नात' ए एक संसारी जनोए उत्पन्न करेलो भेदभाव छे, ए 'भेदभाव' भक्त पुरुषने होय ज नहि. एने मन तो 'वसुधा एज कुटुंब' एम होय. आवा क्षुद्र बंधारणोनो नातो एटले संबंध न राखतां जे हरिथी ज नातो राखे ते 'साधु' पुरुष अथवा 'हरिभक्त' कहेवाय.

(२) दुकाने-दुकाने कांइ हीरा वेचाता नथी; हीरा वेचनार झवेरीनी दुकानो तो थोडी ज होय छे. कंचन एटले सुवर्णना कांइ पहाड होता नथी. सिंहनां टोळां फरतां नथी; सिंह तो रडयाखडयाज जोवाय छे. तेम हीरा-सुवर्ण अने सिंहनी सरखामणीमां मुकाय एवा संतो पण रडयाखडया ज जोवामां आवे छे. एनां कांइ टोळे-टोळां भटकतां जोवामां आवशे नहि.

(३) 'सब को' एटले सर्व कोइ एम ज कहे छे के 'अमे संत छीए-अमे संत छीए' अथवा 'अमारा गुरु संत छे.' परन्तु

सुराका तो दल नहिं, चंदनका वन नाहि;
सब समुद्र मोति नहिं, युं हरिजन जग मांहि. ४

चार चिन्ह हरिभक्तके, प्रगट दिखाइ देत;
दया धर्म आधिनता, पर दुःखको हर लेत. ५

संत कांइ रस्तामां आथडता नथी, ए तो समुद्रनी पार छे. एटले के जेम विलायत के एवो कोइ देश जोवो होय तो समुद्र ओळंगवानी तकलीफ सहवी पडे छे, त्यहारे जोवाय छे. तेम घणी तकलीफ कोइ रडयोखडयो संत मळी आवे छे. जेम के, गुप्त पांखोवाळा गरुडपक्षी तो कोइक ज होय छे, पण देखाती पांखवाळा पक्षीओ हजारो-क्रोडो होय छे. पण ते पक्षीओ कांइ आखो समुद्र तरी शके नहि.

(४) शूरवीर पुरुषनां कांइ टोळेटोळां होतां नथी. लश्करमां पण थोडा ज पुरुषो खरेखरा शूरा होय छे, जेमनी हाजरीथी बीजा सैनीकोने शूरातन न्हडी आववाथी लडे छे. वळी चंदन एटले सुखडनां झाडनां कांइ वन होतां नथी; अने मोती कांइ बधा समुद्रमां पाकतां नथी; तेमज हरिजन अथवा साचा संत तो जगमां ठेरठेर नथी मळता.

(५) हरिभक्तने ओळखवा माटे सामान्य रीते चार चिन्हो याद राखवां. (१) दया (२) धर्म अथवा कर्त्तव्यपरायणता (३) नम्रता (४) पारायां दुःखो दूर करवानी तत्परता. आ गुणो वडे 'संत' ओळखी शकाय. हवे वांचनारओए पोतपोताना गुरुओमां आ चार गुणो शोधी कहाडवा माटे खुणा-खांचरा जेटला ढुंढाय तेटला ढुंढी जोवा अने पछी गुरु खरे ज 'संत' छे एम खात्री थाय तो तेहेने पोतानो मालीक मानी सर्वस्व अर्पण करवुं; अने जो दया खरेखरी न होय, पोतानी फरज बजाववामां अमदम दशा न होय. नम्रतानी

एक घडी आधी घडी, भाव भजनमें जाय:
सत संगत पलहि भली, जमका धक्का न खाय. ६

कबीर सेवा दो भली, एक संत एक राम:
राम है दाता मुक्तिका, संत जपावे नाम. ७

जगाए अहंपद होय, पारकां दुःखोनो ख्याल पण हृदयमां न होय; आवुं जणाय तो एवा गुरुने, कबीरजीए बीजी जगाए कहुं छे तेम, जंगल वच्चे आवेला कोइ ऊंडा कूवामां नाखी देवा, के जेथी ते गुरु बीजाओने पण डुबावता बंध थाय !

(६) भजनना बे प्रकार: (१) द्रव्य भजन (२) भाव भजन. 'द्रव्य भजन' तो बहारथी भगवाननी स्तुति करवी ते, स्तवन गावां ते. अने ' भाव भजन ' एटले मनथी भगवानमां लीनता करवी ते. एवी लीनता जो एक घडी के मात्र अडधी घडी ज थाय तो ते माणसने जमना धक्का बहु न खावा पडे. 'भाव भजन' करतां पण जो सत्संगतनो जोग मळी जाय तो जोइ ल्यो मजाह ! अडधी घडी नहि पण एक पल मात्र जो सत्संगत मळे तो एथीए वधारे लाभ थाय; कारणके आपणी मेळे जे 'भाव भजन' करीए ते करतां संते बतावेली कुंचीवडे भजन करीए ए हजारगणुं वधारे असरकारक नीवडे, ए देखीतुं ज छे.

(७) कबीरजी कहे छे के 'सेवा' करवी तो बेनी ज करवी: कां तो 'संत' नी अने कां तो रामनी. वच्चे अधकचरीआ पुरुषोनी के पत्थरनी सेवा करवाथी कांइ दहाडो वळे नहि. राम मुक्तिना दाता छे, अने संत छे ते राम नाम बराबर जपवानी रीत बतावे छे, रामनी ' पीछान ' (introduction) करावे छे.

निराकार हरि रुप है, प्रेम प्रीत सें सेव;
जो मागे आकारको, तो संतो प्रत्यक्ष देव. ८

संत वृक्ष हरि नाम फल, सतगुरु शब्द विचारः
एसे हरिजन ना हते, तो जल मरते संसार. ९

प्रिय वाचक ! वेठ कहाडवा बेठा हो एवी रीते वांचशो नहि; कबीरजीनां क्रोड क्रोड रुपीआनी किमतनां कथन कान दइने सृणजो.

(८) हरि एटले परमात्मा तो निराकार छे; एने कांइ पुष्पादिथी पूजी शकाय नहि. एनी सेवा तो प्रेमरुपी प्रीतिथी ज थाय. एटले के अंतःकरणमां एना उपर प्रेम आववाथी ज एनी सेवा थइ गइ. परन्तु जो कोइ माणसथी 'निराकार'नी सेवा न बनी शके तेम होय अने 'साकार'नी सेवानी जरुर होय तो निराकार एवा जे परमात्मा तेनुं आकारवाळु स्वरुप एज 'साधु पुरुष' छे एम मानी साधुनी सेवा करवा दो. कारणके 'साधु'मां 'परमात्मा'ना गुणोनी वानगी छे.

(९) अहीं कबीरजी स्पष्ट खुलासो करे छे के, संत रुपी वृक्ष छे, तेनुं 'हरिनाम' ए फळ छे. सतगुरुनो शब्द एज परमात्मानो शब्द छे. आवुं वृक्ष जो आ दुनियामां न होत तो संसार तापथी बळी जात. वृक्ष एने शीतळता आपे छे.

'कहेणी' साथे 'करणी'

अथवा

'ज्ञान' साथे 'क्रिया'.

'ज्ञान अने क्रियाथी मोक्ष छे' एम जे कहेवाय छे तेनो अर्थ केटलाक एम करे छे के प्रथम ज्ञान थाय अने पछी क्रिया थाय. परन्तु खरो अर्थ ए छे के ज्ञानपूर्वक- समजपूर्वक क्रिया करवी, तो ज मोक्ष मळे. मतलब के मोक्ष तो क्रियाथी ज छे, मात्र समजवाथी नहि; पण ते क्रिया देखादेखीथी के स्वार्थथी थती न होवी जोइए, संपूर्ण विवेक साथे—ज्ञानपूर्वक होवी जोइए. वळी ध्यानमां रहेवुं जोइए के 'क्रिया' एटले ' Ceremonials '--'विधि'ओ एवो अहीं अर्थ नथीः पण Action एटले 'कार्य' एवा रूपमां छे.

माणस एक वात खरी माने पण वर्त्तनमां ते खरी वातनो अमल न करे तो तेथी कांइ मोक्ष न मळे. अलबत आटलुं तो खरुंज छे के 'जाणपणुं' ए पण म्होटी वात छे. जाणपणुं हशे तो कोइक दिवस तदनुसार क्रिया--वर्त्तन पण थशे. तेटली अपेक्षाए मात्र जाणपणुं धरावता पुरुषो पण अपमानने लायक तो नथी ज. परन्तु जेओ म्होटी म्होटी वातो मात्र पोताना ज्ञाननुं प्रदर्शन करवाने माटे करे अने वर्त्तनमां छेक ज नीची पंक्तिए जइ बेसे, मतलब के एक सामान्य माणस पण न करे एवां दुष्ट कामो करे एवा माणसो तो खरेखर धर्मने लजवनारा ज गणाय. एवाना संबंधमां कबीरजीना चाबखा बहु विचारवा जेवा छे. आपणे ते तपासी जोइशुं.

कहता पर करता नही, मुंहका वडा लवार;
काला मुंह ले जायगा, साहबके दरवार ! १

कहना मीठी खांड है, करना विखकी लोय;
कहेनी ज्युं रहेनी रहे, विखका अमृत होय. २.

जैसी वानी मुख कहे, तैसी चाले नाहीं;
मनुष्य नही वो स्वान है, वांधे जमपुर यांही. ३

---

(१) जे माणस कहे छे तेवुं करतो नथी ते मुखनो लवाड छे. परमात्माना दरवारमां ते पोतानुं काळुं मुख लइने जशे. (जैनोना 'किल्वीपी देव'नी मान्यता साथे आ विचार सरखाववा जेवो छे.)

(२) कहेवुं ए तो खांड खावा जेवुं काम छे, पण करवुं ए तो विपनी लुगदी खावा जेवुं कठीन काम छे. जे माणस कहेणी--रहेणी एकसरखी राखे छे ते तो विपने पण अमृत करी शके छे. आ वाक्यना वे अर्थ थइ शके. रहेणी--कहेणी वन्ने जेनामां होय तेवा पुरुपो, एटले के 'ज्ञानपूर्वक क्रिया' करनारा पुरुपो, एटले के ज्ञान, दर्शन अने चारित्र त्रणे जेनामां छे एवा पुरुपोने अमुक लब्धिओ, वगर इच्छाए ज, स्वाभाविक रीते उत्पन्न थाय छे, जेने प्रतापे विपनुं अमृत पण थइ जाय ए कांइ ताजुव थवा जेवुं नथी. वीजो अर्थ एवो थाय के, एवा पुरुपो आगळ झेर जेवा शब्दो के वनावो आवे त्हेने पण तेओ अमृत जेवा मानी छे, पण क्रोध के आत्मक्लेष न ज करे.

(३) जे माणस वोले कांइ, ने चाले कांइ, त्हेने 'माणस' नहि पण 'कुतरो' समजो. तेवो माणस अहीं--आ दुनीआमां ज जमपुरी वनावे छे. आ वहु समजवा जेवी वावत छे. सामान्य 'इच्छाओ' अथवा वासनाओ तो थोडा ज्ञानथी पण दूर थइ जाय

कथनी बकनी छोड दे रहेनीसे चित्त लाय;
निरखी नीर पीये बिना, कबहु प्यास न जाय. ४

कथते–बकते मर गये, मूरख कोट हजार;
कथनी काची पर गइ, रहेनी रही सो सार. ५

छे; पण जे तीव्र वासनाओ घणुं जाणपणुं थवा छतां पण छूटे नहि ते वासनाओ तो खरेखर तेजस् शरीरने घणुं ज कदरूपुं बनावी देछे अने ते सूक्ष्म सृष्टिमां यम जेवी आकृतिओ धारण करी पेला 'कहेणी पर करणी नहि' वाळा पंडीतने अनेक रीते पजवे छे.

(४) हे भाइ! तु बहु बोलवुं जवा दे: करणी तरफ चित्त लगाड. मतलब के दंभ जवा दे अने त्हने जे खरुं जणाय ते करी बताव. त्हारुं वर्त्तन निर्मळ बनाव. उच्च चारित्र (Character) खीलव. पाणी निर्मळ छे के नहि ते तपासवुं जरुरनुं छे ए वात हुं कबुल राखुंछुं; पण पाणी निर्मळ होवानी खात्री थया पछी त्हेने गळे उतार्या वगर कांइ तरस मटवानी नथी. जाणवुं तेमज करवुं ए बन्ने क्रिया वगर कांइ दारिद्र दूर थवानुं नथी. पाणीने बदले उताबळथी झेर पीधुं होत तो पण जीव जात; माटे जाणपणुं शुद्ध जोइए. तेमज पाणीनी खात्री थया पछी त्हेने जोयां ज करे–पीए नहि तो पण तरसथी जीव जाय.

(५) कथता--बकतां तो क्रोड हजार उपदेशको मरी गया; त्हेमांना कोइनुं नामनीशान पण आजे रह्युं नथी. कारणके 'कथनी' थोडा वखतमां 'काची पडे छे'--देवाळुं फूंके छे. पारका रुपीआ लावीने सराफुं करे ते केटलो वखत चाले? घरमां मुडी होय तो ज सराफुं लांबो वखत चाली शके. रहेणी तो घरनी लक्ष्मी छे–अंतरनी मीलकत छे. अंतरमां संपूर्ण पवित्रता सिवाय शुद्ध रहेणी होय ज

कहता पर करता नही, मुंहका बडा लवार;
काला मुंह ले जायगा, साहबके दरबार ! १

कहना मीठी खांड है, करना विखकी लोय;
कहेनी त्युं रहेनी रहे, विखका अमृत होय. २

जैसी वानी मुख कहे, तैसी चाले नाहीं;
मनुष्य नही वो स्वान है, बांधे जमपुर यांही. ३

---

(१) जे माणस कहे छे तेवुं करतो नथी ते मुखनो लबाड छे. परमात्माना दरबारमां ते पोतानुं काळुं मुख लइने जशे. (जैनोना 'किल्वीषी देव'नी मान्यता साथे आ विचार सरखाववा जेवो छे.)

(२) कहेवुं ए तो खांड खावा जेवुं काम छे, पण करवुं ए तो विषनी लुगदी खावा जेवुं कठीन काम छे. जे माणस कहेणी--रहेणी एकसरखी राखे छे ते तो विषने पण अमृत करी शके छे. आ वाक्यना बे अर्थ थइ शके. रहेणी--कहेणी बन्ने जेनामां होय तेवा पुरुषो, एटले के 'ज्ञानपूर्वक क्रिया' करनारा पुरुषो, एटले के ज्ञान, दर्शन अने चारित्र त्रणे जेनामां छे एवा पुरुषोने अमुक लब्धिओ, वगर इच्छाए ज, स्वाभाविक रीते उत्पन्न थाय छे, जेने प्रतापे विषनुं अमृत पण थइ जाय ए कांइ ताजुब थवा जेवुं नथी. बीजो अर्थ एवो थाय के, एवा पुरुषो आगळ झेर जेवा शब्दो के बनावो आवे त्हेने पण तेओ अमृत जेवा मानी ले, पण क्रोध के आत्मक्लेष न ज करे.

(३) जे माणस बोले कांइ, ने चाले कांइ, त्हेने 'माणस' नहि पण 'कुतरो' समजो. तेवो माणस अहीं--आ दुनीआमां ज जमपुरी बनावे छे. आ बहु समजवा जेवी बाबत छे. सामान्य 'इच्छाओ' अथवा वासनाओ तो थोडा ज्ञानथी पण दूर थइ जाय

कथनी वकनी छोड दे, रहेनीसे चित्त लाय;
निरखी निर पीये विना, कबहु प्यास न जाय. ४

कथते-वकते मर गये, मूरख कोट हजार;
कथनी काची पर गइ, रहेनी रही सो सार. ५

छेः पग जे तीव्र वासनाओ घणुं जाणपणुं थवा छतां पण छूटे नहि ते वासनाओ तो खरेखर तेजस् शरीरने घणुं ज कदरुपुं वनावी देछे अने ते सूक्ष्म सृष्टिमां यम जेवी आकृतिओ धारण करी पेला 'कहेणी पर करणी नहि' वाळा पंडीतने अनेक रीते पजवे छे.

(४) हे भाइ ! तुं वहु वोलवुं जवा दे; करणी तरफ चित्त लगाड. मतलव के दंभ जवा दे अने त्हने जे खरुं जणाय ते करी वताव. त्हारुं वर्त्तन निर्मळ वनाव. उच्च चारित्र (Character) खीलव. पाणी निर्मळ छे के नहि तें तपासवुं जरुरनुं छे ए वात हुं कवुल राखुंछुं; पण पाणी निर्मळ होवानी खात्री थया पछी त्हेने गळे उतार्या वगर कांइ तरस मटवानी नथी. जाणवुं तेमज करवुं ए वन्ने क्रिया वगर कांइ दारिद्र दूर थवानुं नथी. पाणीने वदले उतावळथी झेर पीधुं होत तो पण जीव जात; माटे जाणपणुं शुद्ध जोइए. तेमज पाणीनी खात्री थया पछी त्हेने जोयां ज करे-पीए नहि तो पण तरसथी जीव जाय.

(५) कथता--वकतां तो क्रोड हजार उपदेशको मरी गया; त्हेमांना कोइनुं नामनीशान पण आजे रह्युं नथी. कारणके 'कथनी' थोडा वखतमां 'काची पडे छे'--देवाळुं फूंके छे. पारका रुपीआ लावीने सराफुं करे ते केटलो वखत चाले? घरमां मुडी होय तो ज सराफुं लांवो वखत चाली शके. रहेणी तो घरनी लक्ष्मी छे-अंतरनी मील्कत छे. अंतरमां संपूर्ण पवित्रता सिवाय शुद्ध रहेणी होय ज

जैसी बानी मुख कहे, तैसी चाले चाल:
साहेब संग लगा रहे, तब ही होय नीहाल. ६

नहि. माटे रहेणी तो हजारो वरस सुधी जगतना जीवोने उपदेश करनारी थइ पडे छे. लॉन्गफेलो नामनो कवि बराबर कहे छे केः—

Lives of great men all remind us,
We can make our *lives* sublime,
And, departing, *leave* behind us
Footprints on the sands of time,
Footprints, that perhaps another
Sailing o'er life's solemn main
A forlorn and shipwrecked brother
Seeing shall take heart again

आ लीटीओनुं भाषान्तर हिंदीमां म्हारा मित्र श्रीयुत गिरिधर शर्माओ नीचे मुजब कर्युं छेः—

जीवनचरित्र महापुरुषोंके हम नसीहत करते हैं:
"हम भी अपना अपना जीवन स्वच्छ रम्य कर सकते हैं."
हमें चाहिये हम भी अपने--बना जांय पद--चिन्ह ललाम--
इस जगतकी रेतीपर, जो वक्त पडे आवे कुछ काम.
देखदेख जिनको उत्साहीत हों पुनि वे मानव मति धर
जिनकी नष्ट हुइ हो नौका चट्टानोंसे टकरा कर.
लाख लाख संकट सह कर भी फिर भी हिम्मत बांधे वे,
जाकर मार्ग मार्ग पर अपना 'गिरिधर' कारज सांधे वे.

महात्माओना शब्दो जेटली असर नथी करता तेटली असर त्हेमनां मुंगां आत्मभोगनां कृत्यो--जगसेवानां कार्यो करे छे.

(६) जेवुं बोले तेवुं ज करे अने परमात्मानी साथे ज पो छे एवुं भान (Self-consciousness) क्षण मात्र न भूलतां दरेक का ते भान साथे ज करे ते माणस नीहाल थाय, त्हेनो बेडो पार उत सौन्दर्यनो समागम ज कहे छे केः—

कथनी कथे सो पुत हमारा, वेद पढे सो नाती;
रहनी रहे सो गुरु हमारा, हम है ताके साथी. ७

Work, work in the living present,
Heart within, and God overhead

वातो करवानुं काम नथी, काळजुं ठेकाणे राखीने अने परमात्माने शिर पर राखीने आजे–आजे ज काम करो. 'कर्मयोग'नी आ हीमायत बहुज उत्तम छे. ईश्वर आवो छे ने तेवो नथी, ईश्वर छे के नथी, ईश्वर कर्त्ता छे के नथी, एवी बूमो पाडनाराओ पोताने जे कांइ खरुं लागतुं होय तेटलुं पण जो करवा मांडता होय–अने लॉन्गफेलोनी सलाह प्रमाणे काळजुं ठेकाणे राखीने करवा मांडता होय, तो करतां करतां वधुं ज्ञान मळी रहेशे. जे जेने लायक छे त्हेने ते मळ्या वगर नथी ज रहेतुं.

(७) पोतानी बुद्धि मुजब कथनी कथे ते माणस कबीरने मन 'छोकरा' जेवो छे; एथी आगळ वधीने जे माणस 'वेद' भणे ते कबीरनो 'नातीलो' छे; अने एथीए आगळ वधीने जे माणस आचारशुद्धि अथवा उच्च चारित्र पाळे छे ते तो कबीरने मन 'गुरु' छे. आ बहु समजवा जेवुं छे. कथनी कथनार कबीरना पुत्र समान छे एटले के ते माणस कमअक्कलनो—छोकरमत छे अने त्हेनी तो कबीरजी पोताना पुत्र जेटली दया खाय छे. जे माणस वेद भणे छे एटले (विद् = जाणवुं; 'वेद' एटले ज्ञाननो संग्रह) जे माणस ज्ञाननां पुस्तको भणे छे ते कबीरजीनो 'नातीलो' एटले एक ज वर्गनो होय एम कबीरजी (विवेकने लीधे) कहे छे. जो के पोते ते स्थितिथी आगळ वधी गया छे तो पण पोतानी बडाइ करवी पसंद न होवाथी कहे छे के हुं पण हजी

दुष्ट करनी छूटे नहीं, ज्ञान ही कथे अगाध;
कहे कबीर वे दासको, मुख देखे अपराध. ८

रहेनीके मेदानमें, कथनी आवे जाय;
कथनी पिसे पिसनां, रहेनी अमल कमाय. ९

'अभ्यासी' छुं. अने निरभिमानपणे महात्मा कबीरजी उमेरे छे के, जे माणस उच्च वर्त्तनवाळो छे ते तो म्हारो 'गुरु' थवा लायक छे. आनुं नाम निरभिमान वृत्तिनो उपदेश ! जेवो उपदेश तेवुं वर्त्तन !

(८) जे माणस 'अगाध' ज्ञाननी वातो करे अने ते छतां एनां (सामान्य खराब कृत्यो न सुधरे ते तो जाणे ठीक पण) दुष्ट कृत्यो पण छूटे नहि एवा 'दास' अथवा 'गुलाम' ने माटे कबीरजी कहे छे के, एनुं तो म्हों जोवाथी पण पाप लागे ! आखा प्रकरणमां 'करणी' एटले वर्त्तन (Behaviour) अथवा कर्त्तव्य कार्य (Duty) ए ज अर्थ छे, ए वात भूलवी नहि. कोइ अमुक धर्मनी क्रियाओ (तीलक, पूजन, खमासणां वगेरे) आ शब्दथी समजवानां नथी.

(९) 'रहेणी' नामे एक मेदान छे, ज्यां 'कथनी' नामनी एक वाइ कोइ कोइ वखत हवा खावा आवे छे. मतलब के मेदान तो एक जगाए कायम रहेवानुं छे, ते कांइ बदलावानुं नथी; पण हवा खानारी जेवी कथनी तो आवे ने जाय. बीजी रीते कहे छे के, कथनी तो 'दासी' छे, ने दळणां दळ्यां ज करे; अने रहेणी छे ते 'राणी' छे, जे हुकम कर्या करे छे. राणी एक अक्षर बोले नहि अने आंखना इशाराथी कांइ फरमास करे ने साथे ज सेंकडो दास-दासीओ हुकमनो अमल करे छे. एक पवित्र वर्तन कोटनामां जोवामां आवे छे के तुरत तेनी सुंदी छाप आसपासना हजारो माणसना मन पर पडी

एरणकी चोरी करे, करे सूइको दान;
ऊंचा चढ कर देखता, कैतिक दूर विमान ! १०

मनमांही फूला फिरे, करता हूं मैं धर्म;
क्रोड कर्म शिरपे धरे, एक न चिन्हे ब्रह्म. ११

स्नान करन तीरथ चले, मन मेला चित्त चोर;
एकही पाप नही टर्यो, लाय्या मन दश और. १२

न्हावो धोवो क्या करे ? मनका मैल न जाय;
मीन सदा जलमें रहे, धोवे कलंक न जाय. १३

जाय छे; अने ते असर पण कायमनी रहे छे. पण उपदेशनी असर एटली स्थीर भाग्ये ज रहे छे; ए तो दळणां दळवा जेटली ज आवकनुं काम छे.

(१०) आजकाल लोको केवी जातनो धर्म करे छे ते तो जुओ ! एरणनी चोरी करीने एक सोइनुं दान करेछे; पछी छापरे च्हडीने जुए छे के हवे म्हाराथी स्वर्गनुं विमान केटलुंक दूर रह्युं छे ? ! घणाए शेठीआओ अनेक अनीतिने रस्ते लाखो रुपीआनी मुडी एकठी करीने पछी थोडाक सो के थोडाक हजारनुं दान करेछे; पण तेथी कांइ स्वर्ग मळे नहि.

(११) मनमां फूलाय छे के हुं तो वहु वहु धर्म करुंछुं ! एवो फुलणसी माथा पर कुकर्मोनो पोटलो तो वधारतो ज जाय छे अने ब्रह्मने ओळखवा प्रयत्न करतो नथी.

(१२) मूर्ख माणस तीर्थस्नान करवा चाल्यो, पण मन तो मलीन छे अने चित्तडं चोर छे तेथी पाप एक पण टळवाने वदले उलटां दश पाप लइने घेर आव्यो ! वाहरे तीर्थस्थान !

(१३) न्हाये–धोयेथी शुं थयुं ? एथी कांइ मननो मेल

जैसी करणी आपकी, वैसा ही फल ले;
कूडे कर्म कमाय के, सांइयां दोष न दे. १४

(२)

राम झरूखे बैठ कर, सबका मुजरा लेत;
जिनकी जैसी चाकरी, उनको वैसा देत. १

दूर थवानो नथी. एम तो मांछलां आखी जींदगी सुधी जळमां ज रहे छे. माटे स्थूल देह धोयेथी कांइ आत्मानुं कलंक जाय नहि. आ वात तदन साची छे. पण ते उपरथी कोइए एवुं नथी समजवानुं के कबीरजी माणस मात्रे स्नान ज न करवुं एम उपदेश करेछे. ना; माणसे पोताना शरीरनी साचवणी माटे आहार, स्नान, निद्रा, उद्यम वगेरे जे कांइ करवुं पडे ते विवेकपूर्वक करवुं ज जोइए. परन्तु कबीरजी तो मात्र एम कहेछे के स्नान करवाथी धर्म थाय छे एवी गेरसमज न धराववी.

(१४) हे भाइ ! जेवी त्हारी करणी (वर्त्तन) तेवुं ज फळ भोगववा तैयार था. कूडां कर्म करीने पछी नाहक परमात्माने शिर दोष न दइश. सुख--दुःख ए मात्र सारां खोटां कर्मनां 'विपाक' छे. अहीं स्पष्ट कहे छे के, बाह्य क्रिया उपर सुख--दुःखनो आधार नथी पण करणी एटले वर्त्तन पर छे.

(१) राम (रम--रमवुं)--सघळी जगाए रमी रहेलो एवो 'कर्मनो कायदो' (Law of Cause & Effect) बधानो हीसाब पूरे छे अने जेवी जेनी 'चाकरी' (पब्लीक सर्वीस--परोपकारनां कामो) तेवुं तेनुं फळ तेने आपे छे. 'कर्मना कायदानी चुंगालमांथी कोइ छटी शकतुं नथी, के तेने कोइ ठगी शकतुं नथी.

साहबके दरबारमें, साचेको शिरपाव;
झूठ तमाचा खायगा, क्या रंक क्या राव ! २

साइयांके दरबारमें, कमी कछु है नाहि;
बंदा मोझ न पावहि, तो चूक चाकरी मांही. ३

साहबके दरबारमें, क्युं कर पावे दाद ?
पहले कृत्य बुरा करे, फिर करे फर्याद ! ४

---

(२) परमात्मानो न्याय एवो छे के, साचाने (दुनीआ जेनी किमत न समजी शके एवुं विचित्र प्रकारनुं) इनाम मळे छे; अने जूठाने तमाचा मळे छे, पछी भलेने ते सखस राजा होय के रंक होय ! कर्मनो अचळ कानुन गुप्त रीते काम कर्याज करेछे; ज्यारे माणसने दुःख पडेछे त्यारेज ते कानुननी हयातीनुं स्मरण थाय छे.

(३) परमात्माने त्यां कोइ जातनी कमीना नथी; मतलब के विश्वमां कोइ जातनां सुखोनो टोटो नथी, के जेथी त्हने ते आपतां आंचको खाय. सवाल मात्र एटलो ज छे के, त्हारी 'चाकरी' मां 'चूक' अथवा कचास छे तेथी 'मोझ' मळती नथी,--सुख अने तुं ए वे वच्चे 'अंतराय'--पडदो आवी रहे छे. छती शक्तिए जेओ दान नथी करता तेओने सुखनी अंतराय पडे छे, एम जैन शास्त्र पण पोकारी पोकारीने कहे छे. छतां चाकरी--जगसेवा सूझती नथी अने 'मोझ' एटले सुखनां साधन इच्छे छे एवो मूर्ख आ जीव छे ! पण जाणतो नथी के आ विश्व ए हरिनुं अंग छे; विश्वनी सेवा करवी ते हरिनी ज सेवा छे (कांइ बाह्य क्रिया--पूजा ए सेवा नथी) माटे हरि पासेथी सुख लेवुं होय तो हरिना अंगरूप विश्वना जीवोने शाता पमाडना बनतुं कर.

(४) हे मूर्ख ! त्हने सुख नथी मळ्युं [illegible] परमात्माने

नदी कुदरत दो एक सम, हरकिसीको देत;
जिसका जैसा पात्र हो, उतना वो भर लेत. ५

फर्याद करे छे के ? शुं तुं नथी जाणतो के त्हें प्रथम ज बुरां काम कर्यां छे, तो हवे शुं म्हों लइने फर्याद करवी ? एने त्यहां तो इनसाफ ज छे; मात्र त्हारी यादशक्ति त्हारां कुकर्मोने लीधे मारी गइ छे तेथी पाछलां कामो अने आजना बनावो वच्चे जे झीणो पण सळग तार छे ते तुं जोइ शकतो नथी.

(५) नदी अने कुदरत बन्ने एक सरखां छे; आने आपुं अने आने न आपुं एवो एक्केनो विचार छे ज नहि. खुल्ला मेदान वच्चे नदी धीमो मीठो अवाज करती वहां करे छे, के जे अवाज एम बोले छे के "आवो अने आ जळ पी शान्त थाओ !" जे 'अहंपद' वाळो माणस नमीने पाणी भरवानुं पसंद न करतो होय ते तरस्यो ज मरे तो न्हेमां नदीनो शो दोष ? अने जे माणस एटली नमनताइ बनावी शकतो होय ते माणस पोताना खोबाना प्रमाणमां के पोतानी पासे प्यालो--लोटो के घडो जे कांइ पात्र होय त्हेना प्रमाणमां पाणी लइ शकशे; कोइ ओछुं अने कोइ वधारे. नदीए कोइने ओछुं आप्युं नथी अने कोइने वधुए आप्युं नथी; कोइए वधु लीधुं अने कोइए ओछुं लीधुं. आपनारनो दोष नथी, लेनारनो दोष भले कहो. त्यहां पण लेनारनो 'दोष' न कहो, लेनारनी 'शक्ति' कहो. (लेवानुं सूझ्युं ए पोते ज सदभाग्यनी नीशानी छे.) तेवीज रीते विश्वमां सुख ज भरेलुं छे. पण ते लेवानी जेटली त्हमारी शक्ति तेटलुं त्हमारुं ! त्हमारा घडाने--हृदयने जेम विशाळ बनावशो तेम वधारे सुख एमां झीली शकशो

जो तोको कांटा बुवे, ताको वो तू फूल;
ताको फूलका फल है, वांको कांटा सूल ! ६

कहता हूं, कह जात हूं, देता हूं हेला:
" गुरुकी करनी गुरु तिरे, और चेलाकी चेला. " ७

(६) जे त्हने कांटो मारे त्हेने पण तुं तो फूल ज मारजे; अर्थात् फूल जेवी सुगंधी याने प्रेमभावना त्हेना तरफ मोकलजे. एम करवाथी त्हने तो फूलनु फूल ज मळशे अने पेलाने कांटा अने शूळ ज वागशे. कांटो मारनार जे खराब भावनाथी कांटो फेंके छे ते खराब भावना त्हेना सूक्ष्म देहमांथी छूटीने त्हारा तरफ दोडशे पण त्हारा सूक्ष्म शरीरमां ेवी गदी चीजने रहेवाने जगा न होवाथी (त्हेनुं आकर्षण न थवाथी) ते खराब भावना पाछी जइ ज्यहांथी नीकळी हती त्यहांज पेसे छे. आ रीते ते कांटो त्हेने ज वागे छे. हवे तुं के जेणे त्हेनुं भलुं ज इच्छयुं हतु एवा त्हारा सूक्ष्म शरीरमांथी छूटेली ते सुगंधमय प्रेम भावना त्हेना शरीरने स्पर्शवा जशे, त्यहां जो ते पोताने लायक खुणो खचको पण जोशे तो तो त्यहां रहीने त्हेने फायदो करशे; अने जो तीलमात्र जगा पोताने लायकनी नहि जुए तो पाछी फरीने पोताना जन्म स्थळनी आबादीमां वृद्धि करशे. आ हिसाबे त्हने तो फूलनुं फूल ज मळशे.

(७) कबीरजी कहे छे के, हे मनुष्यो ! हुं कहुंछुं अने फरीथी छेवटने माटे कही जाउंछुं—अरे 'हेला' एटला टकोर मारीने कहुंछुं के " गुरुनी करणीथी गुरु तरशे अने चेलानी करणीथी चेलो तरशे. " जे करशे ते पामशे. गुरुनी करणी चेलाने के चेलानी करणी गुरुने कांइ काम लागशे नहि. आपबळ सिवाय सर्व नकामुं छे. गुरु कांइ विमान आपी शकता नथी: ते तो पोतानुं विमान पोते

नदी कुदरत दो एक सम, हरकिसीको देत;
जिसका जैसा पात्र हो, उतना वो भर लेत. ५

फर्याद करे छे के ? शुं तुं नथी जाणतो के त्हें प्रथम ज बुरां काम कर्यां छे, तो हवे शुं रहीं लइने फर्याद करवी ? एने त्हां तो इनसाफ ज छे; मात्र त्हारी यादशक्ति त्हारां कुकर्मोने लीधे मारी गइ छे तेथी पाछलां कामो अने आजना बनावो वच्चे जे झीणो पण सळग तार छे ते तुं जोइ शकतो नथी.

(५) नदी अने कुदरत बन्ने एक सरखां छे; आने आपुं अने आने न आपुं एवो एक्केनो विचार छे ज नहि. खुल्ला मेदान वच्चे नदी धीमो मीठो अवाज करती वह्यां करे छे, के जे अवाज एम बोले छे के "आवो अने आ जळ पी शान्त थाओ !" जे 'अहंपद' वाळो माणस नमीने पाणी भरवानुं पसंद न करतो होय ते तरस्यो ज मरे तो त्हेमां नदीनो शो दोष ? अने जे माणस एटली नमनताइ बतावी शकतो होय ते माणस पोताना खोबाना प्रमाणमां के पोतानी पासे प्यालो--लोटो के घडो जे कांइ पात्र होय त्हेना प्रमाणमां पाणी लइ शकशे; कोइ ओछुं अने कोइ वधारे. नदीए कोइने ओछुं आप्युं नथी अने कोइने वधुए आप्यु नथी; कोइए वधु लीधुं अने कोइए ओछुं लीधुं. आपनारनो दोष नथी, लेनारनो दोष भले कहो. त्हां पण लेनारनो 'दोष' न कहो, लेनारनी 'शक्ति' कहो. (लेवानुं सूझ्युं ए पोते ज सद्भाग्यनी नीसानी छे.) तेवीज रीते विश्वमां सुख ज भरेलुं छे, पण ते लेवानी जेटली त्हमारी शक्ति तेटलुं त्हमारुं ! त्हमारा घडाने--हृदयने जेम विशाळ बनावशो तेम वधारे सुख एमां झीली शकशो.

जो तोको कांटा बुवे, ताको बो तू फूल;
ताको फूलका फल है, वांको कांटा सूल ! ६

कहता हूं, कह जात हूं, देता हूं हेला:
" गुरुकी करनी गुरु तिरे, और चेलाकी चेला. " ७

---

(६) जे ह्हने कांटो मारे ह्हेने पण तुं तो फूल ज मारजे; अर्थात् फूल जेवी सुगंधी याने प्रेमभावना ह्हेना तरफ मोकलजे. एम करवाथी ह्हने तो फूलनुं फूल ज मळशे अने पेलाने कांटा अने शूळ ज वागशे. कांटो मारनार जे खराब भावनाथी कांटो फेंके छे ते खराब भावना ह्हेना सूक्ष्म देहमांथी छूटीने ह्हारा तरफ दोडशे पण ह्हारा सूक्ष्म शरीरमां ेवी गंदी चीजने रहेवाने जगा न होवाथी (ह्हेनुं आकर्षण न थवाथी) ते खराब भावना पाछी जइ ज्यहांथी नीकळी हती त्यहांज पेसे छे. आ रीते ते कांटो ह्हेने ज वागे छे. हवे तुं के जेणे ह्हेलुं भलुं ज इच्छयुं हतु एवा ह्हारा सूक्ष्म शरीरमांथी छूटेली ते सुगंधमय प्रेम भावना ह्हेना शरीरने स्पर्शवा जशे, त्यहां जो ते पोताने लायक खुणो खचको पण जोशे तो तो त्यहां रहीने ह्हेने फायदो करशे; अने जो तीलमात्र जगा पोताने लायकनी नहि जुए तो पाछी फरीने पोताना जन्म स्थळनी आबादी-मां वृद्धि करशे. आ हिसाबे ह्हने तो फूलनुं फूल ज मळशे.

(७) कबीरजी कहे छे के, हे मनुष्यो ! हुं कहुंछुं अने फरीथी छेवटने माटे कही जाउंछुं—अरे 'हेला' एटला टकोर मारीने कहुंछुं के " गुरुनी करणीथी गुरु तरशे अने चेलानी करणीथी चेलो तरशे. " जे करशे ते पामशे. गुरुनी करणी चेलाने के चेलानी करणी गुरुने कांइ काम लागशे नहि. आपबळ सिवाय सर्व नकामुं छे. गुरु कांइ विमान आपी शकता नथी: ते तो पोतानुं विमान पोते

कवीरने नीज घर किया, गलकट्टाके पासः
करेगा सो पावेगा, तुं क्युं भया उदास? ८
एक हमारी शिख सुन, जो तुं हुवा है 'शेख':
करुं करुं तुं क्या कहे? क्या क्या किया है देख. ९

बनावी गया अने शिष्यने कहेता गया के आम विमान बनावाय; तुं पण गरज होय तो आवी रीते हाथ-पगने श्रम [illegible]ीने विमान बनावजे, एटले मोक्षधाम पहोंची शकीश.

(८) कवीरजीए पोतानो रहेवास गलकट्टा[illegible]नी पासे राख्यो हशे ते उपरथी कोइए पूछयुं हशे के, त्हमे [illegible]वा पवित्र पुरुष थइने आवी अधम जगामां केम रहोछो? त्हेने कवीरजी कहे-छे केः "करशे ते पामशे; एमां हे भाइ! नाहक तुं केम उदास थाय छे?" मतलव के गलकट्टा लोको जे पाप करशे ते त्हेमने नडशे, एमां म्हने शुं? वीजो अर्थ ए छे के, हुं आमनुं जोइने कुकर्म शीखीश तो त्हेनां फळ हुं भोगवीश, परन्तु तुं लक्षामो आवी हांशी करीने पापमां शुं काम पडे छे? खराव [illegible]लतामां न रहेवुं ए नियम सामान्य माणसे हशी कहाडवा जेवो नथी, मा महान गुणोने खीलवी महात्मा वनेलाने माटे एवा नियमनी कशी जरुर नथी. कारण के एमनी आसपास शुभ विचाररूपी हीरा-माणेकनो मज-वुत कोट वंधायलो होय छे, जेने लीधे खराव वातावरण असर करी शकतुं नथी. वाकी सामान्य माणसने तो निर्दय के व्यसनी मनुष्योनी सोवतनुं वातावरण जरुर थोडुंघणुं नडे ज. माटे म्होटा पुरुषो करे ते ज करवुं एम न समजतां, म्होटा पुरुषो पात्रता जोइने कहे ते ज करवुं जोइए.

(९) ओ शेख साहेव! ओ गुरु महाराज! आ गरीवडा कवीर एकजनी शिखामण सांभळवानी महेरवानी करशो? गुरु-

जब तूं आयो जग्तमें, लोक हस्या तूं रोय;
ऐसी करनी मती करो, के पीछे हसे कोय. १०

महाराज, त्हमे कहोछो के हुं आ करुं ने हुं ते करुं ने हुं फलाणुं करुं; पण भला माणस! आज सुधीमां शुं शुं कर्युं ते जरा हैयुं उघाडीने जुओने! वायदानो व्यापार(सट्टो) छोडी रोकडीओ ज करोने! त्हमे जो आज सुधीमां कांइ सारुं काम न करी शक्या हो तो हवे पछी पण शुं उकाळवाना हता? (कबीरजी तो गुरुना गुरु बनीने चाबखा लगाव्या ज जाय छे, रखेने कोइ नबळो आ चाबखाना मारथी चीतामां जाय!)

(१०) हे भोळा! ज्य्हारे तुं आ जगतमां आव्यो अर्थात् जनम्यो त्य्हारे तुं तो रोतो हतो अने लोको हसता हता! त्हने एवा विचारथी रडवुं आवतुं हतुं के आ उत्तमोत्तम ओजार रुप मनुष्य खोळीउं पाम्यो तो छुं, पण एनो सारो उपयोग करीने शाबाशी नहीं मेळवाय तो बहु दुःखी थवुं पडशे. ए विचारथी तुं रोतो हतो. अने लोको एम धारीने हसता हता के, आपणे तो आ दुनीआनी हवा लागवाथी स्वार्थी बनी बेठा पण आ नवो--ताजो जीव आवे छे ते निर्मळ रहीने जगसेवा बजावशे, तेथी आपणुं पण काम थशे! माटे हवे हे भाइ! एवी करणी कदी न करीश के जेथी त्हारा मृत्युने लीधे लोको एम बोलवा प्रेराय के "सारुं थयुं के आ मुओ!" त्हारा मरणथी खोट पडी एम लोकोने जणाय तो ज त्हारुं जीवयुं सफळ छे. (अहीं पण शुद्ध 'कर्मयोग'नो उपदेश झळकी रह्यो छे. प्यारे कर्मयोगी कबीरजी!)

ना कछु किया, ना कर सका, ना करने जोग शरीर;
जो कुछ किया हरिने किया, ताते भये कबीर.   ११

(११) कबीरजी कहे छे के, हुं आजे जे छुं ते सर्व हरिनो प्रताप छे; म्हें कांइ कर्युं नथी, हुं करी शक्यो नथी अने करवा जेवुं म्हारुं शरीर पण नथी. पण हरिए आ शरीरद्वारा जे कांइ कर्युं होय त्हेमां आ शरीर शानो गर्व करे? म्हें कोइनुं कांइ काम कर्युं होय तो ते हरिनी प्रेरणाथी आ हाथ-पग चाल्या अने काम थयुं, त्हेमां हाथ-पगने शानो यश? कोइने उपदेश दीधो ते हरिए प्रेरणा करी ते मुजब जीभ बोली गइ; एमां जीभडी नकामी शाने फुलाय? कबीर महात्मा कहेवायो पण ते तो एक खोखुं छे, महात्मा तो प्रभु छे, के जे कबीरना शरीरद्वारा महात्मापणानो खेल भजवीने जगतने शीखामण आपे छे. (वाहरे 'त्याग' वृत्ति वाह! दोलत वगेरे तो त्यज्युं ते त्यज्युं पण कामनो यश पण त्यज्यो,-अरे 'हूं' ने ज समूळगुं त्यज्युं! म्हारो कबीर गुरु तो भगवानथी एकरुप थइने कहे छे के "ते तो भगवाने कर्युं!" पण भला कबीर! आवो महंत थइने जुटुं कां बोले छे? तुं अने त्हारो प्रभु बे एकरुप हो, तो त्हारा प्रभुए करेलुं ते त्हारुं करेलुं केम न कहेवाय?)

आनुं ज नाम 'कर्म योग' छे; कर्म एटले कर्त्तव्य कर्म-जे कांइ दुनीआमां पोताने करवा जेवुं जणाय ते विश्वहितार्थे करीने दूर थइ जवुं, फळ इच्छवुं नहि अने फळ पोतानी पेदाश छे एम पण न मानवुं, ए कर्मना वळगाडथी दूर रहेवानो एकनो एक ज रस्तो छे. **एने कर्म केम करी वळगे?**

सवी रसायन देखीया, हरिसा एक न होय;
रति एक घटमें संचरे, सव तन कंचन होय. १२

(१२) कवीरजी कहे छे के, म्हें वधां रसायण जोयां–तपास्यां–अजमाव्यां; पण हरि नामना रसायण जेवुं तो एक पण रसायण म्हारा जोवामां आव्युं नहि. वैद्यो गमे तेटलुं रसायण खवरावे तेथी कांइ शरीरनो एक वाळ पण सोनानो वनी जतो नथी; पण परमेश्वर रूपी रसायणनी एक रति मात्र जो 'घट'मां (स्थूल शरीरमां नहि पण सूक्ष्म शरीरमां) संचरवा पामे तो ते आखुं शरीर कंचनमय वनी जाय छे. (सरखावो तीर्थंकरना त्रीगडा गढनी कल्पना.) जेनुं मन हरि साथे ज लागेलुं छे, जे आखा विश्वने हरिनुं अंग समजे छे अने जे पोते हरिनी भक्ति अथवा विश्वसेवा माटे ज जन्म मळ्यो माने छे तेवी मान्यतावाळा माणसनुं कार्मण शरीर घणुं ज प्रकाशीत थाय छे.

जैनधर्ममां कहेली 'लोक भावना' जे वरावर समज्यो छे (भूगोळ–खगोळ तरीके नहि पण अध्यात्म तरीके) ते माणसनुं कार्मण शरीर अति प्रकाशीत थाय एमां पूछवुं ज शुं होय ?

मगजनी पंडीताइ विरुद्ध हृदयनी पवित्रता.

ब्राह्मन गुरु जगतके, संतनके गुरु नाहिं;
उलट पलट कर बुडया, चार वेदके मांहि. १

वेद सभी पढ पढ मरे, हरिसे नाहि हेत;
माल कबीरा ले गया, पंडित ढूंढे खेत ! २

पढी गुनी 'पाठक' भयें, समझाया सब संसार;

---

(१) ब्राह्मण एटले जेने लोकोए 'धर्मगुरु' तरीके मानी लीधेला छे तेवा लोको तो जगतना एटले साधारण लोकोना गुरु छे; अथवा जडमां सर्वस्व मानी बेठेला दुनीआदारीना लोकोने माटे ए गुरु छे. कांइ 'संत' ना ते गुरु नथी. कारण के जगतना गुरुओ तो वेदने एटले धर्म शास्त्रोने उलटपालट चुथीने पोतानी पंडीताइ बतावी जाणे एटलुं ज; एमनामां कांइ 'पवित्रता' ओछी ज छे ! मगजना गुण छे, पण हृदयना गुण नथी; माटे एवाने 'पंडीत' भले कहो, पण 'संत' के 'गुरु' न कहेशो.

(२) एवा 'पोथीमांनां रींगणां' जेवा धर्मगुरुओ सघळां धर्म-शास्त्रो भणीभणीने म्होटा पंडीत बन्या पण हजी एमना हृदयमां हरि तरफ हेतनी लागणी थवा पामी नहि; अर्थात् खरो माल जे 'भक्ति' ते तो त्हेमने जडयो पण नहि; ए खरो माल तो कबीरो लई गयो, अने पंडीतजी तो खेतरमां ढुंढता ज रह्या ! बीजा शब्दमां कहीए तो, आ भाषाज्ञानना पोपटीआ पंडीतो मात्र बहारने बहार ज परमात्माने शोधता फरे छे तेथी जींदगी नकामी जाय छे अने कबीराए तो परमात्माने प्रथम पोताना जीगरमां शोधी कहाडया अने त्म्हांथी पछी आखा विश्व उपर फेलायला जोया.

आपन तो समजे नहि, वृथा गया अवतार. ३

पढी गुनी ब्राह्मन भये, कीर्त्ति भई संसार;
वस्तुकी समजन नहि, ज्युं खर चंदन भार. ४

पढत गुनत रोगी भये, वढ्या बहुत अभिमान;
भीतर भडका जगतका, घडी न पडती शान. ५

(३) भणीगणीने 'पाठक'--उपदेशक बन्या अने आखा जगतने उपदेश करवा लाग्या पण पोते तो हजी कांइ पण समज्या नहि; तो एवा उपदेशकनो अवतार नकामो ज गयो समजवो.

(४) भणीगणीने 'ब्राह्मण'--'ब्रह्मज्ञ'--पंडीतजी बन्या, अने संसारमां कीर्ति मेळवी के फलाणा भाइ तो म्होटा काशीना पंडीत थया अगर फलाणा तो म्होटा 'आचार्य' थया के फलाणा तो 'महापुरुष पंडीतराज' थया; पण 'वस्तु' नी समजण हजी पडी नथी अर्थात् 'सत्' नुं पीछान हजी एने थयुं नथी- शास्त्रोना अक्षर गोखी मारवा छतां अने लांबा लांबा टीका—टब्बा वांचवा छतां हजी ए शब्दोमां छुपायलुं गुप्त रहस्य ते शोधी शक्यो नथी—माटे ज कबीरजी कहे छे के ! हे खर, हे गद्धा ! आ विद्या रूपी चंदननो भार ह्हारा मातेला शरीर उपर तुं भरे छे तेथी ह्हने शो लाभ थवानो छे ? तुं ह्हेनी सुगंध तो लइ शकतो नथी; तो पण कदाच बीजानुं वैतरुं करवा माटे—बीजाना माटे आ भार उपाडतो होइश !

(५) बहु बहु भण्या तो शुं मळ्युं ? मात्र अभिमान रूपी दरद ! एनुं सूक्ष्म शरीर तपासो तो जणाशे के त्यहां तो जगतना पदार्थोनी इच्छा रूपी अग्नि प्रज्वलीत होय छे. स्त्री नामथी ओळखातो स्थूळ पदार्थ त्यजयो हशे पण न्हेना सूक्ष्म शरीरमां स्त्रीनी लालसा तो

पढें गुनें सब वेदको, समझे नहि गमार;
आशा लागी भरमकी, (ज्युं) करोलियाकी जाळ. ६

पंडित पढते वेदको, पुस्तक हसती लाड;
भक्ति न जानी रामकी, सभी परीक्षा वाद. ७

भडके भडकारुपी बळती होय छे; त्रांबा-रूपा नाणुं त्यज्युं हशे पण नाणाथी मळती चीजो तो अनेक प्रकारनी भोगवे छे अने त्हेनो लोभ पण असाधारण राखे छे--एटले सुधी के पोतानुं मानेलुं एक बे बदाम किमतनुं पात्र पण कोइ बंधुने लेवा नहि दे; अभिमान न उत्पन्न थाय एटला माटे घर-बार अने स्त्री वगेरे छोडयुं पण अभिमान तो पहेला करतां बमणो वध्यो: आम तेजस् शरीरमां अनेक इच्छाओनी आग बळती ज होय छे. अने एथी बचवानुं भान घडी पण आवतुं नथी.

(६) सघळांए धर्मशास्त्रो भण्यो, पण गमारने हजी कांइ समज पडी नहि. शास्त्रोमां मनुष्यना विविध शरीरो शुं छे अने आत्माने ते केवी रीते ढांकी रह्या छे अने त्हेमनी खीलवट केम थाय-आत्मानुं प्रकटीकरण केम थाय ए सर्व वांची गयो, छतां हजीए दुनीआना पदार्थो अने दुनीआना भावोनो जे भ्रम त्हेनी आशा तो लागी ज रही ! जाणे के करोळीआनी जाळमां कोइ जीव फसाइ गयो होय तेम आ पंडीतजी उपर पण मायाना तार आडा अने अवळा फरी वळ्या छे, वींटाइ गया छे, त्हेने ते आटआटलुं ज्ञान थवा छतां भेदी शकतो नथी.

(७) पंडीतजी-धर्मगुरु महापुरुष पंडीतराज एक वखत शास्त्र-मूत्र वांचवा बेठा. ते वखते पोथीबाइ (चोपडी) लाड करीने हसवा लाग्यां अने बोल्यां के " अहो पंडीतजी ! हवे त्हमे परीक्षा आप-

संस्कृतमें पंडित वदे, वहुत करे अभिमान;
भापा ही के जोरसे, तर्क करे नादान. ८

वानी तकलीफ फरीथी लेशो ज नहि; कारण के रामनी भक्ति त्हमने आवडी नहि तेथी त्हमे एकवार तो वधा विपयनी परीक्षामां नापास थइ चूक्या छो. अने नापास थयेलो विद्यार्थी जो थोडुं जाणनारो होय तो वीजी वार तैयार थइने पण परीक्षामां वेसी पास थइ शके. पण त्हमे तो हजी विद्यार्थी अवस्थामां ज--अरे एकडीआं शीखोछो एटलामां ज 'महापुरुष पंडीतराज' बनी वेठाछो माटे त्हमारे हवे कांइ शीखवानुं रहेतुं ज नथी !" वाहरे पोथीवाइ ! त्हमेए खूव करी ! अने हरिना भक्त कवीरजी ! पींगल तथा अलंकार शास्त्र भणवाने पंडीतो पासे गया सिवाय पण तें खुब कल्पनाने दोडावी !

(८) जेनी पासे थोडुं नाणुं होय छे ते शरीर अने घरनो ठाठ माठ कांइ ओर ज राखे छे अने तीजोरीनी अंदरनो ठाठ तो ज्ञानी जाणे एवो होय छे ! श्रीमंतो सफाइ राखशे पण डोळ--दंभ नहिज ज करे, तेम जेओ मात्र 'भापाज्ञान' पामीने पंडीत थइ वेठा छे तेओ वेचार माणसने एकठा थयेला भाळ्या के संस्कृत भापामां के संस्कृतमय मातृभापामां लवारो करवा मंडी पडशे, जाणे के एना जेवा पंडीत दुनीआ भरमां छे ज नहि. आवा नादान माणसो--अक्कल वगरना वाळको मात्र भापाज्ञानना जोरथी तर्क--न्याय शास्त्रमां माथुं मारे ए केवी हसवा जेवी वात छे ! भापा ज्ञान ए मात्र एक हथीआर छे, नहि के लक्ष्यविंदु. भापाज्ञानमां घणा आगळ वधेला पाश्चिमात्य विद्वानो जैन अने व्राह्मण ग्रंथोना सुंदर भापांतर करवा छतां कदी जैन के व्राह्मण वन्या नहि अने उलटा 'धर्म' चीजने हांसीरुप गणे छे. हवे भापाज्ञान एकलानी किंमत शुं आंकवी ए विचारवंत पुरुपो पोते ज विचारी लेशे.

आत्मदृष्टि जाने नहि, नाहवे प्रातःकाळ;
लोक लाज 'विध' सहु करे. लगा भरम कपाळ. ९

तीरथ और सब व्रत करे, उंडे पानी न्हाय;
राम नाम नहिं जपे, काळ ग्रसी ले जाय. १०

काशी कांठे घर करे, न्हावे निर्मळ नीर;
मुक्त नहि हरिनाम विन, युं कहे दास कबीर. ११

(९) केटलाक पंडीतो प्रातःकाळमां उठीने स्नान करेछे अने लोक लाज खातर तीलक तथा पूजा वगेरे विधिओ के जे 'भ्रम'रुप छे ते स करे छे; पण वीचाराने 'आत्मदृष्टि' छे नहि तेथी नकामो भटके छे

(१०) केटलाक पंडीतो तीर्थ अने व्रत वगेरे करेछे अने उंडा पाणीमां पेसीने स्नान करेछे, पण राम नामनुं तीर्थ कर्युं नहि, रामनुं फरमान (अगीआरमी ' लोकस्वरुप भावना ') ए रुपी व्रत पळायुं नहि, अने रामना प्रेमरुपी उंडा पाणीमां न्हवायुं नहि तेथी ते पंडीतजी काळदेवना कोळीआ थइ जवाना ज ! मतलब के जन्म-मरणना फेरा फर्या करवाना ज.

(११) केटलाक लोको काशी कांठे जइने रहे छे अने गंगाना रसायणीक गुणवाळा स्वच्छ जळमां हमेश स्नान करेछे, पण हरि-नाममां रह्या सिवाय अने हरिनाममां स्नान कर्या सिवाय मुक्ति कोइ काळे मळवानी नथी, एम 'दास कबीर' कहे छे. जे साधुओ पोताना नामनी आगळ पाछळ म्होटां पूंछडां पोतानी जाते लटकावता होय त्हेमणे कबीरजीने पूछी जोवुं के ते पोताने 'दास कबीर' केम कहे छे ? तेमज जे संसारीओ कोइ युनीव्हर्सीटी के सभा के संघ तरफथी पंडीताइना खीताब अपाया सिवाय पोतानी मेळे 'पंडीत'ना खीताब लइ बेठा होय त्हेमणे पण कबीरजी पासे आ वातनो भेद पूछवा पधारवुं ! रस्तो खुल्लो छे !

जप तप तीरथ सब करे, घडी न छांडे ध्यान;
कहे कबीर भक्ति विना, कबू न होय कल्याण. १२

(१२) केटलाक पंडीतो शास्त्रनु रहस्य न समजवाथी जप-तप-तीर्थ अने ध्यान एटलां वानां करवामां आखी जींदगी गुजारे छे; पण कबीरजी कहे छे के 'भक्ति' विना एमनुं कल्याण-मोक्ष थाय ज नहि. जप-तप ए 'हठयोग' छे; एथी भले अमुक सिद्धिओ प्राप्त थाय, तेथी कांइ भवभ्रमण अटके नहि. तीर्थपूजन कराय छे ते पण बाह्यभाव छे, अने बाह्यभाव बंध थइने आंतरदृष्टि न थाय त्हां सुधी पण भवभ्रमण अटके नहि. 'ध्यान' उत्तम चीज छे पण जेने बाह्यभाव भरपुर छे तेवा माणसनुं 'ध्यान' पण बाह्य प्राप्तिने अर्थे ज होय छे, तेथी त्हेनुं फळ पुद्गलसमुहनी प्राप्ति एज मळे, भवभ्रमण टळे नहि. कल्याण तो त्यहारे थाय के ज्यहारे भक्ति अथवा Devotion थाय; भक्तिवाळो मनुष्य पोताना तन-मन अने धन सर्व ईश्वरने अर्पीत करे छे; पोतानुं कशुं नथी, मात्र विश्वसेवा माटे सोंपायलां हथीआरो छे अने ते हथीआरो विश्वसेवामांज वपरावानां छे एवो ख्याल भक्तने रगे रगे होय छे. एवा माणसो माटे ज मुक्ति छे, बीजाने माटे नहि. (भक्ति ए शब्दथी कबीरजी कोइ जातनी क्रिया मचववा इच्छता नथी, तेमज एक खुणे बेसी रही मात्र काला वालाना शब्दोच्चार करवा एने पण 'भक्ति' नाम आपता नथी. वर्त्तनमां भक्ति अथवा भक्तिमय जीवन ए ज एमनो कहेवानो आशय छे. एमने 'साकर' नामथी संबंध नथी, साकर जेवो ज देखातो पथ्थरनो टुकडो के जेने 'सद्भाव' के 'असद्भाव' स्थापनानो सिद्धांत लगाडीने मूर्त्तिपूजको साकर मानी ले ए पण एने पसंद नथी, एने तो म्हों गळ्युं करे एवी अमुक चीजनुं-खुद चीजनुं काम छे. कबीरजी 'कर्मयोगी' छे; अने एमनां 'कर्त्तव्य कर्म'नी इंटो वच्चे गारो 'भक्तिरस'नो छे.

को एक ब्राह्मण मशकरा, वाको न दिजे दान;
कुटुंब सहित नरके चला, साथ लिये जजमान ! १३
कबीर ! पंडित की कथा, जैसी चोरकी नाव;

(१३) कबीरजी एक दातारने चेतवणी आपे छे के, हे भाइ ! तुं दातार थयो ए तो ठीक छे; दानतो गुण उत्तम छे; पण ह्हारुं दान अयोग्य पात्रमां न जाय ते संभाळजे ! पेल्लो मश्करो-उखडेल धर्मगुरु छे, ह्हेने दान रखे देतो ! कारण के एवा एक धर्म-गुरुने कोइए दान कर्यु हतुं ह्हेनुं फळ ए मळयुं के, ते साधु पोताना सोबतीओने लइने नरके गयो अने साथे दातार-दान आपनारने पण लेतो गयो ! गुरु कांइ एकलपेटो न होय, पोताना दातारने नरक जेवी स्हेलघामां साथे लीधा वगर रहेज नहि एवो ते परोपकारी होय. माटे हे भाइ ! तुं दान करे तो 'गुण' जोइने करजे, 'वेप' जोइने न करतो.

(१४) कबीरजी कहे छे के, आजकालना 'पोथां पडीत' ना मुखथी धर्मकथा सांभळवी अने आंधळाए चोरनी बोटमां बेसवुं ए बन्ने एकसरखां जोखमभर्यां काम छे. बन्ने लोको मरजीमां आवे ते जगाए पोताना आश्रीतोने भरमावीने लइ जाय अने मरजीमां आवे तेवी व्यवस्था करे ! आ गाथा बहु समजवा जेवी छे. कोइ आंधळाने नदीपार जवुं हतुं तेथी होडीवाळानी मदद मागतो हतो. एवामां अमुक चोर लोको कहेवा लाग्या: " अमारी होडीमां बेसो; अमे त्हमने थोडे खर्चे अने थोडा वखतमां पार उतारीशुं. " विश्वासे सुरदासजी होडीमां बेठा अने पछी पेला लूटारा होडीवाळाए मांहो-मांहे विचार करवा मांडयो. एक कहे: आने लूटीने नदीमां फेंकी दइशुं ? बीजो कहे: छेकज एवुं उघाडुं कुकर्म तो न थाय; जरा दया खाइशुं, दया. आपणे एने आडोअवळो खेंची जइशुं अने एक बज्जर जगामां जइ लूटीने त्हां छोडी दइशुं. त्रीजो कहे: एम पण

नहि; जे माणस गोळथी मरतो होय एने विषथी शा माटे मारवो ? माटे आपणे एने अडधेक सुधी होडी हंकार्या बाद कहेवुं के नदीमां आ स्थळे चमत्कार थयेला छे. ए पवित्र भूमि छे. अहीं कोइ माणस डूबी मरे--आपघात करे तो मोक्षे जाय अने एटली हिंमत न चाले अने फक्त पोतानी मील्कत अहीं स्नान करीने खेरीआतमां आपी दे तो देवलोकमां जाय. ते बीचारा आंधळाने पोताना आ भवना दुःखथी कंटाळो आवेलो होवाथी गमे ते शीखामण मानवा तत्पर ज थशे अने आपणो बेडो पार थशे. लूंटाराओए अने आंधळाए पछी शुं कर्युं ते आपणे जाणवानुं रहेतुं ज नथी, कारणके एवा संख्याबंध लूंटारा आपण अंध पुरुषोने (हृदयनी आंख वगरनाओने) हमेश आवी रीते लूंटता आव्या छे तेथी कांइ अनुभव नवो मळवानो नथी. पछी आपणने ज्यहारे परमाधामीना भाला खमवा पडशे त्यहारे कहीशुं के " अरे ओ परमाधामी ! म्हने तुं अहीं केम लाव्यो ? हुं के जेणे गुरुदेवना कहेवाथी पेली विधवाना दिक्षा ओत्सवमां पांचसो रुपीआ खर्च कर्या हता अने पेला उधइओनी दया माटे पुस्तकोना पटारा भरनारा महात्माना हुकमथी पांच रुपीआनां पानां वहोराव्यां हतां अने गुरुना संसार पक्षना बेटाने गुरुदेवनी आज्ञाथी वसो रुपी-आनी कंठी पहेरावी दीधी हती तथा गुरुदेवना दर्शन करवाने चोमासा वच्चे हुं लावलश्कर लइने बीजे गाम जइ चारसो रुपीआ खर्ची आव्यो हतो छतां तुं म्हने अहीं--नरकावासमां केम लावे छे ? म्हारे ते अहीं आववानुं होय ? म्हने तो म्हारा गुरु साथे देवलोक-मां लइ जवामां आवशे एवी आशाए म्हें जीगरथी पण व्हाल्हा एवा रुपीआ खर्ची नाख्या हता ! छतां शुं म्हारां नरकमां लइ जाय एवां पूर्वनां कर्मो धोवायां नहि होय के ? " आनो खुलासो परमाधामी करशे के ?--हा, जे परमाधामी हशे ते अवश्य खुल्लासो करशे, बीजा नहि ज.

(२)

काम क्रोध मद लोभकी, जब लग मनमें खान:
तब लग पंडित मूर्ख हि, कबीर एक समान. १
चतुराइ पोपट पढा ! पढा जो पिंजर मांहि:
फिर परमोधे औरकों, आपन समजे नाहि. २

---

(१) कबीरजी कहे छे के, ज्यां सुधी मनमां काम-क्रोध-मद-लोभ ए चारनी 'खाण' छे त्यां सुधी मूर्ख अने पंडीतमां काइ तफावत समजता ना. एवो माणस भणेलो होय तो पण मूर्ख ज छे; बुद्धिशाळी मनुष्य कदी पोताना स्थूल शरीर के जे वधु किमती छे अने जे बीजा अवतारमां पण साथे रहेनार छे तेना सूक्ष्म शरीरना भोगे स्थूल शरीरनुं मायावी सुख इच्छे ज नहि.

(२) चतुराइ तो एक पोपटना भणतरमां आवी छे ! बाकी कोइ चतुर छे ज नहि ! जुओ तो खरा के अभण पोपट आकाशमां उडता फरे छे अने कल्लोल करे छे, त्यहारे भणेला पोपटजी पांजरामां केद थया छे ! आ एमनुं भणतर ! अरे B A. अने M. A नी डीग्रीना अभिमानी भणेलाओ ! अरे सूत्रो अने संस्कृत अने ग्रंथो अने थोकडाना अभ्यासना अभिमानी पोपटजीओ ! त्हमे भणीभणीने शुं भण्या ? मात्र मगजने भारे मार्युं ! कारण के हृदय तो भण्युं नहि. मनना प्रणाम कोमळ थया नहि. विश्व मात्र उपर समान दृष्टि, प्रेम भावना तो शीख्या नहि. भणतरथी त्हमारुं हृदय 'तर' थवाने बदले—विकाश पामवाने बदले उलटुं सांकडुं थयुं अने त्हमारां पोतीकां स्वार्थ सुख मेळववानी वधु शक्ति त्हमे पाम्या, के जे शक्ति बीजा ओछा भणतरवाळाना सुखना भोगे त्हमने वधारे (मायावी) सगवडो लावी आपशे. आ भणतर त्हमने पांजरामां--संसारभावमां जकडी राखशे. त्हमे बीजाने शुं उपदेश करोछो, अरे विचारा पोपटीआ पंडीतो ! त्हमे त्हमने तो पींजरामांथी छोडवो ?

हरिगुन गावे हरखके, हिरदे कपट न जाय;
आपन तो समजे नहि, और हि ज्ञान सुनाय. ३
चतुराइ चुल्हे पडो, ज्ञानको जमडा खाओ !
'भाव भक्ति' समजे नहि, जानपनो जल जाओ ! ४
लीखना पढनां चातुरी, ये सब बातां सहेल;
काम दहन, मन वश करन, गगन चढन मुशकेल. ५
ज्ञानी गाथा बहु मिले, कवी पंडित अनेक;
राम रता और इंद्रि जीता, कोटी मध्ये एक. ६

---

(३) हरिना गुण म्होटेथी गाया एटले कांइ भक्त थइ गया एम समजवुं नहि. हृदयमांथी कपट जाय त्यहारे ज्ञानी कहेवाय. माटे बगभक्तोनो उपदेश सुणवो नहि.

(४) हे 'चतुर' पुरुषो ! त्हमारी चतुराइ चूलामां पडो ! त्हमारुं ज्ञान जहानममां जाओ ! जो त्हमारामां 'द्रव्यभक्ति' नहि पण 'भाव-भक्ति' आवी होय तो ज त्हमारी पंडीताइ सफल छे, नहि तो देखता मूक्यो ए जाणपणामां !

(५) लखवुं-वांचवुं-चतुराइ करवी ए बधुं सहेलुं छे-- देखा-देखीथी शीखाय तेवुं छे. पण कामदेवने बाळी नाखवो अने मनने वश करवुं तथा 'आकाशमां चडवुं' एटलां काम खरेखर मुश्केल छे. ए कांइ देखादेखीथी शीखातां नथी, ए तो जाते ज समजवानां अने जाते ज करवानां काम छे. 'आकाशमां उडवुं' एनो अर्थ भूलोकमां छतां देवलोक तरफ प्रयाण करवुं ते. कल्पना शक्तिने पवित्र बनावीने त्हेनी पांखे वेरी देवलोकमां विचरवुं अने प्रेमना सार्वत्रीक राज्यनी मीठी हवा खावी ते. बीजो अर्थ एवो पण थाय के गुण 'स्थानके' चडवुं ते: गुणस्थानक कांइ देखाय एवी चीज नथी: आकाशमां चडवानुं ज ते काम छे.

(६) ...

तारा मंडल बैठके, चंद्र बडाइ लाय:
उदय भया जब सूर्यका, सब तारा छुप जाय. ७

कू मारग छोडा नहिं, रहा मायामें मोह:
पारस तो परसा नहि, रहा लोहका लोह ! ८

पोथी पढपढ जग मुवा, पंडित भया न कोय:
अढाइ अक्षर प्रेमका, पढे सो पडित होय. ९

पण राममां 'रत' थयेला--राममय बनेला पुरुषो के जेओ इंद्रिओने पोताना वश राखी शके छे तेवा तो करोडोमां एकाद ज मळशे.

(७) ताराओनां टोळां वच्चे बेसीने चंद्र (के जे सूर्यनुं तेज उछीनुं लइने प्रकाशे छे, जेनामां पोतानुं तेज नथी ते) आप बडाइ गणीए करे तेथी शुं वळ्युं ? पण ज्यहारे प्रभाते सूर्यनो उदय थाय छे के तुरत ज ताराओ छुपाइ जाय छे. तेओ पोतानी भूलने माटे पस्ताइने म्होंा छुपावे छे !

'पोथां–पंडीत' नी पंडीताइ मात्र मूर्ख लोको आगळ ज चाली शके, संत अगर भक्त अगर परमात्मापरायण लोको आगळ ते झांखाझंख पडी जाय छे.

(८) जेणे खराब रस्ता छोडया नथी अने जे मायामां मोही रह्यो छे त्हेने पारसमणीनो स्पर्श हजी सुधी थयो ज नथी एम मानजो; तेथी ज ते लोढा जेवो छे. जो सद्गुरु के सद्ज्ञान के सत्देव (त्रणे एक ज छे) नो स्पर्श थयो होय तो आ दशा होय नहि.

(९) पोथां--थोथां भणीभणीने आ जगत पंडीत थवा इच्छे छे पण ज्यहां सुधी 'प्रेम' एवो अढी अक्षरनो शब्द भणायो नथी त्यहां सुधी खरी पडीनाइ कदी आवनार नथी. प्रेम एटले सार्वत्रीक प्रेम, ईश्वरी प्रेम.

आत्म तत्व जाने नहिं, कोटी कथन है ज्ञान;
तारे तिमिर भागे नहि, जब लग उगे न भान. १०
मै जानुं पढवो भलो, पढनेसे भलो योग;
राम नामसे दिल मिला, भले हि निंदे लोग. ११
समजनका घर और है, औरोंका घर और;
समज्या पिछे जानिये, "राम बसे सब ठौर." १२

---

(१०) आत्म तत्वने समजे नहि त्र्हां सुधी करोडो प्रकारनुं ज्ञान (सायन्स, इतिहास, खगोळ, भूगोळ, भुस्तर, भाषाज्ञान, तर्कशास्त्र, वैदकविद्या वगेरे तमाम) त्हेनुं अंधकार मटाडवाने पुरतुं थतुं नथी. सूर्य—आत्मसूर्यनो उदय हृदयमां थया सिवाय अजवाळुं थतां आखी दुनीआना पदार्थो अने बनावो जुदीज दृष्टिए देखाय. दृष्टि (Point—of--view) ज बदलाइ जाय.

(११) कबीरजीने पहेलां तो एम लाग्युं के शास्त्रनो अभ्यास करवो एज ठीक छे; पछी जणायुं के अभ्यासथी तो 'योग' मार्ग सारो छे; पण छेवटे जणायुं के ते बन्ने करतां रामनामना स्मरणमां ज दील मळी गयुं ते ठीक थयुं. भक्ति योगनी सुगमता अहीं वर्णवी छे. भक्तिनी खुबी न समजनारा लोको निंदा करेछे माटे कबीरजी कहे छे के, भले तेम थाओ, पण म्हने तो 'राम' साथे ज एक तार जोडायो छे ए ठीक लागे छे.

(१२) समजणवाळा माणसनी दृष्टि जूदी होय छे अने वगर समजणवाळानी जूदी होय छे. समज्यो नहोतो त्ह्यारे हुं रामने अमुक जगाए ढुंढतो हतो. हवे समज्यो तो जणायुं के राम तो सर्व जगाए वसे छे. माटे रामनी भक्ति करवा माटे अमुक जगा 'रीझर्व्ड' राखी शकाय ज नहि. सर्व प्राणीनी सेवा ए ज रामसेवा छे. सर्वमां हुं अने हुंमां सर्व एवो 'एक भाव' थयो ए ज 'सेवा' छे.

कबीर ! यह संसारको, समजावुं कइ वार ?
पूंछ ज पकडे भेसको, उतरा चाहे पार ! १३

मन मथुरा, दिल द्वारका, काया काशी जान;
दसमें द्वारे है देहरा, तामें जोत पिछान. १४

---

(१३) कबीरजी कहेछे के आ मूर्ख संसारने शी रीते समजावुं? एने भवरुपी समुद्रना पार जवुं छे, अने ते काम माटे होडी के गायने बदले कुगुरुरुपी भेंसनुं पुंछडुं पकडवा इच्छेछे ! ए भेंस जो एने डुबाडया वगर रहे तो पोपटीआ अने स्वार्थी गुरुओ नरकमां नाख्या सिवाय रहे !

(१४) हे भाइ ! तुं मथुरा अने द्वारका अने काशी अने गीरनारजी अने तारंगाजी भटकवा जाय छे, पण हुं त्हने त्हारी पासेज ए वधां तीर्थस्थळो लावीने खडां करुं छुं छतां तुं शा माटे भटकवानी अने दाम खर्चवानी मूर्खाइ करेछे ? जो, देख ! त्हारुं मन एज मथुरा छे, दील एज द्वारका छे, काया एज काशी छे, तन एज तारंगाजी छे, गो अथवा इंद्रियो एज गीरनारजी छे; माटे तुं ए सर्व मन–वचन अने कायाने शुद्ध कर एटले तीर्थ ज छे. त्हारा हैयाना दसमा द्वारमां जे देहेरुं छे त्यहांज परमात्मा बीराजे छे. एने शोध, शोध. आटला प्रयासे ध्यान धरीश तो परमात्मानी साथे एक तार जरुर जोडाशे. दसमा द्वार संबंधे विशेष हकीकत 'योग' ना जाणकार पुरुष पासेथी ज मळी शकशे.)

મહાત્મા કબીરનાં આધ્યાત્મિક પદો.

(१) परमेश्वरनी वातो.

૧

ધરતીકા કાગજ કરૂં, કલમ કરૂં બનરાય;
સાત સમુદર સ્યાહી કરૂં, હરિગુન લિખા ન જાય. ૧

ભારી કહૂં તો મૈ ડરૂં, હલકા કહૂં તો જીઠ;
મૈ કયા જાનૂં રામકો? નૈના કબહૂ ન દીઠ. ૨

ઐસા કોઈ ના મિલા, ઘટમેં અલખ લખાય;
બિન બાતી બિન તેલ બિન જલતી જોત દિખાય. ૩

---

(૧) એકંદર ધરતીને કાગળ રૂપે વાપરૂં અને એકંદર 'વનરાય' અથવા અઢાર ભાર વનસ્પતિની કલમ બનાવુ તથા સાત સમુદ્રના પાણીને શાહી તરીકે વાપરૂં—એટલો બધો પ્રયાસ કરૂં તો પણ (ઇન્દ્રિયોની શક્તિથી પર એવા) હરિ—પરમાત્માનો ખ્યાલ આપી શકાય નહિ.

(૨) પરમાત્મા 'ભારે' છે એમ કહું તો હું જ ડરી જાઉ, 'હલકા' છે એમ કહું તો ત્હેમનું ઉપહાસ્ય કરાવવા બરાબર થાય. (આખ વગેરે ઇન્દ્રિઓની શક્તિથી પર એવા) આત્મારામને (સ્થૂલ આંખોથી) મ્હેં કદી દીઠા જ નથી તો પછી હુ રામની વાત શું જાણું ?

(૩) આત્મરામને 'અલખ' કહેવાયછે—તે લખી શકાય તેમ નથી; પણ ઘટમા—હ્રદયમા તો તે લખી શકાય. અને ઘટમાં લખાયલા તે 'અલખ'ને વાંચવા માટે (ભોયરા જેવા ઘટમા અધારૂં હોય એટલા માટે) દીવાની જરૂર છે, કે જે દીવામાં બત્તી (દીવેટ), તેલ કે જ્યોત કાઇ હોય નહિ આવા દીવા વડે ઘટના ભોયરામાં અલખને વાંચી શકે એવા કોઇ મ્હને મળ્યા નહિ !

દેખા હૈ વો કિસે કહૂં, કહે કૌન પતિયાય?
જૈસે કે તૈસે હરિ, હરખ હરખ ગુન ગાય ૪

સાહબ! તેરી સાહેબી, સબ ઘટ રહી સમાય;
જયું મેદીકે પાતમેં, લાલી લિખી ન જાય. ૫

૨

માલક બીન ખાલી નહી, સુઇ ધરનકો ઠોર;
આગે પીછે રામ હૈ, રામ બીના નહીં ઓર. ૧

જયૂં નેનનમેં પૂતલી, યૂં માલક ઘટ માંહ્ય,
ભોલે લોક ન જાનતે, બાહીર ઢૂઢન જાય. ૨

કસ્તુરી નાભી વિષે. મૃગ ઢૂંઢે બન માહ્ય;
એસે ઘટ ઘટ રામ હૈ, દુનિયાં દેખે નાહી! ૩

ઘટ બિન કહું ન દેખીયે! રામ રહા ભરપૂર,
જિન જાના તિન પાસ હૈ, દૂર કહા ઉન દૂર ૪

---

(૪) મ્હે આત્મારામને જોયા છે એમ ત્હમને કહું તો ત્હમે પૂછશો કે ટ્હારે તે કેવા છે? હું કહેવાની કોશીશ પણ કદાચ કરૂં, પરન્તુ મ્હારી વાત માનશે કોણ? (એ અદ્દભૂત વાતોને લોકો વ્હેમ—ગાડછા કે ચક્રમપણામાં ખપાવેછે) માટે ટુકમાં જ જવાબ આપુછુ કે, "હરિ જેવા છે તેવા છે." એટલુજ મ્હોઢેથી બોલીને હુ મનમાજ રાજી થઇને ગુણ ગાયાં કરૂં છું.

(૫) મ્હારા આત્મારામ સાહેબની સાહબી કેટલી છે એમ ત્હમે પૂછતા જ ના: એ તો ઘટઘટ (સર્વત્ર) વ્યાપી રહીછે. શું મેદીના પાંદડામાં લાલી કોઇ અમુક જગાએ જ રહેલી છે કે?

(૨) ભોળા એટલે અક્કલ વગરના લોકો રામને બહાર ઢૂઢવા દોડે છે—પણ તે તો જેમ આખોમા પૂતળી છે તેવી રીતે ભીતરમા જ છે.

(૪) હે ભાઇ! તું ઘટ સિવાય બીજી જગાએ રામને શોધતો જ નહિ; કારણકે ત્યહાં એટલે ઘટમા રામ ભરપૂર છે જે રામને જાણે ત્હેની પાસે જ તે વસે છે; અને જે રામને સ્વર્ગમાં કે બીજી કોઈ દૂરની જગાએ માને છે—અતરથી વેગળો વસનાર માને છે ત્હેનાથી તે ખરેખર દૂર જ છે એમ સમજજે, અર્થાત્ એવાને આત્મારામનું ભાન જ ન થઇ શકે.

બાહેર ભીતર રામ હૈ. નૈનનકા અભિરામ;
જિત દેખૂં તિત રામ હૈ, રામ બિના નહીં ઠામ. ૫

જ્યૂં પથ્થરમેં આગ હૈ, યૂં ઘટમેં કિરતાર;
જો ચાહો દીદારકો, તો ચકમક હોકે જાર. ૬

પાવક રૂપી રામ હૈ, સબ ઘટ રહા સમાય;
ચિત્ત ચકમક લાગે નહીં, ધૂંવા બહી બહી જાય. ૭

સાંઈ તેરા તુજમેં રહે, જ્યૂં પત્થરમેં આગ;
જોત સરૂપી રામ હૈ, ચિત્ત ચકમક હો લાગ. ૮

---

(૫) હું પ્રથમ કહી ગયો કે રામ તો ભીતરમાં જ છે, તેથી એમ નથી સમજવાનુ કે બહાર તો રામ છે જ નહિ. ભીતરમા રામ ‘ ભરપૂર ’ છે—ત્હા ત્હેનાં દર્શન થઇ શકે છે. બાકી, જ્હાં જ્હાં ત્હારી દૃષ્ટિ પડે ત્હા ત્હાં રામ જ છે એમ સમજજે. સર્વત્ર રામ જોવાથી—સઘળામાં પરમેશ્વર દૃષ્ટિ રાખવાથી જ વિશ્વદર્શન થાયછે.

(૬) પત્થરમાં અગ્નિ ગુપ્તપણે રહેલો છે, તેમ ઘટમાં ઇશ્વર રહેલા છે. ત્હેના દર્શન કરવા ઇચ્છા હોય તો ચકમકની માફક બહારના (ખાખી —સ્થૂલ— ઉદારીક) શરીરને ઠોકરો ખાવા દે; ઠોકરો અને મુસ્કેલીઓ રૂપા ઘર્પણથી અંદર રહેલા આત્મારામના દર્શન થશે. (કેવી સુંદર કલ્પના !)

(૭) રામ પાવક એટલે આગ રૂપે છે (સઘળા પદાર્થોમાં આગ ગુપ્તપણે રહેલી છે (અગ્નિ અને રામ બન્નેને ‘પાવક’ એટલે ‘ પવિત્ર કરનાર ’ ગણાય છે.) જો ચિત્તમા બરાબર રીતે રામના નામની આગ ન સળગે અને ‘ ધૂંધવાતુ ’ રાખવામા આવે અર્થાત્ ઘડીભર રામનું નામ સ્મરી પછી વિષયવિકારમા રમ્યા કરે તો એવા માણસના ચિત્તમા ‘ભડકો’ ન થાય એટલે કે રામ પ્રગટ થાય નહિ, પણ ‘ ધુણી—ધુમાડો ’ થાય એટલે કે સંકલ્પવિકલ્પ અને ઉદ્વેગ એજ પરિણામ આવે અર્ધદગ્ધની દશા દયાજનક છે એમ બતાવે છે. મતલબ કે આત્મારામની પવિત્રતાનો ખ્યાલ અહોનિશ નજર સામે રાખીને જ આહાર—વિહાર આદિ ક્રિયા કરવી, રામાંમા લુબ્ધ થવું નહિ. ‘ આ કોન રામ પોતે કરે બરા કે ?’ એવો વિચાર કરીને વર્તવાથી રામમાંજ રમ્યા ગણાશો.

૩

પરદેશે ખોજન ગયા, ઘર હિરાકી ખાંન,
કાચ-મનિ ના પારખે, કયૂં હરિકો પહચાન ? ૧

મૈ જાનૂં હરિ દૂર હે, હરિ હરદાકે માંહ્ય,
આડી-ટેડી કપટકી, તાસે દીસત નાંહી. ૨

જાકો આડા અંતરા. તાકો દીસે ન કોય,
જાન બૂઝ જડ હો રહે, બલ તજ નિર્બલ હોય. ૩

ભટક મુઆ ભેદુ બિના, કૌન બતાવે ધામ ?
ચલતે ચલતે જુગ ગયો, **પાવ કોસ પર ગામ !** ૪

---

(૧) સાચા હીરાની ખાણ તો પોતાનાજ ઘરમાં છે, છતા જે અમુક પરદેશમાં હીરા શોધવા જાયછે, જેને કાચ અને મણીનુ પારખું નથી તેવા માણુસ હરિને શું પીછાનવાના હતા ?

(૨) પ્રથમ હું અજ્ઞાન હતો તેથી જાણતો હતો કે હરિ કોઇ દૂરની જગાએ બેસી રહ્યા હશે; પણ હવે મ્હને પ્રત્યક્ષ ભાન થયુ કે હરિ તો હૃદયની અંદર જ છે, આડીઅવળી (ભૂલભૂલામણી વાળી) કપટમયી વર્તણુકથી (તેજસ્ શરીરના—સ્વાર્થમયી ઇચ્છાઓના પડદાથી) હરિ દેખી શકાતા નથી, બાકી છે તો અહીં જ.

(૩) આંખ આડા પડદા રાખીને જ ફરવાનુ જેને મન થતું હોય ત્હેને શું દેખાય ? જાણી જોઇને-પોતાની રાજીખુશીથી જ જે ‘ જડ ’ રહેવા ઇચ્છે અર્થાત્ જડભાવમાં જ મચ્યો રહે તે માણસને આત્માનું અગાધ બલ (છતું પાસે છતા) છે નહિ એવું ભાસે એમાં કોનો દોષ ? આત્મભાવ ભૂલી જડભાવમા જ રહેનાર માણસ આત્મબલના વારમાનો હક જાણીજોઇને જ ગુમાવે છે.

(૪) અરેરે ! આજ સુધી માત્ર એક ભેદુ જાણકાર પુરૂષ અથવા ‘ ભોમીઆ ’ અથવા ‘ગુરૂ ’ વગર હુ નકામો જ ભટકી મુઓ ! મ્હને કોણ ‘ ધામ ’ (goal) બતાવે ? ચાલતાં ચાલતાં અનેક યુગ વીતી ગયા છતાં ‘ ધામ ’—લક્ષ્ય સ્થળ—રામધામ-મોક્ષપુરી એવી (સ્થૂલ જગાને નામે

બસત કહાં ઢૂંઢે કહાં? કિસ બિધ આવે હાથ?
કબીર! તબ હી પાઇયે, જબ ભેદુ લિજે સાથ. ૫

જા કારન હમ ઢૂંઢતે, (ઔર) કરતે આસ-ઉમેદ;
સો તો અંતરગત મિલા, ગુરૂમુખ પાયા ભેદ. ૬

હિરા હરિકા નામ હૈ, હિરદા અંદર દેખ;
બાહેર ભીતર ભરી રહા, ઐસા અગમ અલેખ. ૭

ઓળખાતી) દશાને પ્રાપ્ત કરી શક્યો નહિ પણ **હવે** માલૂમ પડે છે કે હું જ્યહાંથી નીકળ્યો ત્યહાંથી તે 'ધામ' તો ૦ કોશ જ દૂર હતું! અને હું નકામો જ ભટક્યો! (અરે પા કોશ જેટલું પણ દૂર એ સ્થળ નથી, અનંતા યુગ સુધી ચાલવાથી જેટલો રસ્તો કપાય તે બધા કોશના પ્રમાણમાં ૦ કોશ એક તદ્દન નિર્માલ્ય ચીજ છે, માટે ૦ કોશ તો સંજ્ઞાસૂચક શબ્દ છે; બાકી એ ધામ તો એટલું નજીક છે કે સંકલ્પ કરો કે ત્યહાં પહોંચ્યા જ છો!)

(૬) જેને કારણે એટલે જેને માટે હું ઘરોઘર ભટકતો હતો અને અનેક તરેહની આશા અને ઉમેદો કરતો હતો તે તો છેવટે મ્હારા અંતર રૂપી પટારામાં જ પ્રગટ થયા! પણ જ્યહારે ગુરૂ મળ્યા ત્યહારે જ મ્હેં એમને પીછાન્યા—ત્યહારે જ હું ભેદ પામ્યો.

(૭) ત્હારા હૃદયની અંદર જ જોવાની દરકાર કર; તેથી તને હરિ રૂપી સાચો હીરો જડી આવશે. અને એક વાર હૃદયમાં તે પ્રકાશ પ્રકટ થયો એટલે પછી જાણજે કે અંદર તેમજ બહાર હરિને જ જોવાશે. બાકી તો હરિ અગમ્ય (અક્કલમાં ન આવે એવું) અને અલેખ (લખ્યું લખાય નહિ—વર્ણવી શકાય નહિ એવું) તત્વ છે તે માત્ર નિર્મળ વર્તન અને નિસ્વાર્થી પ્રેમ દ્વારાજ **પ્રગટ કરી શકાય**; અને એનું **ભાન** (realization) જ થઈ શકે, **બયાન** ન થઈ શકે; કારણકે ઇન્દ્રિયોથી પર છે

૪

કબીર ! હદકે જીવકો, હિત કર મુખ ના બોલ,
જો હૃદ લાગા બેહદસે, તાસે અંતર ખોલ. ૧

હદમેં રહે સો 'માનવી', બેહદ રહે સો 'સાધ';
હદ-બેહદ દોનો તજે, તાકા મતા અગાધ ! ૨

હદ છાંડી બેહદ ગયા, અવર કિયા વિશ્રામ;
કબીરા જાસું મિલ રહા, સો કહીયે નિજ કામ. ૩

---

(૧) જેઓ 'હદના જીવ' છે અર્થાત્ હદવાળી—મર્યાદાવાળી એટલે કે પુદ્ગલીક ચીજો પર જ જેનો જીવ લાગી રહ્યો છે તેવા મનુષ્ય આગળ, હે કબીર ! હિતબુદ્ધિએ પણ મ્હોઢેથી તત્વની વાત તું કહેતો ના ત્હારૂં અંતર માત્ર તેવા પુરૂષ પાસે જ ખોલજે કે જેમનું હૃદ એટલે અંતઃકરણ 'બે—હદ' એટલે હદવગરના—સીમા વગરના—આત્મીક તત્વ પર લાગેલું હોય (આત્મજ્ઞાનની પુરી ગરજ હોય એવા પાસેજ આવી વાતો કરજે; બીજા પાસે બોલીશ તો નાહક મશ્કરી થશે.)

(૨) સામાન્ય માનવી, સાધુ અને અવધુતની વ્યાખ્યા આપતાં કહે છે કે, હદવાળી—આકારવાળી ચીજોમાં જ જેનું મન લાગેલું છે, જેની બુદ્ધિ હદ વગરની ચીજોમાં જઇ શકતી જ નથી ત્હેને 'માનવી' કહેવો. અને હદ વગરના તત્વ—અમર્યાદ ચેતનમય પોલાણ—પરબ્રહ્મમાં જેનું 'ભાન' (consciousness) જઇ શકેછે (સમાધિદ્વારા) તે 'સાધુ' સમજવો; અને અને હદ—બેહદ સર્વના ભેદ વગરનો જે બની જાય એને 'અવધૂ' કહેવો

(૩) જે જિવાત્મા હદવાળા 'ભુવન' (plane) ને છોડી હદ વગરના ભુવનમાં જાય છે અને ત્હાંજ 'અવર' એટલે બીજું ઘર કરેછે તથા ત્હાં પરબ્રહ્મ સાથે મ્હારી પેઠે ભળી જાય છે તેણે પોતાનું કામ કર્યું સમજવું. એ કામ પોતા માટે પોતે જ કરી શકે, બીજો આપણે માટે તે કામ કરી ન શકે.

હદમેં બેઠે કથત હે, બેહદકી ગમ નાહીં;
બેહદકી ગમ હોયગી, તબ કથનેકો કછુ નાહીં. ૪

૫

દેખન સરીખી બાત હે, કહન સરીખી નાહીં;
એસા અદ્‌ભૂત સમઝકે, સમઝ રહે મન માંહી ! ૧

બિન ધરતીકા ગામ હે, બિન પંથકા દેશ;
બિન પિંડકા પુરૂષ હે, કહે કબીર ઉપદેશ. ૨

કબીર ચલકર જાય વહાં, પૂછ લિયા એક નામ;
ચલતા ચલતા તહા ગયા, ગામ નામ નહીં ઠામ ! ૩

---

(૪) સ્થૂલ સૃષ્ટિમાં જીવનારો માણનાર હદ વગરના તત્વની–પરબ્રહ્મની–પરમેશ્વરની ગમ ન હોવા છતાં એકાએક ટાઢા પહોરના તડાકા મારેછે કે ઈશ્વર આવા હોય, તેવા હોય, વગેરે જ્યારે તેજ માણસને 'બેહદ' ની ગમ પડશે ત્યારે તે કાંઇ બોલશેજ નહિ, તે તો મનમાં જ સમાઇ જશે. એ દશાવાળો બોલે શું અને જતું કરે શું ?

(૧) ચેતનના—પરમાત્માના **દર્શન** કરવા એ તો '**દેખવા**'ની વાત છે—'**કહેવાની**' વાત નથી **અનુભવ** (Realization) ની વાત છે, **અનુમાન** (conjecture)ની નહિ.

(૨) કોઈ સાધુના દર્શન કરવાને કોઇ ગામ આપણે જઇએ તો તે ગામ, ત્યાં જવાનો રસ્તો અને તે સાધુના શરીરની એંધાણી વગેરે પૂછીને ગમે તેટલે દૂર પણ જઈ શકીએ પરન્તુ પરમેશ્વરના દર્શન માટે નીકળી પડેલા કબીરજી કહે છે કે હું યાત્રાએ તો જાઉં છું પણ એ પરમેશ્વરને કાંઇ શરીર નથી તો પત્તો શી રીતે લાગશે ? વળી જ્યાં તે છે ત્યાં કોઇ જમીન નથી તો પછી રસ્તો કે સડક તો ક્યાંથી જ હોય !?

(૩) તેમ છતાં યાત્રાએ નીકળતી વખતે મ્હેં માત્ર ત્હેમનું નામ પૂછી લીધું અને આગળ ને આગળને આગળ ને આગળ ચાલવા જ માંડ્યું, અર્થાત્ ધ્યાન ધર્યા કર્યું—નામ જપ્યા કર્યું તેમ કરતા કરતાં હું તો એક દિવસ ત્યાં જઇ પહોંચ્યો ! પરન્તુ આશ્ચર્ય—આશ્ચર્ય કે ત્હાં ન મળે કોઇ ગામ, ન મળે કોઇ જમીન, કે ન મળે ઠામ નામ પણ !

કૌતુક દેખા દેહ બિન, રવિ શશી બીન ઉજાસ;
સાહેબ સેવામેં રહે, બેપરવાહી દાસ ૪

ધરતી ગગન પવન નહીં, નહીં તુંબા નહીં તાર,
તબ હરિકે હરિજન હુતે, કહે કબીર વિચાર. ૫

દેખા એક અગમ ધની,* મહિમા કહી ન જાય,
તેજ-પૂંજ પ્રકટ ધની, મનમે રહા સમાય. ૬

દિપક દેખા જ્ઞાનકા, પેખા અપરમ દેવ,
ચાર વેદકો ગમ નહી, તહા કબીરા સેવ. ૭

બૈકુંઠસે પર બસત હે, મેરા સાહેબ સોહે,
જાકે રૂપ ન રેખ હે, સો અંતર મિલ્યા મોહે. ૮

'મૈં' થા વહાં તક 'હરિ' નહીં, અબ 'હરિ' હે 'મે' નાહીં,
સકલ અંધેરા મિટ ગયા, દિપક દેખા માહી ૯

---

(૪) હું પરમાત્માની યાત્રાએ નીકળ્યો તે સ્થુલ શરીરથી નહિ, પણ સૂક્ષ્મ શરીરથીજ. (સ્થૂલ) આંખો વગર જ મ્હેં ત્હાં કૌતક જોયું, તે એ કે ત્હાં જો કે સૂર્ય કે ચંદ્ર તો હતા જ નહિ તો પણ ઉજાસ પુષ્કળ હતો. પછી હું તે પરમેશ્વરની સેવામા રહ્યો—'સેવા' Service—પરમાર્થ એજ મ્હારો 'ધર્મ' એમ મ્હેં નિશ્ચય કર્યો, તથા આ દાસ 'બેપરવાહી બન્યો, સુખ—દુખની પરવાહ વગરનો થયો

(૫) જે વખતે પરબ્રહ્મમાથી સૃષ્ટિનો પરપોટો નીકળ્યો નહતો અર્થાત્ ધરતી-ગગન-પવન-તુંબા-તાર વગેરે કંઇ ઉદ્ભવ્યું નહતું તે વખતે પણ હરિજન-પરમેશ્વરનો ભક્ત તો હતો જ અહીં (આત્માના અનાદિ ગુણનું તત્વ સૂચવ્યું છે પણ ત્હેનો ખુલાસો કરવાને એક આખા પુસ્તકની જરૂર પડે)

* ધણી એટલે માલીક, પરમેશ્વર, સાહેબ, Lord

(૯) 'મૈ' અથવા 'હુ' એવો ભાસ જ્યાહા સુધી મ્હારામા હતો ત્હાં સુધી હરિ મ્હારાથી દૂર હતા, પણ હવે જ્યારે 'હરિ' મ્હારામા પ્રકટ થયા ત્હારે 'હુ' પણું ઉભુ રહ્યુ નથી 'હુ' પણુ અને 'હરિ' બે એક જગાએ રહી શકે જ નહિ.

ગુન ઇદ્રિ સેહેજે ગઇ, સદ્દગુરૂ ભયે સહાય;
ઘટ્મેં બ્રહ્મ બિરાજીયા, બક બક મરે બલાય ! ૧૦

૬

વિષયરસે લગી પ્રીતડી, તબ હરિ અંતર નાહીં;
જબ હરિ અંતરમેં બસે, વિષયરસ પ્રીત નાહીં; ૧

ભક્તિ બિગાડી કામીયા, ઇદ્રિ કેરે સ્વાદ;
જન્મ ગમાયા બાધમેં, હિરા ખોયા હાથ. ૨

રામ હે વહાં કામ નહીં, કામ નહીં વહાં રામ;
દોનો ઇકઠે ક્યું રહે, કામ રામ એક ઠામ? ૩

---

(૧૦) તમોગુણ, રજોગુણ અને સતગુણ એ ત્રણે ગુણ અને ઇદ્રીઓ પણ સ્વાભાવિક રીતે ચાલી ગઇ, માત્ર સદ્ગુરૂ (પરમાત્મ તત્વનો સાક્ષાત્કાર કરાવી શકે એવા અનુભવી ગુરૂ)ની કૃપા થઇ તેથી આ પરિણામ આપોઆપ-વગર પ્રયત્ને આવ્યું. ઘટમા બ્રહ્મ પ્રગટ થતા હવે મ્હારી બલારાત બકબકાટ કરે છે !

(૧) જ્હાં સુધી ઇન્દ્રિઓના વિષય પર પ્રીત લાગેલી રહે ત્હાં સુધી અતરમા હરિ આવી શકે જ નહિ અર્થાત્ પ્રકટ થઇ શકે જ નહિ (તેથી ઉલટું) જ્હારે હરિ કોઇના અંતરમાં પ્રકટ થાય છે ત્હારે એનુ ચિત્ત ઇન્દ્રિયજન્ય સુખો તરફ ખેંચાવા પામતું નથી.

(૨) કામી એટલે ઇચ્છામાં રચ્યાપચ્યા રહેલ મનુષ્યોએ ઇદ્રીયજન્ય સુખોના સ્વાદમા પડીને ભક્તિને ભ્રષ્ટ કરી દીધી છે. (જ્ઞાનયોગમાં અભિમાનનો ડર છે તેમ ભક્તિયોગમાં વિષયની ધાસ્તી રાખવી પડે છે, એ આ વાક્ય ઉપરથી સૂચિત થાય છે.) હિરાને બદલે જેમ કોઇ કાચ લોની આવે તેમ મૂર્ખ માણસો ભક્તિને બરાબર નહિ ઓળખવાથી ભક્તિને બદલે ભળતાજ કોઇ વિષયવિકાર નામના ગુણમાં ફસાઇ પડે છે તેટલે બોલે હીનો—ખરી ભક્તિ જ શોધી કહાડે તો જન્મ સફળ થઇ જાય

(૩) એક મ્યાનમા બે તરવાર રહી શકે નહિ તે પોળીઆમાં 'રામ' હોય ત્હા 'કામ' અથવા ઇન્દ્રિયજન્ય સુખની ઇચ્છા સમાઇ શકે નહિ; અને જ્હાં 'કામ' છે ત્હા 'રામ' આવવા નવરો નથી !

૭

ચેતન ! ચોકી બેઠ કર, મનમેં રાખો ધીર,
નિર્ભય હોકે નિઃશંક ભજ, કેવલ કહે કબીર. ૧

એક પગ ભક્તિમાં અને એક ભાર્યામા રાખવો પાલવે નહિ બે સ્ટૂલ વચ્ચે માણસ જમીન પર પડે છે ! તથાપિ જેમ થોડી વારને માટે એક બકરી અને એક વાઘ બન્નેને એક વાસણમાંથી દૂધ પીતાં આપણે ('સરકસ'-ના ખેલમા) જોઇએ છીએ; તેમ જો માણસ સંસારમા રહી સંસારના કામકાજ મર્યાદામા રહીને—હેમા રચ્યાપચ્યા રહ્યા વગર—કરે તો ભક્તિને હરકત આવે નહિ એક પાંજરામાં બકરી અને વાઘ થોડી વાર રહી શકે એ વાત ખરીછે તો પણ આ શરત યાદ રાખવાની છે કે, તેઓ એવી રીતે રહી શકે તે માટે હેમને અગાઉ લાંબા વખત સુધી તાલીમ આપવી પડી હોય છે. બકરીનું સ્વાભાવિક બ્હીકણપણું અને વાઘનું સ્વાભાવિક ક્રૂરપણું બન્ને ગુણોને અમુક વખતને માટે અંકુશમા રાખવાની તાલીમ આપી હોય છે તેમજ જો કોઇ મનુષ્યને જેટલો વખત તે ઘરસંસાર ચલાવે તેટલો વખત, લુબ્ધતાનો સ્વાભાવિક જેવા થઇ ગયેલો ગુણ અંકુશમાં રાખવાની તાલીમ અપાય અને તેવી તાલીમ મળ્યા બાદ જો તે સંસારના કામકાજમા પડે તો તે ભક્તિને કશી હરકત ન આવે એવી રીતે વર્તન કરી શકે ખરો. આવાને માટે પણ એટલુ ધ્યાનમા રાખવાનુ છે કે, બકરી અને વાઘને લાંબા વખત સુધી ભેગા રાખી શકાય નહિ, માત્ર ટુંક વખતના નાટ્યપ્રયોગ માટે જ તેમ (સહીસલામતીથી) કરી શકાય. અને વળી એ ટૂંક પ્રયોગ દરમ્યાન પણ બન્ને વચ્ચે ચકમક ન ઝરે એ બાબત કાળજી રાખવા માટે ખાસ ચોકીદારો હથીઆર સાથે ઉભા રાખવા પડે છે વિવેક અને જ્ઞાનના ચોકીદારોને પોતાના તીવ્ર હથીઆરો સાથે ઉભા રાખીને જ રામ—કામને એક પીંજરામાં રાખવાનો ટુંક મુદતનો પ્રયોગ ભજવવો જોઇએ, તે સિવાય નહિજ.

(૧) હે ચેતન ! આત્મા નામે રાજા વારંવાર મન રૂપી દરવાજેથી બહાર ભટકી જાયછે માટે ત્હા તું ચોકીદાર તરીકે બેસ (વિવેકને બેસાડ) અને પછી મનમા ધીરજ રાખજે કે નિર્ભય અને નિઃશંકપણે રાજાની મુલાકાત તને થશે.

લેહ લાગી નિર્ભય ભયા, ભરમ ગયા સબ દૂર,
બનમેં બનમેં કહાં ઢૂંઢે, રામ યહાં ભરપૂર. ૨

સબ હી ભૂમિ બનારસી, સબ નિર ગંગા તોય;
જ્ઞાની આતમ રામ હૈ, જો નિર્મળ ઘટ હોય. ૩

'આપા' ખોયે 'હરિ' મિલે, હરિ મિલત સબ જાય;
અકથ કહાની રામકી, કહે સો કૌન પતિયાય ? ૪

---

(૨) જેને પરમ તત્ત્વમાં લ્હે (એકતાન) લાગે છે તે **નિર્ભય** બને છે, એના મનમા (સમર્થના શરણાનો ઉત્સાહક ખ્યાલ અહોનિશ હોવાને લીધે) ભય—ધાસ્તી—દરદ—ગભરાટ—ચિંતા કશાનો પ્રવેશ જ થઇ શકતો નથી 'પરમતત્વના પરિપૂર્ણ શ્રદ્ધા' એ positive ગુણ છે અને દરદ—ચિંતા—ગભરાટ વગેર negative સ્થિતિઓ છે; એ કારણથી સાયન્સની દૃષ્ટિએ પણ ઉપર કહેલી શ્રદ્ધા માણસને ઘણી ઉપકારી થઇ પડે છે. એવા માણસને મુક્તિ માટે, કે દવા તરીકે વાપરવાની જડીબુટ્ટી માટે—કશા માટે વનમા ભટકવાનુ રહેતુ નથી. 'રામ' એટલે આરામ—તનદુરસ્તી—વિજય—નિડર સ્થિતિ—આબાદી તે તો એના ભીતરમાં ભરપૂર હોય છે.

(૩) આ સઘળી ભૂમિ કાશી જેવી પવિત્ર જ છે; સઘળા પાણી ગંગાજળ બરાબર જ છે. અને જ્ઞાન પામેલો આત્મા એજ પોતે રામ છે, —જો માત્ર 'ઘટ' નિર્મળ હોય તો એટલેકે નિર્મળ 'ઘડામાં ગળેલું' પાણી સાબરમતીનુ હોય કે ગંગાનુ હોય એક સરખુંજ નિર્મળ—પવિત્ર ગણાય, જે ગામમા અધ્યાત્મનો પ્રચાર હોય તે ગામ કાશી જ છે, જો માણસનુ મન નિષ્કામ હોય અને જેનામાં જ્ઞાન હોય તે પોતે ઈશ્વર જ છે.

(૪) 'હું પણુ' એવો જે ખ્યાલ આજે આપણામાં છે તેહેને જો વિશ્વ દૃષ્ટિમાં ડુબાવી દઈએ અર્થાત્ હુંપણુ ભૂલી જઈએ તો હરિ તરતજ મળી જાય અને હરિ મળતા સર્વ ભ્રમણા—ભગંજાળ અદૃશ્ય થઈ જાય (એક દીવાથી જેમ સઘળુ અંધારૂ અદૃશ્ય થાય છે તેમ) આવી અકથ્ય ગમની છે ! કોઈને કહીએ તો માને પણ નહિ એવી આ વાત.

કબીર જબ એ જગ નહીં, તબ રહા એક ભગવાન;
જીનને દેખા નજરસે, સો રહા કૌન મકાન? ૫

હરિજન હરિ તો એક હે, જો 'આપા' મિટ જાય;
જા ઘરમેં 'આપા' બસે, સાહેબ કહા સમાય? ૬

તું તું કરતા તું ભયા, તું માહે મન સમાય;
તું માહી મન મિલ રહા, અબ મન ફિર ન જાય. ૭

તું તું કરતા તું ભયા, મુજમેં રહી ન 'હૂં';
વારી જાઉં નામ પર, જીત દેખું તિત 'તૂ'. ૮

---

(૫) કબીર કહેછે કે, જ્હારે જગત નથી હોતું એટલે કે જ્હારે આપણા મન રૂપી દુનીઆમાંથી જગત અદ્રશ્ય થાયછે ત્હારે ત્હા માત્ર ભગવાન બીરાજી રહેછે. મનમાં આખું વિશ્વ સમાતું ત્હેની જગાએ હવે એક પરમેશ્વર જ સમાયો એટલે પરમેશ્વર આખા વિશ્વ જેવડો થયો આવડા મોટા પરમેશ્વરને લઇને કોઇ એક મકાનમાં રહેવાનું કેમ પાલવે? એક મકાનમાં આવડો મ્હોટો પરમેશ્વર કેમ સમાય ? આ એક સુંદર કાવ્ય તરંગ છે—કલ્પના છે. મતલબ એ છે કે જેના મનમાં પરમતત્વનો પ્રકાશ થયો છે ત્હેને ઘરબારમાં મજાહ પડતી જ નથી, એને મન આખું વિશ્વ એ ઘર છે.

(૬) હરિ અને હરિજન, ગુરૂ અને શિષ્ય, આત્મા અને પરમાત્મા એકજ છે, એવો એકતાર થાય તો આનંદ આવે બાકી જે ઘરમા હરિજન એકલો વસે (જેના મનમા 'હુ' ના વિચારોજ—પછી તે ગમે તેવા સારા હોય તો પણ શું) આવે તે ઘરમાં સાહેબ—હરિ સમાય જ કેમ કરી?

(૭) 'તુહી તુહી' જપતા—પરમતત્વનું જ સ્મરણ અને ચિન્તવન કરતા કરતા એજ સ્વરૂપ પ્રાપ્ત થાય છે, ત્હેમા જ મન સમાઇ જાય છે (નદી સમુદ્રમા જઇ ભળી જાય છે)

(૮) પરમતત્વનું સ્મરણ કરતાં હવે કબીરમાં 'હુ' પણું રહ્યુ નથી. જ્યહા નજર પડે છે ત્હાં ત્હાં કબીરજી પરમેશ્વરને જ ભાળે છે, તેથી પરમેશ્વરના નામ પર ઓવારણા લઇને કહે છે કે આ તે ત્હારો કેવો ચમત્કાર !

રામ કબીરા એક હૈ, કહન–સુનનકે દોય;
દો કર જો કોઇ જાનસી, ગુરૂ મિલા નહીં હોય ! ૯

નામ કબીરા હો રહા, કલજુગમેં પરકાશ;
સબ સંતનકે કારને, નામ ધરાયા દાસ. ૧૦

કબીર કુત્તા રામકા, મોતી નામ ધરાય,
ગલે બિચ દોરી પ્રેમકી, જીત ખેંચે તિત જાય. ૧૧

દાસ કહાવન કઠીન હૈ, મૈ દાસનકો દાસ,
અબ તો ઐસા હો રહૂં, કે પાઉં તલેકી ઘાસ! ૧૨

---

(૯) પોતાનો દાખલો માત્ર આપીને કહે છે કે, રામ અને કબીર એક જ છે, માત્ર કહેવા–સાભળવામા બે છે. જે કોઈ હુ—તું જૂદા સમજશે ત્હેને જ્ઞાની ગુરૂ મળ્યા જ નથી એમ સમજવું.

(૧૦) આ કલિયુગમા કબીરનું નામ ગવાઈ રહ્યુ છે (અથવા કબીર એવુ નામ ધારણ કરીને મ્હેં આ કલિયુગમાં જન્મ લીધો છે) તે માત્ર સંત જનોની ખાતર જ, બાકી હુ તો હરિનો દાસ છુ. જે કાઇ કીર્તિ મળી છે તે મ્હારી નથી, હુ તે હરિના ચરણમાં અર્પણ કરૂંછુ. હરિનું 'મિશન' બજાવવામા હરિના જે અનેક હાથો કામ કરી રહ્યા છે ત્હેમાંનો એક હાથ હુ છુ, હરિના જ્ઞાનતંતુ હુકમ કરે છે અને એમના હાથો તે મુજબ કામ કરે છે, એ પ્રમાણે કામ થતા જે નફો મળે તે ઉપર હાથનો શો હક્ક છે ભલા ?

(૧૧) આ કબીર તો રામનો કૂતરો છે—ગુલામ છે. કૂતરાના ગળામા જેમ શેઠ પટ્ટો—દોરી નાખે છે તેમ મ્હારા ગળામાં હરિપ્રેમ રૂપી પટ્ટો બાધ્યો છે, તેથી મ્હને તે મ્હારો માલીક જ્યહા ખેંચે ત્યહાં હુ જાઉં છુ. મ્હારે કરવાનુ કશુ નથી, મ્હારે માત્ર હરિની આજ્ઞાને અનુસરવાનુ છે.

(૧૨) દાસપણુ દોહ્યલુ છે, ત્હેમા પણ સઘળા જગતના 'દાસ' બનવુ એટલે જગતની સેવામા ગરકાવુ એ તો સૌથી કઠીન છે; અને ત્હેમા પણ (કબીર કહે છે કે) હુ તો દાસનો પણ દાસ છુ; છતા એટલી નમ્રતાથી સંતોષ નથી મળતો માટે એમ ઇચ્છા થાય છે કે, હવે તો જાણે હરિજનોના ચરણ તળેનુ ઘાસ જ બની જાઉ ! (Service—જનસેવાના ખ્યાલની હદ વાળી દીધી છે. 'હુ' ને ભૂલી જઇ જગહિતમાં જાતવાની એટલી તીવ્ર ઉત્કટતા બતાવી છે કે કોઇ પગતળે કચરે તો પણ ત્હેમા આનંદ માનવો અને પરમાર્થ કર્યા કરવો)

૮

જો દેખા સો તીનમેં, ચોથા મિલે ન કોય;
ચૌથેકો પરગટ કરે, 'હરિજન' કહિએ સોય. ૧

જહાં તક એક ન જાનીયા, બહુ જાને કયા હોય ?
એકે સબ કુછ હોત હે, સબસે એક ન હોય. ૨

એક સધે સબ કુછ સધા, સબ સાધે એક જાય;
જો તૂં સિંચે મૂલકો, ફૂલે ફલે અઘાય. ૩

સબ આયે ઇસ એકમેં, ડાર, પાત, ફલ, ફૂલ,
કબીર! પીછે કયા રહા, ગ્રહી પકરા નિજ મૂલ ? ૪

મેરા મુજમેં કછુ નહીં, જો કછુ હે સો તેરા;
તેરા તુજકો સોંપતે, કયા લગેગા મેરા ? ૫

---

(૧) જે કાંઇ મનુષ્યો મ્હેં આજ સુધીમા જોયા છે તે બધા 'ત્રણ'-માંના છે, ચોથા વર્ગનો કોઇ મળ્યોજ નહિ. કોઇ તમસમા, કોઇ રજસમા અને કોઇ વારલા સત્વ ગુણમા છે; પણ એ ત્રણેથી જૂદી એવી તુરિયા અવસ્થાવાળા તો મ્હારી નજરે પડયા જ નહિ. કાળો, લાલ કે ગુલાબી સર્વ કોઇ રગ જ છે; રંગ વગરની દશામા કોઇ જોયા નહિ ચોથી દશા પ્રકટ કરી શકે તે માણમને હરિજન અથવા અધ્યાત્મી—જ્ઞાની કહીએ હરિજન એટલે હરિના નામની તાળીઓ વગાડનાર કે હરિની માળા ફેરવનારા કે કથા બેસાડનારા નહિ!

(૨) એકને—આત્માને—પરબ્રહ્મને જાણે નહિ ત્યહા સુધી દુનીઆની સઘળી વિદ્યાઓ જાણે તો પણ શુ થયુ ? એકના જ્ઞાનમા સઘળુ જ્ઞાન સમાઇ જાય છે; માટે એક વડે બધુ થઈ શકે, બીજી બધી ચીજોનો સરવાળો કરીએ તો પણ તે એક ચીજ ન થાય!

(૩–૪) તે એકને સાધન કરનારને બીજુ બધુ (વગર પ્રયત્ને) પ્રાપ્ય થઇ જાય છે, અને એ એક વગરની બીજી બધી ચીજો સાધે તો એક તો ઉલટો દૂર જતો રહે! જો તું મૂળને પાણી પાઇશ તો આખું વૃક્ષ ફાલશે અને ફુલશે. ડાળ—પાદડા-ફળ—ફુલ વગેરે આપોઆપ આવી મળશે. કબીર કહે છે કે જે સખસ મૂળને જ પકડે છે ત્હેને બીજુ કાઇ રહેતુંજ નથી.

(૨) જીવની વાતો.

૧

બીન બીજકા વૃક્ષ હૈ, બીન ધરતી અંકુર;
બીન પાનીકા રંગ હૈ, તહાં જીવકા મૂલ. ૧

હમ વાસી વો દેશકે, જહાં ગાજ રહા બ્રહ્માન્ડ;
અનહદ બાજા બાજતા, અવિચલ જોત અખંડ. ૨

આયા એકહિ દેશસેં, ઉતરા એકહિ ઘાટ;
બિચમેં દુબધા હો ગઈ, હો ગયે બારેબાટ ! ૩

હમ વાસી વો દેશકે, જહાં જાત વરન કુલ નાહીં;
શબ્દ મિલાવા હો રહા, પર દેહ મિલાવા નાહીં. ૪

---

(૧) જીવનું 'મૂળ' ક્યહા છે ? જ્યહા બીજ વગરનું વૃક્ષ છે, જ્યહાં ધરતી વગર અંકુરા ફુટયા છે, જ્યહા પાણી વગરનો રંગ છે—ત્યહા—તે જગાએ જીવનું મૂળ છે જીવનું મૂળ સ્થાન—પરબ્રહ્મ એ રૂપ-રંગ—આકાર વગરનું છે.

(૨) હમે એટલે આ જીવ તો તે દેશના રહેવાશી છીએ કે જ્યહા 'શબ્દબ્રહ્મ' અથવા Logos અથવા The Word નો નાદ-અવાજ થયા કરે છે તેથી નિરંતર વાગતા વાજા જેવો ખ્યાલ આવે છે અને જ્યહા અખંડ પ્રકાશ છે.

(૩) તે પરબ્રહ્મમાંથી જ સઘળા જીવો આવ્યા છે. એકજ 'દેશ'થી આવેલા સઘળા જીવ રૂપી મુસાફરો એકજ 'ઘાટ' પર ઉતર્યા છે (એટલે આ સ્થૂલ દુનિયા રૂપી જગાએ ઉતર્યા છે) પણ અહીં ઉતર્યા પછી 'દુબધા' એટલે મુશ્કેલી-હરકતો આવી પડી (કર્મ રૂપી જાદુગરે અનેક મુશ્કેલીઓમાં નાખ્યા) તેથી બધા છુટા પડી ગયા.

(૪) હમે (જીવ) તો તે દેશના રહેવાસી છીએ કે જ્યહાં જાત-વર્ણ—કુળ વગેરે તફાવત કાંઈજ નથી. ત્યહા તો માત્ર 'શબ્દ' થીજ મન્મેળ

૨

ગેબી આયા ગેબસે, ઔર યહાં લગાઈ એબ;
ઉલટ સમાવે ગેબમેં, તો મિટ જાય સબ એબ. ૧

કબીર ! જાત જાતકા પાહોના, જાત જાતમે જાય,
સાહેબ જાત અજાત હે, સબમેં રહે સમાય ! ૨

એક બુંદ તે સબ કિયા, નર નારિકા નામ,
સો તું અંતર ખોજ લે, સકલ બ્યાપક રામ. ૩

થઇ શકે છે. એક દેહ બીજી દેહની મુલાકાત લે એવુ કાંઈ ત્હાં નથી. ('શબ્દ' એ શબ્દમાં પણ ઘણું ગુપ્તજ્ઞાન સમાયલુ છે બોલાયલો ઉચ્ચાર એજ કાંઇ શબ્દ નથી, પણ આ ઉંડા તત્વજ્ઞાનમા ખાસ અભ્યાસ વગર સમજ પડી શકે નહિ.)

(૧) 'ગેબી' એટલે ગુપ્ત તત્વ યાને આત્મા, ગેબી યાને ગુપ્ત સ્થળથી આવ્યો છે; પણ આહી એટલે ઇન્દ્રિયોથી સ્પર્શ થઇ શકે એવી ચીજોથી ભરેલી દુનીઆમાં આવીને તે વટેમાર્ગુએ તે તે ચીજોમાં મોહી પડીને એબ લગાડી છે. પણ હવે જો તે જીવ ઉલટો—પાછો ફરે અને ગેબમા રમાય તો સઘળી એબ—દુર્ગુણ મટી જાય.

(૨) જેમ એક ટ્રેનથી ઉતરેલા સેકડો વટેમાર્ગુઓ પોતપોતાની જાતના—પોતપોતાના સગાને ત્હાં જઈ મેમાન બને છે, પણ જે સાધુ હોય છે ત્હેને કાંઇ નાત—જાત કે સગુ સબધી નહિ હોવાથી તે તો આખા ગામનો મેમાન બને છે, તેમ જૂદા જૂદા આત્માઓ પોતાના વિકાસક્રમ (evolution) માટે અવતાર લેવા આવે છે ત્હારે પૂર્વ કર્માનુસાર જૂદી જૂદી જાત, વર્ણ ને કૂળમા આવેછે, પણ સાહેબ એટલે પરમાત્મા તો અ—જાત (જાત વગરના અગર જેને જન્મ નથી એવા) હોવાથી તે કોઇના ન થતા સર્વમા સમાઈ રહે છે.

(૩) એક બુદ—એક મૂળમાથી આ બધુ થયુ છે અને પછી નર નારી વગેરે નામો પડયાં છે ને બધામા સર્વવ્યાપક એવા 'રામ' ને તું 'અતર' માં શોધી કહાડ.

૩

એક બુંદને સબ કિયા, યે દેહકા બિસ્તાર;
સો તું કયું બિસર ગયા, અંધે મુંઢ ગમાર? ૧

સબ ઘટ ભીતર રામ હૈ, ઐસા આપસેં જાન;
આપ આપસે બંધીયા, આપે ભયા અજાન. ૨

પાંચ ધાતકા પિંજરા, સો તો અપના નાંહિ;
અપના પિંજર વહાં બસે, અગમ અગોચર માંહિ. ૩

સગા હમારા રામજી, સહોદર હૈ પુની રામ;
ઔર સગા સબ સગમગા, કોઇ ન આવે કામ. ૪

ચલ ગયે સો ના મિલે, કિસકો પૂછું બાત?
માત પિતા સુત બાંધવા, ઝૂટા સબ સંગાત ૫

---

(૧) એક બુંદમાંથી દેહનો બધો વિસ્તાર થયો છે; એ વાત, હે મૂર્ખ! તુ કેમ વિસરી ગયો છે?

(૨) સર્વ આકારોમા અને સર્વ ભીતરમાં રામ છે, એ વાત તુ ત્હારી મેળે જ જાણી લે. તુ પોતે પોતાને બાંધવાનુ કામ કરે છે—તુ પોતાનું કેદખાનુ પોતે જ રચે છે, કારણ કે તું અજ્ઞાનમા જઇ ફસ્યો છે.

(૩) પૃથ્વી, પાણી, અગ્નિ, વાયુ અને આકાશ (સ્થગ) એ પાચ તત્વ—પાચ મૂળ પદાર્થોનુ આ સ્થૂલ શરીર બનેલુ છે; પણ તે કાઇ આપણું (આત્માનુ) ખરૂ કે કાદોકદમીનુ 'ઘર' નથી. આપણું 'ઘર' તો ત્હાં—તે જગાએ છે કે જે જગા કલ્પનામાં આવી શકતી નથી અને જ્યાંહાં ઇન્દ્રિયોથી જઇ શકાતુ નથી

(૪) હમારા (આ આત્માના) સગા તો રામ જ છે; પુની એટલે વળી, અમારો સહોદર (સગોભાઇ) પણ રામ જ છે. તે સિવાયના બીજાઓ (સગા હોવનો દાવો કરનારાઓ) **નામના જ છે; કશા કામના નથી**

(૫) જેટલાં (સગા) ગયાં. તે હવે ફરીથી તો મળતા નથી (ખરા સગા હોય તે કોઇ દગો દે નહિ; ત્હેની પ્રિતિ કાયમની હોય.) માટે આ વાત હુ કોને પૂછુ? મ્હને તો લાગે છે કે, મા—બાપ—પુત્ર—ભાઇ સર્વ સંગાત જૂઠા છે

૪

કયા કિયા હમ આયકે, કયા કરેંગે જાય ?
ઇતકે ભયે ન ઉતકે ભયે, ચલ ગયે મૂલ ગમાય. ૧

કબીર ! યહ તન જાત હે, શકે તો ઠોર લગાય;
કે સેવા કર સંતકી, કે ગોવિંદ ગુન ગાય. ૨

કહાં જાય કહાં ઉપને, કયૂં કરાતા લાડ ?
ન જાનૂં કિસ રૂખ તલે, જાય પડેગે હાડ. ૩

આજ કાલ દીન પંચમેં, જંગલ હોગી બાસ,
ઉપર લોક ફિર જાયગે, ઢોર ચરેંગે ઘાસ. ૪

રામ નામ જાન્યો નહિં, કિયા ન હરિસેં હેત;
તાસે જનુની ભારે મુઈ, પથ્થર પડિયો પેટ. ૫

---

(૧) 'અમે' ('જીવ' ને માટે બહુ વચન શબ્દ વપરાય છે) અહીં આવીને શું ધાડ મારી ! અને હવે અહીંથી જઇશું ત્હાં (જન્માંતરમાં) પણ શું ધાડ મારવાના હતા ? ના અહીંના રહ્યા, ના ત્હાંના લાયક થયા, અમે તો મૂલ મૂડી ગમાવીને જઇએ છીએ (આત્મતત્વ ભૂલીને અને પૂર્વના શુભ કર્મ શીલીકે હશે તે ખાઇ જઇને ઉલટું દેવાની રકમો સાથે જન્માન્તરની સફર કરીએ છીએ)

(૨) અરે ઓ કબીર ! જો, જો, ત્હારૂં—દેખાતું શરીર—જેમાં તું બહુ આનંદ માનતો હતો તે તો આ ચાલ્યું—ગયું સમજ; ત્હારાથી બની શકે તો એને સ્થીર રાખ. અને ન બને તો પછી અત્યારથી જ ચેતીને સતસેવા કે ગોવિંદગુણગાન બેમાથી એક કામ કરી લે.

(૩) આ શરીર અહીંથી ચાલીને ક્ય્હાં જશે અને ક્ય્હાં ઉપજશે, ત્યારે એના હાડકાં કયા ઝાડ તળે જઇ પડશે ત્હેની કોને ખબર છે ? ત્યારે પછી તું એવા શરીરને આટલાં બધા લાડ શા માટે લડાવે છે ? શું વગડાના ઝાડ તળે દટાવા માટે કે સ્મશાનમાં બળવા માટે ?

(૫) જે કામ માટે આ દેહ ધર્યો હતો તે કામ એટલે કે હરિથી હેત કરવાનું કામ—પરમાત્માથી એકતાર જોડવાનું કામ તો ત્હારાથી બન્યું નહિ તો પછી એમજ લોકો કહેશે કે ત્હેં જનુનીને ફોગટ ભારે એ પથ્થર પેટ પડયો હોત તો પણ ઠીક હતું.

૫

રામ બિસાર્યો બાવરા, અચરજ કિનો યેહ;
ધન જોબન ચલ જાયગા, અંત હોયગી ખેહ. ૧

મનુષ્ય જન્મ તોકોં દિયો, ભજવેકો ગોવંદ;
તું અપને કરસે આપકો, કહાં બંધાયે ફંદ ? ૨

મનુષ્ય જન્મ દુરલભ અતિ, મિલે ન બારમબાર;
તરવરસે ફલ ગિર પડા, ફિર ન લાગે ડાર. ૩

કાહે સોવે નિંદભર, જાગી જપ મોરાર;
એક દિન ઐસા સોવના, લંબે પાઉ પસાર ! ૪

કબીર ! કેવલ નામકે, જબ લગ દિવે બાત;
તેલ ઘટા બાતી બુઝી, તબ સોવે દિન રાત ! ૫

---

(૧) હે બાવરા મનુષ્ય ! મ્હને આશ્ચર્ય તો આ વાતનું થાય છે કે ત્હેં રામને વિસાર્યો, પણ તે સિવાયનું તો બધું એ -ધન—જોબન વગેરે--ચાલ્યુ જનાર છે, અને અંતે ખાખ થઇ જનાર છે.

(૨) મનુષ્યનો જન્મ ત્હને મળ્યો છે તે ગોવિંદ—પરમાત્માને ભજવા—ધ્યાન ધરવા માટે જ મળ્યો છે. તે છતાં તું પોતાના હાથેજ પોતાને જાળમાં ફસાવે છે એ શું ?

(૩) મનુષ્ય તરીકેનો અવતાર દુર્લભ છે, વારંવાર મળે તેમ નથી. જેમ તરુ એટલે ઝાડથી ફળ નીચે પડયું તે કાંઇ ફરી ડાળીએ ચ્હોંટતું નથી, (તેમ મનુષ્યજન્મ ફરી કદીએ મળશે નહિ એવો અર્થ નથી; પણ ઘણી મુશ્કેલીએ અને લાંબે કાળે મળે તેમ છે, એવી મુશ્કેલીનો ખ્યાલ આપવા માટે આનું દૃષ્ટાંત આપ્યું છે)

(૪) તું ગાઢી નિદ્રામાં કેમ સૂતો છે ? જાગ અને મોરારને યાદ કર. એક દિવસ એવો જરૂર આવશે કે જ્યારે ત્હને પગ લાંબા કરીને નીરાંતે સુવાનું આવશે (સ્મશાનમાં !)

(૫) આ કબીર એ તો કેવળ નામ માત્ર છે; અને તે 'દીવા' એવા નામની ઓળખાણના પદાર્થ જેવા છે દીવો અમુક કલાક સુધી

૬

મન તું કેસા બાવરા, તેરી શુદ્ધ કયું ખોય?
મોત આયે સિરપેં ખડા, ફસતે બેર ન હોય. ૧

મન અપના સમજાઇ લે, આયા ગાફેલ હોય;
બિન સમજે ઉઠ જાયગા, ફોકટ ફેરા તોય. ૨

મનખા જનમ પાયકે, ભજીયો ન રઘુપતિ રાય,
તેલી કેરા બેલ જયું, ફિર ફિર ફેરા ખાય. ૩

જગ સારા દરિદ્ર ભયા, ધનવંત ભયા ન કોય;
ધનવંત સોહિ જાનીયે, રામ પદારથ હોય. ૪

રામ નામકી લૂટ હય, લૂટ શકે તો લૂટ;
પિછેસે પસ્તાયગો, જબ તન જાયગો છૂટ ૫

કાલ કરે સો આજ કર, આજ કરે સો અબ્બ:
અવસર બિતો જાત હે, ફિર કરોગે કબ્બ? ૬

દીવા દઇ, તેલ કે બત્તી એમાંથી એક પણ પુરૂં થાય કે તુરત, અદૃશ્ય થાય છે; તેમ આ કબીર પણ પૂર્વમચીત ભોગવાઈ રહ્યા એટલે અદૃશ્ય થવાનો. શ્વાસોશ્વાસ રૂપી તેલ પુરૂં થયુ કે કબીરને રાત ને દિવસ ગવાનું જ છે! (દુનીયાની દૃષ્ટિએ સુવાનુ છે, પણ સ્થૂલ સૃષ્ટિની પછીની દુનિયામાં તો જાગવાનું બાકી છે.)

(૧) હે મન! તું બાવરૂ કેમ રહે છે? શુદ્ધબુદ્ધ શા માટે ગુમાવે છે? જો તો ખરૂં કે મોત તો આવીને શિર પર ખડુ રહ્યુ છે, અને ત્હને એના પંઝામાં ફસતાં વાર લાગશે નહિ.

(૩) મનુષ્યજન્મ પામવા છતા રઘુપતિ–રામ–પરમાત્માને ભજતો નથી તો તું ખરેખર ઘાંચીનો બળદ જ છે, ભલે હવે તુ ગોળમટોળ ફર્યા જ કર.

(૩) ક્ષણનો પ્રમાદ ન કરશો.

કાલ કહે મેં કાલ કરૂં, આગે વિસમી કાલ;
દો કાલકે બિચ કાલ હૈ, શકે તો આજ સંભાલ. ૧

આજ કહે હરિ કાલ ભજું, કાલ કહે ફિર કાલ;
આજ કલ કરતે રહે, અવસર જાતા ચાલ. ૨

કબીર ! અપને પેહેરે જાગીએ, ના પર રહીએ સોય;
ના જાનું છિન એકમેં, કિસકા પેહેરા હોય ? ૩

દિન ગમાયા જગતમેં, જગત ચલા નહીં સાથ,
પાંવ કુહાડા મારિયા, ગાફેલ અપને હાથ. ૪

કબીર ગુજરી બિખકી, સૌદા લિયા બિકાય;
ખોટી બાંધી ગાંઠરી, અબ કછુ લિયા ન જાય. ૫

---

(૩) હે કબીર ! ત્હારો પેહેરો છે એટલો વખત તો તું જાગ ! ઉંઘ રહેતો ના. એક ક્ષણમાં ત્હારો પેહેરો જતો રહેશે અને બીજાનો પેહેરો નીમાશે (પેહેરેદારને પટો વગેરે આપીને અમુક કામ પર બેસાડ-વામાં આવે છે, તેમ આ જીવને શીવ તરફથી મનુષ્ય દેહી રૂપી પટો પહે-રાવીને પરોપકારના કામ માટે નીમ્યો છે. એ વખત દરમ્યાન તેણે ક્ષણ માત્રનો પ્રમાદ કરવો જોઇતો નથી. જો તે પ્રમાદ કરે—અને ચોર લોકો એટલે કે અધર્મી પુરૂષો તે વિભાગમાં ચોરી કરે અર્થાત્ દુઃખ દે તો એને માટે જુમ્મો પહેરેદારને શિર છે. પરમાર્થનાં અનેક કામ દરેક હરિજનને સોંપાયલાં જ પડયાં છે; ત્હેને પ્રમાદ પાલવવો જ જોઇએ નહિ.)

(૫) સાકર, ગોળ અને ખાંડનાં બનાવેલાં જૂદાં જૂદાં પકવાનો જ્હાં મળતાં હોય એવી 'ગુજરી'—બજારમાં ન જતાં ત્હે તો વિષથી બનેલી અનેક વાનીઓ—પકવાનો જ્હાં વેચાતાં હોય ત્હાં જઇ સોદો કર્યો અર્થાત્ ખરીદી કરી અને વિષની મીઠાઇનો ગાંઠડો બાંધીને તું ચાલ્યો! હવે બીજું કંઇ લેવાય એમ રહ્યું જ નહિ. (પૈસા તો બધા આ માલ લેવામાં વપરાઇ ગયા; હવે પૈસા—શક્તિ— આયુષ્ય ગાંઠડીમાં હોય ત્યારે તું બીજો સારો માલ લઇ શકે ને ?)

(૪) માયાની વાતો.

૧

માયા માથે શિંગડા, લંબા નવ નવ હાથ;
આગે મારે શિંગડા, પિછે મારે લાત. ૧

માયા તરૂવર ત્રિવિધકા, શોક દુઃખ સંતાપ,
શિતલતા સ્વપ્ને નહિં, ફલ ફીક્કા તન તાપ. ૨

કબીર ! માયા મોહિની, માંગી મિલે ન હાથ;
મન ઉતાર જુઠી કરે, તબ લગ ડોલે સાથ. ૩

કબીર ! માયા સાપની, જને તાહિકો ખાય;
ઐસા મિલા ન ગારૂડી, પકડ પિછાડે બાંય. ૪

માયાકા સુખ ચાર દિન, ગ્રહે કહાં ગમાર ?
સુપને પાયો રાજ ધન, જાત ન લાગે વાર. ૫

કરક પડા મેદાનમેં, કુકર મિલે લખ કોટ;
દાવા કર કર લડ મુંવે, અંત ચલે સબ છોડ ૬

---

(૨) માયા એ ત્રણ ડાળીનું ઝાડ છે, જેનાં નામ શોક, દુઃખ અને સંતાપ એવા છે. એ ઝાડ તળે રહેનારને શાન્તિ તો સ્વપ્ને પણ મળતી નથી; તેમજ તે વૃક્ષના ફળ પણ ફીક્કાં—માલ વગરનાં છે, તથા શરીરે તાપ પણ પડયા કરે છે (વિશ્રામ મળતો નથી).

(૪) માયા નાગણ છે, અને તે પોતાના બચ્ચાને જ ખાય છે અને એવો કોઇ ગારૂડી-જાદુગર મળવો જોઇએ છે કે જે તેણીને હાથ પકડીને ભોંય પટકે

(૬) જગત રૂપી મેદાનમાં ભોજ્ય પદાર્થો રૂપી હાડકાં પડયા છે, જેને મેળવવા માટે લાખો કરોડો કૂતરા રૂપી ઇન્દ્રિયલોલુપી મનુષ્યો એકઠા થયા છે અને તે હાડકાની માલેકી માટે દાવો-હક્ક કરી લડી મરે છે પણ અફસોસની વાત છે કે તે હાડકું તો હાડકાના ઠેકાણે રહે છે અને લડનારા અધવચ નાશે છે.

૨

હસ્તી ચઢ કર જો ફીરે, ઉપર ચમર ચઢાય;
લોક કહે સુખ ભોગવે, રહે વો દોઝખ માંય ! ૧

રામકી થોરા જાનકે, દુનિયા આગે દિન;
વહ રંકકો રાજા કહે, માયા કે આધિન. ૨

માયા ઐસી સંખની, સામી મારે શોધ;
આપન તો રીતે રહે, દે ઔરનકો બોધ. ૩

સંસારીસે પ્રીતડી, સરે ન એકો કામ;
દુબધામેં દોનો ગયે, માયા મિલી ન રામ. ૪

માયાકો માયા મિલે, લંબી કરકે પાખ;
નિર્ગુનકો ચિને નહિં, ફુટી ચારો આંખ. ૫

ગુરૂકો ચેલા બિખ દે, જો ગાંઠી હોય દામ;
પુત પિતાકો મારસી, યહ માયાકા કામ ! ૬

જિસ માયા સતાં તજી, મુંઢ તાહિ લલચાય;
નર ખાય કર ડારતો, સ્વાન સ્વાદ લે ખાય. ૭

---

(૧) હાથી–ચમ્મર વગેરે સાહ્યબી ભોગવનારને લોકો સુખી કહે છે, પણ તે મખસ અંદરખાને દોઝખ–નરકમા મડતો હશે તેહેની કોને ખબર છે?

(૨) હાથી—ચમ્મરવાળા લોકો ખરેખર તો 'રાંક' છે–નિર્ધન છે; છતા તેહેમને 'રાજા' કહેનારા કહેછે તેઓ માયાને આધીન હોવાથી તેમ કહે છે વળી તેમ કહેનારાઓમા રામ સંબધી જાણપણું થોડું જ હોય છે, અને દુનિયા આગળ નમી જનારા એટલે કે દુનિયાની રીતે ચાલનારા હોય છે તેથી જ એવુ ગેરવાજબી બોલે છે

(૩) માયા એવી શંખણી છે કે, એને ઓળખવાની શોધ કરનારને તો તે ઉલટી બમણી મારે છે મતલબ કે માયાને ઓળખવાનો દાવો કરનારા લોકો પોતે તો માયાના ગુલામ તરીકે વર્તે છે અને બીજાને મોટી મ્હોટી વાતોનો ઉપદેશ દે છે

(૫) માયા પોતાના ભક્તોને લાંબી પાંખો કરી એવી તો મળી જાય છે કે તેથી તે ભક્તની ચારે આંખો (મન, હૈયુ અને બે સ્થૂલ આંખો) ફુટી જાય છે. તેથી તે નિર્ગુણ તત્ત્વ જાણી શકતો નથી.

૩

માયા દીપક, નર પતંગ, ભ્રમે ભ્રમી પડંત;
કહે કબીર ગુરૂજ્ઞાનસે, એકાદા ઉબરંત. ૧

કબીર ! માયા પાપિની, લોભે લુભાયા લોગ;
પુરી કાહુ ન ભોગવે, વાંકો એહી વિયોગ. ૨

તૃષ્ના સિંચે ના ઘટે, દિન દિન બઢતે જાય;
જવાસાકા રૂખ જયું, ઘને મેઘ કમલાય. ૩

---

(૧) માયા રૂપી દીપક છે; નર રૂપી પતગીયાં ત્હેમા ભ્રમીત થઇ પડે છે. કોઇ ભાગ્યશાળીને ગુરૂ મલી જાય તો જ્ઞાનબળને લીધે તે માયાથી ઉગરવા પામે છે.

(૨) માયા એવી પાપિણી છે કે તેમા લુબ્ધ થયેલા લોકો ત્હેને પુરેપુરી કદી ભોગવી શકતા નથી, અને વિયોગનુ દુ:ખ તો છેવટે સહવુંજ પડે છે. (ઇન્દ્રિયજન્ય સુખોથી માણુસ કદી તૃપ્ત થતો નથી એટલે ઇચ્છા પુરેપુરી તૃપ્ત થઈ શકતી નથી અને અતૃપ્ત ઇચ્છા સાથે મરવું પડે છે, એટલે વિયોગ થાય છે, તેથી એ માયા રૂપી વેશ્યામા જીવ રહી જાય છે અને તેથી મરણુ પછી પણુ ગતિ થતી નથી)

(૩) તૃષ્ણા એવી ચીજ છે કે ત્હેને તૃપ્ત કરવાના પ્રયાસથી તે ઘટતી નથી, પણુ જેમ જેમ ભોજન મળે તેમ તેમ ત્હેની ભૂખ વધતી જાય છે. (તે તળીઆ વગરનો કૂવો છે—તળીઆ વગરની કોઠી છે.) ઘણો વરસાદ છતાં જવાસાનું ઝાડ તો સુકાઇ જ જાય છે; પોતા કરતાં બીજાને વધારે સુખ છે એમ જોઇ તે બળ્યા કરે છે, તેમ માણુસને જેમ જેમ વધારે સ્ત્રીઓ, વધારે ધન કે વધારે સત્તા મળે તેમ તેમ પોતા કરતા જરા પણ વધારે પ્રમાણુમા તે ચીજો ભોગવનાર માણુસને જોઇ પોતે બળે છે, અને જાણે કે પોતાને તે ચીજો મળી જ નથી એમ ઝુરે છે. એમ કરતાં કરતાં ભોગ ભોગવવાથી શક્તિ ઘટે તે પહેલાં તો ઝુરણુ અને ઇર્ષા અને લાલસાથી જ શક્તિ ઘટી જાય છે, તેથી મળેલી ચીજને ભોગવવાની પણુ તાકાદ રહેતી નથી. ભર્તુહરી ઠીક કહે છે કે " भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता."

કામી અમૃત ન ભાવહિ, બિખ્યા લિની શોધ;
જનમ ગમાયા ખાધમેં, ભાવે ત્યું પરમોધ. ૪

એક કનક અરૂ કામની, બિખ્યા ફલકુ પાય;
દેખત હીસે બિખ ચઢે, ખાનેસે મર જાય. ૫

સાધે ઇંદ્રિય પ્રબલકુ, જિસસે ઉઠે ઉપાધ;
મન રાજા બહેકાવતે, પાચોં બડે અસાધ. ૬

---

(૪) કામી પુરૂષને અમૃત ભાવતુ નથી, એને તો વિષ જ શોધી શોધીને ખાવુ ગમે છે. આવા ખાધ (નુકસાન)ના ધંધામા તે આખું આયુષ્ય ગુમાવે છે, અને ભાવતા ખોટા વિષયોમાં પ્રમોદ એટલે હર્ષ માને છે. (ઇન્દ્રિયજન્ય સુખોમા જ તેઓ આનંદ માને છે; સદાનો આનંદ—સ્થાયી અને ખરો આનંદ જે આત્મજ્ઞાનમા છે તે અમૃતનો પદાર્થ ત્હેમને ગમતો નથી.)

(૫) કનક અને કામિની એટલે ધન અને સ્ત્રીનાં લુબ્ધપણુ એ એનાં ફળ તો વિષ જ છે—અને એમને દેખતા જ વિષ ચઢે છે તો પછી ખાનારનુ મૃત્યુ થાય એમાં તો શક જ શો?

(૬) પ્રબળ એવી આ પાંચ ઇંદ્રિયો છે ત્હેમને સાધવાથી એટલે ત્હેમની સાધના—ભક્તિ કરવાથી અર્થાત્ ત્હેમને તૃપ્ત કરવાથી ઉપાધિ ઉત્પન્ન થાય છે ઇન્દ્રિઓના સ્વામી મન રાજાને ફટાડવાથી—મ્હોઢે ચ્હડાવવાથી એ પાંચે ઇંદ્રિયો અસાધ્ય બની જાય છે અર્થાત્ દવાથી પણ ન શાન્ત થાય એવી એટલે વશ્ય ન થાય એવી બની જાય છે. માટે ઇન્દ્રિઓને સાધવામા સુખ છે જ નહિ એમ સમજી એમના સ્વામી મન રાજાને તમારા કાબુમાં રાખો—ફટાડશો નહિ

૪

માયા માયા સબ કો કહે, પિણ ઉલખે નવ કોય;
જો મનસે ના ઉતરે. માયા કહિયે સોય. ૧

માયા છોડન સબ કો કહે, માયા છોડી ન જાય;
છોડનકી જો બાત કરે, તો બહોત તમાચા ખાય! ૨

મન મતે માયા તજી, યું કર નિકસા બહાર;
લાગી રહી જાની નહિં, ભટકી ભયો ખુવાર. ૩

માયા તજી તો ક્યા ભયા, માન તજા નહિં જાય,
માને બડે મુનિવર ગલે, માન સબનકો ખાય. ૪

---

(૧) દરેક માણુસ માયા—માયા એમ બોલે તો છે; પણ માયાને કોઇ ઓળખતું નથી. અમુક કામ કરવું છોડી દેવા છતાં પણ એ કામ ઉપરથી મનમાનો રાગ ન ઉતરે ત્યારે માનજો કે એજ માયા છે!

(૨) દરેક માણુસ કહે છે કે હું માયાને છોડીશ; પણ માયા છોડી છુટતી નથી. જેઓ છોડવાની હજી તો વાત જ કરે છે તેઓને વાત કરતામાં જ તમાચા પડવા માડે છે! અર્થાત્ તેઓ ઉપર એવા બનાવો બન્યા કરે છે કે તેથી તેઓ માયાના પાસમાં વધારે મજબુતાઇથી બધાતા જાય છે (કસોટીના પ્રસંગો ઘણા આવે છે.)

(૩) મનના મતથી માયા તજીને એટલે કે (માયા તજી ચુક્યા છીએ એમ મનમાં માનીને) જેઓ બહાર એટલે મસાર બહાર નીકળી પડે છે—દિક્ષા લે છે તેઓને ખબર નથી કે માયા તો અંદર જ લાગી રહી છે, અને ત્હમે તો નાહક ભટકી ભટકીને ખુવાર થાઓછો!

(૪) ઘડીભર માની લ્યો કે અમુક માણુસે પાચ ઇંદ્રિયોના સુખો રૂપી માયા છોડી દીધી પણ ખરી, તો પણ તેથી શુ થયું? એથીએ જબરો શત્રુ જે 'માન'—અહકાર તે છતાય એવો નથી મ્હોટા મ્હોટા મુનિઓને પણ માન નામનો રાક્ષસ ગળી ગયો છે. સર્વનો ભક્ષ કરનાર એ માન રાક્ષસ બહુ જબરો છે

માન દિયો મન હરખિયો, અપમાને તન છીન;
કહે કબીર તબ જાનીએ, માયામેં લૌલીન. ૫

માન તજા તો કયા ભયા. મનકા મતા ન જાય;
સંત બચન માને નહિં, તાકો હરિ ન સોહાય. ૬

માયા છાયા એક હૈ, જાને બિરલા કોય;
ભાગે તાકે પિછે પરે, સનમુખ આગે હોય. ૭

---

(૫) (એક માણસે પાંચ ઇંદ્રિયોના સુખ રૂપી માયા ત્યજી હોય તો પણ) જો માન મળવાથી ત્હેનું મન હરખાતું હોય અને અપમાન મળવાથી શરીર ક્ષીણ થતું હોય તો, કબીરજી કહે છે કે, ભાઇઓ એને 'માયા' થી બચેલો ન જાણશો, પણ માયામાં લવલીન–પુરેપુરો બંધાયલો સમજજો. (માયા અનેક સ્વરૂપ ધારણ કરીને જાળ નાખે છે એકાંતર ઉપવાસ કર્યા કે જપતપ કર્યા કે મેલાં કપડાં પહેરવાનો પરિસહ સહ્યો તેથી કાંઇ 'માયા'ના ફંદમાંથી બચ્યા એમ નથી માનવાનુ,—એવાને પણ માન ઘણું જ હોય છે—બીજા કરતા વધારે હોય છે એમ પ્રત્યક્ષ જેવામા આવે છે માટે તેઓ બીચારા ગમે તેવા મહાત્માપણાના ડોળ કરવા છતા ખરેખર, માયા નામની વેશ્યાએ ચુસી લઇને પોતાના ગુલામ તરીકે ભોંયરામા પુરેલા દયાજનક પ્રાણીઓ છે. ભલેને અંધશ્રદ્ધાળુ લોકો ત્હેમને મહાપુરૂષ કહે; પણ કાંઇ પરમાત્માથી ત્હેમનું સૂક્ષ્મ શરીર છુપું નથી.)

(૬) માની લ્યો કે કોઇએ માન પણ તજ્યું છે; પણ કબીરજી કહે છે કે તેથીએ શું થયું ? એણે બાહારથી માન તજ્યું છે પણ મનમા રહેલી મહત્તા (મોટાઇ) તો તજી નથી. જ્હાં સુધી **મનમાંથી** ગર્વ છોડે નહિ અને ખરી **દીનતા**—નમ્રતા આવે નહિ ત્યહાં સુધી સંત પુરૂષોનાં વચનને માની શકે જ નહિ અને હરિ તો મળી શકે જ ક્યહાંથી !

(૭) માયા અને છાયા (પડછાયો) એની પ્રકૃતિ એક સરખી છે; પણ તે વીરલા પુરૂષોજ જાણે છે. માણસ દોડે છે તો પડછાયો પાછળ પાછળ આવ્યા કરે છે અને ઉભો રહે છે તો પડછાયો આગળ આવે છે.

૫

માયા સમી ન મોહિની, મન સમા નહિં ચોર;
હરિજન સમા ન પારખુ, કોઇ ન દીસે ઓર. ૧

છોડે બિન છૂટે નહિં, છોડનહારા રામ;
જીવ જતન બહોતહિ કરે, સરે ન એકો કામ ૨

કબીર ! માયા મોહિની, જૈસી મિઠી ખાંડ;
સદ્‌ગુરૂકી કીરપા ભઇ, નહિંતર ટરતી ન ભાંડ ! ૩

જે માણસ માયાથી ડરીને દોડવા માંડે છે (એટલે સંસાર છોડવા માગે છે) ત્હેમની પાછળ માયા એવડા જોરથી લાગે છે. પણ જેઓ બહાદૂર પુરૂષની પેઠે માયાના સ્હામા થાય છે ત્હેની આગળ (સનમુખ) માયા હાથ જોડીને ઉભી રહે છે. (ભૂખથી બ્હીનારને ભૂત જલદી વળગી પડે છે; પણ બહાદૂર પુરૂષો ભૂતની ચોટલી કાપી લઇ ત્હેને પોતાના ગુલામ બનાવે છે, એવી ઉડની કપોળકલ્પીત કથા આ સિદ્ધાંતને બરાબર સમજાવી શકશે.)

(૧) માયા સમાન કોઇ મોહિની (પટાવનારી ગણિકા) નથી, મન સમાન કોઇ ચોર નથી, અને હરિજન એટલે હરિના જ થઇ રહેલા એવા માણસો સમાન ઉપલા બે શત્રુને પારખનાર કોઈ નથી.

(૨) માયાને છોડવાનો પ્રયાસ કર્યા વગર કાંઇ તે પોતાની મેળે છૂટવાની નથી; અને છોડાવનાર–છોડવાના પ્રયાસમાં મદદ કરનાર પરમેશ્વર છે. જીવ જતન તો ઘણુંએ કરે પણ પરમેશ્વરની મદદ વગર કામ સરતું નથી. (પરમ તત્વમાં શ્રદ્ધા રાખે અને અહમ્‌પણાને વીસારી ત્હેને જ શરણે જાય તો માયા છોડવાનો પ્રયાસ સફળ થાય)

(૩) માયા રૂપી મોહિની ખરેખર મીઠી ખાંડ જેવી છે તેથી લોકો ત્હેમા ફસાઇ પડે છે. પણ મ્હારા પર સદ્‌ગુરૂની કૃપા થવાથી મ્હને કાંઇક જ્ઞાન મળ્યું તેથી હું બચી ગયો છું, નહિ તો તે 'ભાંડ' જેવી બલા ટળત નહિ–

ભલા ભયા જો ગુરૂ મિલા, નહીં તો હોતી હાન;
દિપક જોત પતંગ જ્યું, પડતા પુરી જાન. ૩

કબીર ! માયા ડાકની, ખાયા સબ સંસાર;
ખાઇ ન શકે કબીરકો, જાકે રામ આધાર ! ૪

કબીર ! જુગકી કયા કહું, ભવજલ ડૂબે દાસ;
પરબ્રહ્મ પતિકો છાંડકે, કરે દુનિકી આસ. ૫

કબીર, એ સંસારકો, સમજાવું કઇ બાર.
પૂંછ જ પકડે ભેંસકો, ઉતરા ચાહે પાર. ૬
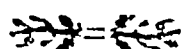
નહિ દૂર થાત નહિ વેશ્યાની ઠગવિદ્યા પ્રસિદ્ધ છે; પણ ૧૦૦૦ વેશ્યાને પહોંચે એવો એક 'ભાડ' હોય છે, કે જે પુરૂષ અને સ્ત્રીના દરેક જાતના રૂપ લઇ શકે છે અને ઢોંગ, ચાળા, નકલ, ઠગાઇ વગેરે તમામ કામમાં પાવરધો હોય છે. એ ભાડ જેવીજ માયા છે, જે ઘડીમાં પુરૂષ રૂપ, ઘડીમાં સ્ત્રી રૂપ, ઘડીમા રાજકુમારનુ રૂપ, ઘડીમા ભિક્ષુકનું રૂપ લઇ લોકોને દયા, હાસ્ય, ક્રોધ, કામ વગેરે લાગણીઓમા રમાડે છે

(૫) કબીર કહે છે કે આ કલિયુગની શી વાત કરૂં ? સઘળા લોકો માયાના દાસ થઇ ભવ રૂપી જળમા (ભ્રમણમા) ડૂબી રહ્યા છે પરબ્રહ્મ રૂપી પતિનુ દાસત્વ છોડીને દુનિયાની આશા કરે એવા મૂર્ખ લોકો આ કલિયુગમા છે

આ સંસારના લોકોને કેટલીએ વાર સમજાવું છું પણ તેઓ એવા તો ડાહ્યા છે કે દરીઆની પાર જવા માટે ભેંસનું પૂછડું પકડે છે ! (ભેંસ ડુબાડ્યા વગર રહે જ નહિ, અને ગાય તાર્યા વગર રહે નહિ એ લોકપ્રસિદ્ધ કહાણી છે) અહીં ભેંસ એટલે પ્રમાદ અને પૂછડું એટલે શરણું, અથવા ભેંસ એટલે સાતો માને એવા—ખાઇ પી ખુંદે એવા નામધારી સાધુઓ [illegible] જેવા ગુરૂનુ શરણ. કબીર [illegible] કહે છે એવા આ મૂર્ખ દુનીઆને કેટલી વાર સમજાવું !

(૫) 'કાળ'ની વાતો.
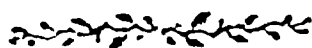
૧

મુસા ડરતે કાલસું, કઠન કાલકા જોર;
સ્વર્ગ ભૂ પાતાલમેં, જહાં જાવે વહાં ઘોર ! ૧

ફાગન આવત દેખકે, મન ઝુરે બનરાય;
જીન ડાલી હમ ક્રિડા કિયા, સોહિ પ્યારે જાય. ૨

પાન ઝરંતા દેખકે, હસતિ કુંપલિયાં;
હમ ચલે તુમ ચાલીયો, ધીરી બાપલિયાં. ૩

પાન ઝરંતા યું કહે, સુન તરવર બનરાય,
અબકે બિછુરે કહાં મિલે ? દૂર પડેંગે જાય. ૪

---

(૧) મુસા પેગમ્બર પણ કાળથી ડરે છે; કારણકે કાળનું જોર એટલું ગયું છે કે સ્વર્ગલોક, પાતાળ તથા પૃથ્વી ત્રણે જગાએ 'ઘોર' એટલે કબરો તો ખરી જ છે. કાળદેવનુ રાજ્ય સર્વ સ્થળે છે. લાંબા આયુષ્યવાળા દેવને પણ મરવાનું તો છે જ

(૨) ફાગણ મહીનો આવતો જોઇને વનસ્પતિ—ઝાડ ઝુરે છે અને કહે છે કે મ્હારી પ્યારી પુત્રીઓ અર્થાત્ ડાળીઓ કે જેને આજ સુધી મ્હે લાડ લડાવ્યા હતાં તે હવે જતી રહેશે.

(૩) પાંદડાં ખરતાં જોઇને ઝીણી કુંપળો હસે છે, તે વખતે પાંદડાં કહે છે મ્હારી ન્હાની બ્હેનો ! આજે અમે જઇએ છીએ; કાલે તહમારો વખત પાકશે એટલે તહમારે પણ જવાનુ છે, માટે બાપડીઓ ! ધીરી ચાઓ, ધીરી.

(૪) પાંદડાં ખરતાં ખરતા બોલે છે હે વૃક્ષ ! હે વનના રાજા ! આજના છૂટા પડયા થકા હવે આપણે ક્યારે ફરી મળીશુ ? હવે તો અમે ત્હમારાથી દૂર પડયા છીએ

૨

ફિર તરવર ભી યું કહે, સુનો પાત એક બાત;
સાંઈયાં એસા સરજીયા, એક આવત એક જાત. ૧.

માલી આવત દેખકે, કલીયો કરે પુકાર;
ફૂલ ફૂલ તુમ ચુન લહો, કાલ હમારી બાર. ૨

ચક્કી ફિરતી દેખકે. દિયા કબીરા રોય;
દો પુડ બિચ આય કે, સાબેત ગયા ન કોય! ૩

આરે પારે જો રહા. ઝીના પીસે સોય;
ખુટ પકડકે જો રહે, તાકો પીસ શકે ન કોય. ૪.

---

(૧) પછી તરુવર એટલે વૃક્ષ જવાબ આપે છેઃ હે પાંદડાંઓ ! મ્હારી વાત સાંભળો, આ દુનીઆમા એક આવે છે અને એક જાય છે, એવીજ ઘટના ચાલે છે, માટે શોક કરવો નકામો છે.

(૨) માળીને આવતો જોઇને, નહિ ખીલેલી એવી ઝીણી કળીઓ પોકાર કરવા લાગી કે આજે તો આ માળી ખીલેલાં પુષ્પોને લઇ જાય છે અને અમારો વારો પણ કાલેજ આવશે.

(૩) ઘંટીને ફરતી જોઇને એક વાર કબીરજીને રડવું આવ્યુ અરેરે આ બે પડ વચ્ચે આવનાર સર્વ કોઇ પીસાઇ જાય છે, કોઇએ અણિશુદ્ધ જતો નથી ! (કાળ સર્વનો ભક્ષ કરી જાય છે.)

(૪) જે દાણા ઘંટીના નીચલા પડ પર અહીંતહીં પથરાયલા રહેછે તે તો પીસાઇને આટો થઇ જાશછે, પણ જે ખીલાની પાસે પડી રહેછે તેને કોઇ પીસી શકતુ નથી જે માણસ વિકસીત થયેલી માયાના પડ પર રહેછે તે પીસાઇ જાયછે પણ જે મધ્યબિંદુને પકડીને એમેક અર્થાત્ પરમ તત્વમાંજ લીન થઇ રહેછે તે ગમે તેટલા કાળ સુધી માયાના પડી પાસે તોપણ પીસાતા નથી એ તો ઉલટા ઘંટીનુ તાંડવ નીરાંતે જોયાકરા પામે છે !

(૩)

કાલ શિર પર આ ખડા, જાગ પિયારે મિત્ત;
રામ સ્નેહિ બહાવરા, તું કયું સોવે નચિંત? ૧

માટી કેરા પુતલા, મનુષ્ય ધરિયા નામ,
દિન દોચારકે કારને, ફિર ફિર રોકે ઠામ. ૨

ખડ ખડ બોલી ઠીંકરી, ઘડ ઘડ ગયે કુંભાર,
રાવન સરખે ચલ ગયે, જો લંકાકે સરદાર. ૩

ધમ્મન ધમતિ રહ ગઈ, બુઝ ગયે અંગાર,
એહરન ઠબકા રહ ગયા, જબ ઉઠ ચલા લોહાર ૪

---

(૧) કાલ નામનો શત્રુ મ્હાથે આવી ઉભો છે! હે પ્યારા મિત્ર! હવે તો તુ જાગ.! રામમાં સ્નેહ રાખવાવાળા પરન્તુ બાવરા બનેલા, હે મિત્ર! નચિંત સુવાનું ત્હને કેમ કરી પાલવશે?

(૨) આપણે સર્વ માટીના (પંચભૂતના) પુતળા છીએ અને પુતળાનુ 'મનુષ્ય' એવુ નામ માત્ર પાડેલુ છે. અહીં બે ચાર દિવસ, કાંઇ કામ કરવા માટે (સાધ્યની પીછાન કરવા માટે) આવ્યા હતા તે પાછા ચાલ્યા જઇશું અને ફરી ફરી જન્મ લઇને જગા રોકવાના છીએ

(૩) માટીની ઠીકરી (શરીર) ખડખડ હસીને કહે છે કે, ઘણાએ કુંભાર આવી ઠીકરીને ઘડી ઘડીને રસ્તે પડયા છે રાવણ સરખા કુંભારે પણ એવી એક માટીની હાંડલી ઘડી હતી, પરન્તુ તે લંકાનો શીરદાર પણ ચાલ્યો ગયો! શરીરને ઘડનાર—શરીરમા જોઇતા તત્વો એકઠા કરનાર 'કર્મ' છે અને તે કર્મનો કર્ત્તા આત્મા છે ને કુંભાર જેવો છે. તે ખરેખર કુંભાર એટલે અક્કલ વગરનો જ છે, કારણ કે ઘડીમા ભાગે એવા વાસણ ઘડે છે

(૪) લુહાર ચાલ્યો ગયો એટલે ધમણ બંધ થઇ અને અંગારા બુઝી ગયા તથા એરણના ધબકારા પણ બંધ થયા તેમજ, આત્મા ચાલ્યો ગયો ત્હારે ફેફ્સાની ગતિ બંધ થઈ, જઠરાગ્નિ બુઝાઇ ગયો, અને નાડીના ધબકારા ચુપ થઇ ગયા.

કાચી કાયા મન અસ્થિર, થિર થિર કામ કરંત;
જ્યું જ્યું નર નિધડક ફિરે, ત્યું ત્યું કાલ હસંત. ૫

કાલ હમારે સંગ રહે, કેસી જતનકી અસ ?
દિન દશ રામ સંભારલે, જબ લગ પિંજર પાસ ૬

પાવ પલકકી ખબર નહિ, કરે કાલકો સાજ,
કાલ અચાનક ઝડપશી, જ્યું તીતરકો બાજ. ૭

કબીર ગાફિલ કયું ફિરે, કયુ સોતા ઘનઘોર ?
તેરે સિર પર જમ ખડા, જ્યું અંધિયારે ચોર. ૮

કબીર ! જોદિન આજ હૈ, સો દિન નાહિં કાલ,
ચેત શકે તો ચેત લે, બીચમે કાલ સમાલ ૯

(૪)

કબીર ! આયા હે સો જાયગા, રાજા રંક ફકીર;
કોઇ સિંહાસન ચઢ ચલે, કોઇ બાંધ જાત જંજીર ૧

સંગી હમારે ચલ ગયે, હમ ભી જાને હાર;
કાગજમેં કછુ બાકી લિખા, તાસે લાગી બાર ! ૨

---

(૫) કાળદેવને માણસ સામુ જોઇને હસવુ આવે છે, કારણ કે માણસની કાયા કાચી છે અને મન અસ્થીર-ભટકતું છે તથા પોતાને કરવાનુ જે ખરૂ કામ (પરમતત્વને પીછાનવાનું) તે તો બહુજ ધીમેથી થાય છે તો પણ માણસ નિડર-નફકરો થઇ ફરે છે, તે જોઇ કાળને હસવું આવે છે.

(૯) જે દિવસ આજ છે તે કાલ રહેવાનો નથી. ચેતી શકે તો ચેતજે, બે કાલ વચ્ચે કાળદેવ છુપો છે તે તું સભાળજે.

(૧) રાજા-રંક-ફકીર સૌ કોઇ (જેટલા આવ્યા છે તેટલા બધા) જવાના જ છે. કોઇ સિંહાસન પરથી જશે (રાજા બનીને મરશે) અને કોઇ જંજીર—બેડી પહેરીને (જેલમાં જઇને) મરશે; પણ જશે તો બધાએ.

(૨) અમારા સોબતી ચાલ્યા ગયા છે અને અમારે પણ જવાનુ જ છે. વાર થવાનુ કારણ એટલું જ છે કે કાગળમાં (એટલે વિધાતાના લેખમાં) અમારે જવાનું ચોકસ જરા મોડું લખાયલું છે!

કબીર થોડા જીવના, માંડા બહોત મંડાન;
સબહિ છોડકે ચલ ગયે, રાજા રંક સુલતાન. ૩

કાહે ચુંનાવે મેડીયાં, કરને દોડાદોડ ?
ચિઠ્ઠી આઇ રામકી, ગયે પલકમેં છોડ. ૪

જીન ઘર નૌબત બાજતી, હોને છત્તીશ રાગ,
સો ઘરહિ ખાલી પડે, બેઠન લાગે કાગ. ૫

જીન ઘર નોબત બાજતી, મંગલ બાંધે દ્વાર;
એક હરિકે નામ બિન, ગયા જનમ સબ હાર. ૬

(૫)

જાગો લોકો મત સોવો, ન કરો નિંદસે પ્યાર,
જૈસો સ્વપનો રયનકો, ઐસો એ સંસાર ૧

ઉચા ચઢ પુકારીયં, બુમત મારી બહોત,
ચેતનહારા ચેતીયેઃ સિરપે આઇ મોત ! ૨

સબ કોઇ મર જાત હૈ, કાલ જાલકી પાસ,
રામ નામ પુકારતા, કોઇક ઉબરા દાસ ૩

એક બુંદકે કારને, રોતા સબ સંસાર,
અનેક બુદ ખાલી ગયે, તિનકા કોન બિચાર ? ૪

---

(૩) હે કબીર ! જીવતર ટુંકુ છુ અને મંડાણ તો મ્હોટુ માડયુ છે. રાજા, રંક અને સુલતાન પણ સઘળુ મંડાણ છોડીને ચાલ્યા ગયા છે.

(૪) તું શા માટે મ્હોટી મ્હોટી મેડીઓ—હવેલીઓ ચણાવે છે અ શા માટે દોડાદોડ કરે છે ? રામની ચિઠ્ઠી આવશે કે તુરત ચાલવાનુ છે.

(૧) હે લોકો ! જાગો ! સુઇ ન રહો, નિદ્રા સુન્દરીથી પ્યાર ન બાંધો રાત્રીના સ્વપ્ન જેવું આ સંસાર છે

(૪) એક બુદ—પરબ્રહ્મનુ એક કીરણ જે શરીરમાં આવી વસ્યુ છે એવું એક શરીર જીવ વગરનું થતાં લોકો રડારોળ કરી મુકે છે; પણ વિચારતા નથી કે એવા તો અનેક 'બુદ' ખાલી (ધર્મનુ ભાથું લીધા વગર) ચાલ્યા ગયા અને જાય છે.

મરતે મરતે જુગ મુવા, અવસર મુવા ન હોય,
દાસ કબીરા યું મુવા, બહોર ન મરના હોય. ૫

જિસ મરનસે જગ ડરે, ઉસમેં મુઝે આનંદ;
કબ મરિયે કબ ભેટીયે, પુરન પરમાનંદ ૬

૬

મરૂં મરૂં સબ કો કહે, મેરી મરે બલાય;
મરના થા સો મર ચુકા, અબ કો ન મરેહિ જાય ! ૧

મન મુવા માયા મુઇ, સંશય મુવા શરીર;
અવિનાશી તો ના મરે, તું કયું મરે કબીર ? ૨

---

(૫) જીવને મરતા—જન્મતા અનેક જુગ વહી ગયા, એટલે કે અનેક યુગો થયા આ જીવ જન્મમરણના ફેરા ફરે છે; પણ હજીએ અવસર એટલે કાળ અથવા ટાઇમનું મૃત્યુ થયુ નહિ! (બીજો અર્થ એવો થાય કે, અનેક વખત આ જીવને મરવાના પ્રસંગ આવ્યા છતા હજીએ અવસરે એટલે પ્રસગ આવ્યે 'મરતા' આવડયુ નહિ ! મતલબ કે કાઇ વાતમા ગમ ખાવી પડે–મુડદાલ જેવા થતું જોઇએ તો તેવે વખતે ગમ ખાતા આવડી નહિ) કબીરજી તો એવી રીતે મુઆ છે કે જેથી ફરી જન્મવુ જ ન પડે, મતલબ કે પરબ્રહ્મમાં લીન થયેલા સતો મરણ પામે છે ને સાથે, ત્હેમના ઉપર આજ સુધી રાજ કરતો અવસર એટલે કાળ પણ મરી જાય છે; મતલબ કે ત્હેમને હવે કાળનું બધન નથી. (કાળ–ક્ષેત્ર–સજોગ વગેરે કશાની એમને મર્યાદા નથી)

(૬) જે મૃત્યુથી લોકો ડરતા રહે છે તે મૃત્યુમાં મ્હને તો આનંદ લાગે છે હું તો કહુછુ કે મરણને ક્યારે ભેટીએ કે જેથી પૂર્ણ પરમાનદને પણ ભેટવાની તક મળે !

(૧) સર્વ કોઇ કહે છે કે " હું મરવાને ખુશી છું. " પણ (કબીરજી કહે છે કે) " મ્હારી તો બલારાત મરે છે ! મરવાનું જે કાંઇ હતું તે તો (એટલે કે મન) મરી ગયું છે; હવે કોણ મરે ! "

(૨) મન, માયા અને શરીરના શસયો (ખોટા વ્હેમો) મરી ચૂકયા. ને અવિનાશી હોય તે કાંઇ મરનો નથી. તો પછી હે કબીર ! તું કેમ કરી મરવાનો હતો !

જીવત સે મરનો ભલો, જો મર જાણે કોય;
મરને પહેલે જો મરે, કુલ ઉજીયારા હોય. ૩

મરતે મરતે જુગ મુવા, સુત મિત દારા જોય,
રામ કબીરા યું મુવા, એક બરાબર હોય ૪

ના મુવા ના મર ગયા, નહિં આવે નહિં જાય.
એ ચરિત્ર કરતારકા, ઉપજે ઔર સમાય. ૫

જબ તક આસ શરીરકી, નિર્ભય ભયા ન જાય;
કાયા માયા મન તજે, ચૌપટ રહે બજાય. ! ૬

નીજ ઘર જલાનેકો લિયા, મૈને પલિતા હાથ;
જો ઘર જાલો આપકા, તો ચલો હમારે સાથ ! ૭

---

(૩) જે માણસ મરવાની વિદ્યા જાણતો હોય ત્હેને માટે તો જીવવા કરતા મરવુ બેહેતર છે. શરીરના મરવા પહેલાં જે માણસ મનથી મરી જાણે છે ત્હેના જીગરમાં સર્વત્ર પ્રકાશ થઇ રહે છે.

(૪) મરતા—મરતાં (જન્મ-મરણના ફેરા ફરતાં) અનેક જુગો મરી ગયા—થઇ ગયા, અને દરેક જન્મમાં સ્ત્રી-પુત્ર-ધન વગેરે મેળવ્યુ અને ખોયુ. પણ કબીરજી મુઆ ને રામજીમાં ભળી ગયા—પરમતત્વમાં સમાયા.

(૫) આત્મા તો મરતોએ નથી અને આવતો—જતો પણ નથી. આ સર્વ તો કર્મની લીલા છે, કે જેથી માણસો ઉપજતા અને સમાઇ જતા દેખાય છે.

(૬) જ્યહાં સુધી સ્થૂલ શરીરની મમતા છે ત્હાં સુધી નિર્ભય દશા પ્રાપ્ત થવાની નહિ (શરીર પોતે રોગ અને વિનાશને પાત્ર છે માટે.) પણ જો કાયા અને માયાની દરકાર મનમાથી દૂર થાય તો પછી તેવા માણસ માટે આખું વિશ્વ ખુલ્લું છે ! ખુશી આવે ત્હાં જાય (સૂક્ષ્મ ભુવનોમા પણ વિહાર થઈ શકે.)

(૭) (કબીરજી કહે છે કે) મ્હારૂ ઘર બાળવા માટે મ્હે મ્હારા હાથમાં પલીતો લીધો છે; ત્હમારે પણ જો ત્હમારૂ ઘર બાળવું હોય તો ચાલો અમારી સાથે ! કારણ કે—

ઘર જાલે ઘર ઉગરે, ઘર રાખે ઘર જાય;
એક અચંબા દેખિયા, મડા કાલકો ખાય ! ૮

કબીર ! મરતક દેખ કર, મત ધરો વિશ્વાસ;
કબહુ જાગે ભૂત હોય, કરે પિંડકો નાસ. ૯

મરતક તો તબ જાનીયે, 'આપા' ધરે ઉઠાય;
સેહેજ શૂન્યમેં ઘર કરે, તાકો કાલ ન ખાય. ૧૦

સેહેજ શૂન્યમેં પાઇયે, જહાં મરજી વહાં મન;
કબીર ચુન ચુન લે ગયા, ભીતર રામ રતન. ૧૧

ફૂલન થે સો ગિર પડે, ચરન કમલસે દૂર;
કલીયોંકી ગત અગમ હૈ, તાતે રામ હજૂર. ૧૨

---

(૮) ઘર બાળવાથી જ ઘર ઉગરે છે અને ઘર સાચવવાથી ઘર જાય છે એક આશ્ચર્યભરી વાત મ્હે જોઇ કે મડદું કાળને ખાય છે ! સ્થૂલ ઘર એટલે બહારનુ શરીર, ત્હેના ભોગે જ કાર્મણ શરીર રૂપી ઘર ઉગરી શકે, જેઓ સ્થૂલ શરીરને સાચવવાની જ ગરજ કરે છે ત્હેમનાં કાર્મણ શરીર બળેલા જેવા—કદરૂપ દશામા પડયા હોય છે. જેનું મન મરી ગયેલું હોય છે તેવો માણસ કાળને પણ ખાઇ શકે છે.

(૯) કબીર કહે છે કે હે ભાઇઓ ! મરતા માણસને જોઇને એમ ધારી બેસતા નહિ કે એ માણસ ખરેખર જ મરી ગયો છે. કેટલીક વાર એમ પણ બને છે કે મુએલો પાછો ભૂત થઇને જાગે છે અને મરણ ક્રિયામા મુકાતા 'પિંડ'નો પણ નાશ કરે છે.

(૧૦) ખરૂ મરણ તો ત્હારે જ માનવુ કે જ્હારે 'હુંપણું' દૂર થાય. જેનુ મન શૂન્યમા ઘર કરે એટલે કે સુન્ય રૂપ થઇ જાય, મતલબ કે જેના મનમાથી આ દેખીતી દુનીયાને લગતા સર્વ ખ્યાલ દૂર થાય ત્હેને કાળ કદી ખાઇ શકતો નથી.

(૧૧) સહજ શૂન્ય દશા પ્રાપ્ત થાય એટલે પછી કોઇ પણ સ્થળે જવાનો સંકલ્પ થયો કે ત્હા પહોંચીજ ગયા, એવું બને છે. કબીર કહે છે કે, હે મ્હારા ભાતર અથવા મનને સઘળી વસ્તુમાથી વીણી લઇને રામ રૂપી રત્ન સાથે એકરૂપ કરી દીધુ છે

(૧૨) અભિમાનથી ફુલી ગયેલા ફુલો યાને પુષ્પો કમળના ચરણ એટલે સદ્દથી દૂર બની પડે છે પણ નાજુક કળીઓની ગતિ અગમ્ય

(૬) બહારના પરમેશ્વરથી ઠગાતા નહિ.

(૧)

પથ્થર પૂજે હરિ મિલે, તો મૈં પૂજું ગિરિરાય;
સબસે તો ચક્કિ ભલી, પિસ પિસકે ખાય ! ૧

દેહી નિરંતર દેહરા, તામેં પ્રત્યક્ષ દેવ,
રામ નામ સુમરન કરો, કહાં પથ્થરકી સેવ ? ૨

હોવાથી તેઓ કમળના ચરણ આગળ રહે છે. (જેઓ દુનીઆદારી) મા ભુલી જાય છે તેઓ પ્રભુના ચરણકમળથી દૂર છે, ત્હેમને સતના દર્શનનો લાભ મળતો નથી પણ કળીઓ (અંગોપાંગ સંકોચીને અંદરથી ખીલવાનો પ્રયાસ કરતી કળીઓ) હરિની નજદીકમાં રહેવા પામે છે

(૧) પથ્થરને પૂજવાથી જો હરિ મળતા હોય (આત્મતત્વ પ્રાપ્ત થતું હોય) તો તો હું આખો પહાડજ પૂજી કહાડું ! અરે પહાડને પૂજવા કરતાં પણ ઘંટીની પૂજા કરૂં તો કેવું સારૂં, કે જે ઘંટી મ્હારે માટે આટો પીસવા જેટલું પણ કામ કરી આપશે !

(૨) આ દેહ એજ દેરૂં છે, અને એમા જ ખરેખરો દેવ (આત્મા) બેઠો છે. માટે ભાઇઓ એ ભીતરમાના રામના નામનુ ધ્યાન ધરો, આત્મભાવમા લીન થાઓ; બાકી પથ્થરની સેવા તો ત્હમારૂં કાંઇ ઉકાળશે નહિ.

મહાત્મા કબીરનાં આ વચનો સાથે યોગીંદ્રદેવ નામે જૈન પૂર્વાચાર્યે રચેલા 'સ્વાનુભવદર્પણ' નામના ગ્રંથની ૪૧ થી—૪૪ સુધીની ગાથાઓ સરખાવવા જેવી છે તે ગાથાઓનું ગુજરાતી પદ્યબંધ ભાષાંતર શ્રીયુત લાલને નીચે મુજબ કર્યું હતુ, અને તે માટે તે ભાઇને ત્હેમની મૂર્તિપૂજક જૈન કૉન્ફરન્સે માફી માગવાની ફરજ પાડી હતી.

તીર્થે ને દેહેરાં વિષે, નિશ્ચય દેવ ન જાણ;
જિન ગુરૂવાણી એમ કહે, દેહમા દેવ પ્રમાણ ૪૧

તન મંદીરમાં જીવ જિન, મંદિર મૂર્ત્તિ ન દેવ;
રાજા ભિક્ષાર્થે ભમે, એવી જનને ટેવ. ૪૨

નથી દેવ દેહરા વિષે, છે મૂર્ત્તિ ચિત્રામ;
જ્ઞાની જાણે દેવને, મૂર્ખ ભમે બહુ ઠામ. ૪૩

ખરો દેવ છે દેહમાં, જ્ઞાની જાણે તેહ;
તીર્થ દેવાલય દેવ નહી, પ્રતિમા નિશ્ચય એહ. ૪૪

પથ્થર મુખ ના બોલહિ, જો શિર ડારો કૂટ;
રામ નામ સુમરન કરો, દૂજા સબહિ જૂઠ. ૩

કુબુધ્ધિકો સૂઝે નહિ, ઉઠ ઉઠ દેવલ જાય;
દિલ દેહરાકી ખબર નહિ, પથ્થર તે કહાં પાય? ૪

પથ્થર પાની પુંજ કર, પચ પચ મુવા સંસાર;
ભેદ નિરાલા રહ ગયા, કોઇ બિરલા હુવા પાર. ૫

મક્કે મદિનેમેં ગયા, વહાંભી હરકા નામ;
મૈં તુજ પૂછું હે સખી! કિન દેખા કિસ ઠામ! ૬

(૨)

રામ નમ સબકો કહે, ઠગ ઠાકોર ઔર ચોર;
ધ્રૂવ પ્રહ્લાદ સગ તર ગયે, એહિ નામ કછુ ઓર! ૧

---

(૩) કદાચ ત્હમે પથ્થરની મૂર્ત્તિ સાથે માથું ફોડી નાખો તો પણ તે બોલવાની નથી—મતલબ કે ત્હમારી અરજ બેહેરા કાન ઉપર અથડાઇ ફોકટ જશે, માટે રામ નામનું સ્મરણ કરી લો, બીજું સર્વ જૂઠું છે.

(૪) 'કુબુદ્ધિ'ને અક્કલ ન હોવાથી ઉઠી ઉઠીને દેવળમાં જાય છે. દીલ રૂપી દે'રામા આત્મા રૂપી દેવની જેમને ખબર નથી એવા પથ્થરોને તત એટલે 'તે'ની—ખરા દેવની પ્રાપ્તિ કેમ થાય?

(૫) પથ્થરમા અને પાણીમા દેવ સમજી મૂર્ખ માણસો ત્હેમની પૂજા કરીકરીને અને બાહ્ય ક્રિયાઓમા લુબ્ધ રહીને સંસારમાં ડૂબી ગયા છે. પરમ તત્વનો ભેદ તો એમનાથી દૂર રહી ગયો છે; એ ભેદ તો વીરલા જ જાણે છે, કે જેઓ ભેદ જાણવાથી ખરે રસ્તે પાર પડોચે છે.

(૬) મક્કા-મદીનામા જાઓ ત્હા પણ હરિ કે ખુદાનું જ નામ છે; તો કબી જી મુસલમાનોને પૂછે છે કે, હે મ્હારી બ્હેનો! મક્કા મદીનામા કઇ જગાએ કોણે ખુદાને દીઠા? મતલબ કે ખુદા તો અંતરમાંજ જોઇ શકાય છે.

(૧) ઠગ લોકો, ઠાકોર લોક, તેમ ચોર લોક પણ રામનું નામ ઉચ્ચારે છે, પરન્તુ ધ્રૂવ અને પ્રહ્લાદજી જે રામ નામથી તરી ગયા તે નામ તો કંઇ જુદી જ જાતનુ હતુ (તે કાંઇ હોઠેથી ઉચ્ચારાતું નામ ન હતું પણ અંતરના એકતાનનુ પરિણામ હતું)

સુદ્ધ બિન સુમરન નહિં, ભાવ બિન ભજન ન હોય,
પારસ બિચ પરદા રહા , કયું લોહુ કંચન હોય? ૨
સુમરન સિધ્ધિ યું કરો, જયું ગાગર પનિહાર;
હાલે ચાલે સુરતમેં, કહે કબીર બિચાર. ૩
સુમરન સિધ્ધિ યું કરો, જૈસે દામ કંગાલ;
કહે કબીર બિસરે નહિ, પલ પલ લેત સંભાળ. ૪
જૈસી નૈયત હરામ પે, ઐસી હરસેં હોય;
ચલા જાવે વૈકુન્ઠમેં, પલ્લા ન પકડે કોય. ૫
બાહેર કયા દિખલાઇયે ? અંતર કહિએ રામ,
નહિં મામલા ખલ્કસોં, પડા ધનિસે કામ. ૬

---

(૨) મનશુદ્ધિ વગર રામનુ સ્મરણ નકામુ છે અંતરના ભાવ વગરનું ભજન નકામું છે. પારસમણિમા લોઢાને સોનુ કરવાનો ગુણ છે આ વાત તો ખરી પણ લોઢા અને સોનાનો સ્પર્શ થાય તો જ એ બનવા બને; એ બે વચ્ચે કાંઇ પણ પડદો રાખશો તો સોનુ કેમ કરી થશે ? તેમ હરિનો સ્પર્શ જ (મનથી) કરો તો તો જરૂર હરિ રૂપ થઇ જશો, બાકી વાતો કરવાથી કાઇ ન થાય.

(૩) હરિનું સ્મરણ કરવાની રીત બતાવે છે કે, જેમ પાણી ભરવા ગયેલી સ્ત્રી માથે ભરેલું બેડુ હોવા છતા હાલે છે, ચાલે છે અને સખીઓને તાળી પણ દે છે પણ બેડુ પડે નહિ એવી સુરત લગાવે છે, તેમ ત્હમે પણ સંસારનાં કામ કરવા છતા હરિથી સુરત લાગાવી રાખો

(૪) વળી પણ સ્મરણ કરવાની રીત બતાવે છે કે, જેમ કંગાળ લોકો દામ એટલે પૈસાનુ નામ ઘડીએ ભૂલતા નથી તેમ કબીરજી કહે છે કે, ત્હમે પણ ઘડી ઘડી હરિનુ નામ સ્મરણમા રાખો

(૫) હરામનું—વગર મહેનતનુ ધન લેવા તરફ જેટલી લગની છે તેટલી જ લગની હરિમાં હોય તો ત્હમે સીધા વૈકુંઠમા ચાલ્યા જાઓ; કોઇની મગદુર નથી કે ત્હમારો પલ્લો પકડીને રોકવાની હિમ્મત ધરે.

(૬) રામનું નામ (કિમતી છે માટે) બહાર શા માટે ઉચ્ચાર કરવો ? શા માટે ત્હેનો દેખાવ (show) કરવો ? આપણે ખલક અથવા દુનીઆથી કાંઇ કામ નથી, આપણે તો ધણી એટલે હરિથી કામ છે. આપણી ભક્તિ, ધણી પોતે સ્વીકારે એટલે બસ, આતર્ચક્ષુ વગરની દુનીઆ ત્હારી ભક્તિ જોઇ શકે તેમ છે જ નહિ, તે તો બગલા ભક્તોના લાબા પોકાર અને બાહ્ય તપથી વાહવાહ કરે તેમ છે માટે તુ ત્હેમના અભિપ્રાયની દરકાર કરતો જ ના.

मोटर खबर--कर्त्तानां पदनो बीजो भाग ह्येमना जीवन चरित्र साथे हवे पछीना एक मणकामां (भेट तरीके) आपवामां आवशे.

'जैनसमाचार'नी १९११ नी सालनी

१२ भेटो.

'सुविचार--माळा'ना मणका इ. स. १९१०नी आखेरीथी शरु करवामां आव्या हता अने ए सालमां (१) 'साधुपरिषद्नो गुजराती रिपोर्ट', (२) 'स्वशास्त्र, तथा (३) 'कया ईश्वरे आ विश्व रच्युं ?' ए नामना ३ मणका आपवामां आव्या हता. त्यार बाद चालु १९११ नी सालमां नीचे मुजब १२ भेटो--मणका नंबर ४ थी १५ सुधीनी--आपवानुं ठराव्युं छेः--

भेट १ ली. कल्याण मंदीर स्तोत्र. मणको ४ थो. अपाइ चूकी......
,, २ जी. संसारमे सुख कहां है ? भा. १ ,, ५ मो. अपाइ चूकी......
,, ३ ,, दशवैकालीक सूत्र--पूर्वार्ध. ,, ६ ठो. .... छपायछे.
,, ४ थी धर्मसिंह--बावनी ,, ७ मो. अपाइ चूकी......
,, ५ मी. महात्मा कबीरनां पदो भा. १ ,, ८ मो. अपाइ चूकी......
,, ६ ठी. साधुपरिषद्की हिंदी रिपोर्ट ,, ९ मो. अपाइ चूकी......
,, ७ मी. मोतीकाव्य खंड १ लो. ,, १० मो. अपाइ चूकी......

नं. ८-९-१०-११-१२ पैकी केटलीक हजी रचाय छे; डीसेम्बर १९११ नी अंदरमां ते सर्व रची, छापी, मोकली आपवामां आवशे. कोइ उत्साही महाशय आमांना एकाद मणकाना खर्च पेटे थोडी पण रकम आपवा इच्छा लखी जणावशे तो ह्येमना नामथी ते भेट बहार पाडवामां आवशे.

अमदावाद' भारतबंधु प्री. प्रेसमां शाह वाडीलाल मोतीलाले छाप्युं.

श्रीमन्तः शिवं

साखी

परम पावन अघ नशावन है प्रभू का नाम जो।
जो जपें ध्यावें वेद गावें लहैं शिव सुख धाम जो ॥
है सुक्खदाता ज्ञानदाता हरे क्रोध रु काम जो ॥
भज नाम बारं बार सो जिन भक्त नाथूराम जी ॥

दौड़

प्रभू का जपो नाम निस दिन। मुक्ति नहीं होती है इस बिन।
जपा मन वचन नाम जिन २ परम पद पाया है तिन २ ॥
पाप तज नाथूराम जिन भक्त। नाम जपने में रहो आसक्त जी।

परमेश्वर के स्तवनकी लावनी (१)

हे करुणा सागर त्रिजगति के हित कारी। लखि निज शरणागत हरो विपत्ति हमारी। ॥ टेक ॥

जो एक ग्राम पति जन की विपदा टारे। मन वांछित जन के काज क्षणक में सारे। तो तुम त्रिभुवन के ईश्वर विश्व पुकारे। विश्वास भक्त ताही विधि उर में धारे। फिर भूलगये क्यों ईश हमारी वारी। लखि निज शरणा गत हरो विपति हमारी ॥ १ ॥

मैं निज दुःख वर्णन करों कहा जग स्वामी। तुम तो सब जानत घट २ अन्तर जामी। तुम समदर्शी सर्वज्ञ यशस्वी नामी। मम हरो अविद्या प्रगटे सुख आगामी। वर भक्ति तुम्हारी लगै हृदय में प्यारी। लखि निज शरणा गत हरो विपत्ति हमारी ॥२॥

तुम पतितोद्धारक विरद जगति में छाया। मैं सुना संत शारद गणेश जो गाया। या में आश्रय तकि शरण तुम्हारे आया। सब हरो हमारा संकट करके दाया। तुम को कुछ नही अशक्य विपुल बल धारी। लखि निज शरणागत हरो विपत्ति हमारी ॥३॥

ज्यों तात पिता नहीं शिशु के दोष निहारें। पालें सप्रेम सब सर्व आपदा टारें। तुम विश्व पिता त्योंही हम निश्चय धारें। याते शरणा-गत होके विनय उचारें। जन नाथूराम यह लावन हार वारी ॥४॥

(साखी)

माता सरस्वति कीजिये विद्या का जन को दान जी।
अज्ञान तिमिर विनाश हृदय प्रकाश अनुभव भानु जी॥
मैं शरण आया सुयश गाया धरी तेरा ध्यान जी।
जिन भक्त नाथूराम को जन जान दे निज ज्ञान जी॥

(दौड़)

शारदा मात दास तेरा। मनोरथ कर पूरन मेरा।
भ्रमो बहु चौरासी फेरा। ज्ञान बिन कहीं न सुख हेरा।
मात अब कृपा दृष्टि कीजे। नाथूराम को सुज्ञान दीजे जी॥

पिंगल की लावनी (२)

गण अगण जान कर छन्द बनाना चहिये। पिंगल बिन जाने कभी। न गाना चहिये। ॥ टेक ॥

अब कविजन के हित हेतु भेद कुछ गाता। सो पिंगलग्रन्थ जो सदा काम में आता। है वसु (८) प्रकार गण भेद प्रसिद्ध बताता। शुभ चार अशुभ चार समझाता। कविजनो ध्यान में इनको लाना चाहिये पिंगल बिन जाने कभी न गाना चाहिये ॥ १ ॥

मगण में त्रिगुरु ऽऽऽ भू देव लक्ष्मी उपजाता। नगण में त्रिलघु ।।। सुर देव आयु बढ़ाता। यगण में आदि लघु ।ऽऽ उदक देव सुख दाता। भगण के आदि गुरु ऽ।। शशि यश देव विख्याता। ये हैं चार शुभ इन्हें लगाना चाहिये॥ पिंगल बिन जाने कभी न गाना चहिये ॥ २ ॥

जगण के मध्य गुरु ।ऽ। रविगद दाता जानो। रगण ऽ।ऽ के मध्य लघु अग्नि मृत्यु दे मानो। सगण के अंत गुरु ।।ऽ पवन फिरावे जानो। तगण के अन्त लघु ऽऽ। व्योम नाशक पहिचानो। ये हैं चारों गण अशुभ बचाना चहिये॥ पिंगल बिन जाने कभी न गाना चहिये ॥ ३ ॥

लघु इक मात्रा को कहैं सुनो कवि भाई। दीर्घ दो मात्रा जानि सुनो मन लाई। ह्रस्व की आदि में वर्ण पड़े जो आई। दीर्घ जानो शिष्य गुरु ने बतलाई। कहैं नाथूराम जिन भक्त सो माना चहिये। पिंगल बिन जाने कभी न गाना चहिये ॥ ४ ॥

(साखी)

संसार सकल असार है नहीं इस से प्रीति लगाइये।

झूठा सकल व्यवहार है नहीं इष्ट जान ठगाइये ॥
इन्द्री विषय विष तुल्य हैं नहीं इन से चित्त पगाइये ।
जिन भक्त नाथूराम परमातम के नित गुण गाइये ॥

(दौड़)

सदा भगवन्त नाम जपना । यही जानो कार्य अपना ।
और स्वजन जाल सर्व सपना । दूर से तिन्हें देख कपना ।
नाथूराम नर भव फल लीजे । भजन निशिदिन प्रभु की कीजे जी ॥

संसार दुःख की लावनी (२)

है यह संसार असार दु:ख का घर रे । ये विषय भोग दुःख खानि इन से तू डर रे । ॥ टेक ॥

इस में दुःख मेरु समान सुक्ख ज्यों राई । सो भी सब आकुलता मय पड़त दिखाई । तिसकी उपमा इस भांति गुरू बतलाई । सो सुनो कथा चित धार कहूं समझाई । इसके सुनने सें सुधी ध्यान अब धर रे । ये विषय भोग दुःख खानि इनसे तू डर रे ॥ १ ॥

एक पथिक सदा बन माहिं फिरै था भटका । तापर गज दौड़ा [illegible] वह सटका । सो कूप में तरु की मूल पकड़ के लटका । [illegible] क्रोध तरु जा शाखों में झटका । तहं से मधु माखी उड़ी घोर [illegible] रे । ये विषय भोग दुःख खानि इनसे तू डर रे ॥ २ ॥

दुःख खानि इनसे तू डररे ॥ ५ ॥

भव वन में पंथी जीवकाल गज जानों। दुख कुआ कुटुम जन मधु सबको पहिचानो। चउ गति चारों अहि निगोद अजगर मानो। अर्ध आयु राति दिन काटत मूस बखानो। है विषय स्वाद मधु बिन्दु ग्रहे तरुवररे। ये विषय भोग दुःख खान इनसे तू डररे ॥६॥

विद्याधर सद्गुरु शिक्षा देत दया कर। मानें तो दु:ख से छूट जाय आतम नर। संसार में सुख है शहद बूंद से लघुतर। दु:ख कूप पथिक से गुणा अनंता अकसर। संसार दुःख से डरो सुधी घर घररे। ये विषय भोग दु ख खानि इनसे तू डररे ॥ ७ ॥

खल काल बली से सुर असुरादिक हारे। हरि हली चक्रपति याने क्षण में मारे। ये विषय भोग विषधर हैं दारुण कारे। इनका काटा ना बचें जगत में क्यारे। इनके त्यागी भये नाथूराम अमररे। ये विषय भोग दुःख खानि इनसे तू डररे ॥ ८ ॥

प्रबल उदयागत की लावनी [४]

जगति में महा बलवान उदय आगत है। ताके मैंटन को किसी की ना ताकत है ॥ टेक ॥

जब तीव्र उदय रस आकार विधि देता है। तब एक न चले उपाय करे जेता है। जब तीव्र पवन में लहरि उदधि लेता है, तब कौन कुशल हो जहाज को खेता है। मुह जोरी करना इस जगह हिमाकत है। ताके मैंटन को ॥ १ ॥

हरि राम कर्म वश फिरे रंकवत बन में। हिम धूप पवन की सहते बाधा तन में। पर गृह करते आहार सलज्जित मन में। अथवा वन फल करते आहर विपन में। यह बड़े बड़ों की सतावती आफत है। ताकेमैंटन को ॥ २ ॥

रावण साधर्मी विधिवश सीता हरली। धन प्राण गमाये जग बदनामी करली। सीता भी कर्म वश विपत्ति पूरी भरली। पति से छूटी है। बार बिरह दो ज्वरली। विधि उदय का धक्का बड़ों को भी लागत है। ताके मैंटन को० ॥ ३ ॥

बारंम बरस अजना तजी भरतारे। फिर गर्भवती सासु ने निकाली द्वारे। माता पिता भी नहीं दीनी आसन द्वारे। वन वन भटकी तिन

आया पुष्प गुफारे। को रोक सके जो कर्मों की शरारत है। ताके मैंटन को ॥ ४ ॥

द्रोपदी सती कहलाई पंच भरतारी। दुःशासन ने गहि चोटी ताहि निकारी। विधि योग पांडव हारे पृथ्वी सारी। फल कंद खात बन भये बकला धारी। राजों को कर्म यह भिक्षा मंगवावत है। ताके मैंटन को० ॥ ५ ॥

कृष्ण के जन्म में काहु न मंगल गाये। फिर पले नीच गृह बस गोपाल कहाये। विधि योग द्वारिका जरी विपन को धाये। भील के भेष भ्राता कर प्राण गमाये। कही जाउ पिछाडी कर्म का दल जावत है। ताके मैंटन को० ॥ ६ ॥

श्रीपाल मदन तन कुष्ट व्याधि तिन भोगी। कर्मोदय से भये काम देव से रोगी। कुम्हरा भी व्याही माघनन्द से योगी। जो सदा रहे तप सयम में उद्योगी। कर्मोदय आगे सब की बुधि भागत है। ताके मैंटन को ॥ ७ ॥

जो सुधी कर्म के उदय से बचना चाहो। तो श्रवण धारि गुरु शिक्ष ताहि निवाहो। सम्यक रत्नत्रय धर्म पथ अवगाहो। शुचि ध्यान धनंजय से विधि तरु को दाहो। कहैं नाथूराम जी (आत्मा) यो शिव सुख पावत है। ताके मैंटन को किसी को ना ताकत है ॥ ८ ॥

उपदेशी लावनी (५)

जो जग में जन्मा उसको मरना होगा। बश काल बली के अवश्य परना होगा ॥ ॥ टेक ॥

जो सुगुरु सीख पर ध्यान नहीं लावेगा। तो नर भवरत्न समान हृथा जावेगा। जो सुकृत करे पर अघ से पछतावेगा। तो वेश्या शक्र समान विभव पावेगा। बिन धर्म भवोदधि कभी न तरना होगा। बश कालबली के ॥ १ ॥

जो विषय भोग में तू मन ललचावेगा। तो भव समुद्र में पड़ गोते खावेगा। स्थावर तन लहि जड वत हो जावेगा। यह ज्ञान गिरह का सभी खो जावेगा। जो दुःख निगोद के सहे जो भरना होगा। बश कालबली के ॥ २ ॥

जब दल कृतान्त का तुझ को धावेगा। तब कौन सहायक आ

के तट धावेगा। तब व्याकुल हो सिर धुन धुन पछतावेगा। जो करी पाप सो तब रोरी गावेगा। धन कुटुम छोड़ पालक से जरना होगा। वश कालवली के ॥ ३ ॥

तू अभी पाप करने में विहसावेगा। फल भोगत में पाता तब मुंह वावेगा। फिर जनै जनै के पद पद गिर नावेगा। पापोदय तेरी नहिं किसी के मन भावेगा। कहैं नाथूराम तब विचार करना होगा। वश काल-वली के अवश्य मरना होगा ॥ ४ ॥

त्रियाजन्म की लावनी (६)

महानिंद्य पर्याय त्रिया की महा कुटिल भावों का फल। तीनों पन दुःख भुगते भारी नहीं सुक्ख नारी को पल ॥ टेक ॥

जन्म सुनत शिर धुनत पितादिक उदास होके छुपने मन।
आशावान निराश होत सब कमीन याचक अपने जन ॥
नेग योग वाले सकुचाके मांगसके ना किंचित धन।
श्रवण सुनत सब उदास होते पुरा परोसी भी तत्क्षण ॥
गीत नृत्य वादित्र महोत्सव बन्द भये ध्वज सी अनल। तीनों० ॥ १ ॥
खान पान रोग में निरादर मरो जियो चाहें अपने।
नहीं कुटुम्ब वढने की आशा वेटी से काहू सपने ॥
बालपने से सकुचित निकसें सर्व अंग पड़ते ढपने।
वदनामी का अति दुःख भारी श्रवण सुनत लागे कापने ॥
व्याह भये दुःख सास नंद का काम करत ना पावे कल।
तीनों पन दुःख भुगते भारी नहीं सुक्ख नारी को पल ॥ २ ॥
सास ससुर पति की दिहसत से रात दिवस रहे अर्पित तन।
सब के पीछे भोजन पावे जैसा बचे घर में उस क्षन ॥
वेअदवी जो करे पड़े अति मार कुटे दंडों से तन।
घर बाहर के कुवचन कहती पराधीन हो सुने श्रवण ॥
हो स्वतंत्र कहीं जाय न सक्तो राखा चाहे कुल का जल।
तीनों पन दुःख भुगते भारी नहीं सुक्ख नारी को पल ॥ ३ ॥
गर्भ भार का अति दारुण दुःख नौ महीने सहती नारी।
मरण समान प्रसूति समय दुःख सहे वेदना अति भारी ॥
बड़े कष्ट से पाले बालक छीण भई तन छवि सारी।
मरे अधूरा पूरा बालक तो दुःख का कहना क्यारी ॥

बांझ होय तो कुल को नाशक कहलावे या दुःख अतिबल ।
तीनो पन दुःख भुगते भारी नहीं सुक्ख नारी को पल ॥ ४ ॥
होय कदाचित् बाल विधवा तो जाय जन्म रोवत सारा ।
मिले कुवसनी धनी बनी तो मौत नही दुःख का पारा ॥
[illegible] पति पावे तो न जाय फिर दुःख टारा ।
रोगी वा पति मिले नपुंसक तो समान दुःख सिर भारा ॥
[illegible] चोर जुआरी मिले तो नित सोगी काल बाल ॥५॥
जो भरतार दरिद्री होवे तो अपार दुःख क्या कहना ।
भरे [illegible] से उदर फटे वस्त्रों से उघाड़े तन रहना ॥
हो क्रोधी [illegible] तो शोकानल में दहना ।
[illegible] न लावें बाल राति दिन दुःख सहना ॥
[illegible] सबही रोवें नेत्र भर के झल झल ।
तीनो पन दुःख भुगते भारी नहीं सुक्ख नारी को पल ॥ ६ ॥
[illegible] नारी दुःखी जन थोडे में समझो सर्वंग ।
[illegible] दुःख की खान [illegible] त्रिय जान पराश्रय रहती तंग ॥
दुःखि[illegible] त्रिय की करें प्रशंसा मति के भङ्ग ।
[illegible] तो सराहते त्रिय का अंग ॥
[illegible] दारा चहैं आराम जीभ के जो है चपल ।
[illegible] दुःख भुगते भारी नहीं सुक्ख नारी को पल ॥ ७ ॥
[illegible] निर्लज्ज हरामी त्रिय का धन चहते खानें ।
[illegible] नारी को कामधेनु चिन्तामणि के सदृश जानें ॥
[illegible] सत्पुरुष गुणी तो वेद शास्त्र के अनुमानें ।
[illegible] त्रिया की दुःख सरूप ताको मानें ॥
[illegible] दुःख रूप त्रिया पर्याय सकल ।
[illegible] दुःख भुगते भारी नही सुक्ख नारी को पल ॥ ८ ॥

[illegible] की लावनी (७)

निरालम्ब निर्भय केहरि सम निवसत गिरि-वन ओर फिरें।
तारण तरण हरण अव जन के श्री गुरु गुण गभीर फिरें।
पर स्वार्थ के काज श्री मुनिराज बने वन वीर फिरें ॥१॥
ग्रीष्म मेरु शिखर तप तपते प्यास सहत विन नीर फिरें।
वर्षा तरु तल रहत सहत डंसादिक को तन पीर फिरें॥
शीत काल मे निवसत सर सरिता सागर के तीर फिरें।
द्वाविंशत नित सहत परीषह स्वप्ने ना दिलगीर फिरें॥
अष्टाईश मूल गुण पालत दोष रहित सुत शीर फिरें।
पर स्वार्थ के काज श्री मुनिराज बने वन ओर फिरें॥ २॥
कर्म महा रिपु जिय के जग में तिन वश जीव अधीर फिरें॥
तडफडाय पर छूटत नाही बंधे मोह जंजीर फिरें॥
ऐसे अरि के नाशन को गुरु लियें ज्ञान धनुतीर फिरें।
ध्यान खड्ग से नाशत अरि को राग रहित वेपीर फिरें॥
जाति जीव निज सेन के रक्षक करुणासिंधु गहीर फिरें।
पर स्वार्थ के काज श्री मुनिराज बने वन ओर फिरें॥ ३॥
संसारी जो राग द्वेष वश सुख्य गिमत तगदीर फिरें।
पर गुरु कर्म करत क्षय क्षण २ ज्यौं घन हनत समीर फिरें॥
कर्म आस तज वास जगति का निज धन पाय अमीर फिरें।
विषय भोग को तजी वासना बने जगत् के पीर फिरें॥
नाथूराम जिन भक्त करत गुरु भवसागर के तीर फिरें।
पर स्वार्थ के काज श्री मुनिराज बनें वन ओर फिरें॥ ४॥

साखी

कलि काल में पाखंड बाढा साधु बहु कामी भये॥
सुर वास की तज आस शठ दुर्गति के पथगामी भये॥
पर नारि संग कुशील कर बन योग तज धामी भये॥
विद्या के वल रचि ग्रन्थ झूठे लोगों में नामी भये॥

(दौड़)

साधु बन बुरे काम करते। नहीं खल दुर्गति से डरते॥
झूठे लिख २ पुराण भरते। दोष सत्पुरुषों पर धरते॥
नाथूराम कहें सुनो भाई। खलों की मिथ्या चतुराई जी॥

कृष्णादिक सत्पुरुषों की लावनी (७)

देखो दुष्टता दुष्टों की अपराध बडों के सिर धरते । काम क्रोध मद मोह लोभ वश आप निंद्य कार्य करते. ॥ टेक ॥

अति कामी अरु साधु कहावें कुशील सेवन नित्य करें । हिंसा चोरी झूठ बोलना आदि पापों से नहीं डरें । अपने दोष छिपाने को मिथ्या उपाय रचि ग्रंथ भरें । वेद शास्त्र के शब्दार्थ के बदलन में कुटिलता धरें । तिन का वर्णन सुनो कान दे जैसी साखि वे ठग भरते ॥ क. म० ॥१॥

अति उत्तम यदु वंश तहां श्रीकृष्ण हुए हरि पद धारी । नीतिवान विद्वान तिन्हें कहते पर चियरत व्यभचारी । कहैं गोपिका रमीं कृष्ण ने जो थीं गवालों की नारीं । राधा कुब्जा आदि शतक सोलह यह पाप धरें भारी । ऐसी तो निन्दा करते अरु भक्त बनें भारी वरते । काम क्रोध मद मोह लोभ वश आप निंद्य कार्य करते ॥ २ ॥

एक समय कहैं नग्न गोपिका करती थीं जल में स्नान । तट पर चीर धरे सब के सो लेके कदम पर चढ गया कान । तब गोपी लज्जित हो के कर जोड चीर मांगे पहिचान । पर हरि ने ना दिये कहा तन नग्न दिखाओ सन्मुख आन । जब देखीं सब नग्न कहैं तब डाले चीर हरि तरु परते । काम क्रोध मद मोह लोभ वश आप निंद्य कार्य करते ॥ ३ ॥

कहैं कृष्ण मनिहार नार बन ब्रज बनितों से कीना छल । लूट चोरि माखन दधि खा इस कर तिन के कुच देते मल । इत्यादिक अति दुराचार कुक्रिया कृष्ण की बताते खल । जो जग में अत्यन्त निंद्य सो कहैं करी हरि माया बल । भक्त बनें अरु निंदा करते महा पाप से नहीं डरते । काम क्रोध मद मोह लोभवश आप निंद्य कार्य करते ॥ ४ ॥

मेरे कहे को झूठ जानों तो देखो भागवत में पढ कर । पढे न हो तो सुनो औरों से देखो लिखा इससे बढ कर । झूठी पच गहो मत शठ से मूढ विवाद करो लड कर । देखो जो निन्दा करना सो दृग शिरार करो दृढ कर । नाक काट पोंछे दुशाले से वही मसल शठ आ करते । काम क्रोध मद मोह लोभवश आप निंद्य कार्य करते ॥५ ॥

बालपने में कृष्ण दिपति सम रहे नन्द यशुधा के धाम । तहां [illegible] तिन हेतु बरात [illegible] इराना कीना काम । युध क्रिया वत्र-

अद्र भिवाई छिप २ के गा गोकुल ग्राम । कंस मारि आ बसे द्वारिका चतुर्भुज ले सग तमाम । नीति राज्य क्रिया श्रीकृष्ण ने झूठे दोष धर खबते । काम क्रोध मद मोह लोभवश आप नित्य कार्य करते ॥ ६

पूज्य पुरुष वाडव तिन को उत्पत्ति कहि औरों से खल । कहे पंख शरीरों के पड़ी दुराद सुना जे सतो विमल । हनूमान को वन्दर कहां जो विद्याधर नृप अति वल । राक्षा पुरुष के पूंछ लगाते और भत्त बनते निबल । इस से निंदा अधिक और क्या पशू बनाय दरे नर ते । काम क्रोध मद मोह लोभवश आप नित्य कार्य करते ॥ ७ ॥

कर्ण को कांर्ज कहिं कुरु की उत्पत्ति कहे कुश दूना कर । मच्छ गधिका मच्छो से गांगेय गंगाजल से हुए नर । निर्बक झूठी युक्ति मिलावें जैसे नाम सुनते अक्षर । तैसे ही उत्पत्ति तिन्हों की कह पेट रोपे बिन नर । जिन वच सूर्य समान सुनेना भर्म तिमर को जो हरते । काम क्रोध मद मोह लोभ वश आप नित्य कार्य करते ॥ ८ ॥

लीला नाम खेल का है सो खेल करे अज्ञानी जन । पूज्य पुरुष ये खेल न करते नर्क वास जिन के लक्षण । अपने ढोग पुजाने को यह उन दुष्टों ने किया जतन । भक्त बनें अरु कुकर्म करते सदा पाप में रहें मगन । झूठे ग्रंथ कुटिलता से रच निज स्वार्थ को आदरते । काम क्रोध मद लोभ मोह वश आप नित्य कार्य करते ॥ ९ ॥

इत्यादिक सत्पुरुषों का उत्तम गुन जिन मत में गाया । धर्म नीति गुन राज्य क्रिया तिन नहीं करी किंचित माया । अपने ढोंग पुजाने का यह फन्द खलों ने बनाया । जिन ग्रंथ में मत जाउ कभो भोरे जीवों को यह कहाथा । नाथूराम जिन भक्त वहां दुष्टों के फन्द सब तज परते । काम क्रोध मद लोभ मोहवश आप नित्य कार्य करते ॥ १ ॥

भगवत से प्रार्थना लावनी (८)

हे प्रभु करुणासिंधु हमारी दूर करो भव पीर सनम । आशक की आशा पूरो सब माफ करो तकसीर सनम. ॥ टेक ॥

यह संसार अपार नीर निधि अति दारुण गंभीर सनम । गोता खाता अनादि काल से मिला न अब तक तीर सनम । सुना नाम शुभ जान तुम्हारा तारन भवोदधि नीर सनम । आशावान भया तब से कुछ आया मन में धीर सनम । तुम सा तारक पाय मिटो अब चिर दिन का भव भीर सनम । आशक की आशा पूरो सब माफ़ करो

नव्हाली रत्नत्रय आप संपति कुमति कुटिल हिरदे से निकाली।
निकाली सूरत आठो दतन को नहीं रच रिपु की शक्ति चाली।
चाली सुमात जिन के साथ आगे तिन के गले विश्व जयमाल डाली।
डाला है अर्जी पेशो में हे प्रभु ये नाश कीजे मोहादि जाल। ॥ २ ॥

डाली कर्म थिति रूपी वनी तुम तो शी तुम्हारो प्रकृति कृपाली।
कृपाली तुम को निरख पशू नर निकट रमें व्याल अरु सराली।
सराली फनपति सप्रेम रमते हृदय धार अनुभव की कलाली।
कलाली पूरण स्वपर प्रकाशक प्रीति कुमति कुलटा से उठाली।
उठाली निज सम्पति आप कर में कभी दृष्टि पर धन पर न डाली।
डाली है अर्जी पेशो में हे प्रभु ये नाश कीजे मोहादि जाली ॥३॥

जाली सुक्ति लक्ष्मी पर्म पावन मनुज जन्म पाये की नफ़ा ली।
नफ़ा ली, अविनाशी सार पद की जीति मोह राजा की ध्वजा ली।
ध्वजा ली जय की आठो कर्म के गुरु की नशीहत पूरी निभाली।
निभाली शिक्षा सुगुरु की उर में स्थिति लई इस जग से निराली।
निराली अर्जी सुनो प्रभूजी नाथूराम जो चरण में डाली।
डाली है अर्जी पेशो में हे प्रभु ये नाश कीजे मोहादि जाली ॥ ४ ॥

शिकस्त: बहर लावनी (१०)

है मेरे स्वामी जगदीश नामी भवाब्धि में से निकाल करके। बनाओ सेवक हे नाथ अपना मो रक्षा कीजे सम्हाल करके. ॥ टेक ॥

तुम तो दयाकर गुणों के सागर छाया विरद जग विशाल करके। कोई न तुमसा त्रिलोक अंदर किस की बताऊं मिशाल करके। जैसे अतुल बल का धारी केहरि जांचे तिसे को शृगाल करके। वा विम्ब रवि का प्रचंड दिग में को जाचे तो दीप माल करके। अतुल गुणों के निधान प्रभु जो क्यों होवे वर्णन मो बाल करके। बनाओ सेवक हे नाथ अपना मो रक्षा कीजे सम्हाल करके ॥ १ ॥

त्रिलोक ढूंढे न कोई पाया शरण का दाता दयाल करके। मिले सुदाता शत्र विश्व त्राता मेटो असाता खयाल करके। जो दुःख देखा न तिस का लेखा न कहू कहां तक कमाल करके। हे विश्व ज्ञानी तुम्हें न छानी दुःख हरो विपदा पाल करके। सुयश तुम्हारा जगत में सारा गावे जगत लोक भाल करके। बनाओ सेवक हे नाथ अपना मो रक्षा कीजे सम्हाल करके ॥ २ ॥

उदार तुम प्रभु सुगुण के दाता तारे बहुत भवि निहाल करके। खलास कीनें बहुत से प्राणी बंधे थे जो विधि के जाल करके। महा बली ये आठो करम तिन राखे जगति जो बेहाल करके। जो शरण आया सो तुम बचाया आठो करम को पामाल करके। अब इन को तारो सन्सारोदधि से आठो करम का जवाल करके। बनाओ सेवक हे नाथ अपना मो रच्छा कीजे सम्हाल करके ॥ ३ ॥

तुम ने कर्म द्रुम समूल नाशे शुक्ल ध्यान दौं प्रजाल करके। मुकत में राजत होके अवाधित सो पद में वांचत सवाल करके। दुखी जगति जन पड़े करम वन जले अग्नि अघ को झाल करके। थारे बचन घन हैं ताप नशानपोषें जगत को खुशाल करके। राखो शरण निज हे विश्व ईश्वर नाथूराम को बहाल करके। बनाओ सेवक हे नाथ अपना मो रच्छा कीजे सम्हाल करके ॥ ४ ॥

साखी

कनफटा शिर जटा धारें कोई लपेटें खेहजी ॥
कोई मुद्र शिर कोई वस्त्र भगवां पहिन ढाके देह जी ॥
तिन को विरागी बाबाजी कहि पूजे जग कर नेह जी ॥
पर भेद बाबाजी का क्या है यह बड़ा सदेह जी ॥

दौड़

जिन्हें शठ कहते बाबाजी। सदा वे रहते या बाजी ॥
बहुत धन जोडें हो राजी। कोई सेवें कुशील दया जी ॥
नाथूराम कहे सुनो दे कान। भेद बाबाजी का धर ध्यान जी॥

बाबा जी की लावनी (१९) रंगत लंगड़ी

बाबा जी जो बनते हो बाबा जी जाय मुक़ाम करो ॥
बाबा जी को जान बाबा जी के से काम करो ॥ टेक ॥
बा बाजी का भेद न जाना नाम धराया बाबाजी।
भस्म अंग मेलना शिर मुंड़ कराया बा बाजी ॥
बा बाजी किस को कहते क्यों नाम कहाया बाबाजी।
बा बाजी के कहो लक्षण तज माया बा बाजी ॥

शेर

क्या बैराग होता है जिसे कहते हैं बैरागी ॥

कहो वैराग के लच्छन कहां लों पाप कों त्यागी।
रिषि पदवी किस कहते हैं जलाई किन लिये भागी॥
क्षमा संतोष तप धारा हैं किसे कहते हैं कहु रागी।
या बाजी का भेद बता तब वा बाजी विश्राम करी॥ या बाजी।॥

तुम तो जवाब कुछ नहीं दिया अब मैं हो हाल समझाऊं सुनो।
सवाल जो जो किये सो उन का भेद सब गाऊं सुनो॥
याजी तपसी को कहते हैं सो दो प्रकार दरशाऊं सुनो।
जो गृह वासी उन्ह ये बाजो में बतलाऊं सुनो॥

शेर

करें जो प्रीति तन धन से रखे पशु वस्त्र असवारी।
बनावे दास दासी को प्रगट वे जाव संसारी॥
क्रोध छल लोभ मद ममता भये वश काम के भारी।
ऐसे सब जीव या बाजी सुनो धरवान नर नारी॥
ऐसे ढोंगी साधु बने मत तिन को भूल प्रणाम करो॥ वा बाजी॥२॥

गृह कुटुम्ब धन धान्य सवारी वस्त्रादिक से नेह तजें।
क्रोध मान छल लोभ ममता को त्यागि प्रभु नाम भजें॥
क्षमा शील संतोष सत्य वच हृदय धारि वैराग्य सजें।
सहें परीषह विविध तप धारि देख रिपु काम लजें॥

शेर

करें वश पंच इन्द्रिन को सहें पंचाग्नि का तपना।
धरें निज ध्यान आतम का जगति सुख जान के सपना॥
वनस्पति आदि जीवों पर दया परिणाम रख अपना।
करें रक्षा सदा तिन की हृदय प्रभु नाम को जपना॥
ऐसे साधु या बाजी हैं तिन को सेवा तसु जाय करो॥ वा बाजी॥३॥

ग्रीष्म में गिरि शीश धरे तप वर्षा में तरु तल ठाडे॥
नदी सरोवर सिंधु तट धरे ध्यान जब हों जाडे॥
दशों दिशा हैं वस्त्र जिन्हों के नग्न रूप आसन माड़े॥
निज आतम से लगा लौ राग द्वेष दोनों छाडे॥

शेर

अल्प भोजन करें दिन में करें सो भी मिले जब शुद्ध।

अल्प निद्रा लहैं निशि को सदा कर्मों से करते युद्ध।
सुनें दुर्वचन निज निन्दा तौभी ना छोड़ि किंचित क्रुद्ध।
मित्र अरि काच कंचन सम गिनें मन वचन तन कर शुद्ध॥
सदा अजांचो वन के वासी सुमरण आतम राम करो।
वा बाजी का जान या बाजी के से काम करो॥ ४॥

नमविसन रद गांठ मम भय त्याग चार विकथा न कहैं।
और नशे भी पाप के मूल जान स्वप्ने न लहैं॥
पशु पक्षी अरि दुष्ट डंस मच्छादिक की वेदना सहैं।
क्रोध न आनि ध्यान में मग्न सदा सम भाव रहैं॥

शेर

राग संसार से छोड़ा जभी वैरागी कहलाया।
तजी या बाजी की संगति तभी वा बाजी पद पाया॥
वा बाजी नाम का सब को खुलाशा भेद बतलाया।
उचित यह जान है सारा रोग दुनियां में अब छाया॥
जान बूझ बेकर बबून क्या खान की इच्छा आम करो।
वा बाजी० ॥ ५॥

वैरागी को उचित यही है तप कर छीण करै काया।
बिना स्वाद के अल्प आहार ग्रहै रूखसूख पाया॥
पर कलियुग में साधु बनें अरु भोजन खावें मन भाया।
बदन बनावें पुष्ट शठ इसी लिये शिर मुडाया॥

शेर

करें संतुष्ट इन्द्रिन को सदा सेवें कुशील जु काम।
सजें शृंगार सब तन के रिझावें दुष्ट पर की भाम॥
बने भगति भक्त लोगन में जपें माला कहैं मुख राम।
हृदय में राम ना जानें विषय सुख में मगन वसु जाम॥
निज स्वार्थ के काज काहैं लेरान से मुख से राम करो।
वा बाजी॥ ६॥

हराम खोड़ा निलज्ज निसुद्दे मिहनत का सुन नाम डरें।
मूड मुड़ावें उदर भरने को ऐसे काम करें॥
वैरागी बन कुशील सेवें नोई व्याधि के भास धरें।
ए ध्रु मताबें तिरें मठ एक कुल साधु त्याग करें॥

शेर

बने जो नाव पत्थर की आप मझधार बोरन को।
कहो कैसे उतारेगी भवोदधि पार औरन को॥
पियें गांजा चर्स हर दम बैठालें जार चोरन को।
कहो किस शस्त्र से सकते ये पाप पहाड़ फोरन को॥
इन्हें भजे यह फल पैहो जो दुर्गति अपना धाम करो।
वा बाजी० ॥ ७ ॥

या बाजी अरु वा बाजी दोनों के प्रगट कहे लक्षण।
उचित यही है परीक्षा करो देख कर निज अक्षण॥
या बाजी वे ढोंगी साधु हैं जो अभक्ष्य करते भक्षण।
वा बाजी वे साधु हैं जो सब जीवों के रक्षण॥

शेर

शहद मद्य मांस विष मक्खन जलेबी गारि बड़ ऊमर।
अथाना कंदमूल भटा चलित रस तुच्छ फल कटहर॥
अजाने फल रु बहुबीजा कटूमर पीपल रु पाकर।
निशा भोजन अगाला जल इन्हें तज ये अभक्ष्य हैं नर॥
इन्हें तजें सो वा बाजी तिन की स्तुति नाथूराम करो।
वा बाजी० ॥ ८ ॥

पतिव्रता सती की लावनी (१२)

मन वच काय लीन निज पति से रहे सुशीला वही सती। सुर नर जिस को जजें गुण गावें वेद पुराण यती (मुनि) ॥ टेक ॥

तात भ्रात सुत सम औरों को लखे अवस्था के अनुसार। नेम धर्म में रहै आसक्त वही कुलवती नार। पति आज्ञा अनुसार चले निज जन्म उसी का जग में सार। विपति पड़े भी विमुख ना होय सदा सेवे भरतार। छाया सम ना तजे साथ हिरदे में विराजे सदा पती। सुर नर० ॥ १ ॥

जियत सदा पति के पद सेवे स्वप्ने भी ना करे उजर। प्रबल-पुण्य से मरे जो आप प्रथम गति जाय सुधर। जो कदाचि पति मरे प्रथम तो संयम गहे सती के मर। ध्यान अग्नि में दहै काया कलंक ना लावे डर। त्रिभुवन में हो पूजनीक वह पावे वैमय स्वर्ग गती। सुरनर० ॥ २ ॥

हर लकडी की पावक मे ममता वश देह जलाती है। मूढ जनों की समझ में वेही सती कहलाती हैं। कर अपघात मरें जलि सो निश्चय दुर्गति को जाती है। नामवरी को जलें पहिले फिर प्राण छिपाती है। जो तप कर तन जलावती है सती वेही ना फिरती।
सुर नर० ॥ ३ ॥

ब्राह्मी सुन्दरी सुलोचना अजना जानकी सुन भाई। और विसल्या सुभद्रा मनोरमा आगम नाई। द्रिोपती चदना और चौबिस जिन माता सुख दाई। इन्हें आदि दे सती बहु जिन कीरति जग में छाई नेमीश्वर जिनवर की नारी कही सुशीला राजमती।
सुर नर० ॥ ४ ॥

क्वारेपन में करें तपस्या ब्रह्मचर्य सेवें तज काम। परम सती सो कहावें पूजनीक जग में सो भाम। पतीव्रता दूसरी सती जो निजपति से राचे बसि धाम। दो प्रकार की सती ये कहीं जगत में नाथूराम। जो ऐसे लक्षणयुत नारी पूजनीक सो शीलवती।
सुर नर० ॥ ५ ॥

कुमति कुनार की लावनी (१२)

कुमति कुनारि कहे चेतन से क्यों डारत तुम पिचकारी। मैं आप रंगीली मेरे रग में डूबी दुनियां सारी. ॥ टेक ॥

मोहराज है पिता हमारे जिन निज वश कीना संसार। लख चौरासी योनि में नाच नचावत बार बार। भव समुद्र बहु भांति रग का तीन लोक में है विस्तार। इरिहा जग जीव रहे सब डूब कठिन है पाना पार। धर्म कल्प तरु कटवा मैने बहु अघ होरी विस्तारी।
मैं आप० ॥ १ ॥

क्रोध मान छल लोभ बडे भ्राता मेरे अति बल ये चार। मित्र जि-न्हों का मदन दोरा रतिका पति काम कुमार। पचेंद्री तसकी दासी तस भक्ती मेरे रहती निन लार। नाना विधि ते करें कौतुक मेरे सग [illegible] व्यभिचार। इच्छा दु ख की मूल नायका सो है हमारी सहतारी।
मैं आप० ॥ २ ॥

[illegible] दुष्टा जग मे प्रगट पर [illegible] भाव मेरे भरतार। मिथ्या दर्शन और [illegible] मेरा परिवार। आर्त रुद्र मम जेठक देवर अशुभ

होय्या तिनको नार। योगरु प्रमत तथा परसाद वंश पति का यश गार ज्ञान दर्शना वरणी मदिरा छाय रही दृग में भारी।

मैं पाप॰ ॥ ३ ॥

नाम कर्म बहु भांति चितेरा कायां कौतुक गेह कीना। आयु गोत्र ने शुभाशुभ स्थिति तहां आसन दीना। नानाविधि भोगादि वस्तु का अंतराय ठेका लीना। तसु मिश्र वेदना देन को नाना विधि कारज चीन्हा। यह सब लखो विभूति हमारी मो सम कौन कहो नारी।

मैं पाप॰ ॥ ४ ॥

परिग्रह पान फूल नानाविधि अतरादिक उपभोग खरे। उदया अबीर से कालिमा के कुम कुम बहु भांति भरे। कुयश कुशील कुसुमादिक के कुवचन नाना रंग धरे। पिचकारी पाप से जगति के जीवरिया सबीर करे। काया कीच विषें जग प्राणी लिप्त किये में अधिकारी।

मैं पाप॰ ॥ ५ ॥

मन मृदंग तंबूरा तन का मधुर शब्द मिल कर बाजें। करताल कुटिलता धरें संग में अपगुण घुंगरू गाजें। सप्त विसन सारंगी की ध्वनि सर्वराग ऊपर राजें। स्कीत मजीरा युगल दृग की गति देख सभी लाजें। आशा तृष्णा नित करे मेरी मेरी गातीं गारी।

मैं पाप॰ ॥ ६ ॥

रुदन राग नाना विधि के जहां होंय निरंतर अधिकाई। ममता मेवा से भरे, घट पूर लहर दश दिशि छाई। ताडन मारन आदि मिठाई भोगत दिन प्रति सरसाई। भव भ्रमण घरों घर करत महजूम मूढता बरछाई। फ़ज़ीहत फ़ाग मची घर २ प्रति मो आज्ञा सब सिर धारी।

मैं पाप॰ ॥ ७ ॥

ऐसी फ़ाग अनादि काल से मैं स्वयमेव खिलाय रही। जो उदास यासे भये तिन ही शिवपुर की राह लही। नाथूराम कहें वे पुरुषोत्तम जो शिवपुर की वसी मही। निंदित संसारी सर्व ही जो शिर धारें कुमति कही। कुगति कहे मेरी विचित्र गति यह जग जीवों को प्यारी

मैं पाप॰ ॥ ८ ॥

सुमति सुनारि की लावनी (१४)

सुमति सुनारि कहे चेतन ये छोड़ कुमति कुलटा नारी। मेरे संग

सेरे रंग० ॥ ६ ॥

हिंस्या छोलो तज ऐसो निज गुण गुलाब का रंग करो। आवरण अवर शुभ लगा गंधित शुद्धातम अगकरो। मन मृदंग तंबूरा तन को उज्वल डोरि धास तंग करो। सुमति की सारंगी मंजीरा मधुर वचन के संग करो। राग रोश छोड़ो घर बैठे नाचत फिर २ लसारी।

सेरे रंग ॥ ७ ॥

अट मूल गुण सेरा से घट पूर सुगंधित था राजो। प्रत्यक्ष नदे से तुम्हें यह कुमति कुटिल भ्रम डारा जो। अब भी कुमति कुटिल कुलटा से कोजे नाथ किनारा जी। मुझ से हित कोजे मिलाऊ शिव सुंदरि का प्यारा जी। नाथूराम जिन भक्त सुमति कहे सोसम अब का हित- कारी।

सेरे रंग ॥ ८ ॥

कुमति चेतन के झगडे की लावनी (१५)

चेतन चेति कुमति कुलटा तजि सुमति सुहागल उरधारी। जो शिव रमनी की सहेली जा सम और नहीं नारी। ॥ टेक ॥

कुमति जान त्रिकुडा चेतन को लगी उलहना खिज कर देन। सुमति सौति ने तुम्हे बिंहकाया सुना कर मीठे बैन। पर पैहो अति कष्ट बड़ा तुम जब करहो जप तप दिन रेन। विषय भोग ये स्वप्ने भी नहीं मिले देखन को लेन। तब करहो वच यादि हमारे अभी सुमति लागति प्यारी।

जो शिव ॥ १ ॥

चेतन कही कुमति कुलटा सुन तेरे साथ अति कष्ट सहा। नाना विधि जैसे नर्क गत्यादिक मे नही जाय कहा। काल लब्धि शुभ के संयोग अब सुमति नारि का संग लहा। तेरी हालि जानी सर्व अब बहुत काल भवसिंधु बहा। अबटल मुंह कर स्याम सुमति है भाम हमारी हितकारी।

जो शिव० ॥ २ ॥

कुमति कहे रे मूढ चिदानन्द सुमति मदन तू काम करे। मुझसी तरुणी तज प्रगट अर्थ सुख का तू नाश करे। बना भिखारी फिरे घरों घर पारु मास उपवास करे। सुख वर्तमान को छोड़ अज्ञान भवि-

पत ध्यान करे। सुमति सत्य टौना कर तेरे प्रेम पांस गल में डारी।
जी शिव० ॥ ३ ॥

अरी कुमति निर्लज महा दुःख खानि सुख क्या जाने तू। भोरे जीवों का ठग ठगना प्रपंच अति ठाने तू। सुमति सहित हम शिव पुरवासि हैं जहा दृष्टि नही आने तू। चिय मुक्ति मनोहर रमणी जिस का कहा पहिचाने तू। सुमति समान नारि ना दूजो हित कारिणी जग में भारी।
जी शिव० ॥ ४ ॥

कुमति कहे हो रुष्ट अरे सुन दुष्ट क्षतघनी मो संयोग। पुष्ट भया तू इष्ट नानाविधि के भोग सुख भोग। वस्त्रा भूषण महल मनोहर सेज सुगंधादिक उपभोग। षटरस विंजन नारि संयोग हरे कामादिक रोग। अब स्वप्ने ना मिलें भोग ये सुमति किया छल छलहारी।
जी शिव० ॥ ५ ॥

अरी कुमति अघ खानि सेज शूलारोपण अरु नर्क महल। देखे मैं तेरे अनंतवार धरा नारक पद खल। ताडन मारन शीत उष्ण भोगोप भोग विंजन पल पल। भोगे बहु तेरे साथ पर अब न चले कुछ तेरा छल। हृदय विराजो सुमति हमारे स्वपर भेद भाषण हारी।
जी शिव० ॥ ६ ॥

फेर कुमति खिसिआय कही रे मूढ़ चिदानंद मति हीना। मैं मोह राज की दुलारी सबल विश्व जिन जय कीनी। ता में त कुल किया सुरति संग लिया कठिन तेरा लीना। अब तक अविचारी तूने क्या मोहराज को नहीं चीना। अब भी हट तज छोड़ सुमति संग वह ठगनी है अधिकारी।
जी शिव० ॥ ७ ॥

मतधारी का मतधारा पन करने की लावनी (१५)

निज हित का नहीं विचार जिन को मिथ्या हर्ष विषाद करें।
निज २ मत में मत्त सब मतधारी बकवाद करें। ॥ टेक ॥

मतवारापन लगा जहां तहां कैसे वर्तें न्याय विवेक। पक्षपात में लीन हो वृथा प्रलाप करें गहि टेक। कोई कहै मेरामत सच्चा कोई कहै मेरा सत् एक। अपनी २ टरें में मग्न करें बड़ २ ज्यों भेक

॥ चौपाई ॥

अधम काल में विशेष ज्ञानी। रहे नहीं प्रगटे अभिमानी।
पक्षपात से ऐंचा तानी। वारें सत्य मत को है पानी॥

॥ दोहा ॥

जहां पक्ष तहां न्याय नहिं। न्याय न तहां अधर्म॥
जहां अधर्म तहां दुरित पथ। दुर्गति तहां असमं॥
सो विचार कुछ नहीं हृदय में पक्षपात मिस्वाद करें।
निज २ हित का० ॥ १ ॥

जब से यह कलि काल लगा अब क्षत्री लगे अनीति करन। क्षिति रक्षा को त्याग कर दुर्विसनों में लगे परन। तब से तेज प्रताप गया दासी सुत उपजे नीच वरण। राजपुत्र से बनें रजपूत लगे भागन तज रण।

॥ चौपाई ॥

राज भार तब कौन उठावे। युद्ध सुनत जिस को ज्वर आवे॥
ऐसा अप्रबंध जब पावे, तब कैसे ना म्लेच्छ सतावे॥

॥ दोहा ॥

क्षत्री के दो धर्म हैं, प्रथम होय रण शूर॥
दूजे फिर तप शूर हो, करे वही रिपु चूर॥
सो दोनो धर्मों को त्याग कर सेवा में अह्लाद करें॥
निज २ मति का ॥ २ ॥

शूद्र मलेच्छ आदि नीचों ने राज लिया अपने कर में। हिंसा मारग सभी से फैल गया दुनियां भर में। धर्म पंथ सब नष्ट भये अब जो

रचना है घर २ में । सबै भयो है प्रथम से बड़ा भेद ज्यों गी घर में

॥ चौपाई ॥

जौन देश मत का नृप आया । ता ने मत अपना फैलाया ॥
अन्य मतों को नष्ट कराया । यही धर्म सब ने ठहराया ॥

॥ दोहा ॥

मूर्ति मंदिर तोड़ के । दीने ग्रन्थ जलाय ।
अथवा ले गहरी नदी । दीने सर्व डुबाय ॥

भये परस्पर मत द्वेषी नृप क्योंन भग मर्याद करें ॥ मिज २ ॥ ३ ॥

इसी भांति बहुबार परस्पर नष्ट ग्रन्थ प्राचीन करे ।
पक्षपात से नये मत भिन्न २ फैले सगरे ॥
रुचि अनुसार करी रचना तहां बहुप्रकार लिख ग्रन्थ भरे ॥
प्रमाणता को पूर्व विद्वानों के ले नाम धरे ॥

॥ चौपाई ॥

यही हेतु प्रत्यक्ष दिखाता । कथन परस्पर मेल न खाता ॥
कोई कहे जग रच विधाता । कोई विश्व को अनादि गाता ॥

॥ दोहा ॥

कोई कहे है एक ही परम ब्रह्म भगवान ॥
कोई कहैं अनन्त हैं पद है एक प्रधान ॥

कोई जीव को नाशवान कोई नित्य मान सवाद करें ॥ मिज २ ॥ ४ ॥

कोई भवान्तर सिद्धि करें कोई जन्म एक ही मानत हैं ॥
अनादि कोई कहै कोई नये जीव नित ठानत हैं ।
कोई तो स्वाधीन जीव के क्रिया कर्म फल जानत हैं ।
परमेश्वर के कोई आधीन सर्व इति तानत हैं ॥

॥ चौपाई ॥

इत्यादि बहु विकल्प ठानें । एक कहै सो दुतिय न मानें ॥
पर अपनी आपनी तानें । अपनी पोषें पर की भानें ॥

॥ दोहा ॥

अपने मत में दोष हो, तापर दृष्टि न देय ॥
परम छिपावें शक्ति भर, ता को पुष्ट करेय ॥

तजे अंधेरा दीपक के रख सर्व धर्म वर्वाद करें ॥ निज२ ॥ ५ ॥

जो हठ छोड विचार करो तो प्रगट दृष्टि यह आता है ॥
सर्व मतों में वचन कुछ विरुद्ध पाया जाता है ॥
किसी में बहुत असत्य किसी में थोडा असत दिखाता है ।
सत्य सर्व हो किसी एक में न देखा जाता है ॥

॥ चौपाई ॥

इस से जो २ सत्य कथन है । सर्व मतों में सार सधन है ॥
सर्व ग्रहण के योग्य रतन है । ता का ग्रहना उचित जतन है ॥

॥ दोहा ॥

असत सर्व को त्यागिये । ढूंढि २ पहचान ॥
मतवारा पन त्यागि के । मतिवारा सु प्रधान ॥

वहु विद्या पढ बैल मारतो जो शठ वृथा विवाद करे ॥ निज२ ॥ ६ ॥

जैसे मटीले गेहुन के बहुभांति प्रथक लगि रहे हैं ढेर ॥
किसी में थोडी किसी में बहुत मिली मृत्तिका ना फेर ॥
तहां कोई निज ढेरो को वश मोह शुद्ध भाषे अन टेर ॥
अन्य सबो को मटीला कहत तहा न लावें देर ॥

॥ चौपाई ॥

ताहि कुधी वह पच्छ पात कर । शुद्ध मान पीसे अपने घर ॥
करे रसोई बहुत हर्ष धर । मृतिका भखि माने भोजन वर ॥

॥ दोहा ॥

बुद्धि-मान तिहि सोधि के, करें शुद्ध आहार ।
निज पर पच्छ नही करे, गहें वस्तु जो सार ॥

पर औगुण खल बहुत लखें निज औगुण देख न याद करे ॥ निज० ॥ ७ ॥

लघु दीर्घ सब राशी की मृत्तिका को सुधी मृतिका जाने ॥
ता का निकाल के शेष गेहुन को शुद्ध गेहूं माने ॥
निज पर पच्छ कदापि करे ना चित परमारथ में साने ॥
त्यों सत्य कथन को सुधी निर पच्छ शुद्ध कर पहिचाने ॥

॥ चौपाई ॥

मिथ्या पच्छ सुधी ना करते । निज पर के दूषण को हरते ॥
जो मत पच्छ हृदय में धरते । नाथूराम अधर्मी नर ते ॥

॥ दोहा ॥

बहु विद्या पढ़ के कुधी। कर मत पक्ष विवाद ॥
समय गमावें वृथा ही। लहत न नर भव स्वाद ॥
हा कलि काल कराल जीव निज हित में अधिक प्रमाद करें ॥
निज० २ ॥ ८ ॥

अवस्थाओं की लावनी (२७)

डूबे बूढ़े दसागर में बिन पौरुष किम पावें पार ॥ जन्म जलधि के तरण को तरुण अवस्था तरणी सार। ॥ टेक ॥

बालक पन बावला स्वपर विज्ञान भेद कैसे जोवे। क्रीड़ा कौतुक कांधा कलह करन की जहां होवे। क्रियाहीन खाने में लीन चित कभी हसे कबहू रोवे। आतम हित के सोच बिन सदा नींद गहरी सोवे। पाप करत कुछ भय न हृदय में हठ कर डूबे कारी धार।
जन्म जलधि० ॥ १ ॥

वृद्ध भयें तृष्णा अति बाढे कभी न मन पावे संतोष। जो त्रिलोक की सम्पदा से पूरित होवे निज कोष। तन अशक्त विकलेंद्रिय उद्यम हीन खिजे क्षण २ कर रोष। नष्ट बुद्धि हो क्रिया से भ्रष्ट भया करता बहु दोष। ममता वश ना उदास तन से तजे न मन से गृह का भार।
जन्म जलधि० ॥ २ ॥

तरुणपने पौरुष पूरण सब क्रिया करन का चित उत्साह। प्रबल इन्द्रियां ज्ञान की वृद्धि सके कर व्रत निर्वाह। शक्ति परीषह सहन योग्य स्वाधीन ध्यान धर सकै अथाह। श्रुताभ्यास से भेद विज्ञान भये हो पूरण चाह। सर्व कार्य के सिद्धि करन को शक्ति व्यक्त वर्ते तिसवार।
जन्म जलधि० ॥ ३ ॥

तरुण पने में सब सामग्री सुलभ आय इकठा होवें। काल लब्धि है इसी का नाम सुधी इस को जोवें। ऐसा अवसर पाय कुधी दुर्विसन नींद में दिन खोवें। तथा कलह में लीन रहि अत कुगति पड़के रोवें। माणूराम निज काम सम्हारो मिले न अवसर बारंबार।
जन्म जलधि० ॥ ४ ॥

॥ साखी ॥

सुख कारन कलि मल हरण तारण तरण त्रिभुवन नाथ जी ॥
कल्याण कर्ता दुख हर्ता नमो तुम पद माथ जी ॥
है विनय जन की यही मन वा रखो चरणों साथ जी ॥
भवसिंधु पार उतार स्वामी पकड़ जन का हाथ जी ॥

॥ दौड़ ॥

प्रभूजी तुम हो तारण तरण । जन को राखो अपने शरण ॥
सो मन बसे तुम्हारे चरण । जन का मेटो जामन मरण ॥
भजे जिन भक्त नाम तेरा । नाथूराम चरणों का चेरा जी ॥

परम ब्रह्म सिद्ध स्वरूप की लावनी (१८)

मेरा तो सिद्धरूप वही जी कहलावे त्रैलोक पती । जिस के नाम का ध्यान धरते हैं हमेशह योगी यती । ॥ टेक ॥

वरण गंधरस फरस शब्द तन छाया रहित अचल आसन । अति सूक्ष्म तन रहित नहीं पाइये जिसके इन्द्रिय मन । अगमन गमन त्यागट वर्जन बाधा रहित न जिसके तन । अनंत दर्शन ज्ञान सुख वीर्य चतुष्टय जिसके धन । निर्विकार आकार पुरुष के बिना मुक्ति ना फिर रती ॥

जिसके० ॥ १ ॥

त्रि जगति के चर अचर पदारथ जिनको ज्ञान से झलका रहे ज्यों दर्पण में पड़े प्रतिबिम्ब त्यों तिन को भान कहे । ज्ञाति अपेक्षा ब्रह्मनाम इक व्यक्ति अपेक्षानंत लहे । उसी रूप पर मैं हूं आशक्त मेरा सिद्धरूप यही । भव सागर के पार विराजत मैं खोजत हो वही गती ।

जिसके० ॥ २ ॥

वसु गुण पूरण वसुविधि चूर्ण करके आसन किया अटल । तीन लोक के शीस पर राजत है प्यारा निश्चल । क्षुधा तृषा निद्रा भय चिन्ता अरति आदि सब डाले दल । तीन लोक में बराबर कोई नहीं जिस के अति बल । काम क्रोध मोहादि रिपु का जोर न जिस पर चले रती ।

जिनके० ॥ ३ ॥

चिदानन्द चिद्रूप राम परमात्म आदि अनंते नाम । जिनवर जिस के कहे मम हृदय वही राजत है राम । जैसा रूप शिव थल में वही मम घट में वास करता वसुजाम । निशिदिन उस के ध्यान में लुब्ध रहे मन नाथूराम । जो ऐसे सिद्धरूप से विरकत भये तिन्हों की बुधि हती ।

जिनकी ॥ ४ ॥

तथा दूसरी लावनी (१९)

आशक है अरहन्त गुन के जिसका जग सारा नाम जपे । जिसका नाम सुन कलिमल घर घर ठंडा काल कपे । ॥ टेक ॥

हरि हर ब्रह्मा आदि सभी एक कालबली से हारे हैं । बचा न कोई बलि सब ढुकार पछारे हैं । इन्द्रादिक सुर अमर कहावैं वो भी आयु गत सारे हैं । सत्य अमर है वेही जो भवोदधि पार पधारे हैं । अजर अमर वही परम ब्रह्म पद जिसका सुयश जग माहिं छपे ।

जिसका० ॥ १ ॥

वही ब्रह्म है रूप अपारा उसी पै आशक हमारा मन । जिसकी स्वात प व यह अष्टादि अरिदल नशाता तन । ज्यों कुधातु लोहा पारस संगी जग ग्रहन ता कञ्चन । त्यों यह जन के योग से पूज्य बन बैठा सज्जन । गुण अनन्त जिन् वरु भला क्यों अगुन्न नार आकाश नपे ।

जिसका० ॥ २ ॥

गाते हैं वेद ॥ विमुख रहै जो ऐसे गुरु से सो ही भव आताप तवे। जिसका नाम सुन हमेशह घर घर ठाढा काल कपे ॥ ४ ॥

तथा तीसरी लावनी (२०)

जाना है जाना के पास तो दिल में खटका लाना होगा। क्यों भूला फिरता चेत नहीं पीछे पछताना होगा। ॥ टेक ॥

बीता काल अनन्ता भ्रमत अब चेतो थिर थाना होगा। नहीं तब चौरासी योनि में फिर २ दुख पाना होगा। तीन लोक में ऐसा न ऐसा जाहि न तें छाना होगा। अब भी ना था को भ्रमत को तुझ सा नादाना होगा। पंच परावर्तन कर २ के माइक दीवाना होगा।
क्यों भूला० ॥ १ ॥

अव्रत योग कषाय पाय मिथ्यात तू गर्वाना होगा। तो भवसागर में डूब के बहु गोते खाना होगा। तप चारित्र परीषह तप गहु निश्चय शिव राना होगा। तहां सुक्ख अनंते भोग नित यहां न फिर आना होगा। गुरु शिक्षा पर ध्यान न देहै तो खराब खाना होगा।
क्यों भूला० ॥ २ ॥

सुत सम्पति अपने सत आगें इन्हें छोड जाना होगा। पल एक न ठहरे भये थिति पूरो सब बिगाना होगा। तीर्थंकर से त्याग गये तो ऐसा कौन स्याना होगा। जग को थिर माने जहां नित काल वदन दाना होगा। अरे मूढ़ तिर्यंच नर्क दुःख क्या तू विसराना होगा।
क्यों भूला० ॥ ३ ॥

नर गति के क्षण भंगुर सुख को तू ने थिर माना होगा। तो तुझ सा मूर्ख कौन जो निज स्वभाव हाना होगा। अपने हाथ कुल्हाडी लेकर अपना पद भाना होगा। तो कौन विवेकी ऐसे को बतलाता दाना होगा। नाथूराम शिव सुख चाहो तो ब्रह्म सुयश गाना होगा।
क्यों भूला ॥ ४ ॥

तथा चौथी लावनी (२१)

हमें है जाना वहां तलक जिस जगह हमारा जाना है। उसी की खातिर भेद सब २ कर अहो निशि छाना है। ॥ टेक ॥

उस ज्ञाता का रूप अनुपम देख सजे द्युतिभाना है। कोटि काम का रूप एकत्र न तास समाना है। लोक शिखर के अग्र विराजे कहीं न आना जाना है। नित निश्चल आसन ध्यान या पिंड स्वरस कर साना है। ज्ञाति अपेक्षा सब सिद्धों को एक ब्रह्म कर माना है।

उसी को० ॥ १ ॥

त्रिजगति में चर अचर पदार्थ जिसे न कोई छाना है। सर्व ज्ञेय द्रव्यगुण पर्यय युगपत जाना है। तीर्थंकर से नवें जिसे जब गृह तज संयम ठाना है। उसी रूप पर मैं हूं आसक्त वही उर आना है। जिस ज्ञाता की अनुकंपा से निज स्वरूप पहिचाना है।

उसी को० ॥ २ ॥

उस ज्ञाता के जाने बिन जो भव वन में भटकाना है। आधार न पाया कहीं चिर काल सहा दुख नाना है। लख चौरासी योनि चतुर-गति में बहुबार रुलाना है। स्थान न कोई बचा जहां मरा न जन्मा माना है। जिसने उस ज्ञाता को जाना वही बसा शिव थाना है।

उसी को० ॥ ३ ॥

उस ज्ञाता के मित्र भये तिन वसु विधि अरि को हाना है। काल-बली का सर्व अभिमान क्षपक में भाना है। निराबाध अव्यय पद पाके वहीं बना शिव राना है। जो घर कुटुम्ब को छोड़ जाना का धरा दृढ़ ध्यान है। नाथूराम जिन भक्त सार उसी ज्ञाता का गुण गाना है।

उसी को० ॥ ४ ॥

तथा पांचवीं (२२)

हे प्रभु दीन दयाल सदा मुझको अपना दीजे दर्शन। मैं जन थारा हमारा हरो कष्ट प्रभु हो परसन। ॥ टेक ॥

तुम त्रिभुवन के ईश तुम्हें तज और ग्रीस किस को नाऊं। तुम से दाता पाय प्रभु अन्य किसे जांचन जाऊं। अन्य देव सब रागी द्वेषी तिन्हें न मैं स्वप्ने ध्याऊं। यही मनोरथ है मेरा दर्श सदा थारा पाऊं। राखो अपने दास पास निज दास न अब पाऊं तरसन।

मैं जन० ॥ १ ॥

युगल नयन दिन रैन तुम्हारे दर्शन को नर रहे हैं आस । युगल चरण का मनोरथ यह चले पहुंचें तुम पास । दोनों कर वसु द्रव्य मिलाकर तुम पद पूजन चाहत खास । द्रव्य भाव दान तुम्हारे युगल चरण का चाहत वास । रसना इच्छा धारे सदा यह तुम गुण मुख लागे वरनन ॥

मैं जन ॥२॥

मैं अवगुण की खान नाधिकतर पर धारे जो गुण गाता हूं । सब्र तर भी गन्ध देव का न शीस नवाता हूं । क्षण २ लेता नाम तुम्हारे दर्शन को ललचाता हूं । औसर पाता जब जो तत्काल दरश को आता हूं । स्वप्न मे भी देखत तुम दर्शन मन मेरा लागत हर्षन ।

मैं जन० ॥ ३ ॥

तब तक दर्शन मिले निरंतर जब तक नाश करो रिपु कर्म । पाऊं बासा मुक्ति मंदिर मे यही आशा मम पर्म । बहुत दिनो से करूं बीनती पले नही दर्शन बिन धर्म । हे विश्वेश्वर दास की सुनो दादि राखो अब शर्म । नाथूराम की चरण शरण अब राखि नेह कर पाव पंच ।

मैं जन० ॥ ४ ॥

॥ शाखी ॥

विष्णु कुमार चरित्र सुनो सब कान लगाई ।
जिन बलि का अभिमान हरा कीर्ति जग छाई ॥
विक्रिया ऋद्धि प्रभाव देह लघु दीर्घ बनाई ।
मुनिगण का उपसर्ग हरा कीर्ति जग छाई ॥

॥ दौड ॥

जिसे कहते हिन्दू नर नार । धरा ईश्वर बावन अवतार ॥
छलन बलि को गये करतार । उतारन दुष्ट भ्रष्ट का भार ॥
नाथूराम कहें सुनों भाई । सुनत सब संशय मिटजाई जी ॥

विष्णु कुमार मुनि की लावनी (२१)

विष्णु कुमार चरित्र अनूपम जिन बलि का अभिमान हरा। ऋषि [illegible] की विक्रिया ऋद्धि से बावन रूप धरा। ॥ टेक ॥

मालव देश उज्जयनी नगरी श्री वर्मा तहा का भूपाल। जिस के [illegible]ी चार द्विज महा अहंकारी मनु व्याल। पहला बलि पुनि [illegible]ुद्धि बृहस्पति नमुचि प्रहलाद महा उद्याल। विहार करते तहा [illegible]ने सात शतक आये गुणपाल। महामुनीस अकंपन तिन में [illegible]ाचार्य सुज्ञान खरा।

ऋषि० ॥ १ ॥

अवधि ज्ञान विचार अकंपन शिष्यों को आदेश दिया। पुरवासिन [illegible] न कीजो बाद ऐसो सुन मौन लिया पर श्रुत सागर गुरु आज्ञा [illegible] प्रथम ही नग्र प्रवेश किया। भोजन कारण गया मुनि नग्री में [illegible]ाहर विरिया। इधर नग्र जन सुनि मुनि आगम पूजन का उत्साह [illegible]रा।

ऋषि० ॥ २ ॥

उत्सव सहित नगर जन जाते देख नृपति पूछी हंसकर। कहिये मंत्री [illegible] ये जाय महोत्सव से सजकर। बोला बलि वन बीच दिगंबर मुनि पूजन जाते चलकर। तब नृप मंत्री साथ ले पूजन धाया आनन्द कर। द्रव्य भाव युत पूजे मुनिवर बहुत सुयश मुख से उचरा।

ऋषि० ॥ ३ ॥

बार २ नृप कहि धन्य मुनि ध्यानारूढ दिगम्बर ये। निज देही से सदा निस्पृह करें तप दुद्धर ये। तृण कंचन रिपु मित्र गिनें सम सहें परीषह तप कर ये। रागद्वेष मद मोह तज वीतराग निर्भय[illegible] ये। करें चिन्तवन शुद्धातम का मेटन जन्मन मरण जरा।

ऋषि० ॥ ४ ॥

मौन धरे बैठे सब मुनिवर कोई न नृप को दई असीस। तब हंस मंत्री बोले इन से मूढ़ को चलिये अवनीश। ये शठ धारें ढोंग दया [illegible] हैं लोग तन बने मुनीश। भेद न जाने रहा तप कोय सत्य [illegible]। [illegible]। करत भये निन्दा उन मुनि की मंत्री दुष्ट धरें गरारा।

ऋदि० ॥ ५ ॥

बहु विधि स्तुति कर नृप लौटा मार्ग में मुनि श्रुति सागर। आवत छेड़ा नप से वाद किया मंत्रिन मद धर। हार गये चारों द्विज सुनि ले मान गलत हो आये घर। श्रुति सागर भी निकट आचार्य के पहुंचा आकर। नमस्कार कर भेद सुनाया मार्ग का गुरु को सगरा।

ऋषि० ॥ ६ ॥

सुनत वचन गुरु कही उपद्रव का कारण तुम के दीना। इस से अब तुम बाद स्थान धरो तप लौ लीना। तब श्रुत सागर गुरु आज्ञा से निशि में ध्यान तहां दीना। चारों मंत्री दुष्टता धार चले असि ले हीना। श्रुत सागर को देखत बोले यही भ्रष्ट मुनि है सगरा।

ऋषि० ॥ ७ ॥

बोला बलि चारों मिल एकही बार हनो याके तलवार। बांट बरोबर लगे हत्या ऐसा खल किया विचार। खड्ग उभावत कीले नभ रक्षक सुर ने चारों बदकार। प्रभात पुरजन देख खल मंत्रिन को भाषो धिक्कार। तब नृप ने काला कराय मुख खर चढ़ाय दीने निकरा।

ऋषि० ॥ ८ ॥

यान भ्रष्ट हो चारों भ्रमते हस्तनागपुर पहुंचे चल। तहां का राजा मेघ रथ दो सुत युत राजे अति बल। छोटा विष्णु कुमार पद्मरथ अग्रज दोनों महा विमल। नृप तप धारा विष्णु सुत सहित सर्व दिया निर्मल। करे पद्मरथ राज तहां चरों मंत्री पद जायवरा।

ऋषि० ॥ ९ ॥

दुर्बल देख पद्मरथ को बलि बोला तुम्हें कहा खटका। कैसे दुर्बल भये महाराज कहो कारण घट का। हम से मंत्री पाय जगत में कौन कार्य ऐसा अटका। भेद बताओ नाथ जो क्यों खाया ऐसा झटका। कहो भूप हरिबल नृप आज्ञा भङ्ग करे सेवक सगरा।

ऋषि० ॥ १० ॥

नृप आज्ञा बलि पाय सेन ने लाया बांधकर हरिबल को। देख पद्मरथ कहो होकर प्रसन्न मांगो बलि को। जो चाहो सो लेहु अभी तुम लाये पकड बैरी खल को। तब बलि बोला वचन भण्डार रहै अटके पल को। समय पाय प्रभु याचना करहौ जब जानों कार्य प्रवरा।

ऋषि० ॥ ११ ॥

स्वीकार वच कर नृप बोला बहुत भली लीजो तबही। तहां कुछ दिन में अकंपन सहित ऋषी आये सबही। चारों द्विज अतिबैर चितारा सुनि आये जाने जबही। तब बलि बोला सात दिन राज नृपति दीजे अबही। इसैं काम अब अत्यावश्यक सात दिवस को आय परा।

ऋषि० ॥ १२ ॥

करके सकलप राज दिया नृप आप रहा जाके रनिसास। तब नृप बलि ने रचो नरमेध यज्ञ करने मुनि नाश। हाड मांस मलरोमादिक अणविद पदार्थ महा कुवास। चारों ओर से जलाये मुनि के धुआं छायो आकाश। देन लगा नाना दुख मुनि को द्वेष सहित अति क्रोध भरा।

ऋषि० ॥ १३ ॥

मिथिलापुरी के वन में मुनिवर सोरचंद्र धारें थे ध्यान। श्रवण नक्षत्र देख कम्पित मुनि अवधि विचारा ज्ञान। हाहा मुनिगण कष्ट सहै अति यो गुरु वचन कहे दुःख जान। कुछ अन्तर से सुने तहां पुष्प दत क्षुल्लक निज कान। पूछा गुरु से कहा किस को उपसर्ग होय बिन दुष्ट वारा।

ऋषि० ॥ १४ ॥

बोले गुरु आचार्य अकपन तिनके सातशत मुनिवर संग। सहैं परीषह हस्तिनापुर वन में बल हात निज अंग। पुष्प दत तब कहो शीघ्र कुछ हो उपाय यहिये निर्भंग। तब गुरु बोले तुम हो अम्बर गामी खग पति वर ढंग। विष्णु कुमार सुभूषण गिरि पर उपजी विक्रिया ऋद्धि वरा।

ऋषि० ॥ १५ ॥

वे सर्व उपसर्ग निवारण पुष्प दत सुन गया तुरन्त। नमस्कार कर सुनाये समाचार विधि से गुणवत। परबन को मुनि वांछ पधारी गिरा समुद्र मे जाका अंत। तब मुनि पहुंचे हस्तनापुर मे पद्मरथ के तट उत। कहा कुपुत्र मिवरथ के तू उपजा। वेरे ऋषीश्वर।

ऋषि० ॥ १६ ॥

हाथ जोड नवि कहो पद्मरथ कार्य नहीं यह मैं कोना। वचन हार के सात दिन राज दुष्ट बलि को दोना। ता खल ने नर मेध रचो यह हम निवास निज गृह लोना। तब मुनिवर ने धरा वावन सुरूप, द्विज अति हीना। पढत वेद ध्वनि पहुंचे बलि तट मांगी सुनि डग तीनि धरा।

ऋषि० ॥ १७ ॥

बोला बलि मांगो मन वांछित तुच्छ यांचना क्या करते। द्विज संतोषी कहो इच्छा न अधिक सरें वर्ते। तब बलि जल ले किया संकलप मुनि कर पर अपने करते। त्रय डग पृथ्वी दई संतुष्ट कहा सुख दुज वरते। तब मुनि दीर्घ शरीर बढाया देखत बलि मन मूढ डरा।

ऋषि० ॥ १८ ॥

श्रावण सुदि पूनो नक्षत्र शुभ श्रवण मान बलिका मारा। पहिला पद ने मेरु मे मानुष्योत्तर पर धारा। दूजे में आकाश नापि तोजे को वचन बलि पर डारा॥ अब नृप दोजे और पृथ्वी जो वचन मुख से हारा। बोला बलि मो शीस धरो पद सब खल का अभिमान मरा।

ऋषि० ॥ १९ ॥

धरा पाव बलि के शिर जब मुनि तब विप्रनि अति खाई भय। हाथ जोड बहु करो स्तुति मुख से भापो जय जय। नारद और सुरासुर स्तुति करन लगे आके अतिशय। हे करुणानिधि करो रक्षा दोजे प्रभु दान अभय। तब मुनि पाव उठाय लिया पदनवत भये द्विज सुरासुरा

ऋषि० ॥ २० ॥

यत्र नाशि मुनि सर्व बचाये रक्षा कोनी विष्णु कुमार। तब से

प्रचलित भई रक्षाबंधन पूनो यह सार। फटे मुन्यों के कंठ धुआं से लीलत रच न बने खखार। तब पुरवासिन बना मिमइन के दीने मर्भ अहार। तब से यह पावन दिन माना रक्षाबंधन सब नरा।

छपि० ॥ २१ ॥

चारों द्विज श्रावक व्रत लीने विष्णुकुमार गये गुरु पर। फिर कर दिक्षा लई छेदोपस्थापन की विधि कर। विक्रिया ऋद्धि से विष्णु कुमार ने, रूप धरा था अति लघुतर। तिसको बहुजन कहें वावन अवतार लिया ईश्वर। नाथूराम जिन भक्त सत्य यों और भांति कहते लवरा।

छपि० ॥ २२ ॥

पुरुषार्थ की लावनी (२४)

अरे मूढ पुरुषार्थ तज के वृथा कर्म की आस करे। वांछित न को आपने कर से ही तो नाश करे। ॥ टेक ॥

वाल वृद्ध सब ही जाने के बिन बोये ना जमता खेत।
और जमे बिन अन्न भूमा सो खेत ना किंचित देत॥
उद्यम कर बोवे रखावे सो जन फल निश्चय कर लेत।
ऐसा जानो सदा पुरुषार्थ ही सब सुख का हेत॥

॥ चौपाई ॥

कर्म कोई देवता न जानो। निज करनी का फल पहिचानो॥
याते नित उद्यम को ठानो। बिना किये फल कर्म न मानो॥

॥ दोहा ॥

प्रथम क्रिया कर्ता करे। ताका फल सो कर्म॥
नहीं कर्म कुछ और है। समझ मूढ तज भर्म॥

॥ चौपाई ॥

जैसे कोई बहु ऋणियां आवे। अति श्रम कर अब द्रव्य कमावे॥
सो सब द्रव्य व्याज में जावे। यासे धनी न होत दिखावे॥

॥ दोहा ॥

लेकिन द्रव्य कमावना। धन का कारण जान॥
यह लखि पुरुषार्थ करो। तज आलस बुधिवान॥

विना मूल तरु हीन होय। तो फल काक्यो विश्वास करे।
वाञ्छित० ॥ २ ॥

कोई विपर्यय कारण करके सिद्धि कार्य की चहते हैं। सिद्धि न होता काम तब दोष दैव का कहते है। अपनी भूल दृष्टि ना पडती वृथा खेद तन सहते है। पुरुषार्थ को छोड प्रारब्धि भरोसे रहते हैं।

॥ चौपाई ॥

सोते सिंह के मुख में जाके। नहीं प्रवेश करे मृग धाके॥
अथवा वृक्ष बबूल लगाके। कौन आम चाखत है पाके॥

॥ दोहो ॥

इस से यह निश्चय भया। करे सो भोगी आप॥
पुण्य करे तो पुण्य फल। पाप करे तो पाप॥

करनी करे नर्क जाने की स्वर्ग में कैसे वास करे। वाञ्छित० ॥३॥

एक चके की गाडी सदा सर्वत्र न भूपर गमन करे। त्यों पुरुषार्थ कर्म एकले से नाहीं कार्य सरे। जो नदी अनुकूल बहे तो तोरन वाला सहज तरे। बहे विपर्यय तो तरना कठिनता से लघु दृष्ट परे।

॥ चौपाई ॥

तैसे कर्म जब होय सहाई। थाला करे बहु पडे दिखाई॥
जो प्रतिकूल होय दु:खदाई। कठिनता से लघु कार्य कराई॥

॥ दोहा ॥

लेकिन करना मुख्य है। विना किये क्या होय॥
नाथूराम यासे सुधी। शिथिल छोड मत सोय॥

जो तू आप हो निर उद्योगी पुरुषार्थ ना खास करे।

वांछित० ॥ ४ ॥

उपदेशी लावनी (२५)

प्रभु गुण गान करो निशि वासर आलस लाना ना चहिये। करन विषय के स्वाद में चित्त पगाना ना चहिये। ॥ टेक ॥

नर भव चिन्ता मणि पाके यह वृथा गमाना ना चहिये। जान बूझ के गोते भवोदधि में खाना ना चहिये। उत्तम आर्यकुल पाके फिर अभक्ष पाना ना चहिये। लोक निंद्य जो नशे तिनमें चित साना ना चहिये। कुव्यिसन त्याग लाग निज पथ से सीख भुलाना ना चहिये।

करन० ॥ १ ॥

हठ कर बात कहै तासे फिर विवाद ठाना ना चहिये। अनर्थ कारण खेल में जी बहलाना ना चहिये। हित उपदेश सुनेना उस से मगज पचाना ना चहिये। अभिमानी के पास क्षण एक भी जाना ना चहिये। मित्र लालची होय उसे निज वस्तु दिखाना ना चहिये।

करन० ॥ २ ॥

धर्म द्रोह अन्याय जहां तहां वास बसाना ना चहिये। दुष्ट मनुज से कभी स्नेह बढ़ाना ना चहिये। सुकृत कमाई करो देख पर धन ललचाना ना चहिये। परमार्थ में द्रव्य खर्चते अलसाना ना चहिये। इष्ट वियोग अनिष्ट योग लखि चित्त चलाना ना चहिये।

करन० ॥ ३ ॥

विद्या व्यसन बिना निशि वासर काल बिताना ना चहिये। भयें उपस्थित आपदा फिर घबराना ना चहिये। कुगुरु कुधर्म कुदेव को निज शीस नवाना ना चहिये। दु:खी दरिद्री दीन को कभी सताना ना चहिये। नाथूराम जिन भक्त धर्म में शक्ति छिपाना ना चहिये।

करन० ॥ ४ ॥

साखी

रघु बीर रण रघुबीर ले चढि लंक पर ऐहैं पिया।
दा दे मिलो ले जान को नहीं पावोगे अपना किया ॥

रावण न माने टेक ठानें बोध बहु रानी दिया ।
जिन भक्त नाथूराम अति अज्ञान रावण का हिया ॥

दौड

बहुत समझावे मन्दोदरि । शीश युग चरणों में धर धर ॥
टेक ना छांडे दशकंधर । कुमति ने किया हृदय में घर ॥
नाथूराम कहै कर्म रेखा । टरे ना यह निश्चय देखा जी ॥

रावण को चेतावनी लावनी (२६)

रावण को समझावे मन्दोदरि भर के नैन जल में दोनों । लेके जानकी मिलो नहीं आवें वीर पल में दोनों ॥ टेक ॥

मानो पिया दसकंद कहा मति मंद भई अब की वारी । राक्षस कुल के नाश करने को कुमति हिरदे धारी । तीन खंड के धनी नाथ तुम हर लाये जो पर नारी । कैसे छूटे लगा पिय यह कलंक कुल को भारी । नारायण बल भद्र नाथ वे प्रगट भये कल में दोनों ।
लेके० ॥ १ ॥

सुन वच रावण कहै नारि क्यों करती है दिल में शंका । बीच सिंधु के पड़ी है यह अगम्य मेरी लंका । भूमि गोचरी रंक करें सब शक सुनत मेरा डंका । तीन खंड में युद्ध करने को कौन मुझ से बंका । हम खग पति वे भूमि गोचरी भ्रमैं पृथ्वी स्थल में दोनों ।
लेके० ॥ २ ॥

हाथ जोड़ फिर कहै मन्दोदरि वचन हमारे मान पिया । वानर वंशी भूप सब मिले उन्हों में आन पिया । अंगागद सुग्रीव नील नल भामंडल हनुमान पिया । भूप विरादत मिल ले आये बैठ विमान पिया । धनुष बाण ले हाथ हरी हल गर्जि रहे बल में दोनों ।
लेके० ॥ ३ ॥

बार २ समझावे मन्दोदरि धरें शीश युग चरणन में । एक न माने लंक पति कैसी कुमति बैठी मन में । बहुत चुभे कर युद्ध नाथ अब धरो ध्यान जाके बन में । पर नारी के काज क्यों देहु प्राण अपने रण में । नाथूराम कहै तब पछतैहो जब लड़ है दल में दोनों ।
लेके० ॥ ४ ॥

तथा दूसरी लावनी (२०)

चरण कमल नमि कहै मंदोदरी यह विनती प्रिय भाम की है।
जनक सुता को पठावो कुशल इसी में धाम की है। ॥ टेक ॥

हम अबला मति हीन दीन क्या समझावें ऐसा कीजे। पंडित गण के मुकुट प्रिय तुम को क्या शिक्षा दीजे। जो हितकारी होय करो सो कहा मान इतना लीजे। ऐसा कीजे नाथ जिस में न कला कुल की छीजे॥

शेर

भानु सम तेजस प्रकाशित वश यह राक्षस पिया।
ताहि मत मैला करो गृह आन के अपने लिया॥
पर नारि रत जो नर भये तिन वास दुर्गति में किया।
धन धाम प्राण नशाय घाति अघ भार शिर अपने लिया॥
दासि हठ मत करो पहों पद पर प्रिय त्रिय जड़ बदनाम की है॥जनक१॥

दशमुख कहै त्रिखड पती मैं भूचर नभ चर मेरे दास॥
तीन खंड की वस्तु पर प्रभुताई है मेरी खास।
मुझे छाड़ यह सुन्दर सीता और कौन गृह करि है वास॥
मान सरोवर छोड़ करते न हंस लघुसर की आस॥

शेर

इन्द्र से योद्धा मैंने बांधे पगड़ा में जाय के।
सोम वरुण कुबेर यम वैश्रवण बांधे धाय के॥
विश्व में जाहर भयो कैलाश शैल उठाय के।
कौन सा योद्धा रहा रण में लड़े जो आय के॥
तद मंदोदरी कहै नाथ निज सुख न बढ़ाइ काम की है।
जनक०॥ २॥

॥ शेर ॥

है बडा आश्चर्य सुर तिय से अधिक में सुन्दरी ॥
तासे अरुचि तुमको भई हिरदे बसी भूचर नरी ॥
कहो जैसा रूप विद्या बल करौं याही घरी ॥
हठ त्यागिये पर नारि का विनती करे मंदोदरी ॥
सीता भी प्रिय वरै न तुम को पतीव्रता त्रिय राम की है।
जनक० ॥ ३ ॥

सुनत बचन लंकेश कहै प्रिय तुम सम और नहीं नारी। यह तो निश्चय मुझि पर कारण एक लगा भारी। हम छत्री रणशूर हरी सिय यह जानति दुनिया सारी। जो सिय भेजौं राम तट तो दें नृपगण तारी ॥

॥ शेर ॥

जान हैं कायर मुझे नृपगण सभी अभिमान से ॥
यासे लडना योग्य है रघुबीर सग धनु वाण से ॥
जीतिकर अर्पौं सिया प्यारी जो उनको प्राण से ॥
यश होय मेरा विश्व में वेशक सिया के दान से ॥
नाथूराम जिन भक्ति कहै त्रिय शुभ न चाह संग्राम की है।
जनक० ॥ ४ ॥

सीता हरण की लावनी (२८)

जनक सुता का हरण श्रवण सुन को न नीर दृग में लाया। वर्णन तिस का सुनो जैसा जिन आगम में गाया। ॥ टेक ॥

दंडक बन में धनुष वाण ले सैर करन चाले लछमन। सुगंध मारुत लगत तन भया प्रमुद लछमण का मन। वंशभिडे पर सूर्य हास्य असि दृष्टि पडा चर्चित चंदन। लेके हाथ में लछमण ने काटा वह भिडा सघन।

॥ चौपाई ॥

खरदूषण सुत शंबु कुमार। तामें साधत था असि सारः ॥
सिद्धि भया था ताही वारः। रक्षक ता असि यक्ष हजारः ॥

॥ दोहा ॥

पूजा कर सुर खड्ग की। धरा भिडे पर आन ॥

पुण्य योग लक्ष्मण लिया । सो वर खड्ग कृपान ॥

कटा शंबु शिर साथ भिड़े के सो न लछमण लख पाया ।
वर्णन० ॥ १ ॥

लेके खड्ग लक्ष्मण रघुवर तड गये सुनो अब कथा नयी । शंबु पुत्र के पास ले भोजन सूर्पनखा गयी । कटा भिडे को देख पुत्र की पहिले निन्दा करति भयी । फिर शिर देखा पुत्र का तब ता भूमि पछाड लई ।

॥ चौपाई ॥

करति विलाप हतन अरि धाई ॥ दृष्टि पडे लछमण रघुराई ॥
तिन्हें देख सुत सुधि बिसराई ॥ कामातुर बिट देह बनाई ॥

॥ दोहा ॥

बोली रघुतट आयके । मैं अविवाही नाथ ॥
युगल भ्रात में एक सो । कर गहि करो सनाथ ॥

व्यभचारिन लखि कही राम धिक् तुझे पुरुष पर मन भाया ।
वर्णन ॥ २ ॥

झिड़कारी लक्ष्मण ने जबही तब लज्जित हो आई घर । बोली पति से नारियुत आवे हैं बन में दो नर । प्रभु पुत्र हति कष्ट दिया तिन फाड़े वस्त्र मेरे निज कर । सुन खरदूषण बजावे रण बाजे अब करें समर ।

॥ चौपाई ॥

मारण को भट दूत पठाया । समर सुनत दशमुख उठ धाया ॥
पुन खरदूषण दल सजवाया । गर्जत घनसम नभपथ आया ॥

॥ दोहा ॥

तो करूंगा सिंहनाद ताही छण मे। यों कहि लछमण गये समर को लंकेश्वर आया बन में। रूप सिया का देख आशक्त भया कामी मन में।

॥ चौपाई ॥

विद्या से दशमुख यह जानी। जनकसुता यह रघुवर रानी
सिंहनाद को कहि मुख बानी। गये समर को लछमण ज्ञानी॥

॥ दोहा ॥

तब छिप के दशमुख किया। सिंहनाद भयकार।
सुनत राम धनु बाण ले। भये समर को त्यार॥

सीता के ढिग छोड़ जटाई गये समर को रघुराया।
वर्णन० ॥ ४ ॥

देख अकेली सीता को दशमुख ने तुर्त विमान धरा। विलपति सीता जटाई उडा युद्ध को क्रोध भरा। चोंच और पंजों से अग रावण का गृद्ध ने लाल करा। दिया थपेडा दशानन उलट जटाई भूमि परा।

॥ चौपाई ॥

गिरा जटाई मृतक समाना। गया दशानन बैठ विमाना॥
इधर राम पहुंचे रण स्याना। चलत जहां नाना विधि बाना॥

॥ दोहा ॥

देख लछमण राम को। कही प्रभू किस काम।
सीता तज आये यहां। अभी जाउ उस ठाम॥

कही राम है भ्रात यहां तुम सिंहनाद क्यों बजाया।
वर्णन० ॥ ५ ॥

लछमण कही किया छल काहू लौटजाउ सीता के पास। मैं अरि गण को पलक में तुम प्रसाद से करहीं नाश। गये राम तो लखी न सीता तब अति ही मन भये उदास। ढूंढत बन में जटाई दृष्टि पडा तहां चलते स्वास।

॥ चौपाई ॥

नमोकार रघुवर तिहिदीना। चौथे स्वर्ग अमरपद लीना॥
अब लछमण अरिदल जय कीना। सिंह करे ज्यों मृग गण छीणा॥

॥ दोहा ॥

चंद्रोदय नृप का तनुज। नाम विराधत तास।
लडत भयो रिपु सेन से। आय लछमण पास॥

तब लछमण ने खरदूषण को मार छणक में गिराया।
वर्णन० ॥ ६ ॥

अरिगण हति लछमण जय पाके रामचंद्र के तट आये। लौटत पर सिया बिन रामचंद्र बिहवल पाये। तब लछमण ने विनय [illegible]हित धीरज बंधाय के समझाये। खोज सिया का करेंगे काय[illegible]रि ना घबराये।

॥ चौपाई ॥

भूप विराधत भी तहां आया। राम लछिमण के पद शिर नाया।
लछमण कही सुनो रघुराया। या नृप ने अति हेतु जनाया॥

॥ दोहा ॥

भयो सहाई रण विषें। नाशन को अरि पक्ष॥
या प्रसाद हम जय लही। कहे वचन यों दक्ष॥

भये परस्पर मित्र विराधत ने रघुबर को समझाया।
वर्णन० ॥ ७ ॥

इसलिये प्रभु पाताल लंका से वहां नहीं रिपु गण का डर। यहां [illegible] शत्रु बहु रावण आदिक महा जबर। [illegible] बहु विद्याधर। तुम [illegible]।

तोते की लावनी (२८) सोरठ में

कर प्रभु का भजन तू तोता। क्यों जन्म अकारथ खोता ॥ टेक॥
यह क्षणभंगुर है काया। जासे तू ने नेह लगाया। तन क्षण में होगा पराया। जिस वक्त आसाम्ना आया।

छंड

ये। प्राण जात ना लगे वार कढ़जावें एक पल में ॥ हवा लगी ढल जाय बलबूला जैसे रे जल में ॥ क्योंजी, काल महा बलवान उससे ना बचे कोई कल मे। तू हो तोते हुशियार नहीं वह मारेगा छल से जी।

॥ दोहा ॥

कौन शरण संसार में। जहां बचे तू जाय।
सुर नर पति तीर्थेश से। लिये काल ने खाय॥
अब भी तू मूर्ख सोता। क्यों जन्म अकारथ खोता॥ १॥
फिर ऐसा समय ना पैहै। अवसर चूके पछतैहै॥
इस वक्त जो ग़ाफ़िल रैहै। तो बहुतेरे दुख सैहै॥

छंड

ये सुर नर नर्क तिर्यंच चार गति लख चौरासी योन।
भ्रमा अनंते काल रही धरने से बाकी कौन॥
क्योंजी, नाम अनेक धराय मूढ़ बहु बसा नष्ट की भौन।
अब भी चेत नहीं तुझ को जो धार रहा है मौन जी॥

दोहा

नर भव उत्तम क्षेत्र आर मिला उच्च कुल आय।
जो अब कार्य ना करे तो पाछे पछताय॥
फिर पछताये क्या होता। क्यों जन्म अकारथ खोता॥२॥
तू ज्ञान दृष्टि बिन अंधे। करता नाहि खोटे धंधे
जिस गुण से जीव जग बंधे। सो ही डालत तू निज कंधे॥

छंड

ये, तात मात सुत भ्रात मित्र त्रिय और कुटुम्बी लोग।
है स्वार्थ के संगी सर्व इन का अनिष्ट संयोग॥
क्यो जी, मरे साथ ना जाय कोई भोगें निज२ सुख भोग।

स्वार्थ के खातिर पछतावें किंचित कर कर सोग। जी॥

दोहा.

सहे नर्क दुःख जीव निज कोई न करे सहाय।
या से अब जिय चेत तू कर निज कार्य उपाय॥
यह नेह जगति का थोता। क्यों जन्म अकारण खोता॥ ३॥
तू ने देव कुदेव न जाना। कुगुरन ही को गुरु माना।
तिन ही के फंद ठगाना। शिव पुर मार्ग विसराना॥

छन्द

ये बहु विकथा दक्कवाद सुनी नित काम क्रोध की खान।
वीत राग भाषित सुदयामय धर्म सुना नहीं कान॥
क्यों जी जप तप संयम शील न धारा दाता पद निर्वान।
कुविसन निशि दिन सेय निरंतर रहा हृदय सुख मान। जी॥

दोहा

नाथूराम उचित यही अब विचार दृग खोल॥
हितकारी उत्तम समय वृथा जात अनमोल॥
देखो जग सारा रोता। क्यों जन्म अकारण खोता॥ ४॥

रावण को चेतावनी लावनी (३०)

युगल कर जोड़े मंदोदरि नार। विनवे वारंवार॥ टेक॥
सुनो यह विनती अबला की नाथ। सार्धर्मी रघुनाथ।
तिन्हों तुम बन से सीता दे साथ। अति यश आवे हाथ॥

छन्द

झूठ मत जाने सो बचन लगार। विनवे बारबार ॥ २ ॥
कहे त्रिय तुम को पिय नाहीं खबर। पच राम को जबर ॥
शक्ति लच्छमण को पिय गयी निकर। सुनी न तुमने जिकर ॥

छड

तुम प्रति हरि वे हरि बल उपजे ना इस में संदेह।
या से बैर करो मत उन से विनती मानो येह ॥
धरो मत सिर पर अपयश का भार। विनवे बारंबार ॥ ३ ॥
भ्रात सुत बांधे अरु शक्ति काढी। क्या विभूति तिन बढी।
शस्त्र मेरों पर क्या जग चढो। जो इतनो त्रिय रढो ॥

छड

नाथूराम जिन भक्त मान गज पर रावण आरूढ।
हित की बात सुनेना कानों किया मृत्यु ने मूढ ॥
ज़हर से लागी अमृत बचसार। विनवे बारबार ॥ ४ ॥

प्रभाती (१)

राम जपे संतन को संत जपें रामें ॥ टेक ॥
दश रथ नृप पुत्र राम, सीता शुभ तास भाम सो तो जपें।
सत नाम राज्य अवस्था में। राम जपें ॥ १ ॥
निश्चय चिद्रूप नाम आत्मा को कहें राम ता ही को।
अष्ठ जाम सदा संतध्या में ॥ राम जपें० ॥ २ ॥
ऐसे शब्दार्थ भेद, जानो मत करो खेद गावत सब
शास्त्र वेद सशय ना यामें ॥ राम जपें संतन को ॥ ३ ॥
ऐसा शिव सुक्ख धाम, घट घट में राजे राम
ता को जपें नाथूराम सो ही शिव पावे ॥ राम जपें० ॥ ४ ॥

प्रभाती (२)

राखो लाज आज नाथ शरण लिया तेरा ॥ टेक ॥
अब तक जेते कुदेव, तिन की बहु करी सेव थारा
ना लिया भेव यही दोष मेरा ॥ राखो लाज० ॥ १ ॥
कोई काल लब्धि पाय जाना तुम विरद भाय, कीजिये
उपाय नाथ अब ही सवेरा ॥ राखो लाज० ॥ २ ॥
अब प्रभु वसु कर्म भार लीजे जन का उतार कीजे

भवोदधि से पार नाथ न सार देरा ॥ राखो लाज० ॥ ३ ॥
नाथूराम की पुकार सुनिये प्रभु दया धार विनय
करे बार बार चरणों का चेरा ॥ राखो लाज० ॥ ४ ॥

प्रभाती (३)

मानो भगवन्त वचन यही ऐन करनी ॥ टेक ॥
हिंसा चोरी झूठ तजो कुविसन सत् भूल सजो निशि
दिन प्रभु नाम सजो सुरति ना बिसरनी ॥ मानो ॥ १ ॥
जुआ आदि पाप खेल तजो नशा दुष्ट मेल चलो नहीं
पाप गैल सुख समाज हरनी ॥ मानो० ॥ २ ॥
दया सत्य बचन नीति सज्जन से करो प्रीति छोडो
दुर्मति कुनीति सुक्ख की कतरनी ॥ मानो० ॥ ३ ॥
मन दे वच मानो बाल या से सुख हो त्रिकाल बाढ़े
महिमा विशाल लहो सुयश धरनी ॥ मानो ॥ ४ ॥
जिन भक्त नाथूराम कहते यही सार काम यासे मिले
परमधाम मिटे राह मरनी ॥ मानो ॥ ५ ॥

प्रभाती (४)

काया से प्रेम त्यागि अपनी सुधि तूले ॥ टेक ॥
याकी संग में अनादि भव बन में भ्रमो बादि नाना विधि
सही ख्वादि ता को तुम भूले ॥ काया से प्रेम ॥ १ ॥
क्षण भगुर जानि देह यासे मत करो नेह अपनी सुधि क्यों
न लेह अनुभव अनुकूले । काया से प्रेम ॥ २ ॥
षट रस कर पोषत नित विषयनि में राखत चित जासे
निज चारत रित मो है प्रति कूले । काया से प्रेम ॥ ३ ॥
काया तो जड स्वभाव, तेरा चिन्मय प्रभाव या से मत
चूको दाव नाथूराम भूले ॥ काया से प्रेम ॥ ४ ॥

प्रभाती (५)

दर्शन छवि शांति रूप नाशत अघ शूले ॥ टेक ॥
जैसे रवि के उद्योत कुमुदिनि गण मुदित होत तैसे
भव्य लखत प्रीति मन्दिर दृग फूले । दर्शन छवि ॥ १ ॥
[illegible] वर मन निर्मल गुण [illegible] के आगम दुख

प्रगटत शुभ सम्यक सुख परमार्थ भूले ॥ दर्शत छवि ॥ २ ॥
वचनामृत करत पान निज पर का होत ज्ञान जाना
आतम विधान नाशो भय भूले ॥ दर्शत छवि ॥ ३ ॥
निर्खत छवि वीत राग उपजत सम्यक विराग नाथूराम
धन्य भाग चरणाश्रय तूले ॥ दर्शत छवि ॥ ४ ॥

होली (१)

चेतनि चित हर्षोरी । सुमित संग खेलत होरी ॥ टेक ॥
वसु विधि लकड़ी कुमति कहेसे बहुत दिनों जो जोरी । सो अब ढेर ध्यान पावक से चण में जालि धरोरी । पेक घर स्वच्छ करोरी ।

चेतन । १ ॥

पाप पंक सब काढ सदन से फेंकदई चहुं ओरी । सम्यक सर में न्हाय स्वच्छ हो भाव स्व पट पहिनोरी । सुमति के आयो पौरी ॥
चेतन ॥ २ ॥

मन मटकी में करुणा केसरि सुरग रंगोलो घोरी । प्रेम मई पिचकारी में भर छिडके धर्म का धोरी । करे आनन्द किलकोरी
चेतन ॥ ३ ॥

अध्यातम शुभ अतर लगाके ज्ञान गुलाल सलोरी । नाथूराम जिन भक्त गाय गुण आतम सुयश भलोरी । पद्य योवत शिव कोरी

॥ चेतन ॥ ४ ॥

होली (२)

ऐसी फाग स्वपर हितकारी । खेलत क्यों ना अवसर पाय खिलारी
टेक । वसु विधि के तरु भव कानन में दीर्घ कटोले भारी ।
दृढ मिथ्यात्व मूल के धारी काटो ज्ञान कुठारी ॥ खेलत ॥ १ ॥
पूर्व बध क्रिया जोईंधन अति होरी विस्तारी ॥
सो अब शुक्ल ध्यान पावक से भस्म करोधी धारी ॥ खेलत ॥ २ ॥
करुणा केसर का रंग कर भरिप्रेम मई पिचकारी ।
छिडको जग जीवों के ऊपर हर्ष सहित नर नारी । खेलत ॥ ३ ॥
आत्म गुण शुभ अतर अनुपम हृदय लगा शुभकारी ॥
नाथूराम जिन भक्त देख आगम होय शिव प्यारी ॥ खेलत ॥ ४ ॥

होली (३)

निज पर के हित काज। श्रीगुरु होरी खेलें। ॥ टेक ॥
काठ आठ विधि के संचय को जानत थे सुख साज।
सो लखि हेय ध्यान पावक से जाला सर्व समाज। श्रीगुरु० ॥ १
पातिक पंक निकास धाम से निर्मल रहे है विराज।
वारि विराग धारि अघ मल का नाश किया ऋषि राज।
श्रीगुरु० ॥ २ ॥
शिव रमणी से फाग खिलन को धारा तप शिर ताज।
ज्ञान गुलाल छाय रहो तन पर दुंदुभी ध्वनि रही बाज
श्रीगुरु० ॥ ३ ॥
निज गुण गान करत सम्यक रस लीन गरीब निवाज।
नाथूराम जो ऐसी होरी खेलें लहैं शिव राज।
श्रीगुरु० ॥ ४ ॥

होली (४)

सुमति चिदानन्द को देय ताना। निज रंग का तुम मर्म न जाना।
॥ टेक ॥ कुमति कुटिल कुलटा गृह जाके पाप पंक में निज
तन साना। निज० ॥ १ ॥
अधरम धूर पूरि शिर ऊप सुनत कुयश कुवचन नितनाना ॥२॥
मिथ्या मत मदिरा मद माता घर २ फिरत अधम सुख माना।
निज० ॥ ३ ॥
नाथूराम दु ख धाम फाग जो बुधि जन ताहि सुनो मत काना।
निज० ॥ ४ ॥

होली (५)

चेतनि निज रंग सरसाना। ॥ टेक ॥
शिव रमनी के साथ रमन को अति मन में हुलसाना। दुविधि
परिग्रह भार डारि के शिव पथ किया है पयाना। वने यासे
शिवराना। चेतन० ॥ १ ॥
तप गज पर आरूढ़ मग मुक्ति पुरी को जाना। मोहादिक
भट मार रतन को संयम सार [illegible] ठेनाना। धर्म धनु गहि दृढ़
पाना। चेतन० ॥ २ ॥

विनय वचन वाजित्र विविधि के लगत सुहावने काना। ज्ञान गुलाल दशो दिशि छायो आनन्द अतर लगाना। विविधि शिव त्रिय गुण गाना चेतन ॥ ३ ॥
कर्म काष्ट दहि भर्म भस्म को उडादयो लहिज्ञाना। नाथूराम जिन भक्त शक्ति सम ऐसी फाग रचाना। फेर भव भ्रमण न आना। चेतन ॥ ४ ॥

होली (६)

फाग अधो गति कारी। शठ खेलें खिलारी। ॥ टेक ॥
जैसे श्वान लखत पर पातल जूठी होत सुखारी। त्यों शठ पर नारी को देखत देत हर्षि कर गारी ॥ शठ ॥ १ ॥ पापपङ्क में लिपट कुयश खर पर शठ करत सवारी ॥ घर २ फिरत अमान जगति में करत आपनी ख्वारी ॥ शठ ॥ २ ॥ गर्व गुलाल छाय रही तन पर अविनय अतर लगारी ॥ मुख मट की से काढि कुवच रंग डारत भर पिचकारी ॥ शठ ॥ ३ ॥ मोह महा मदिरा पी मानत समधी त्रिय महतारी। नाथूराम जिन भक्त मूढ सो दुर्गति के अधिकारी शठ ॥ ४ ॥

होली (७)

फाग स्व पर हित कारी। भव्य खेलो खिलारी ॥ टेक ॥ विधि बबूल तरु काटि मूल से जो जग में भय कारी ॥ ध्यान धनजय से दहि च्क्षण में भस्म करो धी धारी ॥ भव्य ॥ १ ॥
धर्म राग रंग मन मट की में घोरो आनन्द कारी ॥ दुरिहा जग जीवों पर डारो भरके प्रेम पिचकारी ॥ भव्य ॥ २ ॥ विनय वचन वाजित्र मधुर स्वर वोरो (वजाओ) जन हितकारी ॥ निज गुण गान करो लखि हर्षे प्रेम - सहित शिव नारी ॥ भव्य ॥ ३ ॥ नाथूराम जिनभक्त फ़ाग यह खेलो भवि सु विचारो ॥ आनन्द धाम राम रस पूरण मानो विनय हमारी ॥ भव्य ॥ ४ ॥

भजन

तूतो जीव भ्रमत अनादि से अकेलवा ॥ टेक ॥ नित्य निगोद आदि गृह तेरा, बहुत काल तहा किया बसेरा, चौरासी लख

योनि में फिरा, करत फिरा कहूं सुख नहीं हेगा, महा नृत्य कारी तू तो दीखत नचैलवा । तू तो जीव ॥ १ ॥ भ्रमत २ कुछ थाको-नाहीं, ना उदास किंचित उर माहीं, जोडत ठाठ रास के ताईं । नित्य विषय सेवत चित चाही, फिर २ गहत नरक आदि गैलवा । तू तो जीव ॥ २ ॥ सुगुरु सीख कुछ चित्त न लावे, बार २ तो को समझावे, इन्द्रिय भोग देख ललचावे, दौड २ शठ विष फल खावे, हित अनहित कुछ भासे ना नशैलवा । तू तो जीव ॥ ३ ॥ पूर्व भव कुछ सुकृत कमाया, नर पर्याय लई शुभ काया, अति उत्तम आर्य कुल पाया, नाथूराम जिन भक्त सुहाया, गहु प्रभु शरण तरण की है बेलवा ॥ तू तो जीव० ॥ ४ ॥

तथा (२)

बिन सत गुरु को लगावे शिव गैलवा । ॥ टेक ॥
खल कुगुरुन मोहि बहु भटकाया, भ्रमत फिरा निज ज्ञान न पाया अब विश्वास हृदय मम आया, सतगुरु ने शिव पंथ बताया यही मग कर्मों के फंदों का सुरझैलवा ॥ बिन सत गुरु० ॥ १ ॥
कीला जब काला पन त्यागे, पारस पडि सरस जब लागे । त्यों गुरु वचन सुनत भ्रम भागे, मोह नींद तजि आतम जागे । लहत सुबोध तजे सो बद फैलवा ॥ बिन सत गुरु० ॥ २ ॥
सत गुरु बिन उर ज्ञान न होवे, हृदय दाग धोबी किम धोवे । मोह वारुणी पी जो सोवे, ज्ञान सार बिन लगे न जोवे खोवे शठ समय हया ही बना बैलवा ॥ बिन सत गुरु० ॥ ३ ॥
नाथूराम शिक्षा उर धरिये यासे फिर भवसिंधु न परिये गुरु वच पोत विषे थिति करिये, अगम अतट भवसागर तरिये । बीता चिरकाल अब नचत नचैलवा ॥ बिन सत गुरु० ॥ ४ ॥

तथा (३)

डोलै जीव दर दर को सनेह बनो बैलवा ॥ टेक ॥
करी निशि भार वहै जग ना उसास गहै भूख नीर प्यास सहै, शीत उष्ण आदि दहै सहै दुख कासे कहै कौन है बटैलवा ॥ डोलै ॥ १ ॥
नर पर विवेक त्यागि ... से रहो ऐं लागि, विषय सुख अनुरागि,

सेवे निशि दिन पागि, हाथ सेल गावे आगि, ताको को बुझैलवा ॥ डोले ॥२॥
गुरु सीख माने नाहीं, मूढ मति डर माहीं, धिक २ तेते तोई;
बनो तू कुमति सांई, पडी मोह परछाई यासे तू हठैलवा ॥ डोले ॥३॥
पाया शुभ देश काल, कुल, बल धन माल, अब जो बने तू बाल,
काहे ना करे सम्हाल, नाथूराम नृप पाल जीवों का रखैलवा ॥४॥

तथा (४)

चेतो जीव काहे को करत बद फैलवा ॥ टेक ॥
आपनो स्वभाव तजो पर परभाव सजो, कब हू न आपा भजो,
यह तोह कहा छजो, याही से तू लजो, न गहत शिव गैलवा ॥ चेतो ॥१॥
कुविसन सेवे नित्त, गांठि का गमावे वित्त, या में तेरा कहा हित्त,
जा में नित्त राखे चित्त, लाज मरें मातापिता देखें तुझे छैलवा ॥ चेतो ॥२॥
ऐसा नर जनम सार, पाय हो न वार २, यासे गुरु सीख धार, तरो
भवोदधि पार, तजो परिग्रह भार, जैसे तन मैलवा ॥ चेतो ॥३॥
नाथूराम जिन भक्त, काहे को बनो अशक्त, तन मन कर व्यक्त,
हिय में धरो सम्यक्त, पाया यह सार वक्त देखो शिव शैलवा ॥ चेतो ॥४॥

सामन (१)

सामन आये, चेतनि नहीं आये। मोहे कुमति कुनारि ॥ टेक ॥
पंच करन रस प्याय के, स्ववश किये कर प्यार। सामन ॥ १ ॥
घन वर्षत भीगी धरा, जलता हृदय हमार ॥ सामन ॥ २ ॥
सुमति सदा मग योवती, कब आवें भरतार ॥ सामन ॥ ३ ॥
नाथूराम शोकित खडी, सुमति विरह के भार ॥ सामन ॥ ४ ॥

तथा (२)

आतम हित नित कीजिये। सीख सुगुरु की मान ॥ टेक ॥
यह संसार असार है, रंभास्थंभ समान।
हृदय शून्य या में रचें, हेय गिने मतिमान ॥ आतम ॥ १ ॥
तन धन यौवन रूप ये, जल बुद बुद उनमान।
विनशत वार न लागही, यह निश्चय जिय जान ॥ आतम ॥ २ ॥
तात मात सुत भ्रात ये, तरु खग सम पहिचान।
सांझ बसें सब आय के, पुनि उडिजांय विहान ॥ आतम ॥ ३ ॥

चौरासी लख योनि में, भ्रमत भयो हैरान।
नाथूराम प्रभु शरण ले, जो चाहे कल्याण॥ आतम॥ ४॥

तथा (३)

सुगुरु दरश कब होयगी, मोमन यह अभिलाष ॥ टेक॥
पावस निशि तम छाइयो, वर्षत जलधर घोर।
निश्चल ठाढे तरु तले, डसत कीट चहुंओर॥ सुगुरु॥ १॥
झंझा वायु चले महा, ठाढे नग्न शरीर।
अचल ध्यान धरि वन विषें, मानो गिरिपति धीर। सुगुरु॥ २॥
घन गरजें चमकें छटा, वज्रपात अति होय।
गिरि तडकें कंपे धरा, दृढ तिष्टें गुरु सोय। सुगुरु॥ ३॥
ऐसे गुरु पद पद्म पर, रहत सदा आशक्त।
मन वच तन श्रद्धा सेन, नाथूराम जिन भक्त। सुगुरु॥ ४॥

सामन में कवित्त (१)

जलधर नभ घोर करत, सघन विंदु अविनि परत, जग का आताप हरत थल वन हरि आयोरी॥ चिदानंद मेरा पति, क्षमा शील आरज अति, कुमति कुटिल मोह मद्य प्या के विलमायोरी॥ सर सरिता पूरित जल, हरितांकुर शोभित थल, निशि दिन तरु बर्द्धत दल, नभ मंडप छायोरी॥ प्रीतम वसि कुमति धाम, मेरा शाखि तजो नाम सामन, चलि आयो मन भामन ना आयोरी॥ १॥

दामिनि नभ दमकति, गिरि तडकत पडि वज्र पात चातिक मन मुदित नचत केकी हर्षायोरी॥ ता समये प्रीतम विन आली ना साता क्षण विपदा अधियारी निशि अति भय उपजायोरी॥ नाथूराम पावस ऋतु, जग जन मन धरत मोद, ता समये सुमति नारि, अति दुःख दरशायोरी। हा हा कलि काल कुमति पिया को सु प्यारी भई, सामन चलि आयो, मन भामन ना आयोरी। २॥

भजन (१)

भरवन भीड़ सदा भइ वन में । टेक॥

बसो अनादि निगोद मझारी, थावर काय एकेंद्रीपन में।
भटकत ॥ १ ॥
क्रम २ विकलत्रय रु असैनी, पशु पंचेंद्रिय वा नरकन में।
भटकत ॥ २ ॥
भोग भूमि सुर तन संयम बिन, व्यर्थ तथा नरभव मलेच्छन में।
भटकत ॥ ३ ॥
नाथूराम अब लहि आर्य कुल, सफल करो न परो विषयन में।
भटकत ॥ ४ ॥

भजन (२)

भ्रमण करत मुनिजन कानन में ॥ टेक ॥

ग्रीष्म मेरु शिखर तप तपते, वर्षा वृक्ष तले घन बन में।
भ्रमण ॥ १ ॥
शीत काल तट सर सरिता के, निश्चल ध्यान मगन निज मन में।
भ्रमण ॥ २ ॥
दुविधि परिग्रह त्यागि तपो धन, सहत परीषह चंड अग्नि में।
भ्रमण ॥ ३ ॥
नाथूराम अति सौम तिन्हें लखि बन पशु खाज खुजावत तन में।
भ्रमण ॥ ४ ॥

भजन (३)

प्रभु तुम वैद्य जगति हित कारी ॥ टेक ॥

जन्मन मरण जरा त्रिदोष से दुःखी सब हि संसारी।
तुम वचनामृत पान करत ही, नाश होत भव के दुःख भारी ॥
प्रभु० ॥ १ ॥
सम्यक सौंफ रत्न त्रय त्रिफला, मिरच महाव्रत कारी।
समति सोठ पच लौन पचगुरु, पीपल परणति शुद्ध सुधारी ॥
प्रभु० ॥ २ ॥
दिच्चा दाख दयादि धर्म दश नाना औषधि सारी।
भव गद घाता शिव सुख दाता वैद्य शिरोमणि तुम सु विचारी ॥
प्रभु० ॥ ३ ॥

नाथुराम जिन भक्त दास की यह बिनती इस बारी।
अवि नाशी पद दीजे जन को मैंटो भव गद व्यथा हमारी॥
प्रभु० ॥ ४ ॥

उपदेशी पद (१)

कठिन भवि हो। फिर मिलना नर काय ॥ टेक ॥
आर्य क्षेत्र और उत्तम कुल मत संगति सुख दाय। कठिन ॥१॥
तन निरोग संयोग लब्धि का सहज मिलो है आय। कठिन ॥२॥
क्या तू दु:ख दुर्गति के भूलो। फिर तहां को ललचाय। कठिन ॥३॥
नाथूराम यह धाम न तेरा, तू शिवपुर का राय। कठिन ॥४॥

तथा (२)

सुगुरु बच हो, क्यों न सुने मन लाय। ॥ टेक ॥
या माया का गर्व तुझे है। सो कुलटा न रहाय। सुगुरु ॥१॥
मधु माखी सम जोडि मरोगे। आखिर संग न जाय। सुगुरु ॥२॥
अब सु कार्य में या को खर्चो। तो सेवे नित आय। सुगुरु ॥३॥
नाथूराम जिन भक्त तुझे क्या हित अनहित न दिखाय। सुगुरु ॥४॥

तथा (३)

कहत गुरु हो बार बार समझाय ॥ टेक ॥
धर्म बिना धन नाहक जैहै। स्वार्थ में न लगाय। कहत ॥१॥
या जीवन का कौन भरोसा। क्षण क्षण छीजे काय। कहत ॥२॥
कालि करे सो आज ही करले, तज तृष्णा अधिकाय। कहत ॥३॥
नाथूराम कृपण की माय। भूप जमाई खाय। कहत ॥४॥

तथा (४)

समझ मन हो। क्यों खोवे दिन बादि ॥ टेक ॥
या पुद्गल से नेह लगाके। भटको काल अनादि। समझ ॥१॥
हा वत्सलास्म तू हप (धर्म) भूलो। तासे तो को खादि। समझ ॥२॥
धर्म बिना को रक्षक जग में जो सुनि है। फ़र्यादि। समझ ॥३॥
नाथूराम जिन भक्त जपो प्रभु। क्या लपटी मुख गादि। समझ ॥४॥

तथा (५)

सुने हैं। यह विषय अधिकाय। । टेक।

जा माया से रे। तू हित चाहे हो। सो उलटी दुःखदाय। सुभि है॥१॥
जाके भ्रम में रे तू त्रय भूला हो। धर्म बचन न सुहाय। सुभि है॥२॥
या माया ने रे, बहुत ठगे हैं हो। नर्क दये पहुचाय। सुभि है॥३॥
नाथूराम क्या रे। चेत नहीं है हो। दुर्लभ नर पर्याय। सुभि है॥४॥

इष्ट प्रार्थना (१)

पाये स्वामी मैं तो आज शिव सुख दानोरे। दीजे नाथ दिहा इच्छा मन में समानो रे। ॥ टेक ॥

जगहित कारो, वानि तुम्हारी, सहज विमल शीतल जिमि पानी रे। पाये ॥ १ ॥

भव दुःख भारो, आप लखारो, ता की मैं प्रभु कहीं क्या कहानी रे। पाये ॥ २ ॥

हे जग त्राता, मेटो असाता, तुम पद सेय वरीं शिव रानी रे। पाये ॥ ३ ॥

भव दुःख घाता, तुम हो विधाता, नाथूराम श्रद्धा उर आनी रे। पाये ॥ ४ ॥

अन्य पद फुटकर (१)

वसु विधि दुःख निधि शत्रु महा भट तिन वश कष्ट सहैं नित प्रानी ॥ टेक ॥

ये ही घातक हैं निज सुख के ये ही कुमति कुगति दुःख दानी।
इन ही के आश्रय अनादि से जीव सहैं नाना विधि हानी
वसु० ॥ १ ॥

नित्य निगोद बसा अनादि से तहां के दुःख की कौन कहानी।
एक स्वास में बार अठारह जन्म धरें कहैं केवल ज्ञानी। वसु ॥ २ ॥

नर्क त्रिपंच प्रगट हो दुःख मय सुर नर कुछ साता रस सानी।
सो भी विनाशीक क्षण भंगुर विधि वश मोही जिय रति मानी
वसु० ॥ ३ ॥

तप कर नाश किया इन का तिन क्षण में जाय वरी शिव रानी।
नाथूराम जिन भक्त धन्य वे जिन की महिमा वेद बखानी॥
वसु ॥ ४ ॥

जयवन्तो वर्तो ऐसे गुरु जिन शिव मग पद धारा।
नाथूराम जिन भक्त सुगुरु का लागत दर्शन प्यारा। गुरु॥ ४॥

तथा (५)

तुम दर्शन लखि कुमति गई जी, मोहि गति आनन्द भयो हो॥टेक॥
भ्रमत २ इस भव बन माहीं, काल अनादि गयो हो। तुम॥ १॥
और कुदेवन की सेवा से भव भव दुःख लयो हो। तुम॥ २॥
सुयश अखंड सुना अब धारा भक्तनि स्व पद दयो हो। तुम॥ ३॥
नाथूराम तुम चरण कमल को दो कर जोड नवो हो। तुम॥ ४॥

तथा (६)

मन उपजत मोद दर्शन देख तुम्हारे। ॥ टेक॥
जैसे रंक पाय चिंतामणि मानत आनन्द भारे। मन॥ १॥
भव भव का दुःख भूल गया मैं देखत बदन पियारे। मन॥ २॥
मिथ्या तिमर फटो सम्यक्त रवि प्रगट भयो घट म्हारे। मन॥ ३॥
नाथूराम जिन भक्त सिद्धि अब होंहिं कार्य सारे। मन॥ ४॥

वेद (१)

मैं तो आया शरण त्रिजगपति के। ॥ टेक॥
वसु विधि अरि नित मोहि सतावें, दूर करो इन को इति के। मैं तो॥ १॥
भव सागर से पार उतारो, नाशो दुःख चारों गति के। मैं तो॥२॥
तुम से क्या दुःख गाय सुनाऊं, धारक आप विमल मति के। मैं तो॥ ३॥
नाथूराम जिनभक्त निहोरें बार २ चरणों नति के। मैं तो॥ ४॥

देश की ठुमरी (१)

स्वधन सम्हारो हो बुधिवान। ॥ टेक॥
त्रिभुवन पति हो बनत भिखारी, खोवत अपना मान।
निज धन भूल विषय वश भोंदू मागत घर २ दान। स्वधन॥ १॥
दर्शन ज्ञान चरण रत्नत्रय सम्यक युत उर आन।
इन से अजर अमर अविनाशी पावो पद निर्वान। स्वधन॥ २॥

निज धन बोध बिना अनादि से रहे दीन अनजान।
पंच परावर्तन में भटके लहो न सुःख निदान। स्वधन ॥ ३ ॥
अब गुरु सीख धरो निज लक्ष्मी जाय वरो शिव थान।
नाथूराम जिन भक्त भयो अब पुण्य उदय बलवान। स्वधन ॥४॥

तथा (२)

ज्ञानी देखो आप स्वरूप। ॥ टेक ॥
चेतन चिन्ह ज्ञान दृग गुण युत, अव्याबाध अनूप।
वर्णादिक जड रूप न तेरा, तू चिन्मय चिद्रूप। ज्ञानी ॥ १ ॥
विधि वश वास करत पुदगल में, ज्यों बन्दी गृह भूप।
या से भिन्न रूप नित तेरा, ज्यों छाया से धूप। ज्ञानी ॥ २ ॥
काठ बांस पाषाण में पावक, गुप्त रहे तद्रूप।
त्यों पुदगल में जीव विराजत, ज्ञान कला का तूप। ज्ञानी ॥ ३ ॥
ज्यों कण से तुष भुस छतिकादिक, भिन्न करत है सूप।
नाथूराम त्यों जानत ज्ञानी, स्वातम से वपु कूप। ज्ञानी ॥ ४ ॥

गज़ल (१)

वचन गुरु के श्रवण धारो सदा कल्याण कारी है ॥ टेक ॥
कुसंगति भूल ना कीजे, करे शिशु सा अनारी है।
नशे सब दूर से त्यागो व्यथा के धाम भारी है। वचन० ॥१॥
उचक्का चोर ठग जुअरो, तथा वदमाश ज्वारी है।
उन्हों के पास मत बैठो, पुरुष बालक क्या नारी हैं। वचन० ॥२॥
वचन मिथ्या तजो प्यारे, कुवच पापाधि कारी है।
इन्हें सब ही बुरा कहते जो मुख से देत गारी है। वचन० ॥३॥
तजो तुम बानि चुगली की, वचन अप्रतीति कारी है।

और देव सब स्वारथी हैं, चाहत अपना मान। मेरे० ॥१॥
तुम निज गुण दातार हो जी दीजे निज गुण दान। मेरे० ॥२॥
देत न तुम गुण घटत हैं जी तुम अगाय गुणवान। मेरे० ॥३॥
नाथूराम ज्यों दीप से जी जोयत दीप महान। मेरे० ॥४॥

दादरा (२)

सो प्रभु बिन कौन हरे भव पीरा। ॥ टेक ॥
काल अनंत भ्रमत जग बीता भुगतत कष्ट गहीरा। सो मेरे० ॥१॥
पंच परावर्तन में भटका नाना धारि शरीरा। सो मेरे० ॥२॥
सुख को साथी सर्व जगति में कोई न दुःख में सीरा। सो मेरे० ॥३॥
जब से सुयश सुना प्रभु थारा आया मन को धीरा। सो मेरे० ॥४॥
नाथूराम को भवसागर से खेय करो प्रभु तीरा। सो मेरे० ॥५॥

दादरा (३)

कौन तुमसा स्वामी, त्रिजगपति। ॥ टेक ॥
सुर नर खग मुनि तुम यश गावत, ध्यावत पद शिव गामी।
त्रिजग पति ॥ १ ॥
तुम मुख चन्द्र लखत मन हर्षत, ज्यों चकोर लखि धामी।
त्रिजग पति ॥ २ ॥
और कुदेव कुगति के दाता, विषय पोषक कामी।
त्रिजगपति ॥ ३ ॥
नाथूराम शिवधाम के दाता, तुम त्रिभुवनपति नामी।
त्रिजग पति ॥ ४ ॥

दादरा (४)

तुम जगति हितकारी सो मेरे प्रभु। ॥ टेक ॥
काम धेनु सुर तरु चिंतामणि, सरवरि नाहिं तुम्हारी।
सो मेरे० ॥ १ ॥
बिन कारण तुम बंधु जगति के, छाया बिरद जग भारी।
सो मेरे० ॥ २ ॥
अब जन को अविचल सुख दीजे, आपदा हरि सारी।
सो मेरे० ॥ ३ ॥
नाथूराम जन कर जोड़े भणिये विनय हमारी।
सो मेरे० ॥ ४ ॥

पद हिंसा त्याग को (१)

हिंसा पाप करै भव ताप हनै पर आप अधोगति कारी ॥ टेक ॥
वृष द्रुम दाहक, भवरथ वाहक, अपगुण ग्राहक सुहृद कटारी ।
दुर्मति तरुणि, मिलावन दूती, भ्रम तम जनन यामिनी कारी ।
हिंसा ॥ १ ॥
पंच परावर्तन पथ अंकन, क्रोध सुता खल गण हृद प्यारी ।
अनर्घ सूल मूल शुभ गति मग शिवपुर द्वार शिला दृढ भारी ।
हिंसा० ॥ २ ॥
जप तप संयम शीलाम्बुज हिम पुष्प लता दृढ वज्र कुठारी ।
बोध वित्त हर नगर नायका, करुणा कपि टोड़ी अनिवारी ।
हिंसा० ॥ ३ ॥
सुयश सिंधु शोषण वडवानल, क्रूर भावदों चंड बयारी ॥
जग जन भय उपजावन डाकिन आपदा खानि प्राण अपहारी ।
हिंसा० ॥ ४ ॥
नीरद गिरि भंजन को उल्का, दुष्कृत बीज बोवन को नारी ।
कृत कारित अनुमोदन मन वच काय तजो हिंसा सुविचारी ॥
हिंसा ॥ ५ ॥
पावक कमल सर्प सुख अमृत भये न शीत न होय कदारी ।
माणकराम त्यौं हो हिंसा से होय न धर्म सुनो नर नारी ॥
हिंसा० ॥ ६ ॥

मृषा त्याग पद (१)

मृषा हानि अघ खानि दोष दुख दानि जानि सो तजो धी धारी ॥ टेक ॥
पुण्य सरोज दहन हिम. शुभ गुण सुर द्रुम छेदन वज्र कुठारी ।
कुयश मूल उत्पति दनुज रथ, भरम तम रजनि पावस अंधियारी ।
मृषा० ॥ १ ॥

प्रीति प्रतीति नीति घन भंजन प्रबल समीर सबल अनिवारी।
कपट मूल बुधि चक्षु धूल धन धर्म हरण गणिका ठग हारी॥
मृषा० ॥ ४ ॥

विसनो मूढ लबार अधम नर वितथ वाणि लागत तिन प्यारी।
ज्यों पुरीष बाइस बराह स्वानादि भखन रुचि अंत: भारी। मृषा० ॥५॥
रुद्रभूत ब्राह्मण, नरेशवसु असत् भाषि अति भये दु:खारी।
राज लोक वृषनिद्य अनृत वच नाथूराम तजो सुविचारी। मृषा०॥६॥

कुंडलिया

धिक पंडित कलि काल के पापी भये नगैल।
परत्रिय रत क्रोधी छली मान मत्त ज्यों बैल॥
मान मत्त ज्यों बैल मांस मधु भक्षण करते।
गांजा चर्श तमाल मदक आफू आदरते॥
नाथूराम जिन भक्त पियें जो नित्य सुरादिक।
मिथ्या ग्रंथ बनाय बनें पण्डित तिनको धिक॥ १ ॥

कवित्त

पंडित काहू की जाति नहीं जो मूढ हू जाति का गर्व धरें।
पंडित काहू का नाम नहीं जो मूढनि को पंडित उचरें॥
ज्ञान कला जिनके प्रगटी हिय आतम तत्व विचार करें।
पंडित नाथूराम कहैं तिनको जो स्वपर अघताप हरें॥ १ ॥
पंच विषय पंचेंद्रिन के तिनको दमि के मन शुद्ध करें।
डिगै न त्रिय लखि चित्त कभी अपकीर्ति से बहु जाम डरें॥
तजें कुपथ सुपथ सजें परमात्म का हिय ध्यान धरें।
पंडित नाथूराम कहै तिन को जो भवोदधि पार तरें॥ २ ॥

भजन धन्यवाद (६४)

मुदित हम नर भव का फल पाया। ॥ टेक ॥
मात पिता ने द्रव्य खर्च कर शाला को पहुंचाया। गुरु महाराज कृपा अति करके रुचि से हमहिं पढ़ाया॥ १ ॥ गणित व्याकरण आदि विषय सब तिनको अति समझाया। फुर्ती और बलिष्ट करन ड्रिल कसरत को करवाया॥२॥ विद्या रहित मनुज पशु सम हैं यों गुरु हमहिं लखाया। नाथूराम अब हम उर आनन्द दिन २ बढत सवाया॥ ३ ॥

॥ इति ॥

विज्ञापन.

शुभचिन्तक में ज्ञानानन्द रत्नाकर की कीमत ।) छपी है परन्तु पुस्तक में ।/) है इस का कारण यह है कि पहिले जो पेज अनुमान किये गये थे उस से छपते समय अब सवाये होगये परन्तु पाई पेजका नियम वही कायम है इस बात को समझ के ग्राहक लोग क्षमा करेंगे ॥

कमीशन का नियम.

१ पुस्तक पर कुछ न मिलेगा
२ पुस्तकों पर /) मिलेगा.
१।) की पुस्तकों पर ‌‌/)६ मिलेगा.
२॥) की पुस्तको पर ।/) मिलेगा.
५) की पुस्तको पर ॥/) मिलेगा.
१०) को पुस्तकों पर १॥) मिलेगा.
२०) की पुस्तको पर ३॥) मिलेगा.
२५) की पुस्तकों पर ५) मिलेगा.
इस से अधिक के लेनेवाले पत्र भेज खास नियम ठहरा लेवें

सूचना

डाक महसूल व वली पार्सल वेल्यू पेबिल का खर्चा खरीददार के जिम्मे रहेगा जो कमीशन लेगा यदि हमारा नौकर लेकर जायगा तो डाक महसूल के समान उस को खर्चा देना होगा मनी आर्डर वेल्यू पेबिल का न लगेगा ॥

द: नाथूराम ग्रन्थकर्त्ता

विज्ञप्तिः।

निम्नलिखितानि पुस्तकानि साधु संशोध्य सीसकाक्षरैः पुनरस्माभिर्मुद्रितानि, येषां जिघृक्षा स्यात्तैरस्माकं सविधे प्रार्थनीयानि ॥

संख्या	पुस्तकानि	मूल्यम् रु०	आ०	पा०
१	भैरवी [कारकान्ता] शब्दरत्नव्याख्या	२	०	०
२	प्रश्नवैष्णवः	०	८	०
३	परिभाषेन्दुशेखरः भैरवीसहितः	१	४	०
४	अर्थसंग्रहः कौमुदीव्याख्यायुतः	१	८	०
५	वृद्धिदीपिका [धर्मशास्त्रे आशौचकाण्डम्]	०	२	०
६	तत्त्वबोधिनी	४	०	०
७	काशिकावृत्तिः [cancelled]			
८	गायत्रीतन्त्रम्	०	८	०
९	स्वर्णाकर्षणभैरवपञ्चाङ्गम्	०	४	०
१०	धातुपाठः	०	२	०
०	"चौखम्बा-संस्कृत ग्रन्थमाला" प्रतिखण्डम्	१	०	०
	कारिकावली मुक्तावली दिनकरी रामरुद्री [शब्दखण्डमात्रम्]	१	४	०
	प्राकृत प्रकाशः	०	८	०

अन्यानि कानि चित्पुस्तकान्यपेक्षितानि चेदस्मत्कार्यालयस्य बृहत्सूची आणकार्धं संप्रेष्य द्रष्टव्या ॥

कार्य्याध्यक्षः

चौखम्बासंस्कृतपुस्तकालयस्य
काशी (बनारस सिटी)

श्रीगणेशाय नमः ।

प्राकृतप्रकाशः ।

जयति मदमुदितमधुकरमधुररुताकलनकूणितापाङ्गः ।
करविहितगण्डकण्डूविनोदसुखितो गणाधिपतिः ॥ १ ॥
वररुचिरचितप्राकृतलक्षणसूत्राणि लक्ष्यमार्गेण ।
बुद्ध्वा चकार वृत्तिं संक्षिप्तां भामहः स्पष्टाम् ॥ २ ॥

आदेरतः ॥ १ ॥ आ समृद्ध्यादिषु वा ॥ २ ॥ इदीषत्पक्वस्वप्नवेतसव्यजनमृदङ्गाऽङ्गारेषु ॥ ३ ॥ लोपोऽरण्ये ॥ ४ ॥ ए शय्यादिषु ॥ ५ ॥ ओ बदरे देन ॥ ६ ॥ लवणनवमल्लिकयोर्वेन ॥ ७ ॥

अधिकारोऽयम् । यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः आदेरतः स्थाने तद्भवतीत्येवं वेदितव्यम् । आदेरित्येतदा परिच्छेदसमाप्तेः । अत इति तपरग्रहणं सवर्णनिवृत्त्यर्थम् ॥ १ ॥ समृद्धि इत्येवमादिषु शब्देष्वादेरकारस्याकारो भवति वा । समिद्धी सामिद्धी । पअडं पाअडं । अहिजाई आहिजाई । मणंसिणी माणंसिणी । पडिवआ पाडिवआ । सरिसं सारिसं । पडिसिद्धी पाडिसिद्धी । पसुत्तं पासुत्तं । पसिद्धी पासिद्धी । अस्सो आस्सो । समृद्धि, प्रकट, अभिजाति, मनस्विनी, प्रतिपदा, सदृश, प्रतिसिद्धि, प्रसुप्त, प्रसिद्धि, अश्व ।

मयूरमयूखयोर्व्वा वा ॥८॥ चतुर्थीचतुर्दश्योस्तुना॥९॥ अदातो यथादिषु वा ॥ १० ॥ इत्सदादिषु ॥ ११॥ इत एत् पिण्डसमेषु ॥ १२ ॥ अत् पथिहरिद्रापृथिवीषु ॥ १३ ॥ इतेस्तः पदादेः ॥ १४ ॥ उदिक्षुवृश्चिकयोः ॥१५॥ ओ च द्विधा कृञः ॥१६॥ ईत् सिंहजिह्वयोश्च ॥ १७ ॥ इदीतः पानीया-

---

मयूर मयूख इत्येतयोर्यूशब्देन सहादेरत ओत्वं वा भवति ॥ मोरो मऊरो । मोहो मऊहो ॥ ८ ॥ एतयोस्तुना सहादेरत ओत्वं भवति वा ॥ चोत्थी चउत्थी । चोद्दही चउद्दही ॥ ९ ॥ अत इति निवृत्तम् । यथा इत्येवमादिषु आतः स्थाने अकारादेशो भवति वा । जह जहा । तह तहा । पत्थरो पत्थारो । पउअं पाउअं । तलवेण्टअं तालवेण्टअं । उक्खअं उक्खाअं । चमरं चामरं । पहरो पहारो । चडु चाडु । दवग्गी दावग्गी । खइअं खाइअं । संठविअं संठाविअं । हलिओ हालिओ । यथा तथा प्रस्तार प्राकृत तालवृन्तकोत्खात चामर प्रहर चाटु दावाग्नि खादित संस्थापित हालिकाः ॥ १० ॥ सदा इत्येवमादिष्वात इकारो भवति वा ॥ सइ सआ । तइ तआ । जइ जआ । सदा तदा यदा ॥११॥ पिण्ड इत्येवंसमेषु इकारस्यैकारादेशो भवति वा ॥ पेण्डं पिण्ड णेद्दा णिद्दा सेंदूरं सिंदूरं धम्मिल्लं धाम्मिल्लं चेंधं चिंधं वेण्हू विण्हू पेट्ठं पिट्ठं । पिण्ड निन्द्रा सिन्दूर धम्मिल्ल चिन्ह विष्णु पिष्टानि । समग्रहणं संयोगपरस्योपलक्षणार्थम् ॥१२॥ पथ्यादिषुशब्देषु इकारस्याकारो भवति ॥ पहो हलद्दा पुहवी ॥ १३ ॥ पदादेरितिशब्दस्य यस्तकारस्तस्मात् परस्येकारस्य अकारो भवति । इअ उह अण्णह वअणं । इअ विअसन्तीउ चिरं । इति पश्यतान्यथावचनम् । इति विकसन्त्यश्चिरम् । पदादेरिति वचनादिह न भवति । पिओत्ति । प्रिय इति ॥ १४ ॥ इक्षुवृश्चिकयोरित उत्वं भवति । उच्छू । विच्छुओ ॥ १५ ॥ कृञ्धातुप्रयोगे द्विधाशब्दस्यौकारो भवति चकारादुत्वं च । द्विधा कृतम् दोहाइअं । द्विधा क्रियते दोहाइज्जइ दुहाइज्जइ ॥१६॥ एतयोरादेरिकारस्य ईकारो भवति । सीहो जीहा । चकारो ऽनुक्तसमुच्चयार्थे , तेन वीसत्थ वीसभं

दिषु ॥ १८ ॥ एन्नीडापीडकीदृगीदृशेषु ॥ १९ ॥ उत ओत् तुण्डरूपेषु॥ २० ॥उलूखले ल्वा वा॥२१॥ अन्मुकुटादिषु ॥ २२ ॥ इत्पुरुषे रोः ॥ २३ ॥ उद्-तो मधूके॥२४॥अद् दुकूले वा लस्य द्वित्वम्॥२५॥ एन्नूपुरे ॥२६॥ ऋतो ऽत् ॥२७॥ इदृष्यादिषु ॥२८॥ उदृत्वादिषु ॥ २९ ॥ ऋ रीति ॥ ३० ॥

इत्येवमादिषु ईत्वं भवति ॥ १७ ॥ पानीय इत्येवमादिष्वादेरीकारस्य इकारो भवति । पाणिअं अलिअं तआणिं करिसो दुइअं तइअं गहिरं । पानीयाऽलीकतदानींकरीषद्वितीयतृतीयगभीराः ॥ १८ ॥ नीडादिष्वीकारस्यैकारो भवति । णेड्डं आपेडो केरिसो एरिसो ॥१९॥ तुण्ड इत्येवंरूपेषु आदेरुकारस्यौकारो भवति । तोण्डं मोत्ता पोक्खरो पोत्थओ लोद्धओ कोट्टिमं । तुण्डमुक्तापुष्करपुस्तकलुब्धककुट्टिमानि । रूपग्रहणं संयोगपरोपलक्षणार्थम् ॥२०॥ उलूखलशब्दे लेन सह उकारस्यौकारो भवति वा । ओक्खलं उलूहलं ॥ २१ ॥ मुकुट इत्येवमादिष्वादेरुकारस्य स्थाने अकारो भवति । मउडं मउलं गरुई जहिट्ठिलो सोअमल्लं अवरि । मुकुटमुकुलगुर्वीयुधिष्ठिरसौकुमार्योपरि ॥२२॥ पुरुषशब्दे रो रुकारस्य इकारो भवति ।

मयूरमयूखयोर्व्वा वा ॥८॥ चतुर्थीचतुर्दश्योस्तुना॥९॥ अदातो यथादिषु वा ॥ १० ॥ इत्सदादिषु ॥ ११॥ इत एत् पिण्डसमेषु ॥ १२ ॥ अत् पथिहरिद्रापृथिवीषु ॥ १३ ॥ इतेस्तः पदादेः ॥ १४ ॥ उदिक्षुवृश्चिकयोः ॥१५॥ ओ च द्विधा कृञः ॥१६॥ ईत् सिंहजिह्वयोश्च ॥ १७ ॥ इदीतः पानीया-

---

मयूर मयूख इत्येतयोर्यूशब्देन सहादेरत ओत्वं वा भवति ॥ मोरो मऊरो। मोहो मऊहो ॥ ८ ॥ एतयोस्तुना सहादेरत ओत्वं भवति वा ॥ चोत्थी चउत्थी। चोद्दही चउद्दही ॥ ९ ॥ अत इति निवृत्तम्। यथा इत्येवमादिषु आतः स्थाने अकारादेशो भवति वा। जह जहा। तह तहा। पत्थरो पत्थारो। पउअं पाउअं। तलवेण्टअं तालवेण्टअं। उक्खअं उक्खाअं। चमरं चामरं। पहरो पहारो। चडु चाडु। दवग्गी दावग्गी। खइअं खाइअं। संठविअं संठाविअं। हलिओ हालिओ। यथा तथा प्रस्तार प्राकृत तालवृन्तकोत्खात चामर प्रहर चाटु दावाग्नि खादित संस्थापित हालिकाः ॥ १० ॥ सदा इत्येवमादिष्वात इकारो भवति वा ॥ सइ सआ। तइ तआ। जइ जआ। सदा तदा यदा ॥११॥ पिण्ड इत्येवंसमेषु इकारस्यैकारादेशो भवति वा ॥ पेण्डं पिण्डं णेद्दा णिद्दा सेंदूरं सिंदूरं धम्मिल्लं धाम्मिल्लं चेंधं चिंधं वेण्हू विण्हू पेट्ठं पिट्ठं। पिण्ड निन्द्रा सिन्दूर धम्मिल्ल चिन्ह विष्णु पिष्टानि। समग्रहणं संयोगपरस्योपलक्षणार्थम् ॥१२॥पथ्यादिषुशब्देषु इकारस्याकारो भवति॥ पहो हलद्दा पुहवी ॥ १३ ॥ पदादेरितिशब्दस्य यस्तकारस्तस्मात् परस्येकारस्य अकारो भवति। इअ उह अण्णह वअणं। इअ विअसन्तीउ चिरं। इति पश्यतान्यथावचनम्। इति विकसन्त्यश्चिरम्। पदादेरिति वचनादिह न भवति। पिओत्ति। प्रिय इति ॥ १४ ॥ इक्षुवृश्चिकयोरित उत्वं भवति। उच्छू। विच्छुओ ॥ १५ ॥ कृञ्धातुप्रयोगे द्विधाशब्दस्यौकारो भवति चकारादुत्वं च। द्विधा कृतम् दोहाइअं। द्विधा क्रियते दोहाइज्जइ दुहाइज्जइ ॥१६॥ एतयोरादेरिकारस्य ईकारो भवति। सीहो जीहा। चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थ, तेन वीसत्थ वीसभं

दिषु ॥ १८ ॥ एन्नीडापीडकीदृगीदृशेषु ॥ १९ ॥ उत ओत् तुण्डरूपेषु ॥ २० ॥ उलूखले ल्वा वा ॥ २१ ॥ अन्मुकुटादिषु ॥ २२ ॥ इत्पुरुषे रोः ॥ २३ ॥ उदूतो मधूके ॥ २४ ॥ अद् दुकूले वा लस्य द्वित्वम् ॥ २५ ॥ एन्नूपुरे ॥ २६ ॥ ऋतो ऽत् ॥ २७ ॥ इदृष्यादिषु ॥ २८ ॥ उदृत्वादिषु ॥ २९ ॥ ऋ रीति ॥ ३० ॥

इत्येवमादिषु ईत्वं भवति ॥ १७ ॥ पानीय इत्येवमादिष्वादेरीकारस्य इकारो भवति । पाणिअं अलिअं तआणि करिसो दुइअं तइअं गहिरं । पानीयाऽलीकतदानींकरीषद्वितीयतृतीयगभीराः ॥ १८ ॥ नीडादिष्वीकारस्यैकारो भवति । णेडं आपेडो केरिसो एरिसो ॥ १९ ॥ तुण्ड इत्येवंरूपेषु आदेरुकारस्यौकारो भवति । तोण्डं मोत्ता पोक्खरो पोत्थओ लोद्धओ कोट्टिमं । तुण्डमुक्तापुष्करपुस्तकलुब्धककुट्टिमानि । रूपग्रहणं संयोगपरोपलक्षणार्थम् ॥ २० ॥ उलूखलशब्दे लेन सह उकारस्यौकारो भवति वा । ओखलं उलूखलं ॥ २१ ॥ मुकुट इत्येवमादिष्वादेरुकारस्य स्थाने अकारो भवति । मउडं मउलं गरुइ जहिट्ठिलो सोअमल्लं अवरि । मुकुटमुकुलगुरुगुर्वीयुधिष्ठिरसौकुमार्योपरय ॥ २२ ॥ पुरुषशब्दे यो रुस्तस्य इकारो भवति । पुरिसो ॥ २३ ॥ मधूकशब्दे ऊकारस्य उकारो भवति । महुअं ॥ २४ ॥ दुकूलशब्दे ऊकारस्याकारो भवति वा, तत्संयोग लकारस्य द्वित्वम् । दुअल्लं दुऊलं ॥ २५ ॥ नूपुरशब्दे ऊकारस्य एकारो भवति । णेउरं ॥ २६ ॥ आदेर्ऋकारस्याकारो भवति । तणं घणा मअं कअं वड्ढो वसहो । तृणघृणाऽमृतकृतवृद्धवृषभाः ॥ २७ ॥ ऋष्यादिषु शब्देषु आदेर्ऋकारस्य इकारो भवति । इसी विसी गिट्ठि दिट्ठि सिट्ठि सिङ्गारो हिअंको भिङ्गो भिङ्गारो हिअअं विइणाहो विहअं किसरो किच्चा विच्छुओ सिआलो किई किसी । ऋषिवृषिगृष्टिदृष्टिसृष्टिशृङ्गारमृगाङ्कभृङ्गभृङ्गारहृदयवितृष्णबृंहितकृशरकृत्यावृश्चिकशृगालकृतिकृपिकृपा ॥ २८ ॥ ऋतु इत्येवमादिषु आदेर्ऋत उकारो भवति । उदू मुणालो पुहवी वुंदावणं पाउसो पउत्ती णिउदं संवुदं णिव्वुदं वुत्तंतो परहुओ मा-

वृक्षे वेन रुर्वा ॥ ३१ ॥ ऌ क्लृप्तइलिः ॥ ३२ ॥ एत इद्वेदनादेवरयोः ॥ ३३ ॥ ॥ ऐत एत् ॥ ३४ ॥ दैत्यादिष्वइ ॥ ३५ ॥ दैवे वा ॥ ३६ ॥ इत्सैन्धवे ॥ ३७ ॥ ईद् धैर्ये ॥ ३८ ॥ ओतोद्वा प्रकोष्ठे कस्य वः ॥ ३९ ॥ औत ओत् ॥ ४० ॥ पौरादि-

---

उओ जामाउओ। ऋतु, मृणाल, पृथिवी, वृन्दावन, प्रावृष्, प्रवृत्ति, निवृत, संवृत, निर्वृत्त, वृत्तान्त, परभृत, मातृक, जामातृक, इत्येवमादयः ॥ २९ ॥ वर्णान्तरेणायुक्तस्यादेर्ऋकारस्य रिकारो भवति। रिणं रिद्धो रिच्छो। क्व चिद्युक्तस्यापि। वर्णान्तरेण युक्तस्यापि क्व चिदृकारस्य रिकारो भवति। एरिसो सरिसो तारिसो ॥ ३० ॥ वृक्षशब्दे वशब्देन सह ऋकास्य रुकारो भवति वा। रुक्खो वच्छो। व्यवस्थितविभाषाज्ञापनाच्छत्वपक्षे न भवति खत्वपक्षे तु नित्यमेव भवति ॥ ३१ ॥ क्लृप्तशब्दे लृकारस्य इलीत्ययमादेशो भवति। किलित्तं। तदेवमादेशान्तरविधानात्प्राकृते ऋकारऌकारौ न भवत.॥३२॥ वेदनादेवरयोरेकारस्य इकारो भवति। विअणा दिअरो। वाग्रहणानुवृत्तेः क्व चिद् वेअणा देअरो इत्यपि ॥ ३३ ॥ आदेरैकारस्य एकारो भवति। सेलो सेत्तं एरावणो केलासो तेल्लोक्कं। शैलशैत्यैरावणकैलासत्रैलोक्यानि ॥ ३४ ॥ दैत्यादिषु शब्देषु ऐकारस्य अइ इत्ययमादेशो भवति। दइच्चो चइत्तो भइरवो सइरं वइरं वइदेसो वइदेहो कइअवो वइसाहो वइसिओ वइसंपाअण। दैत्यचैत्रभैरवस्वैरवैरवैदेशवैदेहकैतववैशाखवैशिकवैशम्पयनाः। इत्यादयः ॥ ३५ ॥ दैवशब्दे ऐकारस्य अइ इत्ययमादेशो भवति वा। दइव्वं देव्वं। अनादेशपक्षे नीडादित्वाद् द्वित्वम् ॥ ३६ ॥ सैन्धवशब्दे ऐकारस्य इकारो भवति। सिंधवं ॥ ३७ ॥ धैर्यशब्दे ऐकारस्य ईकारो भवति। धीरं ॥ ३८ ॥ प्रकोष्ठशब्दे ओकारस्य अकारो भवति वा तत्संयोगेन च ककारस्य वत्वम्। पवट्ठो। पओट्ठो ॥ ३९ ॥ औकारस्यादेरोकारो भवति। कोमुई जोव्वणं कोत्थुहो कोसंबी। कौमुदी यौवनम् कौस्तुभ. कौशाम्बी ॥ ४० ॥ पौर इत्येवमादिषु शब्देषु औकारस्य अउ इत्ययमा-

ष्वउ ॥ ४१ ॥ आ च गौरवे ॥ ४२ ॥ उत्सौन्दर्यादिषु ॥ ४३ ॥

इति वररुचिकृतप्राकृतसूत्रेषु अज्विधिर्नाम प्रथमः परिच्छेदः ॥

अथ द्वितीयः परिच्छेदः ।

अयुक्तस्यानादौ ॥ १ ॥ कगचजतदपयवां प्रायो लोपः ॥ २ ॥

देशो भवति । पउरो कउरवो पउरिसो । पौरकौरवपौरुषाणि । आकृतिगणोयम् । कौशले विकल्पः ‡ । कोसलो कउसलो । कौशलम् ॥४१॥ गौरवशब्दे औकारस्य आकारो भवति । चकारादुत्वं च ॥ गारवं गउरवं ॥ ४२ ॥ सौन्दर्य इत्येवमादिषु औकारस्य उकारो भवति । सुन्देरं मुञ्जाअणो सुण्डो कुक्खेअओ दुव्वारिओ ॥ सौन्दर्यमौञ्जायनशौण्डकौक्षेयकदौवारिका. ॥ ४३ ॥

इति भामहविरचिते प्राकृतप्रकाशे प्रथम परिच्छेद ॥

अधिकारो ऽयम् । इत उत्तरं यद्वक्ष्यामस्तदयुक्तस्य व्यञ्जनस्यानादौ वर्तमानस्य कार्यं भवतीत्येवं वेदितव्यम् । वक्ष्यति कादीनां लोपः । मउडं । अयुक्तस्येति किम् । अग्घो अक्को । आनादौ इति किम् । कमलं । अयुक्तस्येत्या परिच्छेदसमाप्ते. । अनादाविति च आ जकारविधानात् ॥ १ ॥ कादीनां नवानां वर्णानामयुक्तानामनादौ वर्तमानानां प्रायो बाहुल्येन लोपो भवति । कस्य तावत्, मउलो णउलं । गस्य, साअरो णअरं । चस्य, वअणं सूई । जस्य, गओ रअदं । तस्य, कअं विआण । दस्य, गआ मओ । पस्य, कई विउलं सुउरिसो । पुरिस इति यद्यपि उत्तरपदस्य पुरुषशब्दस्यादिस्तथापि लोपो भवतीत्यनेन ज्ञापयति वृत्तिकार. यथा उत्तरपदादिरनादिरेवेति । यस्य, वाउ णअणं । वस्य, जीअं दिअहो । मुकुलनकुलसागरनगरवचनसूचीगजरजतकृतवितानगदामदकपिविपुलसुपुरुषवायुनयनजीवदिवसाः । प्रायोग्रहणाद्यत्र श्रुतिसुखमस्ति तत्र न भवत्येव । सुकुसुमं पिअग-

यमुनायां मस्य ॥ ३ ॥ स्फटिकनिकषचिकुरेषु कस्य हः ॥ ४ ॥ शीकरे भः ॥ ५ ॥ चन्द्रिकायां मः ॥ ६ ॥ ऋत्वादिषु तो दः ॥ ७ ॥ प्रतिसरवेतसपताकासु डः ॥ ८ ॥ वसतिभरतयोर्हः ॥ ९ ॥ गर्भिते णः ॥ १० ॥ ऐरावते च ॥ ११ ॥ प्रदीप्तकदम्बदोहदेषु दो लः ॥१२॥ गद्गदे रः ॥१३॥ संख्यायाञ्च ॥ १४ ॥ पो वः ॥ १५ ॥ आपीडे

मणं सचावं अवजलं अतुलं आदरो अपारो अजसो सवहुमाणं। सुकुसुमप्रियगमनसचापापजलातुलादरापारायशस्सबहुमानानि। अयुक्तस्येत्येव। सक्को मग्गो। शक्रः मार्गः। अनादावित्येव। कालो गंधो। कालः गन्धः ॥ २ ॥ यमुनाशब्दे मकारस्य लोपो भवति। जउणा ॥ ३ ॥ अनादाविति वर्तते। एषु कस्य हकारो भवति॥ लोपापवादः। फरिहो णिहसो चिहुरो ॥ ४ ॥ शीकरशब्दे ककारस्य भकारो भवति। सीभरो। चन्द्रिकाशब्दे ककारस्य मकारो भवति। चंदिमा ॥ ६ ॥ ऋतु इत्येवमादिषु तकारस्य दकारो भवति। उदू रअदं आअदो णिव्वुदी आउदी संवुदी सुइदी आइदी हदो संजदो विउदं संजादो संपदि पिडवद्दी। ऋतुरजतागतनिर्वृत्यावृतिसंवृतिसुकृत्याकृतिहतसंयतविवृतसंयातसंप्रतिप्रतिपत्तयः ॥ ७ ॥ एषु शब्देषु तकारस्य डकारो भवति। लोपापवादः। पडिसरो वेडिसो पडाआ॥८॥ वसतिभरतशब्दयो सकारस्य हकारो भवति। वसही भरहो ॥ ९ ॥ गर्भितशब्दे तकारस्य णकारो भवति। गब्भिणं ॥ १० ॥ ऐरावतशब्दे तकारस्य णकारो भवति। एरावणो ॥११॥ एषु शब्देषु दकारस्य लकारो भवति। पलित्तं कलंबो दोहलो ॥ १२ ॥ गद्गदशब्दे दकारस्य रेफादेशो भवति। गग्गरो ॥ १३ ॥ संख्यावाचिनि शब्दे यो दकारस्तस्य रेफादेशो भवति। एआरह वारह तेरह। एकादश द्वादश त्रयोदश। अयुक्तस्येत्येव। नेह चउद्दह ॥ १४ ॥ पकारस्यायुक्तस्यानादिवर्तिनो वकारादेशो भवति। सावो सवहो उलवो। शापः शपथः उलप.। प्रायोग्रहणाद्यत्र लोपो न भवति तत्रायं विधि ॥ १५ ॥ आ-

मः ॥१६॥ उत्तरीयानीययोर्ज्जो वा ॥१७॥ छायायां हः ॥ १८ ॥ कबन्धे बो मः ॥१९॥ टो डः ॥२०॥ सटाशकटकैटभेषु ढः ॥ २१ ॥ स्फटिके लः ॥२२॥ डस्य च ॥२३॥ ठो ढः ॥२४॥ अङ्कोले ल्लः ॥२५॥ फो भः ॥२६॥ खघथधभां हः ॥२७॥ प्रथमशिथिलनिषधेषु ढः ॥२८॥ कैटभे वः ॥२९॥ हरिद्रादीनां रो लः ॥३०॥

———

पीडशब्दे पकारस्य मकारो भवति । आमलो ॥ १६ ॥ उत्तरीयशब्दे ऽनीयप्रत्ययान्ते च यस्य ज्जो भवति वा । उत्तरीअं उत्तरिज्जं रमणीअं रमणिज्जं भरणीअं भरणिज्जं ॥ १७ ॥ छायाशब्दे यकारस्य हकारो भवति । छाहा ॥ १८ ॥ कवन्धशब्दे वकारस्य मकारो भवति । कमंधो ॥ १९ ॥ टस्यानादिदिवर्तिनो डकारो भवति । णडो विडवो ॥२०॥ एतेषु टकारस्य ढकारो भवति । सढा केढवो ॥ २१ ॥ स्फटिकशब्दे टकारस्य लकारो भवति । फलिहो ॥ २२ ॥ डकारस्यायुक्तस्यानादिभूतस्य लकारो भवति । दालिमं तलाअं वलही । प्राय इत्येव । दाडिमं वडिसं णिविडो ॥ २३ ॥ ठकारस्यायुक्तस्यानादिभूतस्य ढकारो भवति । मढं जढरं कढोरं ॥ २४ ॥ अङ्कोलशब्दे लकारस्य ल्लकारो भवति । अंकोल्लो ॥ २५ ॥ फकारस्यायुक्तस्यानादिभूतस्य भकारो भवति । सिभा सेभालिआ सभरी सभलं ॥ २६ ॥ खादीनाम्पञ्चानामयुक्तानामनादिवर्तिनां हकारो भवति । खस्य तावत्, मुहं मेहला । घस्य, मेहो गाहा सवहो । धस्य, राहा वहिरो । भस्य, सहा रासहो । प्राय इत्येव, पखलो पलंवणो अधीरो अधणो उवलद्धभावो । मुखम् मेखला मेघः गाथा शपथः राधा वधिरः सभा रासभ. प्रखलः प्रलम्बन. अधीर. अधन उपलब्धभाव ॥ २७ ॥ एतेषु थधयोर्ढकारो भवति । पढमो सिढिलो ॥२८॥ कैटभशब्दे भकारस्य वकारो भवति । केढवो ॥ २९ ॥ हरिद्रा, इत्येवमादीनां रेफस्य लकारो भवति । हलद्दा चलणो मुहलो जहिट्ठिलो सोमालो कलुणं अंगुली इंगालो चिलादो फलिहा फलिहो । हरिद्रा, चरण, मुखर, युधिष्ठिर, सुकुमार, करुण, अङ्गुरी, अङ्गार, किरात, परिखा, परिघ, इत्येवमादय ॥३०॥ अना-

आदेर्यो जः ।३१।यष्ट्यां लः ।३२।किराते चः।३३।कुब्जे खः ॥३४॥ दोलादण्डदशनेषु डः ॥३५॥ परुषपलितपरिखासु फः॥३६॥पनसे ऽपि॥३७॥बिसिन्यां भः॥३८॥ मन्मथे वः॥३९॥ लाहले णः॥४०॥ षट्शावकसप्तपर्णानां छः ॥४१॥ नो णः सर्वत्र ॥४२॥शषोः सः॥४३॥ दशादिषु हः ॥ ४४ ॥ संज्ञायां वा ॥ ४५ ॥ दिवसे सस्य ॥४७॥ स्नुषायां ण्हः ॥ ४७ ॥

देरिति निवृत्तम्। आदिभूतस्य यकारस्य जकारो भवति ॥ जट्ठी जसो जक्खो। यष्टि यश यक्ष ॥३१॥ यष्टिशब्दे यकारस्य लकारो भवति लट्ठी ॥ ३२ ॥ किरातशब्दे आदेर्वर्णस्य चकारो भवति। चिलादो ॥ ३३ ॥ कुब्जशब्दे आदेर्वर्णस्य खकारो भवति। खुज्जो॥३४॥ एषु आदेर्वर्णस्य डकारो भवति ॥ डोला डंडो डसणो ॥ ३५ ॥ एतेषु आदेर्वर्णस्य फकारो भवति । फरुसो फलिहो फलिहा ॥ ३६ ॥ पनसशब्दे ऽपि पकारस्य फकारो भवति। फणसो ॥३७॥ बिसिनीशब्दे आदेर्वर्णस्य भकारो भवति। भिसिणी । स्त्रीलिङ्गनिर्देशादिह न भवति। बिसं ॥ ३८ ॥ मन्मथशब्दे आदेर्वर्णस्य वकारो भवति। वम्महो ॥ ३९ ॥ लाहलशब्दे आदेर्वर्णस्य णकारो भवति। णाहलो॥४०॥ एतेषामादेर्वर्णस्य छकारो भवति। छट्ठी छम्मुहो छावओ छत्तवण्णो। षष्ठी षण्मुख शावक सप्तपर्ण ॥ ४१ ॥ आदेरिति निवृत्तम्। सर्वत्र नकारस्य णकारो भवति। णई कणअं वअणं माणंसिणी ॥४२॥ सर्वत्र शकारषकारयोस्सकारो भवति ॥ शस्य,सद्दो णिसा अंसो। षस्य, संठो वसहो कसाअं ॥ ४३ ॥ दश इत्येवमादिषु शकारस्य हकारो भवति। दह एआरह बारह तेरह ॥ ४४ ॥ संज्ञायां गम्यमानायां वा दशशब्दे शस्य हत्वं भवति। दहमुहो दसमुहो, दहबलो दसबलो, दहरहो दसरहो ॥ ४५ ॥ दिवसशब्दे सकारस्य हकारो भवति। दिअहो ॥ ४६ ॥ स्नुषाशब्दे षकारस्य ण्हकारो भवति। सोण्हा ॥ ४७ ॥

इति प्राकृतप्रकाशे द्वितीय परिच्छेद ॥

अथ तृतीयः परिच्छेदः।

उपरिलोपः कगडतदपषसाम् ॥ १ ॥ अधो मनयाम् ॥ २ ॥ सर्वत्र लवराम् ॥ ३ ॥ द्रे रो वा॥४॥ सर्वज्ञतुल्येषु ञः ॥ ५ ॥ श्मश्रुश्मशानयोरादेः ॥६॥ मध्याह्ने हस्य ॥७॥ ह्नह्लह्मेषु नलमां स्थितिरूर्ध्वम् ॥ ८ ॥ युक्तस्य ॥ ९ ॥ ष्टस्य ठः ॥ १० ॥ अस्थनि ॥ ११ ॥ स्त-

---

कादीनामग्रानां युक्तस्योपरि स्थितानां लोपो भवति । कस्य तावत् भत्तं,सित्थओ । गस्य,मुद्धो सिणिद्धो । डस्य,खम्भो । तस्य,उप्पलं उप्पाओ । दस्य,मुग्गा मुग्गरो । पस्य,सुत्तो । षस्य, गोट्ठी णिट्ठुरो । सस्य, खलिअं णेहो । भक्तम् सिक्थकम् मुग्धः स्निग्धः खड्गः उत्पलम् उत्पात मुद्गाः मुद्गर सुप्त गोष्ठी निष्ठुर स्खलितम् स्नेह ॥ १ ॥ मकारनकारयकाराणां युक्तस्याध स्थितानां लोपो भवति । मस्य, सोस्सं रस्सी जुग्गं वग्गी । नस्य, णग्गो । यस्य, सोम्मो जोग्गो ॥ २ ॥ लकारवकाररेफाणां युक्तस्योपर्यध स्थितानां लोपो भवति । लस्य,उक्का वक्कलं विक्कवो । वस्य,लुद्धओ पिक्कं । रस्य,अक्को सक्को ॥ उल्का वल्कलम् विक्लव लुब्धक पक्वम् । अर्क शक्र ॥ ३ ॥ द्रशब्दे रेफस्य वा लोपो भवति । दोहो द्रोहो चन्दो चन्द्रो रुद्दो रुद्रो॥ सर्वज्ञतुल्येषु ञकारस्य लोपो, भवति । सव्वज्जो । इंगिअज्जो । जानातेर्यान्येवं रूपाणि तत्र ञलोप ॥ ५ ॥ श्मश्रुश्मशानयोरादेर्वर्णस्य लोपो भवति । मस्सु मसाणं ॥ ६ ॥ मध्याह्नशब्दे हकारस्य लोपो भवति । मज्झण्णो ॥ ७ ॥ ह्न ह्ल ह्म इत्येतेषु अध स्थितानां नकारलकारमकाराणां स्थितिरूर्ध्वमुपरिष्टाद्भवति । ह्नस्य,पुव्वण्हो । अवरण्हो । ह्लस्य, अल्हादो । ह्मस्य बम्हणो ॥ ८ ॥ अधिकारोऽयमा परिच्छेदसमाप्ते ,यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामो युक्तस्येत्येवं वेदितव्यम्। वक्ष्यति अस्थनि अट्ठी । युक्तग्रहणं हलोऽन्त्यस्य मा भूत् ॥ ९ ॥ ष्ट इत्येतस्य युक्तस्य ठकारो भवति । लट्ठी दिट्ठी ॥ १० ॥ अस्थिशब्दे युक्तस्य ठकारो भवति। अट्ठी ॥११॥ स्तशब्दस्य थकारो

स्य थः ॥ १२ ॥ न स्तम्बे ॥ १३ ॥ स्तम्भे खः ॥ १४ ॥ स्थाणावहरे ॥ १५ ॥ स्फोटके ॥ १६ ॥ र्यशय्याभिमन्युषु जः ॥ १७ ॥ तूर्यधैर्यसौन्दर्याश्चर्यपर्यन्तेषु रः ॥ १८ ॥ सूर्ये वा ॥ १९ ॥ चौर्यसमेषु रिअं ॥ २० ॥ पर्यस्तपर्याणसौकुमार्येषु लः ॥ २१ ॥ र्तस्य टः ॥ २२ ॥ पत्तने ॥ २३ ॥ न धूर्तादिषु ॥ २४ ॥ गर्ते डः ॥ २५ ॥ गर्दभसंमर्दवितर्दिविच्छर्दिषु र्दस्य ॥ २६ ॥ त्यथ्यद्यां चछजाः ॥ २७ ॥

भवति । उपरिलोपापवादः । हत्थो समत्थो थुई थवओ कोत्थुहो । हस्तः समस्तः स्तुतिः स्तवक कौस्तुभ. ॥ १२ ॥ स्तम्बशब्दे स्तकारस्य थकारो न भवति । तंबो ॥ १३ ॥ स्तम्भशब्दे स्तकारस्य खकारो भवति । खंभो ॥ १४ ॥ स्थाणुशब्दे युक्तस्य खकारो भवति, अहरे हरेऽभिधेये न भवति । खाणू । अहर इति किम् । थाणू हरो ॥ १५ ॥ स्फोटकशब्दे युक्तस्य खकारो भवति ॥ खोडओ ॥ १६ ॥ र्य इत्यस्य शय्याभिमन्युशब्दयोश्च युक्तस्य जकारो भवति । कज्ज सेज्जा अहिमज्जू ॥ १७ ॥ एतेषु शब्देषु र्यस्य रेफो भवति । तूरं धीरं सुंदेरं अच्छेरं पेरंतं ॥ १८ ॥ सूर्यशब्दे र्यकारस्य रेफादेशो भवति वा । सूरो सूज्जो । ॥ १९ ॥ चौर्यसमेषु शब्देषु र्यस्य रिअमित्यादेशो भवति । चोरिअं सोरिअं वीरिअं । चौर्यशौर्यवीर्याणि । समग्रहणादाकृतिगणोयम् ॥ २० ॥ एषु शब्देषु र्यस्य लकारो भवति । पल्लत्थं पल्लाण सोअमल्लं ॥ २१ ॥ र्त इत्येतस्य टकारो भवति । केवट्टओ णट्टओ णट्टई ॥ २२ ॥ पत्तनशब्दे युक्तस्य टकारो भवति । पट्टणं ॥ २३ ॥ धूर्त इत्येवमादिषु र्त इत्येतस्य टकारो न भवति । धुत्तो कित्ती वत्तमाण वत्ता आवत्तो संवत्तओ णिवत्तओ वत्तिआ अत्तो कत्तरी मुत्ता । धूर्त कीर्ति वर्तमानम् वार्ता आवर्तः संवर्तकः निवर्तक. वर्तिका आर्त. कर्तरी मूर्ति. ॥ २४ ॥ गर्तशब्दे र्तस्य डकारो भवति । गड्डो ॥ २५ ॥ एतेषु र्दस्य डो भवति । गड्डहो संमड्डो विअड्डी विछड्डी ॥ २६ ॥ त्य थ्य द्य इत्येतेषां च छ ज

ध्यह्योर्झः ॥ २८ ॥ ष्कस्कक्षां खः ॥ २९ ॥ अक्ष्यादिषु च्छः ॥३०॥ क्षमावृक्षक्षणेषु वा ॥३१॥ ष्मपक्ष्मविस्मयेषु म्हः ॥ ३२ ॥ ह्नस्नष्णक्ष्णश्नां ण्हः ॥३३॥ चिन्हे न्धः ॥ ३४ ॥ ष्पस्य फः ॥ ३५ ॥ स्पस्य सर्वत्र स्थितस्य ॥ ३६ ॥ सि च ॥ ३७ ॥ बाष्पे अ-

---

इत्येते यथासंख्यं भवन्ति। त्यस्य, णिच्चं पच्चच्छं। थ्यस्य, रच्छा मिच्छा पच्छं। द्यस्य, विज्जा वेज्जं। नित्यम् प्रत्यक्षम् रथ्या मिथ्या पथ्यम् विद्या वैद्य. ॥२७॥ ध्य ह्य इत्येतयोर्झकारो भवति। ध्यस्य,मज्झं अज्झाओ। ह्यस्य,वज्झओ गुज्झओ। मध्यः अध्यायः वाह्यकः गुह्यकः ॥ २८ ॥ ष्कस्कक्षां खकारो भवति। ष्कस्य,सुक्खं पोक्खरो। स्कस्य, खंदो खंधो। क्षस्य, खदो जक्खो ॥ २९ ॥ अक्षि, इत्येवमादिषु क्षकारस्य च्छकारो भवति। अच्छी लच्छी छुण्णो छीरं छुद्धो उच्छित्तो सरिच्छं उच्छू अच्छा छारं रिच्छो मच्छिआ छुअं छुर छेत्तं वच्छो दच्छी कुच्छी। अक्षि, लक्ष्मी, क्षुण्ण, क्षीर, क्षुब्ध, उत्क्षिप्त, सदृक्ष, इक्षु, उक्षन्, क्षार, ऋक्ष, मक्षिका, क्षुत, क्षुर, क्षेत्र, वक्षस्, दक्ष, कुक्षि, इत्येवमादय. ॥३०॥ एतेषु क्षकारस्य छकारो भवति वा। छमा खमा वच्छो रुक्खो छणं खणं। वृक्षशब्दे ऋकारस्याकारे कृते क्षणशब्दे चोत्सवाभिधायिनि छत्वमिष्यते ॥ ३१ ॥ ष्म इत्येतस्य पक्ष्मविस्मयशब्दयोश्च युक्तस्य म्हकारो भवति ॥ ष्मस्य, गिम्हो उह्मा पम्हो विम्हओ ॥ ग्रीष्म ऊष्म पक्ष्म विस्मयः ॥ ३२ ॥ हनादीनां ण्ह इत्ययमादेशो भवति। ह्नस्य, वण्ही सण्हु। स्नस्य, ण्हाणं पण्हुदं ष्णस्य, विण्हु कण्हो। क्ष्णस्य, सण्हं तिण्हं। श्नस्य, पण्हो सिण्हो। वह्नि. जह्नुः स्नानम् प्रस्नुतम् विष्णु. कृष्ण श्लक्ष्णः तीक्ष्णम् प्रश्नः शिश्न ॥ ३३ ॥ चिन्हशब्दे युक्तस्य न्ध इत्ययमादेशो भवति। चिन्धं ॥ ३४ ॥ ष्प इत्येतस्य फ इत्ययमादेशो भवति। पुप्फं सप्फं णिप्फाओ ॥ पुष्पम् शष्पम् निष्पाप ॥ ३५ ॥ स्प इत्येतस्य सर्वत्र स्थितस्य फ इत्ययमादेशो भवति। फंसो फंदणं। स्पर्शः स्पन्दनम् ॥३६॥ स्पस्य क्व चित् सि इत्ययमोशो भवति। पाडिसिद्धी प्रतिस्पर्द्धी। ॥ ३७ ॥ बाष्पशब्दे ष्प इत्येतस्य हकारो भवति अश्रुणि वाच्ये। बा-

श्रुणि हः ॥ ३८ ॥ कार्षापणे ॥ ३९ ॥ श्चत्सप्सां छः ॥ ४० ॥ वृश्चिके ञ्छः ॥ ४१ ॥ नोत्सुकोत्सवयोः ॥ ४२ ॥ न्मो मः ॥ ४३ ॥ म्नज्ञपञ्चाशत्पञ्चदशेषु णः ॥ ४४ ॥ तालवृन्ते ण्टः ॥ ४५ ॥ भिन्दिपाले ण्डः ॥ ४६ ॥ विह्वले भह्नौ वा ॥ ४७ ॥ आत्मनि पः ॥ ४८ ॥ क्मस्य ॥ ४९ ॥ शेषादेशयोर्द्वित्वमनादौ ॥ ५० ॥ वर्गेषु

हो । अश्रुणि किम् । बप्फो उप्फो । वाष्पः ऊष्मा ॥ ३८ ॥ कार्षापणशब्दे युक्तस्य हकारो भवति । काहावणो ॥ ३९ ॥ एतेषां छकारो भवति । श्चस्य, पच्छिमं अच्छेरं । त्सस्य, वच्छो वच्छरो । प्सस्य, लिच्छा जुगुच्छा । पश्चिम आश्चर्यम् वत्सः वत्सरः लिप्सा जुगुप्सा ॥ ४० ॥ वृश्चिकशब्दे श्चकारस्य ञ्छ इत्ययमादेशो भवति । विञ्छुओ ॥ ४१ ॥ उत्सुक, उत्सव, इत्येतयो त्स इत्येतस्य छकारो न भवति । श्चत्सप्सां छ इति प्राप्ते प्रतिषिध्यते । उस्सुओ उस्सवो ॥ ४२ ॥ न्म इत्येतस्य म इत्ययमादेशो भवति । अधोलोपे प्राप्ते । जम्मो मम्महो । जन्म मन्मथ ॥ ४३ ॥ म्न ज्ञ इत्येतयोः पञ्चाशत्पञ्चदशशब्दयोश्च युक्तस्य णकारो भवति । म्नस्य, पज्जुण्णो । ज्ञस्य, जण्णो विण्णाणं पण्णासा पण्णरहो । प्रद्युम्नः यज्ञ विज्ञानम् पञ्चाशत् पञ्चदश ॥ ४४ ॥ तालवृन्ते युक्तस्य ण्ट इत्ययमादेशो भवति । तालवेण्टअं ॥ ४५ ॥ भिन्दिपालशब्दे युक्तस्य ण्ड इत्ययमादेशो भवति । भिण्डिवालो ॥ ४६ ॥ विह्वलशब्दे युक्तस्य भकारहकारौ भवतो वा । विभलो विहलो ॥ ॥ ४७ ॥ आत्मशब्दे युक्तस्य पकारो भवति । अप्पा ॥ ४८ ॥ क्म इत्येतस्य पकारो भवति । रुप्पं रुप्पिणी । योगविभागो नित्यार्थः ॥ ४९ ॥ युक्तस्य यौ शेषादेशभूतौ तयोरनादौ वर्तमानयोर्द्वित्वं भवति । शेषस्य तावत्, भुत्तं भग्गो । आदेशस्य, लट्ठी दिट्ठी हत्थो । अनादाविति किम् । खलिअं खंभो थवओ भुक्तम् । मार्ग यष्टि दृष्टि हस्त स्खलितम् स्तम्भ. स्तवक. ॥ ५० ॥ युक्तस्य यौ शेषादेशावनादिभूतौ तयोर्द्वित्वेपि विहिते अध ऊर्ध्वे च यौ वर्गेषु वर्णौ द्वितीयश्चतुर्थौ वा

युजः पूर्वः ॥ ५१ ॥ नीडादिषु ॥ ५२ ॥ आम्रताम्रयोर्वः ॥ ५३ ॥ न रहोः ॥ ५४ ॥ आङो ज्ञस्य ॥ ५५ ॥ न विन्दुपरे ॥ ५६ ॥ समासे वा ॥ ५७ ॥ सेवादिषु च ॥ ५८ ॥
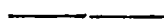
विहितस्वस्य पूर्वः प्रथमस्तृतीयो वा भवति। वर्गेषु युग्मस्य द्वितीयस्य प्रथम चतुर्थस्य तृतीयो द्वित्वेन विधीयते, अयुग्मयोः प्रथमतृतीयपञ्चमरूपयोः शेषादेशयोस्तु तावेव भवतः। शेषस्य, वक्खाणं अग्घो मुच्छा णिज्झरो लुद्धो णिब्भरो। आदेशस्य, दिट्ठी लट्ठी वच्छो विप्फरिसो णित्थारो जक्खो लच्छी अट्ठी पुप्फं। व्याख्यानम् अर्घ. मूर्च्छा निर्झरः लुब्ध. निर्भर दृष्टि यष्टि. वक्ष विस्पर्श निस्तार यक्ष लक्ष्मी अस्थि पुष्पम् ॥ ५१ ॥ नीड इत्येवमादिषु अनादौ वर्तमानस्य च द्वित्वं भवति। णेड्डं एन्नीडापीडेत्यादिना एत्वम्। सोत्तं पेम्मं वाहित्तं उज्जुओ जण्णओ जोव्वणं। नीडम् स्रोत प्रेम व्याहृतम् ऋजु जनक यौवनम् ॥ ५२ ॥ आम्र ताम्र इत्येतयोर्द्वित्वेन वकारो भवति। अव्वं तव्वं ॥ ५३ ॥ रेफहकारयोर्द्वित्वं न भवति। धीरं तूरं जीहा वाहो। धैर्यम् तूर्यम् जिह्वा बाष्प ॥ ५४ ॥ आङ उत्तरस्य ज्ञ इत्येतस्यादेशस्य द्वित्वं न भवति। आणा आणत्ती। आज्ञा आज्ञप्ति। आङ इति किम्। सण्णा। संज्ञा॥५५॥अनुस्वारपरे द्वित्वं न भवति संकंतो संझा। संक्रान्त संध्या ॥ ५६ ॥ समासे शेषादेशयोर्वा द्वित्वं भवति। णइग्गामो णईगामो कुसुमप्पअरो कुसुमपअरो देवत्थुई देवथुई आणालक्खंभो आणालखंभो। नदीग्राम कुसुमप्रकर देवस्तुति आलानस्तम्भ ॥५७॥ सेवा इत्येवमादिषु चानादौ वा द्वित्वं भवति। सेव्वा सेवा एक्कं एअं णक्खो णहो देव्वं दइवं असिव्वं असिवं तेलोक्कं तेलोअं णिहित्तो णिहिओ तुह्णिक्को तुह्णिओ कण्णिआरो कणिआरो दिग्घं दीहं रत्ती राई दुक्खिओ दुहिओ अस्सो असो इस्सरो ईसरो विस्सासो वीसासो णिस्सासो णीसासो रस्सी रसी मित्तो मिओ पुस्सो पुसो। सेवा एक नख दैवम् अशिवम् त्रैलोक्यम् निहितम् तूष्णीक कर्णिकार दीर्घम् रात्रि दुःखित अश्व ईश्वर विश्वास

विप्रकर्षः ॥ ५९ ॥ क्लिष्टश्लिष्टरत्नक्रियाशार्ङ्गेषु तत्स्वरवत्पूर्वस्य ॥ ६० ॥ कृष्णे वा ॥ ६१ ॥ इः श्रीह्रीक्रीतक्लान्तक्लेशम्लानस्वप्नस्पर्शहर्षार्हगर्हेषु ॥ ६२ ॥ अः क्ष्माश्लाघयोः ॥ ६३ ॥ स्नेहे वा ॥ ६४ ॥ उः पद्मतन्वीसमेषु ॥ ६५ ॥ ज्यायामीत् ॥ ६६ ॥

निश्वास रश्मि मित्रम् पुष्प । उभयत्र विभाषेयम् । सेवादीनामप्राप्ते दीर्घादीनां च प्राप्ते ॥ ५८ ॥ अधिकारोऽयम् । आ परिच्छेदसमाप्तेर्युक्तस्य विप्रकर्षो भवति ॥ ५९ ॥ क्लिष्टादिषु युक्तस्य विप्रकर्षो भवति विप्रकृष्टस्य च य पूर्वो वर्णो निरर्थस्तस्य तत्स्वरता भवति तेनैव पूर्वेण स्वरेण पूर्वो वर्ण सार्थो भवति इत्यर्थ । किलिट्ठं सिलिट्ठं रअणं किरिआ सारंगो ॥ ६० ॥ कृष्णशब्दे युक्तस्य वा विप्रकर्षो भवति पूर्वस्य च तत्स्वरता । व्यवस्थिताविभाषेयम् । तेन वर्णे नित्यं विप्रकर्षः विष्णौ तु न भवत्येव ॥ कसणो कण्हो ॥ ६१ ॥ एषु युक्तस्य विप्रकर्षो भवति पूर्वस्य इकार तत्स्वरता च भवति । सिरी हिरी किरीतो किलंतो किलेसो मिलाणं सिविणो फरिसो हरिसो अरिहो गरिहो । श्री ह्री क्रीत क्लान्त क्लेश म्लानम् स्वप्न स्पर्श हर्ष अर्ह गर्ह ॥ ६२ ॥ क्ष्मा श्लाघा इत्येतयोर्युक्तस्य विप्रकर्षो भवति, पूर्वस्य अकारस्तत्स्वरता च भवति । खमा सलाहा ॥ ६३ ॥ स्नेहशब्दे युक्तस्य विप्रकर्षो वा भवति । पूर्वस्य च अकारस्तत्स्वरता भवति । सणेहो णेहो ॥ ६४ ॥ पद्मशब्दे तन्वी इत्येवंसमेषु च युक्तस्य विप्रकर्षो भवति पूर्वस्य च उकारस्तत्स्वरता च भवति । पउमं तणुई लहुई ॥ ६५ ॥ ज्याशब्दे युक्तस्य विप्रकर्षो भवति पूर्वस्य च ईकारस्तत्स्वरता च जीआ ॥ ६६ ॥

इति प्राकृतप्रकाशे युक्तवर्णविधिर्नाम

तृतीय परिच्छेद ॥

अथ चतुर्थः परिच्छेदः ।

सन्धावचामज्लोपविशेषा बहुलम् ॥ १ ॥ उदुम्बरे दोर्लोपः ॥ २ ॥ कालायसे यस्य वा ॥ ३ ॥ भाजने जस्य ॥ ४ ॥ यावदादिषु वस्य ॥ ५ ॥ अन्त्यहलः ॥ ६ ॥ स्त्रियामात् ॥ ७ ॥ रो रा ॥ ८ ॥ न विद्युति ॥ ९ ॥ शरदो दः ॥ १० ॥ दिक्प्रावृषोः

अचामिति प्रत्याहारग्रहणम् अजिति च । सन्धौ वर्तमानानामचां स्थाने अज्विशेषा लोपविशेषाश्च बहुलं भवन्ति । अज्विशेषास्तावत् , जउणअडं जउणाअडं णइसोत्तो णईसोत्तो बहुमुहं बहूमुहं कण्णउरं कण्णऊरं सिरोवेअणा सिरवेअणा पीआपीअं पिआपिअं सीआसीअं सिआसिअं सवोमुओ सवोमूओ सरोरुहं सररुहं । लोपविशेषा , राउलं राअउलं तुहद्धं तुहअद्धं महद्धं महअद्धं वावडणं वाअवडणं कुंभारो कुंभआरो पवणुद्धअं । संयोगपरे सर्वत्र पूर्वस्याचो लोपः क्व चिन्नित्यं क्व चिदन्यदेव बहुलग्रहणात् । तेनान्यदपि लाक्षणिककार्यं भवति ॥ १ ॥ उदुम्बरशब्दे दु इत्येतस्य लोपो भवति । उंबरं ॥२॥ कालायसशब्दे यस्य वा लोपो भवति । कालासं कालाअसं ॥३॥ भाजनशब्दे जकारयस्य लोपो वा भवति । भाणं भाअणं ॥ ४ ॥ यावदित्येवमादिषु वकारस्य वा लोपो भवति । जा जाव ता ताव पाराओ पारावओ अणुत्तन्त अणुवत्तन्त जीअं जीविअं एअं एव्वं एअ एव्व कुअलअं कुवलअं । यावत्, तावत्, पारावत, अनुवर्तमान, जीवित, एवम्, एव, कुवलय इत्येवमादय ॥ ५ ॥ वेति निवृत्तम् । शब्दानां योन्त्यो हल् तस्य लोपो भवति । जसो णह सरो कम्मो जाव ताव । यश नभ सर कर्म यावत् तावत् ॥ ६ ॥ स्त्रियां वर्त्तमानस्यान्त्यहल आकारो भवति । सरिआ पडिवआ वाआ सरित् प्रतिपद् वाक् ॥ ७ ॥ स्त्रियामन्त्यस्य हलो रेफस्य रा इत्ययमादेशो भवति । धुरा गिरा । ॥ ८ ॥ विद्युच्छब्दे आकारो न भवति विज्जू ॥ ९ ॥ शरच्छब्दस्यान्त्यहलो दो भवति । सरदो ॥१०॥ दिक्छब्दस्यान्त्यहल प्रावृट्शब्द-

सः ॥ ११ ॥ मो बिन्दुः ॥ १२ ॥ अचि मश्च ॥१३॥ नञोर्हलि ॥ १४ ॥ वक्रादिषु ॥ १५ ॥ मांसादिषु वा ॥ १६ ॥ ययि तद्वर्गान्तः ॥ १७ ॥ नसान्तप्रावृट्शरदः पुंसि ॥ १८ ॥ न शिरोनभसी ॥ १९ ॥ पृष्ठाक्षिप्रश्नाः स्त्रियां वा ॥२०॥ ओदवापयोः ॥२१॥ तल्त्वयोर्दात्तणौ ॥ २२ ॥

स्यापि सकारो भवति । दिसा पाउसो ॥ ११ ॥ अन्त्यस्य हलो मकारस्य विन्दुर्भवति । अच्छं वच्छं भद्दं अग्गिं दट्ठं वणं धणं ॥ १२ ॥ अचि परतो मो भवति वा । फलमवहरइ फलं अवहरइ ॥ १३ ॥ नकारञकारयोर्हलि परतो बिन्दुर्भवति मकारश्च । नस्य, अंसो अम्सो कंसो कम्सो । ञस्य, वंचणीअं वम्चणीअं विंझो विम्झो ॥ १४ ॥ वक्रादिषु शब्देषु विन्दुरागमो भवति । वंकं तंसं हंसो अंसू मंसू गुंठी मंथं मणंसिणी दंसणं फंसो वण्णं पडिंसुदं अंसो अहिमुंको । वक्र, त्र्यस्र, ह्रस्व, अस्र, श्मश्रु, गृष्टि, मुस्त, मनस्विनी, दर्शन, स्पर्श, वर्ण, प्रतिश्रुत, अश्व, अभिमुक्त, इत्यादय ॥१५॥ मांसादिषु शब्देषु वा विन्दु प्रयोक्तव्य । मंसं मासं कहं कह णूणं णूण तहिं तहि असुं असु, तदयमपठितो मांसादिर्गण यत्र क्व चिद् वृत्तभङ्गभयात् त्यज्यमान क्रियमाणश्च विन्दुर्भवति स मांसादिषु द्रष्टव्य ॥ १६ ॥ ययि परतो विन्दुस्तद्वर्गान्तो वा भवति । सङ्का सङ्खो अङ्को अङ्गं सञ्चरइ सण्ढो सन्तरइ सम्पत्ती । ययीति किम् । अंसो । वाधिकारात् पंकं विंदू संका संखो ॥ १७ ॥ नकारान्ता सकारान्ताश्च प्रावृट्शरदौ च पुंसि प्रयोक्तव्या । नान्ता ,कम्मो जम्मो वम्मो । सान्ता ,जसो तमो सरो पाउसो सरदो ॥ १८ ॥ शिरस नभस् इत्येतौ न पुंसि प्रयोक्तव्यौ । सिरं णहं ॥ १९ ॥ एते स्त्रियां वा प्रयोक्तव्याः । पुट्ठी पुट्ठं अच्छी अच्छं अच्छं पण्हा पण्हो । पृष्टम् अक्षि प्रश्न ॥ २० ॥ अव अप इत्येतयोरुपसर्गयोर्वा ओत्वं भवति । ओहासो अवहासो ओसारिअं अवसारिअं अवहास अपसारितम् । तल् त्व इत्येतयो प्रत्यययोर्य-

तृण इरः शीले ॥ २४ ॥ आल्विल्लोल्लालवन्तेन्ता-मतुपः ॥ २५ ॥ विद्युत्पीताभ्यां लः ॥ २६ ॥ वृन्दे वो रः ॥ २७ ॥ करेण्वां रणोः स्थितिपरिवृत्तिः ॥ २८ ॥ आलाने लनोः ॥ २९ ॥ बृह-

---

थासंख्यं दा त्तण इत्येतावादेशौ स्त । पीणदा मूढदा पीणत्तणं मूढत्तणं ॥ २२ ॥ क्त्वाप्रत्ययस्य ऊण इत्ययमादेशो भवति । घेऊण सोऊण काऊण दाऊण । गृहीत्वा श्रुत्वा कृत्वा दत्त्वा ॥ २३ ॥ शीले यस्तृन् प्रत्ययो विहितस्तस्य इर इत्ययमादेशो भवति । भ्रमणशीलो भमिरो । हसनशीलो हसिरो ॥ २४ ॥ आलु इल्ल उल्ल आल वन्त इन्त इत्येतआदेशा मतुप स्थाने भवन्ति । आलुस्ताव्लू,ईसालू णिद्दालू । इल्ल , विआरिल्लो मालाइल्लो । उल्ल ,विआरुल्लो । आल , धणालो सद्दालो । वन्त , धणवन्तो जोव्वणवन्तो । इन्त , रोसाइन्तो पाणाइन्तो । यथादर्शनमेते प्रयोक्तव्या न सर्वे सर्वत्र । ईर्ष्यावत् निद्रावत् विकारवत् मालावत् धनवत् शब्दवत् यौवनवत् रोषवत् प्राणवत् । क्व चिदा मतुपो ऽन्त्यस्य मन्तौ वा दृश्यते क्व चित् । हणुमा हणुमंतो ॥

> इल्लोल्लावपरे प्रायः शैषिकेषु प्रयुञ्जते । पौरस्त्यं पुरोभवं पुरिल्लं । आत्मीयं अप्पुल्लं ॥ परिमाणे किमादिभ्यो भवन्ति केद्दहादयः ॥ केद्दहं केत्तिअं जेद्दहं जेत्तिअं तेद्दहं तेत्तिअं एद्दहं एत्तिअं ॥ ह्लवसो हुत्त मित्यन्ये देशीशब्दः स दृश्यते ॥

सअहुत्तं सहस्सहुत्तं । जातौ वा स्वार्थिक क * ॥ जातौ स्वार्थे ककार प्रयोक्तव्य ॥ २५ ॥ विद्युत्पीतशब्दाभ्यां परत स्वार्थे लप्रत्ययो भवति । विज्जू विज्जुली पीअं पीअलं ॥ २६ ॥ वृन्दशब्दे वकारात्पर स्वार्थे रेफो वा प्रयोक्तव्य । व्रन्दं वंदं ॥ २७ ॥ करेणुशब्दे रेफणकारयो स्थितिपरिवृत्तिर्भवति । कणेरू । पुंसि न भवति * । करेणू ॥ २८ ॥ आलानशब्दे लकारनकारयोर्हल्मात्रयो स्थितिपरिवृत्तिर्भवति । आणालखंभो ॥ २९ ॥ बृहस्पतिशब्दे वकारहकारयोर्यथा-

ऽपतौ बहोर्भऔ ॥३०॥ मलिने लिनोरिलौ वा ॥३१॥
गृहे घरो ऽपतौ ॥ ३२ ॥ दाढादयो बहुलम् ॥ ३३ ॥

इति चतुर्थः परिच्छेदः ॥

अथ पञ्चमः परिच्छेदः ।

अत ओत् सोः ॥ १ ॥ जश्शसोर्लोपः ॥ २ ॥
अतो मः ॥ ३ ॥ टामोर्णः ॥ ४ ॥

संख्यं भकाराकारौ भवत । भअप्फई ॥ ३० ॥ मलिनशब्दे लिकारनकारयोर्यथासंख्यमिकारलकारौ वा भवत । मइलं मलिणं ॥ ३१ ॥ गृहशब्दे घर इत्ययमादेशो भवति। पतिशब्दे परतो न भवति। घरं भवने। अपताविति किम्। गहवई ॥ ३२ ॥ दाढा इत्येवमादय शब्दा बहुलं निपात्यन्ते दंष्ट्रादिषु। दंष्ट्रा दाढा इदानीं एण्हि। दुहिता धीआ धूदा चातुर्यं चातुलिअं। मण्डूक मण्डूरो गृहे निहितं घरे णिहितं उत्पलं कंदोट्ठो गोदावरी गोला ललाटं णिडालं भ्रू भुमआ वैदूर्य्यं वेलुरिअं उभयपार्श्वं अवहोवासं चूत माइंदो माअंदो । आदिशब्दोयं प्रकारे तेन सर्व एव देशसंकेतप्रवृत्तभाषाशब्दा परिगृहीता ॥ ३३ ॥

इति प्राकृतप्रकाशे संकीर्णविधिर्नाम
चतुर्थ परिच्छेद ॥

अकारन्ताच्छब्दात्परस्य सो स्थाने ओत्वं भवति। वच्छो वसहो पुरिसो। वृक्ष वृषभः पुरुषः ॥ १ ॥ अत इत्यनुवर्तते। आकारान्तस्यानन्तरं यौ जश्शसौ तयोर्लोपो भवति। वच्छा सोहंति । वृक्षाः शोभन्ते। जश्शस्ङस्यांसु दीर्घ इति दीर्घे कृते पश्चाल्लोपो जसः । वच्छे णिअच्छह। वृक्षाणियच्छत। ए च सुपीत्येत्वे कृते शसो लोप ॥ २ ॥ अकारान्तस्यानन्तरं योऽम् द्वितीयैकवचनम् तदकारस्य लोपो भवति। वच्छं पेक्खई। मो विन्दुरिति विन्दु ॥ ३ ॥ अतोनन्तरं टामोस्तृतीयैकवचनषष्ठीबहुवचनयोर्णकारो भवति । वच्छेण वच्छाण। ए च सुपीत्येत्वम्। जश्शस्ङस्यांसु दीर्घ इति दीर्घ ॥ ४ ॥

भिसो हिं ॥ ५ ॥ ङसेरादोदुहयः ॥ ६ ॥ भ्य-सो हिंतो सुंतो ॥ ७ ॥ स्सो ङसः ॥ ८ ॥ ङेरेम्मी ॥ ९ ॥ सुपः सुः ॥ १० ॥ जश्शस्-ङस्यांसु दीर्घः ॥ ११ ॥ ए च सुप्यङिङसोः ॥ १२ ॥ क्व चिद् ङसिङ्योर्लोपः॥१३॥इदु तोः शसो णो॥१४॥ ङसो वा ॥१५॥ जसश्च ओ यूत्वम् ॥ १६ ॥

अतोनन्तरस्य भिसो हिं भवति। वच्छेहिं। ए च सुपीत्येत्वम् ॥ ५ ॥ अतोनन्तरस्य ङसे पञ्चम्येकवचनस्य स्थाने आ, दो, दु, हि, इत्येत-आदेशा भवन्ति। वच्छा वच्छादो वच्छादु वच्छाहि। जश्शस्ङस्यां-सु दीर्घत्वम् ॥ ६ ॥ अतोनन्तरस्य भ्यसो हिंतो सुंतो इत्येतावादे-शौ भवत। वच्छाहिंतो वच्छासुंतो। ए च सुपीति चकारेण दीर्घ-त्वम् ॥ ७ ॥ अतोनन्तरस्य ङस स्स इत्यादेशो भवति। वच्छ-स्स ॥ ८ ॥ अतोनन्तरस्य ङे ए म्मि इत्यादेशौ भवत। वच्छे। क्व चिन्ङसिङ्योर्लोप। वच्छम्मि ॥९॥ अतोनन्तरस्य सुप सु इत्या-देशो भवति। वच्छेसु। ए च सुपीत्येत्वम् ॥ १० ॥ जसादिषु पर-तो ऽतो दीर्घो भवति। वच्छा सोहंति। जश्शसोर्लोप इति जसो लो-प। वच्छादो आगदो वच्छादु वच्छाहि ङसेरादोदुहय। वच्छाण। टामोर्ण ॥ ११ ॥ अतोकारस्यैत्वं भवति सुपि परतो ङिङसौ वर्ज-यित्वा चकाराद्दीर्घश्च। वच्छे पेक्खह। जश्शसोर्लोप। वच्छेण। टामोर्ण। वच्छेहिं वच्छेसु चकाराद्दीर्घश्चेति। वच्छाहिंतो वच्छासुंतो भ्यसो हिंतो सुंतो। अङिङसोरिति किम्। वच्छम्मि वच्छस्स ॥१२॥ अतो ङसि ङि इत्येतयो परत क्व चिल्लोपो भवति। वच्छा आगदो। ङसेरादोदुहय इति आ। वच्छेठिअं ङेरेम्मी इत्येत्वम्॥१३॥ इदुदन्त-योः शसो णो भवति। अग्गिणो पेक्खह। वाउणो पेक्ख ॥ १४ ॥ इदुदन्तयोर्ङसो वा णो भवति। अग्गिणो अग्गिस्स वाउणो वाउस्स अग्ने वायोः॥१५॥इदुदन्तयोर्जस ओकारादेशो भवति इदुतोश्च ईऊत्वं वा चकाराद् णो च। अग्गीओ वाऊओ। अग्गिणो वाउणो ॥ १६ ॥

टा णा ॥ १७ ॥ सुभिस्सुप्सु दीर्घः ॥ १८ ॥
स्त्रियां शस उदोतौ ॥ १९ ॥ जसो वा ॥ २० ॥
अमि ह्रस्वः ॥ २१ ॥ टाङस्ङीनामिदेददातः ॥२२॥
नातोऽदातौ ॥ २३ ॥ आदीतौ बहुलम् ॥ २४ ॥
न नपुंसके ॥ २५ ॥ इज्जश्शसोर्दीर्घश्च ॥ २६ ॥
नामन्त्रणे सावोत्वदीर्घबिन्दवः ॥ २७ ॥

इदुदन्तयोष्टाविभक्तेः णा इत्ययमादेशो भवति । अग्गिणा वाउणा ॥ १७ ॥ इदुदन्तयोः सु भिस् सुप् इत्येतेषु दीर्घो भवति । सु, अग्गी वाऊ । भिस्,अग्गीहिं वाऊहिं। सुप्,अग्गीसु वाऊसु ॥१८॥ स्त्रियां वर्तमानस्य शस उत् ओत् इत्येतावादेशौ भवत । मालाउ मालाओ णईउ णईओ । बहूउ बहूओ ॥१९॥ जस स्त्रियाम् उत् ओत् इत्येतावादेशौ वा भवत. । पक्षे अदन्तवत् । मालाउ मालाओ । माला ॥ २० ॥ अमि परत. स्त्रियां ह्रस्वो भवति । मालं णइं बहुं ॥ २१ ॥ टा, ङस्, ङि, इत्येतेषां स्त्रियाम् इत् एत् अत् आत् इत्येतआदेशा भवन्ति । टा, णईइ णईए णईअ णईआ कअं । ङस्, णईइ णईए णईअ णईआ वणं । ङि, णईइ णईए णईअ णईआ ठिअं ॥ २२ ॥ आत आकारान्तस्य स्त्रीलिङ्गस्यानन्तरं टाङस्ङीनाम् अत्,आत्,इत्येतावादेशौ न भवत. । पूर्वेण प्राप्तो निषिध्यते । मालाइ मालाए कअं धणं ठिअं ॥ २३ ॥ स्त्रियामाकारान्तादात. स्थाने आत् ईत् इत्येतौ बहुलं प्रयोक्तव्यौ । सहमाणा सहमाणी हलद्दा हलद्दी सुप्पणहा सुप्पणही छाहा छाही ॥ २४ ॥ प्रथमैकवचने नपुंसके दीर्घत्वं न भवति । सौ दीर्घ पूर्वस्येत्यनेन इदुदन्तयो प्राप्तं पूर्वस्य दीर्घत्वं न नपुंसके इत्येनन बाध्यते । दहिं महुं हविं । दधि मधु हवि. ॥ २५ ॥ नपुंसके वर्तमानयोर्जश्शसो स्थानइदादेशो भवति पूर्वस्य च दीर्घ वणाइ दहीइ । महूइ ॥ २६ ॥ आमन्त्रणे गम्यमाने सौ परत ओत्वदीर्घबिन्दवो न भवन्ति । अत ओत् सोरित्योत्वं प्राप्तम् । सुभिस्सुप्सु दीर्घ इति दीर्घ । सोर्बिन्दुर्नपुंसकइति बिन्दु प्राप्त. । हे वच्छ हे अग्गि हे वाउ हे वण हे दहि हे महु ॥ २७ ॥

स्त्रियामात एत् ॥ २८ ॥ ईदूतोर्ह्रस्वः ॥ २९ ॥ सोर्बिन्दुर्नपुंसके ॥ ३० ॥ ऋत आरः सुपि ॥३१॥ मातुरात् ॥ ३२ ॥ उर्जश्शस्टाङस्सुप्सु वा ॥३३॥ पितृभ्रातृजामातृणामरः ॥ ३४ ॥ आ च सौ ॥३५॥ राज्ञश्च ।३६। आमन्त्रणे वा बिन्दुः ।३७। जश्शस्ङसां णो ॥ ३८ ॥ शस एत् ॥ ३९ ॥ आमो णं ॥ ४० ॥ टा णा ॥ ४१ ॥

स्त्रियामामन्त्रणे आत स्थाने एत्वं भवति सौ परत । हे माले हे साले । अन्त्यस्य हल इति सोर्लोप. ॥ २८ ॥ आमन्त्रणे ईदूतोर्ह्रस्वो भवति । हे णइ हे वहु ॥ २९ ॥ नपुंसके वर्तमानस्य सोर्विन्दुर्भवति । वणं दहिं महुं ॥ ३० ॥ ऋकारान्तस्य सुपि परत आर इत्यादेशो भवति । भत्तारो सोहइ भत्तारं पेक्खसु भत्तारेण कअं ॥ ३१ ॥ मातृसम्बन्धिन ऋकारस्याकारो भवति । माआ सोहइ माअं पेक्खसु माआइ कअं माआए ॥ ३२ ॥ जश्शस्टाङस्सुप्सु परत ऋकारस्य स्थाने उकारादेशो भवति वा । जस् ,भत्तुणो भत्तारा । शस् ,भत्तुणो भत्तारे । टा,भत्तुणा भत्तारेण । ङस् ,भत्तुणो भत्तारस्स । सुप् । भत्तूसु भत्तारेसु। आरादि. पूर्ववत् ॥३३॥ पित्रादीनां सुपि परत ऋतो ऽरो भवति । आरापवाद । पिअरं पिअरेण भाअरं भाअरेण जामाअरं जामाअरेण ॥३४॥ पित्रादीनामाकारो भवति सौ परतः चकारादरश्च । पिआ पिअरो भाआ भाअरो जामाआ जामाअरो॥३५॥राजन्शब्दस्य आ इत्ययमादेशो भवति सौ परत. । राआ ॥ ३६ ॥ राजन्शब्दस्य आमन्त्रणे वा विन्दु स्यात् । हेराअं हेराअ ॥ ३७ ॥ राज्ञ उत्तरेषां जस् शस् ङस् इत्येतेषां णो इत्ययमादेशो भवति । राआणो पेक्खंति राआणो पेक्ख राइणो धणं रण्णो धणं ॥ ३८ ॥ राज्ञ परस्य शस ए इत्ययमादेशो भवति । राए पेक्ख राआणो पेक्ख ॥ ३९ ॥ राज्ञ उत्तरस्याम षष्ठीवहुवचनस्य णं इत्ययमादेशो भवति । राआणं ॥ ४० ॥ राज्ञ उत्तरस्या टाविभक्ते णा इत्ययमादेश स्यात् । राइणा ॥ ४१ ॥

ङसश्च द्वित्वं वान्त्यलोपश्च ॥ ४२ ॥ इदद्वित्वे ॥४३॥ आ णोणमोरङसि ॥ ४४ ॥ आत्मनो ऽप्पाणो वा ॥ ॥ ४५ ॥ इत्वद्वित्ववर्जं राजवदनादेशे ॥४६॥ ब्रह्माद्या आत्मवत् ॥ ४७ ॥

राज्ञ उत्तरस्य ङसादेशस्य टादेशस्य च वा विकल्पेन द्वित्वं भवति । अन्त्यस्य च लोप. । रण्णो राइणो धणं राइणा रण्णा कअं ॥४२॥ वेति निवृत्तम् । ङसादेशस्य टादेशस्य च अकृते द्वित्वे राज्ञ इत्वं भवति । राइणो राइणा । कृते द्वित्वे त्वित्वं न भवति । रण्णा रण्णो ॥ ४३ ॥ णोणमो परयो राज्ञो जकारस्य आकारादेश' स्यात् । अङसि षष्ठ्येकवचने न भवति । राआणो पेक्खंति । राआणो पेक्ख । राआणं धणं । अङसीति किम् । राइणो रण्णो धणं । शेषमदन्तवत । राअं राएहिं राआ राआदो राआदु राआहिंतो राआसुंतो राअम्मि राए राएसु । राजानं राजभि राज्ञ राजभ्य' राज्ञि राजसु ॥ ४४ ॥ आत्मनो ऽप्पाण इत्यादेशो भवति वा । अप्पा अप्पाणो ॥ ४५ ॥ आत्मनो ऽनादेशे राजवत्कार्यस्यादित्वद्वित्वे,वर्जयित्वा । अप्पा अप्पाणो अप्पणा अप्पणो । आत्मा आत्मान आत्मना आत्मन ॥ ४६ ॥ ब्रह्माद्या शब्दा लक्ष्यानुसारेणात्मवत् साधवो भवन्ति । बह्मा बह्माणो जुवा जुवाणो अद्धा अद्धाणो । ब्रह्मन्, युवन्, अध्वन् , एवमादयो लक्ष्यानुसारेणावगन्तव्याः ॥ ४७ ॥

इति प्राकृतप्रकाशे लिङ्गविभक्त्यादेशः
पञ्चम परिच्छेदः ॥

अथ षष्ठः परिच्छेदः ।

सर्वादेर्जस एत्वम् ॥ १ ॥ ङेः स्सिंम्मित्थाः ॥ २ ॥ इदमेतत्किंयत्तद्भ्यष्टा इणा वा ॥ ३ ॥ आम एसिं ॥ ४ ॥ किंयत्तद्भ्यो ङस आसः ॥ ५ ॥ इद्भ्यः स्सा से ॥ ६ ॥ ङेर्हिं ॥ ७ ॥ आहे इआ काले ॥ ८ ॥ त्तो दो ङसेः ॥ ९ ॥ तदओश्च ॥ १० ॥

सर्वादेरुत्तरस्य जस एत्वं भवति । सव्वे जे ते के कदरे । सर्वे ये ते के कतरे ॥ १ ॥ ङे सप्तम्येकवचनस्य सर्वादिपरस्थितस्य स्थाने स्सिं म्मि त्थ इत्येतआदेशा भवन्ति । सव्वस्सिं सव्वम्मि सव्वत्थ इअरस्सिं इअरम्मि इअरत्थ । सर्वस्मिन् इतरस्मिन् ॥ २ ॥ इदम् एतद् किम् यद् तद् इत्येतेभ्य टा इत्यस्य इणादेशो भवति वा । इमिणा एदिणा किणा जिणा तिणा । पक्षे इमेण एदेण केण जेण तेण । अनेन एतेन केन येन तेन ॥ ३ ॥ इदमादिभ्य उत्तरस्य आम एसिं इत्ययमादेशो वा भवति । इमेसिं इमाण एदेसिं एदाण केसिं काण जेसिं जाण तेसिं ताण ॥ ४ ॥ किम् यद्, तद्, एभ्य उत्तरस्य ङस आस इत्ययमादेशो भवति वा । कास कस्स जास जस्स तास तस्स ॥ ५ ॥ इकारान्तेभ्य किमादिभ्य उत्तरस्य ङस स्सा से इत्येतावादेशौ भवत । किस्सा किसे कीआ कीए कीअ कीइ जिस्सा जीसे जीआ जीए जीअ जीइ तिस्सा तीसे तीआ तीए तीअ तीइ ॥६॥ किमादिभ्य उत्तरस्य ङे. हिं इत्ययमादेशो भवति वा । कहिं कस्सिं कम्मि कत्थ जहिं जस्सिं जम्मि जत्थ तहिं तस्सिं तम्मि तत्थ ॥ ७ ॥ कियत्तद्भ्यो ङे काले आहे इआ इत्यादेशौ वा भवत. । काहे जाहे ताहे कइआ जइआ । तइआ कहिं इत्यादयो ऽपि । कदा यदा तदा ॥८॥ कियत्तद्भ्यो ङसे त्तो दो इत्येतावादेशौ भवत । कत्तो कदो जत्तो जदो तत्तो तदो ॥ ९ ॥ तद उत्तरस्य ङसेरोकारादेशो भवति वा । तो तत्तो तदो नाम्नि ॥ १० ॥

ङसा से ॥ ११ ॥ आमा सिं ॥ १२ किमः कः ॥१३॥ इदम इमः ॥ १४ ॥ स्सास्सिमोरद्वा ॥ १५ ॥ ङेर्देन हः ॥ १६ ॥ न त्थः ॥ १७ ॥ नपुंसके स्वमोरिदमिणमिणमो ॥ १८ ॥ एतदः सावोत्वं वा ॥ १९ ॥ त्तो ङसेः ॥ २० ॥ त्तोत्थयोस्तलोपः ॥ २१॥ तदेतदोः सः सावनपुंसके ॥२२॥ अदसो दो मुः ॥ २३ ॥

वेति वर्तते । तदो ङसा सह से इत्ययमादेशो भवति पक्षे यथाप्राप्तम् । से तास तस्स ॥ ११ ॥ तद आमा सह सिं इत्ययमादेशो वा भवति । सिं ताण तेषाम् तासाम् ॥ १२ ॥ किंशब्दस्य सुपि परत. क इत्ययमादेशो भवति । को के केण केहिं ॥ १३ ॥ सुपि परत इदम इम इत्ययमादेशो भवति । इमो इमे इम इमेण इमेहिं ॥ १४ ॥ स्सास्सिमो परत इदमो ऽदादेशो वा भवति। अस्स इमस्स अस्सिं इमस्सिं ॥ १५ ॥ इदमो दकारेण सह ङे स्थाने हकारादेशो वा भवति । इह पक्षे अस्सिं इमस्सिं इमम्मि ॥ १६ ॥ इदम. परस्य ङे त्थ इत्ययमादेशो न भवति । ङे स्सिंस्मित्था इति प्राप्ते प्रतिषिध्यते । इह अस्सिं इमस्सिं इमम्मि ॥ १७ ॥ नपुंसकलिङ्गे इदम स्वमो परत सविभक्तिकस्य इदं इणं इणमो इत्येते त्रय आदेशा भवन्ति । इदं इणं इणमो धणं ॥ १८ ॥ एतच्छब्दस्य सौ परत ओत्वं वा भवति । नित्ये प्राप्ते विकल्प्यते । एस एसो । एष ॥१९॥ एतद परस्य ङसे त्तो इत्ययमादेशो भवति । एत्तो एदादो एदादु एदाहि । एतस्मात् ॥२०॥ एतदस्तकारस्य त्तोत्थयो परतो लोपो भवति । एत्तो एत्थ ॥ २१ ॥ तच्छब्दस्य एतच्छब्दस्य यस्तकारस्तस्य सकारादेशो भवति अनपुंसके सौ परत. । सो पुरिसो सा महिला एस एसो एसा । साविति किम् । एदे ते एदं तं । अनपुंसक इति किम् । तं एदं धणं ॥ २२ ॥ अदसो दकारस्य सुपि परतो मु इत्ययमादेशो भवति । अमू पुरिसो अमू महिला अमूओ पुरिसा अमूओ महिलाओ अमुं वणं अमूइं वणाइं ॥ २३ ॥

हश्च सौ ॥ २४ ॥ पदस्य ॥ २५ ॥ युष्मदस्तं तुमं ॥ २६ ॥ तुं चामि ॥ २७ ॥ तुज्झे तुह्मे जसि ॥ २८ ॥ वो च शसि ॥ २९ ॥ टाङ्योस्तइ तए तुमए तुमे ॥ ३० ॥ ङसि तुमोतुहतुज्झतुह्मतुम्माः ॥ ३१ ॥ आङि च ते दे ॥ ३२ ॥ तुमाइ च ॥ ३३ ॥ तुज्झेहिं तुह्मेहिं तुम्मेहिं भिसि ॥ ३४ ॥ ङसौ तत्तो तइत्तो तुमादो तुमादु

अदसो दकारस्य सौ परतो हकारादेशो भवति। अह पुरिसो अह महिला अह वणं। हादेशोऽयमोत्वात्वविन्दून् त्रिष्वपि लिङ्गेषु परत्वाद् बाधते ॥ २४ ॥ अधिकारोऽयम् आशब्दविधानात्। यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्याम पदस्य तद्भवतीत्येवं वेदितव्यम्। तच्च तत्रैवोदाहरिष्यामः ॥ २५ ॥ स्वावित्येव। युष्मद् पदस्य सौ परत तं तुमं इत्येतावादेशौ भवत। तं आगदो तुमं आगदो ॥ २६ ॥ युष्मद् पदस्य आमि परत तुं इत्यादेशो वा भवति तुमं च। तुं पेक्खामि तुमं पेक्खामि ॥२७॥ युष्मद् पदस्य जसि परत तुज्झे तुह्मे इत्येतावादेशौ भवतः। तुज्झे आगदा तुह्मे आगदा ॥ २८ ॥ शसि युष्मदः पदस्य वो इत्यादेशो भवति चकारात् तुज्झे तुह्मे च। वो पेक्खामि तुज्झे तुह्मे पेक्खामि ॥ २९ ॥ युष्मदुत्तरयो. टा ङि इत्येतयो तइ तए तुमए तुमे इत्येतआदेशा भवन्ति। टा, तइ तए तुमए तुमे कअं। ङि, तइ तए तुमए तुमे ठिअं ॥ ३० ॥ युष्मद् पदस्य ङसि तुमो तुह तुज्झ तुह्म तुम्म इत्येतआदेशा भवन्ति। तुमो पदं तुह तुज्झ तुह्म तुम्म पदं ॥ ३१ ॥ आङि तृतीयैकवचने चकाराद् ङसि च परतो युष्मदः पदस्य ते दे इत्येतावादेशौ भवत। ते कअं दे कअं ते धणं ॥ ३२ ॥ आङि युष्मद् पदस्य तुमाइ इत्ययमादेशो भवति तुमाइ कअं ॥ ३३ ॥ भिसि परतो युष्मद पदस्य तुज्झेहिं तुह्मेहिं तुम्मेहिं इत्येतआदेशा भवन्ति। तुज्झेहिं तुह्मेहिं तुम्मेहिं कअं ॥ ३४ ॥ ङसौ परतो युष्मद पदस्य तत्तो तइत्तो तुमादो तुमादु तुमाहि इत्येतआदेशा भवन्ति। तत्तो आगदो तइत्तो तुमादो तुमादु तुमाहि आ-

तुमाहि ॥ ३५ ॥ तुह्माहिंतो तुह्मासुंतो भ्यसि ॥३६॥ वो मे तुज्झाणं तुह्माणमामि ॥ ३७ ॥ ङौ तुमम्मि ॥ ३८ ॥ तुज्झेसु तुम्हेसु सुपि ॥ ३९ ॥ अस्मदो हमहमहअं सौ ॥ ४० ॥ अहम्मिरमि च ॥ ४१ ॥ मं ममं ॥ ४२ ॥ अह्मे जश्शसोः ॥ ४३ ॥ णो शसि ॥ ४४ ॥ आङि मे ममाइ ॥ ४५ ॥ ङौ च मइ मए ॥ ४६ ॥ अह्मेहिं भिसि ॥ ४७ ॥ मत्तो मइत्तो ममादो ममादु ममाहि ङसौ ॥ ४८ ॥

गदो त्वदागत।।३५।युष्मद् पदस्य पञ्चमी बहुवचने भ्यसि तुह्माहिंतो तुह्मासुंतो इत्येतावादेशौ भवत । तुह्माहितो तुह्मासुंतो आगदो ॥३६॥ आमि परतो युष्मद पदस्य वो मे तुज्झाणं तुह्माणं इत्येतआदेशा भवन्ति। वो धणं मे धणं तुज्झाणं तुह्माणं धणं ॥ ३७ ॥ युष्मद पदस्य ङौ परत तुमम्मि इत्यादेशो भवति। तुमम्मि ठिअं। पूर्वोक्ताश्च *। तइप्रभृतयश्चत्वारो ऽप्यादेशा भवन्ति ॥ ३८ ॥ युष्मद पदस्य सप्तमीबहुवचने तुज्झेसु तुह्मेसु इत्येतावादेशौ भवत । तुज्झेसु ठिअं तुह्मेसु ठिअं ॥ ३९ ॥ अस्मद पदस्य सौ परतो हं अहं अहअं इत्येतआदेशा भवन्ति। हं अहं अहअं करेमि ॥ ४० ॥ अमि परतो ऽस्मद पदस्य अहम्मि इत्ययमादेशो भवति सौ च । अहम्मि पेक्ख अहम्मि करेमि। मां प्रेक्षस्व अहं करोमि ॥ ४१ ॥ अमीति वर्तते। अस्मदः पदस्य अमिं परतो मं ममं इत्येतावादेशौ भवत । मं ममं पेक्ख ॥ ४२ ॥ अस्मद पदस्य जश्शसो परत अह्मे इत्ययमादेशो भवति। अह्मे आगदा अह्मे पेक्ख॥४३॥अस्मद पदस्य शसि परतो णो इत्ययमादेशो भवति। णो पेक्ख। अस्मान् प्रेक्षस्व।४४।अस्मद पदस्य आङि परतो मे ममाइ इत्येतावादेशौ भवत । मे कअं ममाइ कअं।४५। अस्मद पदस्य ङौ परतो मइ मए इत्येतावादेशौ भवत । चकारात्तृतीयैकवचने च। मइ मए ठिअं मइ मए कअं॥४६॥अस्मद पदस्य भिसि अह्मेहिं इत्ययमादेशो भवति। अह्मेहिं कअं।४७।अस्मद पदस्य ङसौ परत एते आदेशा भवन्ति।मत्तो गदो। मइत्तो ममादो ममादु ममाहि गदो।

अह्माहिंतो अह्मासुंतो भ्यसि ॥ ४९ ॥ मे मम मह मज्झ ङसि ॥ ५० ॥ मज्झणो अह्म अह्माणमह्मे आमि ॥ ५१ ॥ ममम्मि ङौ ॥ ५२ ॥ अह्मेसु सुपि ॥ ५३ ॥ द्वेर्दो ॥ ५४ ॥ त्रेस्ति ॥ ५५ ॥ तिण्णि जश्शस्भ्याम् ॥ ५६ ॥ द्वेर्दुवे दोणि वा ॥ ५७ ॥ चतुरश्चत्तारो चत्तारि ॥ ५८ ॥ एषामामो ण्हं ॥ ५९ ॥ शेषो

अस्मद पदस्य भ्यसि परतो अह्माहिंतो अह्मासुंतो इत्येतावादेशौ भवत । अह्माहिंतो अह्मासुंतो गदो ॥ ४९ ॥ अस्मद पदस्य ङसि परत एतआदेशा भवन्ति । मे धणं मम मह मज्झ धणं ॥ ५१ ॥ अस्मद पदस्य आमि परत एतआदेशा भवन्ति । मज्झणो अह्म अह्माणं अह्मे धणं । अस्माकं धनम् ॥ ५१ ॥ अस्मद पदस्य ङौ परतो ममम्मि इत्यादेशो भवति । ममम्मि ठिअं । पूर्वोक्तौ मइ मए इत्येतौ च ॥ ५२ ॥ अस्मद पदस्य सप्तमी बहुवचने सुपि परत अह्मेसु इत्ययमादेशो भवति । अह्मेसु ठिअं ॥ ५३ ॥ पदस्येति निवृत्तम् । सुपीति वर्तते द्विशब्दस्य दो इत्ययमादेशो भवति सुपि परत । दोहिं दोसु द्वाभ्याम् द्वयो ॥ ५४ ॥ त्रिशब्दस्य सुपि परत-ति इत्यादेशो भवति । तीहिं तीसु त्रिभि त्रिपु ॥ ५५ ॥ त्रिशब्दस्य जश्शस्भ्यां सह तिण्णि इत्यादेशो भवति । तिण्णि आगदा तिण्णि पेक्ख । त्रय आगता त्रीन् प्रेक्षस्व ॥ ५६ ॥ द्विशब्दस्य जस्शस्भ्यां सह दुवे दोणि इत्येतावादेशौ भवत । दुवे कुणंति दोणि कुणंति पक्षे दो कुणंति । द्वौ कुरुत । दुवे पेक्ख दोणि पेक्ख । पक्षे दो पेक्ख । द्वौ प्रेक्षस्व ॥ ५७ ॥ चतुश्शब्दस्य जश्शस्भ्यां सह चत्तारो चत्तारि इत्येतावादेशौ भवत । चत्तारो चत्तारि पुरिसा कुणंति । चत्तारो चत्तारि पुरिसे पेक्ख ॥ ५८ ॥ एषां द्वित्रिचतु शब्दानामाम स्थाने ण्हं इत्ययमादेशो भवति । दोण्हं धणं तिण्हं धणं चतुण्हं धणं ॥ ५९ ॥ शेष सुब्विधिरदन्तवद्भवति । अकारान्ताद् भिसो हिं इत्ययमादेश

ऽदन्तवत् ॥ ६० ॥ न ङिङस्योरेदातौ ॥ ६१ ॥
ए भ्यसि ॥ ६२ ॥ द्विवचनस्य बहुवचनम् ॥६३॥
चतुर्थ्याः षष्ठी ॥ ६४ ॥

इति षष्ठः परिच्छेदः ॥

अथ सप्तमः परिच्छेदः ।

तातिपोरिदेतौ ॥ १ ॥ थास्सिपोः सि से ॥ २ ॥
इडूमिपोर्मिः ॥ ३ ॥ न्तिहेत्थामोमुमा

उक्त इकारोकारान्तादपि भवति । अग्गीहिं वाऊहिं एवं मालाहिं णईहिं वहूहिं अग्गिस्स वाउस्स अग्गीदो वाऊदो अग्गीसु वाऊसु । एवं दोहिं तीहिं चऊहिं ॥ ६० ॥ इकारोकारान्तानां ङिङस्योरदन्तवद् एकाराकारौ न भवत । अग्गिम्मि वाउम्मि अग्गीदो वाऊदो अग्गीदु वाऊदु अग्गीहि वाऊहि ॥ ६१ ॥ नेत्यनुवर्तते भ्यसि परत इकारो कारान्तयोरदन्तवदेत्वं न भवति । अग्गीहिंतो वाऊहिंतो अग्गीसुंतो वाऊसुंतो ॥ ६२ ॥ सर्वासां विभक्तीनां सुपां तिङां च द्विवचनस्य बहुवचनं प्रयोक्तव्यम् । वृक्षौ वच्छा वृक्षाभ्याम् वच्छेहिं वच्छाहिंतो वृक्षयोः वच्छाण वच्छेसु । तिङां यथा, तिष्ठत चिट्ठंति ॥ ६३ ॥ चतुर्थीविभक्तेः स्थाने षष्ठीविभक्तिर्भवति । बह्मणस्स देहि बह्मणाण देहि । ब्राह्मणाय देहि ब्राह्मणेभ्यो देहि ॥ ६४ ॥

इति प्राकृतप्रकाशे सर्वनामपरिच्छेदः षष्ठः ॥

त तिप् इत्येतयोरेकस्य स्थाने इत् एत् इत्येतावादेशौ भवत । पढइ पढए सहइ सहए । पठति पठत सहति सहते ॥ १ ॥ थास् सिप् इत्येतयोरेकैकस्य स्थाने सि से इत्येतावादेशौ भवत । पढसि पढसे सहसि सहसे॥२॥इट् मिप् इत्येतयो स्थाने मिर्भवति । पढामि हसामि सहामि ॥ ३ ॥ बहुषु वर्तमानानां तिङां स्थाने न्ति ह इत्था मो मु म

वहुषु ॥ ४ ॥ अत ए से ॥ ५ ॥ अस्तेर्लोपः ॥ ६ ॥ मिमोमुमानामधो हश्च ॥ ७ ॥ यक ईअइज्जौ ॥ ८ ॥ नान्त्यद्वित्वे ॥ ९ ॥ न्तमाणौ शतृशानचोः ॥ १० ॥ ई च स्त्रियाम् ॥ ११ ॥ धातोर्भविष्यति हिः ॥ १२ ॥ उत्तमे स्सा हा च ॥ १३ ॥
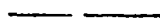
इत्येतआदेशा भवन्ति । प्रथमपुरुषस्य, रमंति पढंति हसंति । मध्यमस्य, रमह पढह हसह पढित्था । उत्तमस्य पढामो पढमु पढम ॥ ४ ॥ नित्यार्थं वचन यतो विशेषणम् ततिपो सिप्थासोर ए से इत्यादेशावत एव परौ भवतो नान्यस्मात् । ततिपो ,रमए पढए । सिप्थासो ,रमसे पढसे । अत इति किम् । होइ भवति॥५॥अस्तेर्धातो थासिपोरादेशयो परतो लोपो भवति । सुत्तो सि पुरिसो सि । सुप्तो ऽसि पुरुषो ऽसि ॥ ६ ॥ मिमोमुमानामस्ते परेषामधो हकार प्रयोक्तव्य । अस्तेश्च लोप । गओ ह्मि गअ ह्मो गअ म्हु गअ ह्म । गतो ऽस्मि गता स्म ॥७॥ यक. स्थाने ईअ इज्ज इत्यादेशौ भवत । पढीअइ । पढिज्जइ सहीअइ सहिज्जइ । पठ्यते सह्यते ॥ ८ ॥ धातोरन्त्यद्वित्वे सति यक ईअ इज्ज इत्यादेशौन भवत । हस्सइ गम्मइ । हस्यते गम्यते । गमादीनां विकल्पेन द्वित्वविधाने उकारादेशो न भवत द्वित्वाविधाने तु भवत एव। गमीअइ गमिज्जइ ॥ ९ ॥ शतृ शानच् इत्येतयोरेकैकस्य न्त माण इत्येतावादेशौ भवत । पढंतो पढमाणो हसंतो हसमाणो ॥ १० ॥ स्त्रियां वर्तमानयो शतृशानचोरीकारादेशो भवति न्तमाणौ च । हसई हसन्ती हसमाणा वेवई वेवंती वेवमाणा ॥ ११ ॥ भविष्यति काले धातो परो हिशब्द प्रयोक्तव्य । होहिइ हसिहिइ होहिंति हसिहिंति। भविष्यति हसिष्यति भविष्यन्ति हसिष्यन्ति ॥ १२ ॥ भविष्यत्युत्तमे स्सा हा इत्येतौ प्रयोक्तव्यौ चकाराद् हिश्च । होस्सामि होहामि होहिमि होस्सामो होहामो होहिमो इत्यादि । भविष्यामि भविष्याम ॥ १३ ॥

मिना स्सं वा ॥ १४ ॥ मोमुमैर्हिस्सा हित्था ॥१५॥ कृदाश्रुवचिगमिरुदिदृशविदिरूपाणां काहं दाहं सोच्छं वोच्छं गच्छं रोच्छं दच्छं वेच्छं ॥ १६ ॥ श्र्वादीनां त्रिष्वप्यनुस्वारवर्जं हिलोपश्च वा ॥ १७ ॥ उसुमु विध्यादिष्वेकस्मिन् ॥ १८ ॥ न्तुहमो बहुषु ॥ १९ ॥ वर्तमानभविष्यदनद्यतनयोर्ज्ज ज्जा

भविष्यत्युत्तमे मिना सह धातोः परः स्संशब्दः प्रयोक्तव्यो वा । होस्सं । पक्षे होस्सामि होहामि होहिमि ॥ १४ ॥ भविष्यति कालउत्तमे बहुवचनादेशस्य मो मु म इत्येते सह हिस्सा हित्था इत्येतावादेशौ वा भवतः । होहिस्सा होहित्था हसिहिस्सा हसिहित्था । भविष्यामः हसिष्यामः । पक्षे होहिमो होस्सामो होहामो हसिहिमो हसिस्सामो हसिहामो । एवं मुमयोरपि इत्यादि ॥ १५ ॥ भविष्यति कालउत्तमैकवचने कृञादीनां स्थाने यथासंख्यं काहंप्रभृतय आदेशा भवन्ति । काहं करिष्यामि दाहं दास्यामि सोच्छं श्रोष्यामि वोच्छं वक्ष्यामि गच्छं गमिष्यामि रोच्छं रोदिष्यामि दच्छं द्रक्ष्यामि वेच्छं वेत्स्यामि इत्यादि ॥ १६ ॥ श्रु इत्येवमादीनां प्रथममध्यमोत्तमेषु त्रिष्वपि पुरुषेषु परतो भविष्यति काले सोच्छं इत्यादय आदेशा भवन्ति । अनुस्वारं विहाय हिलोपश्च वा । सोच्छिइ सोच्छिहिइ श्रोष्यति सोच्छिन्ति सोच्छिहिंति श्रोष्यन्ति सोच्छिसि सोच्छिहिसि श्रोष्यसि सोच्छित्था सोच्छिहित्था । श्रोष्यथ । सोच्छिमि सोच्छामि सोच्छिहिमि श्रोष्यामि सोच्छिमो सोच्छिहिमो सोच्छिमु सोच्छिहिमु सोच्छिम सोच्छिहिम सोच्छिस्सामो सोच्छिस्सामु सोच्छिस्साम । श्रोष्यामः । एवं वोच्छादिरपि ॥ १७ ॥ विध्यादिष्वेकस्मिन्नुत्पन्नस्य प्रत्ययस्य यथासंख्यम् उ सु मु इत्येतआदेशा भवन्ति । हसउ हससु हसमु । हसतु हस हसानि ॥ १८ ॥ विध्यादिषु बहुषूत्पन्नस्य प्रत्ययस्य यथासंख्यं न्तु ह मो इत्येतआदेशा भवन्ति । हसंतु हसह हसामो ॥ १९ ॥ वर्तमाने भविष्यदनद्यतने विध्यादिषु चोत्पन्नस्य प्रत्ययस्य ज्ज ज्जा इत्येतावादेशौ वा भवतः । पक्षे यथाप्राप्तम् । वर्तमाने तावत्,

वा ॥ २० ॥ मध्ये च ॥ २१ ॥ नानेकाचः ॥२२॥ ईअ भूते ॥ २३ ॥ एकाचो हीअ ॥ २४ ॥ अस्तेरासिः ॥ २५ ॥ णिच एदादेरत आत् ॥ २६ ॥ आवे च ॥ २७ ॥ आविः क्तकर्मभावेषु वा ॥२८॥ नैदावे ॥ २९ ॥ अत आ मिपि वा ॥ ३० ॥

होज्ज होज्जा हसेज्ज हसेज्जा । पक्षे होइ हसइ । भविष्यदनद्यतने, होज्ज होज्जा । पक्षे होहिइ इत्यादि । विध्यादिष्वेवम् ॥ २० ॥ वर्तमानभविष्यदनद्यतनयोर्विध्यादिषु च धातुप्रत्यययोर्मध्ये ज्ज ज्जा इत्येतावादेशौ वा भवत । वर्तमाने, होज्जइ होज्जाइ । पक्षे यथाप्राप्तम् । विध्यादिषु होज्जउ होज्जाउ भवेदित्यादि ॥ २१ ॥ वर्तमानभविष्यदनद्यतनयोर्विध्यादिषु चानेकाचो धातोः प्रत्यये परे मध्ये ज्ज ज्जा इत्येतावादेशौ न भवत किन्त्वन्त एव भवत । सहइ तुवरइ । अन्ते यथा, हसेज्ज हसेज्जा तुवरेज्ज तुवरेज्जा । एवमन्ये ऽप्युदाहर्तव्या. ॥ २२ ॥ भूते काले धातो प्रत्ययस्य ईअ इत्ययमादेशो भवति । हुवीअ हसीअ । अभवत् अहसत् ॥ २३ ॥ भूते काले एकाचो धातो प्रत्ययस्य हीअ इत्यमादेशो भवति । होहीअ । अभूत् ॥ २४ ॥ अस्तेर्भूते काले एकस्मिन्नर्थे आसि इति निपात्यते । आसि राआ आसि वहू । आसीद्राजा आसीद्वधू. ॥ २५ ॥ णिच्प्रत्ययस्य एकारादेशो भवति धातोरादेरकारस्य च आत्वं भवति । कारेइ हासेइ पाढेइ । कारयति हासयति पाठयति ॥ २६ ॥ णिच आवे इत्ययमादेशो भवति चकारात् पूर्वोक्तं च । करावेइ हसावेइ पढावेइ कारावेइ इत्यादि ॥ २७ ॥ णिच आविरादेशो भवति वा क्तप्रत्यये परतो भावकर्मणोश्च । कराविअं हसाविअं पढाविअं कारिअं हासिअं पाढिअं । भावकर्मणोश्च,कराविज्जइ हसाविज्जइ पढाविज्जइ कारिज्जइ हासिज्जइ पाढिज्जइ । कारितम् हासितम् पाठितम् कार्यते हास्यते पाठ्यते॥२८॥क्तभावकर्मसु णिच्प्रत्ययस्य एत् आवे इत्येतावादेशौ न भवत. । कारिअं कराविअं कारिज्जइ काराविज्जइ ॥ २९ ॥ अकारान्ताद्धातोर्मिपि परत आकारादेशो भवति वा । हसामि हसमि ॥ ३० ॥

इश्च बहुषु ॥ ३१ ॥ क्ते ॥ ३२ ॥ ए च क्त्वातुमु-न्तव्यभविष्यत्सु ॥३३॥ लादेशे वा ॥३४॥

इति सप्तमः परिच्छेदः ॥

अथाष्टमः परिच्छेदः ।

भुवो होहुवो ॥ १ ॥ क्ते हुः ॥ २ ॥ प्रादेर्भवः ॥३॥ त्वरस्तुवरः ॥ ४ ॥ क्ते तुरः ॥ ६ ॥ घुणो घोलः णुदो णोल्लः ॥ ७ ॥ दूङो दूमः ॥ ८ ॥

मिपो बहुषु परतो ऽत इकारादेशो भवति चकारादाकारश्च । हसिमो हसामो हसिमु हसामु ॥ ३१ ॥ क्तप्रत्यये परतो ऽत इर्भवति । हसिअं पढिअं ॥ ३२ ॥ क्त्वा तुमुन् तव्य इत्येतेषु भविष्यति काले च अत एत्वं भवति चकारादित्त्वं । हसेऊण । हसिऊण । हसेउं । हसिउं । हसेअव्वं हसिअव्वं हसेहिइ हसिहिइ॥३३॥लकारादेशे वा परतो ऽत एत्वं भवति वा हसेइ हसइ पढेइ पढइ हसेन्ति हसंति हसेउ हसउ ॥३४॥

इति प्राकृतप्रकाशे तिङ्विधिर्नाम

सप्तम परिच्छेद ॥

भू सत्तायाम् एतस्य धातोर्हो हुव इत्येतावादेशौ भवत । होइ हुवइ होंति हुवंति ॥ १ ॥ भुव. क्तप्रत्यये परतो हु इत्यादेशो भवति । हुअं ॥ २ ॥ प्रादेरुत्तरस्य भुवो भव इत्ययमादेशो भवति । पभवइ उब्भवइ संभवइ परिभवइ ॥ ३ ॥ ञित्वरा संभ्रमे अस्य धातोस्तुवर इत्ययमादेशो भवति । तुवरइ ॥ ४ ॥ क्तप्रत्यये तुर इत्ययमादेशो भवति । तुरिअं ॥ ५ ॥ घुण घूर्ण भ्रमणे अस्य धातोर्घोल इत्ययमादेशो भवति । घोलइ ॥ ६ ॥ णुद प्रेरणे अस्य धातोर्णोल्ल इत्ययमादेशो भवति । णोल्लइ पणोल्लइ ॥ ७ ॥ दूङ् परितापे अस्य धातोर्दूमादेशो भवति । दूमइ ॥ ८ ॥

पटेः फलः ॥ ९ ॥ पदेः पालः ॥ १० ॥ वृषकृषमृषहृषामृतो ऽरिः ॥ ११ ॥ ऋतो ऽरः ॥ १२ ॥ कृञः कुणो वा ॥ १३ ॥ जृभो जंभाअः ॥ १४ ॥ ग्रहेर्गेण्हः ॥ १५ ॥ घेत् क्त्वातुमुन्तव्येषु ॥ १६ ॥ कृञः का भूतभविष्यतोश्च ॥ १७ ॥ स्मरतेर्भरसुमरौ ॥ १८ ॥ भियो भावीहौ ॥ १९ ॥ जिघ्रतेः पापाऔ ॥ २० ॥ म्लै वावाऔ ॥ २१ ॥ तृपस्थिपः ॥ २२ ॥ ज्ञो जाणमुणौ ॥ २३ ॥

पट गतौ अस्य धातो फल इत्ययमादेशो भवति । फलिअं हिअअं ॥ ९ ॥ पद गतौ अस्य धातो पाल इत्ययमादेशो भवति । पालेइ ॥ १० ॥ वृषादीनामृत स्थाने अरि इत्यादेशो भवति । वरिसइ करिसइ मरिसइ हरिसइ ॥ ११ ॥ ऋकारान्तस्य धातोर्ऋत स्थाने अर इत्यादेशो भवति । मृ,मरइ । सृ, सरइ । वृ, वरइ ॥१२॥ डुकृञ् करणे अस्य धातो प्रयोगे कुणो वा भवति । कुणइ करइ ॥ १३ ॥ जभि जृभी गात्रविनामे अस्य धातोर्जंभाअ इत्ययमादेशो भवति । जंभाअइ ॥ १४ ॥ ग्रह उपादाने अस्य धातोर्गेण्हो भवति । गेण्हइ ॥१५॥ ग्रहेर्घेत् इत्ययमादेशो भवति क्त्वातुमुन्तव्येषु परत. । घेत्तूण घेत्तुं घेत्तव्वं ॥ १६ ॥ भूतभविष्यतोः कालयो कृञ का इत्ययमादेशो भवति चकारात् क्त्वातुमुन्तव्येषु परत । काहीअ काहिइ काऊण काउं काअव्वं ॥ १७ ॥ स्मृ चिन्तायाम् अस्य धातोर्भरसुमरौ भवत । भरइ सुमरइ ॥१८॥ ञिभी भये अस्य धातोर्भावीहौ भवतः । भाइ वीहइ ॥ १९ ॥ घ्रा गन्धग्रहणे अस्य धातो. पा पाअ इत्यादेशौ भवत । पाइ पाअइ ॥ २० ॥ म्लै हर्षक्षये अस्य धातोर्वावाऔ भवत. । वाइ वाअइ ॥ २१ ॥ तृप तृप्तौ अस्य धातोस्थिपो भवति । थिपइ ॥ २२ ॥ ज्ञा अवबोधने अस्य धातोर्जाणमुणौ भवत । जाणइ मुणइ ॥ २३ ॥

जल्पेर्लो मः ॥ २४ ॥ स्थाध्यागानां ठाअझाअगा-आः ॥ २५ ॥ ठाझागाश्च वर्तमानभविष्यद्विध्याद्येकवचनेषु ॥ २६ ॥ खादिधाव्योः खाधौ ॥ २७ ॥ ग्रसेर्विसः ॥ २८ ॥ चिञश्चिणः ॥ २९ ॥ क्रीञः किणः ॥ ३० ॥ वे क्के च ॥ ३१ ॥ उद्ध्मः उद्धुमा ॥ ३२ ॥ श्रदो धो दहः ॥ ३३ ॥ अवाद् गाहेर्वाहः ॥ ३४ ॥ कासेर्वासः ॥ ३५ ॥ निरो माङो माणः ॥ ३६ ॥ क्षियो झिज्जः ॥ ३७ ॥

जल्प व्यक्तायां वाचि अस्य धातोर्लकारस्य मकारो भवति । जंपइ ॥२४॥ ष्ठा गतिनिवृत्तौ ध्यै चिन्तायां गै शब्दे एतेषां ठाअ झाअ गाअ इत्येतआदेशा भवन्ति। ठाअंति झाअंति गाअंति ॥ २५ ॥ ष्ठाध्यागानां ठा झा गा इत्यादेशा भवन्ति चकारात् पूर्वोक्ताश्च वर्तमानभविष्यद्विध्याद्येकवचनेषु परत । ठाइ ठाअइ ठाहिइ ठाअहिय ठाउ ठाअउ झाइ झाअइ झाहिइ झाअहिइ झाउ झाअउ गाइ गाअइ गाहिइ गाअहिइ गाउ गाअउ ॥ २६ ॥ खाद्द भक्षणे धावु जवे एतयोर्धात्वोः खा धा इत्यादेशौ भवत वर्त्तमानभविष्यद्विध्याद्येकवचनेषु। खाइ खाहिइ खाउ धाइ धाहिइ धाउ ॥ २७ ॥ ग्लसु अदने अस्य धातोर्विसो भवति। विसइ ॥२८॥ चिञ् चयने अस्य धातोश्चिणो भवति। चिणइ ॥ २९ ॥ डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये अस्य धातो किणो भवति। किणइ ॥ ३० ॥ वेरुत्तरस्य क्रीञः क्के आदेश किणादेशश्च भवति। विक्केइ विक्किणइ ॥ ३१ ॥ ध्मा शब्दाग्निसंयोगयो अस्य धातोरुत्पूर्वस्य उद्धुमा भवति। उद्धुमाइ ॥ ३२ ॥ श्रच्छब्दादुत्तरस्य डुधाञ् धारणपोषणयो. अस्य धातोर्दहादेशो भवति। सद्दहइ सद्दहिअं ॥ ३३ ॥ गाहू विलोडने अस्य धातोरवादुत्तरस्य वाहादेशो भवति। ओवाहइ अववाहइ ॥३४॥ अवादित्यनुवर्त्तते। कासृ शब्दकुत्सायाम् कस्य धातोरवादुत्तरस्य वासो भवति। ओवासइ अववासइ ॥ ३५ ॥ माङ् माने अस्य धातोर्निरुत्तरस्य माणादेशो भवति। णिम्माणइ ॥ ३६ ॥ क्षि क्षये अस्य धातोर्झिज्जो भवति। झिज्जइ ॥३७॥

भिदिच्छिदोरन्त्यस्य न्दः ॥ ३८ ॥ क्वथेर्ढः ॥ ३९ ॥ वेष्टेश्च ॥ ४० ॥ उत्समोर्लः ॥ ४१ ॥ रुदेर्वः ॥ ४२ ॥ उदो विजः ॥ ४३ ॥ वृधेर्ढः ॥ ४४ ॥ हन्तेर्म्मः ॥ ४५ ॥ रुषादीनां दीर्घता ॥ ४६ ॥ ञ्चो व्रजनृत्योः ॥ ४७ ॥ युधिबुध्योर्झः ॥ ४८ ॥ रुधेर्न्धम्भौ ॥४९॥ मृदो लः ॥ ५० ॥ शद्लपत्योर्डः ॥ ५१ ॥ शकादीनां द्वित्वम् ॥ ५२ ॥ स्फुटिचल्योर्वा ॥ ५३ ॥ प्रादेर्मीलेः ॥ ५४ ॥ भुजादीनां क्त्वातुमुन्त-

---

भिदिर् छिदिर् एतयोरन्त्यस्य न्दो भवति । भिन्दइ छिन्दइ ॥ ३८ ॥ क्वथ निष्पाके अस्य धातोरन्त्यस्य ढो भवति । कढइ ॥ ३९ ॥ वेष्ट वेष्टने अस्य धातोरन्त्यस्य ढो भवति । वेड्ढइ । योगविभाग उत्तरार्थ ॥४०॥ उत्संभ्यामुत्तरस्य वेष्टेरन्त्यस्य लो भवति । उव्वेल्लइ संवेल्लइ ॥ ४१ ॥ रुदिर् अस्य धातोरन्त्यस्य वो भवति । रुवइ ॥ ४२ ॥ उत्पूर्वस्य विजेरन्त्यस्य वकारो भवति उव्विवइ ॥ ४३ ॥ वृधु वर्धने अस्य धातोरन्त्यस्य ढो भवति । वड्ढइ ॥ ४४ ॥ हन्तेरन्त्यस्य म्मो भवति । हम्मइ ॥ ४५ ॥ रुषादीनां दीर्घता भवति । रूसइ तूसइ सूसइ । रुष्यति तुष्यति शुष्यति ॥ ४६ ॥ व्रजनृती अनयोरन्त्यस्य ञ्चो भवति । वञ्चइ णच्चइ ॥ ४७ ॥ युध संप्रहारे बुध अवगमने अनयोरन्त्यस्य झो भवति । जुज्झइ बुज्झइ ॥ ४८ ॥ रुधिर् अन्त्यस्य न्धम्भौ भवत । रुन्धइ रुम्भइ ॥ ४९ ॥ मृद क्षालने अस्य धातोरन्त्यस्य लो भवति । मलइ ॥५०॥ शद्लृ शातने पत्लृ पतने अनयोरन्त्यस्य डो भवति । सडइ पडइ ॥५१॥ शक्लृ शक्तौ इत्येवमादीनां द्वित्वं भवति । सक्कइ लग्गइ । शक्नोति लगति ॥५२॥ स्फुट विकसने चल कम्पने अनयोरन्त्यस्य वा द्वित्वं भवति । फुट्टइ फुडइ चल्लइ चलइ ॥ ५३ ॥ प्रादेरुत्तरस्य द्वित्वं भवति वा । पमिल्लइ पमीलइ ॥ ५५ ॥ भुज इत्येवमादीनां क्त्वातुमुन्तव्येषु परतोन्त्यस्य लोपो भवति । भोत्तूण भोत्तुं भोत्तव्वं । विद् ,वेत्तूण वेत्तुं वेत्तव्वं । रुद ·

न्येषु लोपः ॥५५॥ श्रुहुजिलूधुवां णो ऽन्त्ये ह्रस्वः ॥५६॥ भावकर्मणोर्व्वश्च ॥५७॥ गमादीनां द्वित्वं वा ॥५८॥ लिहेर्लिज्झ ॥ ५९ ॥ हृक्रोर्हीरकीरौ ॥ ६० ॥ ग्रहेर्दीर्घो वा ॥ ६१ ॥ क्तेन दिण्णादयः ॥ ६२ ॥ खिदेर्विसूरः ॥ ६३ ॥ क्रुधेर्जूरः ॥ ६४ ॥ चर्चेश्चंपः ॥ ६५ ॥ त्रसेर्वज्जः ॥ ६६ ॥ मृजेर्लुभसुपौ ॥ ६७ ॥ वुट्टखुप्पौ मस्जेः ॥ ६८ ॥ दृशेः पुलअणिअक्कअवक्खाः ॥ ६९ ॥

गेत्तुं रोत्तव्वं ॥ ५५ ॥ श्रु श्रवणे हु दानादाने जि जये लूञ् छेदने धूञ् कम्पने इत्येतेषामन्ते ण प्रयोक्तव्य दीर्घस्य ह्रस्वो भवति । सुणइ हुणइ जिणइ लुणइ धुणइ ॥ ५६ ॥ एषां भावकर्मणोरन्त्ये व्वशब्द प्रयोक्तव्य चकारात् णश्च । सुव्वइ सुणिज्जइ हुव्वइ हुणिज्जइ जिव्वइ जिणिज्जइ लुव्वइ लुणिज्जइ धुव्वइ धुणिज्जइ ॥ ५७ ॥ गमादीनां धातूनां द्वित्वं वा भवति । गम्मइ गमिज्जइ रम्मइ रमिज्जइ हस्सइ हसिज्जइ । गम्यते रम्यते हस्यते ॥५८॥ लिह आस्वादने अस्य धातोर्लिज्झो भवति भावकर्मणो. । लिज्झइ ॥ ५९ ॥ हृञ् हरणे डुकृञ् करणे अनयोर्हीरकीरौ भवतो भावकर्मणोरर्थयो. । हीरइ कीरइ ॥ ६० ॥ ग्रहेर्धातोर्दीर्घो वा भवति भावकर्मणोरर्थयो गाहिज्जइ गहिज्जइ ॥६१॥ दिण्ण इत्येवमादय क्तप्रत्ययेन सह निपात्यन्ते । डुदाञ् दाने दिण्णं, रुदिर् रुण्णं, त्रसी हित्थं, दह दड्ढं रञ्जि रत्तं ॥६२॥ खिद दैन्ये अस्य विसूरो भवति । विसूरइ । विरहेण विसूरइ बाला ॥ ६३ ॥ क्रुध कोपे अस्य जूरो भवति जूरइ ॥ ६४ ॥ चर्च अध्ययने अस्य धातोश्चंपो भवति । चंपइ ॥ ६५ ॥ त्रसी उद्वेगे अस्य धातोर्वज्जो भवति । वज्जइ ॥ ६६ ॥ मृजू शुद्धौ अस्य धातोर्लुभ सुप इत्यादेशौ भवत. । लुभइ सुपइ ॥ ६७ ॥ टुमस्जो शुद्धौ अस्य धातोर्वुट्टखुप्पौ भवत । वुट्टइ खुप्पइ ॥६८॥ दृशिर् प्रेक्षणे अस्य पुलअ णिअक्क अवक्खा भवन्ति । पुलअइ णिअक्कइ अवक्खइ ॥ ६९ ॥

शकेस्तरवअतीराः ॥७०॥ शेषाणामदन्तता ॥७१॥

इति अष्टमः परिच्छेदः ॥

अथ नवमः परिच्छेदः ।

निपाताः ॥ १ ॥ हुं दानपृच्छानिर्धारणेषु ॥२॥ विअ वेअ अवधारणे ॥ ३ ॥ ओ सूचनापश्चात्तापविकल्पेषु ॥४॥ इरकिरकिला अनिश्चिताख्याने ॥५॥ हुं क्खु निश्चयवितर्कसंभावनेषु ॥६॥

शक्लृ शक्तौ अस्य धातो तर वअ तीर इत्येतआदेशा भवन्ति । तरइ वअइ तीरइ ॥ ७० ॥ शेषाणां लुप्तानुबन्धानामदन्तता भवति । भमइ चुंवइ ॥ ७१ ॥

इति प्राकृतप्रकाशे धात्वादेशपरिच्छेदो ऽष्टम ॥

अधिकारो ऽयम् । वक्ष्यमाणा निपातसंज्ञका वेदितव्याः । संस्कृतानुसारेण निपातकार्यं वक्तव्यम्॥१॥हुं इत्ययं शब्दो दानपृच्छानिर्धारणेष्वर्थेषु निपातसंज्ञो भवति । दाने यथा, हुं गेण्ह अप्पणो जीअं । पृच्छायाम् हुं,कधेहि साहुसु सब्भावं । निर्धारणे, हुं हुवसु तुण्हिक्को । हुं गृहाणात्मनो जीवम् । हुं कथय साधुषु सद्भावम् । हुं भव तूष्णीक ॥२॥ विअ वेअ इत्येतावर्धारणे निपातसंज्ञौ भवत ।एवं विअ एवं वेअ । एवमेव ॥ ३ ॥ ओ इत्ययं शब्द. सूचनापश्चात्तापविकल्पेषु निपातसंज्ञो भवति । ओ चिरआसि । गाथासु द्रष्टव्य ॥४॥ इर किर किल इत्येते शब्दा अनिश्चिताख्याने निपातसंज्ञका भवन्ति । पेक्ख इर तेण हदो । अज्ज किर तेण ववसिओ । अअं किल सिविणओ।प्रेक्षस्व किल तेन हत । अद्य किल तेन व्यवसित । अयं किल स्वप्न· ॥ ५ ॥ हुं क्खु इत्येतौ निश्चयवितर्कसंभावनेषु निपानसंज्ञकौ भवत. । हुं रक्खसो । गुरुओ क्खु भारो । हुं राक्षस । गुरु खलु भार ॥ ६ ॥

णवरः केवले ॥ ७ ॥ आनन्तर्ये णवरि ॥ ८ ॥ किणो प्रश्ने ॥ ९ ॥ अव्वो दुःखसूचनासंभावनेषु ॥ १० ॥ अलाहि निवारणे ॥ ११ ॥ अइ वले संभाषणे ॥ १२ ॥ णवि वैपरीत्ये ॥ १३ ॥ सू कुत्सायाम् ॥ १४ ॥ रे अरे हिरे संभाषणरति-कलहाक्षेपेषु ॥ १५ ॥ म्मिवमिवविआ इवार्थे।१६। अज्ज आमन्त्रणे ॥ १७ ॥

णवर इत्ययं शब्द केवलेऽर्थे निपातसंज्ञो भवति। णवर अण्णं ॥७॥ णवरि इत्ययं शब्द आनन्तर्ये निपातसंज्ञो भवति। णवरि ॥८॥ किणो इत्ययं शब्द प्रश्ने निपातसंज्ञो भवति। किणो धुव्वसि किणो हससि। किन्नु धूयसे किन्नु हससि ॥ ९ ॥ अव्वो इत्ययं शब्दो दुःखसूचनासंभावनेषु निपातसंज्ञो भवति। दुःखे,अव्वो कज्जलरसरंजिएहिं अच्छीहिं। सूचनायाम,अव्वो अवरं विअ। संभावने,अव्वो णमिव अत्तुं। अहो कज्जलरसरञ्जिताभ्यामक्षिभ्याम्। अहो अपरमिव। अहो ग्नमिवात्तुम्।१०।अलाहि इत्ययं शब्दो निवारणे निपातसंज्ञो भवति। अलाहि कलहलेसेण।अलाहि कलहबंधेण।अलं कलहलेशेन। अलं कलहबन्धेन।११।अइ वले इत्येतौ शब्दौ निपातसंज्ञकौ भवत। अइ मूलं पसूसइ वले किं कलेसि। अवले अपि मूलं प्रशुष्यति वले किं कलयसि अवले ॥ १२ ॥ णवि इत्ययं शब्दो वैपरीत्ये निपातसंज्ञो भवति। णवि तह पहसइ बाला। विपरीतं तथा प्रहसति बाला॥१३॥ सू इत्ययं शब्दः कुत्सायां निपातसंज्ञो भवति। सू सिविणो। धिक् स्वप्नः॥१४॥ रे अरे हिरे इत्येते शब्दा संभाषणरतिकलहाक्षेपेषु निपातसंज्ञा भवन्ति यथासंख्यम्। रे मा करेहि णाओसि अरे दिट्ठोसि हिरे। मा कुरुष्व नागोसि अरे दृष्टोऽसि हि रे ॥ १५ ॥ म्मिव मिव विअ इत्येते शब्दा इवार्थे निपातसंज्ञका भवन्ति। गअणं म्मिव। गअणं मिव। गअणं विअ कसणं। गगनमिव कृष्णम्।१६। अज्ज इत्ययं शब्द आमन्त्रणे निपात्यते। अज्ज महाणुहाव किं करेसि। अहो महानुभाव किं करोषि॥१७॥

शेषः संस्कृतात् ॥ १८ ॥

इति नवमः परिच्छेदः ॥

अथ दशमः परिच्छेदः ।

पैशाची ॥ १ ॥ प्रकृतिः शौरसेनी ॥ २ ॥ वर्गाणां तृतीयचतुर्थयोरयुजोरनाद्योराद्यौ ॥ ३ ॥ इवस्य पिवः ॥ ४ ॥ णो नः ॥ ५ ॥ ष्टस्य सटः ॥ ६ ॥ स्नस्य सनः ॥ ७ ॥ र्यस्य रिअः ॥ ८ ॥

उक्तादन्य शेषः प्रत्ययसमासतद्धितलिङ्गवर्णादिविधिः शेष संस्कृतादवगन्तव्य । इह ग्रन्थविस्तरभयान्न दर्शितः ॥ १८ ॥

इति प्राकृतप्रकाशे निपातसंज्ञाविधिर्नाम
नवम परिच्छेद. ॥

पिशाचानां भाषा पैशाची, सा च लक्ष्यणक्षणाभ्यां स्फुटीक्रियते ॥ १ ॥ अस्या पैशाच्या प्रकृति शौरसेनी । स्थितायां शौरसेन्यां पैशाचीलिक्षणं प्रवर्त्तयितव्यम् ॥ २ ॥ वर्गाणां तृतीयचतुर्थयोर्णयोरयुक्तयोरनादौ वर्तमानयो स्थाने आद्यौ प्रथमद्वितीयौ भवत । गकनं मेखो राचा णिच्छरो वटिसं दसवतनो माथवो गोविंतो केसवो सरफसं सलफो। अयुजोरिति किम्। सग्गामो वग्घो इत्यादि। अनादाविति किम् । गमनं इत्यादि । गगनम् मेघ राजा निर्झर वडिशम् दशवदन. माधव गोविन्द. केशव सरभसम् शलभ संग्रामः व्याघ्र गमनम् ॥३॥ इवशब्दस्य स्थाने पिव इत्ययमादेशो भवति । कमलं पिव मुखं ॥ ४ ॥ णकारस्य स्थाने न इत्ययमादेशो भवति । तलुनी । तरुणी ॥ ५ ॥ ष्ट इत्यस्य स्थाने सट इत्ययमादेशो भवति । कसटं मम वट्टइ । कष्टं मम वर्तते ॥६॥ स्न इत्यस्य स्थाने सन इत्ययमादेशो भवति । सनानं सनेहो ।स्नानं स्नेह. ॥ ७ ॥ र्य इत्यस्य स्थाने रिअ इत्ययमादेशो भवति । भारिआ भार्या ॥ ८ ॥

णवरः केवले ॥ ७ ॥ आनन्तर्ये णवरि ॥ ८ ॥ किणो प्रश्ने ॥ ९ ॥ अव्वो दुःखसूचनासंभावनेषु ॥ १० ॥ अलाहि निवारणे ॥ ११ ॥ अइ वले संभाषणे ॥ १२ ॥ णवि वैपरीत्ये ॥ १३ ॥ सू कुत्सायाम् ॥ १४ ॥ रे अरे हिरे संभाषणरतिकलहाक्षेपेषु ॥ १५ ॥ म्मिवमिवविआ इवार्थे॥१६॥ अज्ज आमन्त्रणे ॥ १७ ॥

णवर. इत्ययं शब्द केवलेर्थे निपातसंज्ञो भवति। णवर अण्णं ॥७॥ णवरि इत्ययं शब्द आनन्तर्ये निपातसंज्ञो भवति। णवरि ॥८॥ किणो इत्ययं शब्द प्रश्ने निपातसंज्ञो भवति। किणो धुव्वसि किणो हससि। किन्तु धूयसे किन्तु हससि ॥ ९ ॥ अव्वो इत्ययं शब्दो दुःखसूचनासंभावनेषु निपातसंज्ञो भवति। दुःखे,अव्वो कज्जलरसरंजिएहिं अच्छीहिं। सूचनायाम्,अव्वो अवरं विअ। संभावने,अव्वो णमिव अत्तुं। अहो कज्जलरसरञ्जिताभ्यामक्षिभ्याम्। अहो अपरमिव। अहो नमिवात्तुम्॥१०॥अलाहि इत्ययं शब्दो निवारणे निपातसंज्ञो भवति। अलाहि कलहलेसेण। अलाहि कलहबंधेण। अलं कलहलेशेन। अलं कलहबन्धेन॥११॥अइ वले इत्येतौ शब्दौ निपातसंज्ञकौ भवत। अइ मूलं पसूसइ वले किं कलेसि। अवले अपि मूलं प्रशुष्यति वले किं करोषि अवले ॥ १२ ॥ णवि इत्ययं शब्दो वैपरीत्ये निपातसंज्ञो भवति। णवि तह पहसइ वाला। विपरीतं तथा प्रहसति वाला॥१३॥ सू इत्ययं शब्दः कुत्सायां निपातसंज्ञो भवति। सू सिविणो। धिक् स्वप्न.॥१४॥ रे अरे हिरे इत्येते शब्दा संभाषणरतिकलहाक्षेपेषु निपातसंज्ञा भवन्ति यथासंख्यम्। रे मा करेहि णाओसि अरे दिट्ठोम्हि हिरे। मा कुरुष्व नागोसि अरे दृष्टोऽस्मि हि रे ॥ १५ ॥ म्मिव मिव विअ इत्येते शब्दा इवार्थे निपातसंज्ञका भवन्ति। गअणं म्मिव। गअणं मिव। गअणं विअ कसणं। गगनमिव कृष्णम्॥१६॥ अज्ज इत्ययं शब्द आमन्त्रणे निपात्यते। अज्ज महाणुहाव किं करेमि। अज्ञो महानुभाव किं करोमि॥१७॥

शेषः संस्कृतात् ॥ १८ ॥

इति नवमः परिच्छेदः ॥

अथ दशमः परिच्छेदः।

पैशाची ॥ १ ॥ प्रकृतिः शौरसेनी ॥ २ ॥ वर्गाणां तृतीयचतुर्थयोरयुजोरनाद्योराद्यौ ॥ ३ ॥ इवस्य पिवः ॥ ४ ॥ णो नः ॥ ५ ॥ ष्टस्य सटः ॥ ६ ॥ स्नस्य सनः ॥ ७ ॥ र्यस्य रिअः ॥ ८ ॥

उक्तादन्य शेषः प्रत्ययसमासतद्धितलिङ्गवर्णादिविधिः शेष संस्कृतादवगन्तव्य । इह ग्रन्थविस्तरभयान्न दर्शितः ॥ १८ ॥

इति प्राकृतप्रकाशे निपातसंज्ञाविधिर्नाम
नवम परिच्छेद. ॥

पिशाचानां भाषा पैशाची, सा च लक्ष्यणक्षणाभ्यां स्फुटीक्रियते ॥ १ ॥ अस्या पैशाच्या प्रकृति शौरसेनी । स्थितायां शौरसेन्यां पैशाचीलक्षणं प्रवर्त्तयितव्यम् ॥ २ ॥ वर्गाणां तृतीयचतुर्थयोर्णयोरयुक्तयोरनादौ वर्तमानयो स्थाने आद्यौ प्रथमद्वितीयौ भवत । गकनं मेखो राचा णिच्छरो वटिसं दसवतनो माथवो गोवितो केसवो सरफसं सलफो। अयुजोरिति किम्। सग्गामो वग्घो इत्यादि।अनादाविति किम् । गमनं इत्यादि । गगनम् मेघ राजा निर्झर वडिशम् दशवदन माधव गोविन्द. केशव सरभसम् शलभ संग्रामः व्याघ्र गमनम् ॥३॥ इवशब्दस्य स्थाने पिव इत्ययमादेशो भवति । कमलं पिव मुखं ॥ ४ ॥ णकारस्य स्थाने न इत्ययमादेशो भवति । तलुनी । तरुणी ॥ ५ ॥ ष्ट इत्यस्य स्थाने सट इत्ययमादेशो भवति । कसटं मम वट्टइ । कष्टं मम वर्तते ॥६॥ स्न इत्यस्य स्थाने सन इत्ययमादेशो भवति । सनाने सनेहो ।स्नानं स्नेह ॥ ७ ॥ र्य इत्यस्य स्थाने रिअ इत्ययमादेशो भवति । भारिआ भार्या ॥ ८ ॥

ज्ञस्य ञ्ञः ॥ ९ ॥ कन्यायां न्यस्य ॥ १० ॥ ञ्ञ ञ्च ॥ ११ ॥ राज्ञौ राचि टाङसिङस्ङिषु वा ॥ १२ ॥ क्त्वस्तूनं ॥ १३ ॥ हृदयस्य हितअकं ॥ १४ ॥

इति नवमः परिच्छेदः ॥

अथैकादशः परिच्छेदः ।

मागधी ॥ १ ॥ प्रकृतिः शौरसेनी ॥ २ ॥ षसोः शः ॥ ३ ॥ जो यः ॥ ४ ॥ चवर्गस्य स्पष्टता तथोच्चारणः ॥५॥ हृदयस्य हडक्कः ॥६॥

ज्ञ इत्यस्य स्थाने ञ्ज इत्ययमादेशो भवति विञ्जातो सव्वञ्जो । विज्ञातः सर्वज्ञ ॥ ९ ॥ कन्याशब्दे न्यस्य स्थाने ञ्ञ इत्ययमादेशो भवति । कञ्ञा ॥ १० ॥ ञ्जशब्दस्य शौरसेनीसाधितस्य ञ्च इत्ययमादेशो भवति । कञ्चं । कार्यम ॥११॥ राजनूशब्दस्य टा ङसि ङस् ङि इत्येतेषु परतो राचि इत्ययमादेशो वा भवति । राचिना रञ्जा राचिनो रञ्जो राचिनि रञ्जि । एतेष्विति किम । राचा राचानं रञ्जो ॥१२॥ क्त्वाप्रत्ययस्य स्थाने तूनं इत्ययमादेशो भवति । दातूनं कातूनं वेत्तूनं हृदयशब्दस्य हितअकं निपात्यते । हितअकं हरसि मे तलुनि ॥१४॥

इति प्राकृतप्रकाशे पैशाचिको नाम
दशम परिच्छेद ॥

मागधानां भाषा मागधी, लक्ष्यलक्षणाभ्यां स्फुटीक्रियते ॥ १ ॥ अस्या मागध्या. प्रकृति शौरसेनी इति वेदितव्यम ॥ २ ॥ षकारसकारयो स्थाने शो भवति । माशे विलाशे । माष विलास ॥ ३ ॥ जकारस्य यकारो भवति । यायते । जायते ॥४॥ चवर्गो यथा स्पष्टस्तथोच्चारणो भवति । पलिचए गहिदच्छले वियले णिज्झले । परिचय गृहीतच्छल विजल निर्झर ॥ ५ ॥ हृदयस्य स्थाने हडक्को भवति । हडक्के आलले मम । हृदये आदरो मम ॥ ६ ॥

र्यर्जयोर्य्यः ॥ ७ ॥ क्षस्य स्कः ॥ ८ ॥ अस्मदः सौ हके हगे अहके ॥ ९ ॥ अत इदेतौ लुक् च ॥ १० ॥ क्तान्तादुश्च ॥ ११ ॥ ङसो हो वा दीर्घत्वं च ॥ १२ ॥ अदीर्घः संबुद्धौ ॥ १३ ॥ चिट्ठस्य चिष्ठः ॥ १४ ॥ कृञ्मृङ्गमां क्तस्य डः ॥ १५ ॥ क्त्वो दाणिः ॥१६॥ शृगालशब्दस्य शिआलाशिआलेशिआलकाः॥१७॥

र्यकारर्जकारयोः स्थाने य्यो भवति कय्ये दुय्यणे । कार्य्यम् दुर्जनः॥७॥ क्षस्य स्थाने स्ककारो भवति । लस्कशे दस्के । राक्षस दक्ष ॥ ८ ॥ अस्मद स्थाने सौ परतो हके हगे अहके इत्येत आदेशा भवन्ति हके हगे अहके भणामि । अहं भणामि ॥ ९ ॥ सावित्यनुवर्तते अकारान्ता-च्छब्दात्सौ परत इकारैकारौ भवत पक्षे लोपश्च । एशि लाआ एशे पुलिशे एष राजा एष पुरुष. ॥ १० ॥ क्तप्रत्ययान्ताच्छ-ब्दात्सौ परतः उकारश्च भवति चकाराद् इदेतौ लुक् च । हशिदु ह-शिदि हशिद । हसितः ॥ ११ ॥ ङसः षष्ठ्येकवचनस्य स्थाने हकारा-देशो वा भवति तत्संयोगे च दीर्घत्वम् पुलिशाह धणे पुलिशश्श धणे। पुरुषस्य धनम् ॥ १२ ॥ अदन्तादित्येव अदन्ताच्छब्दादकारो दीर्घो भवति । संबुद्धौ पुलिशा आगच्छ माणुसा आगच्छ संबुद्धाविति किम् वह्मणश्श धणे । ब्राह्मणस्य धनम् ॥१३॥ चिट्ठस्य स्थाने चिष्ठ इत्य-यमादेशो भवति । पुलिशे चिष्ठदि । पुरुषस्तिष्ठति ॥१४॥ डुकृञ् क-रणे मृङ् प्राणत्यागे गम्लृ गतौ एतेषां क्तप्रत्ययस्य स्थाने डकारो भ-वति कडे मडे गडे । कृत मृतः गत ॥ १५ ॥ क्त्वाप्रत्ययस्य स्थाने दाणि इत्ययमादेशो भवति शहिदाणि गडे । करिदाणि आअडे । सोढ्वा गत. कृत्वा गत ॥ १६ ॥ शृगालशब्दस्य स्थाने शिआला-दय आदेशा भवन्ति । शिआला आअच्छदि । शिआले आअच्छदि शि-आलके आअच्छदि शृगाल आगच्छति ॥ १७ ॥

इति प्राकृतप्रकाशे मागध्याख्य एकादशः परिच्छेद. ॥

अथ द्वादशः परिच्छेदः ।

शौरसेनी ॥ १ ॥ प्रकृतिः संस्कृतम् ॥ २ ॥ अनादावयुजोस्तथयोर्दधौ ॥३॥ व्यापृते डः ॥४॥ पुत्रेपि क्वचित् ॥ ५ ॥ इ गृध्रसमेषु ॥ ६ ॥ ब्रह्मण्यविज्ञयज्ञकन्यकानां ण्यज्ञन्यानां ञ्जो वा ॥ ७ ॥ सर्वज्ञेङ्गितज्ञयोर्णः ॥ ८ ॥ क्त्व इअः ॥ ९ ॥ कृगमोर्डुअः ॥१०॥ णिर्जन्हशासोर्वा क्लीवे स्वरदीर्घश्च ॥११॥ भो भुवस्तिङि ॥ १२ ॥ न लृटि ॥ १३ ॥ ददातेर्दे दइस्स लृटि ॥ १४ ॥ डुकृञः करः ॥ १५ ॥ स्थश्चिट्ठः ॥ १६ ॥ स्मरतेः सुमरः ॥ १७ ॥ दृशेः पेक्खः ॥ १८ ॥ अस्तेरच्छः ॥ १९ ॥ तिपात्थि ॥ २० ॥ भविष्यति स्सिपा स्सं वा स्वरदीर्घत्वं च ॥ २१ ॥ स्त्रियामित्थी ॥ २२ ॥ एवस्य जेव्व ॥ २३ ॥ इवस्य विअ ॥ २४ ॥ अस्मदो जसा वअं च ॥ २५ ॥ सर्वनाम्नां ङे स्सिं वा ॥ २६ ॥ धातोर्भावकर्तृकर्मसु परस्मैपदम् ॥ २७ ॥ अलन्त्य एव ॥ २८ ॥ स्सिपो लोटि च ॥ २९ ॥ आश्चर्यस्याच्चरिअं ॥ ३० ॥ प्रकृत्या दोलादण्डदशनेषु ॥३१॥ शेषं माहाराष्ट्रीवत् ॥३२॥

इति प्राकृतप्रकाशे मनोरमायां वृत्तौ भामहविरचितायां
शौरसेनीलक्षणं नाम द्वादशः परिच्छेदः ॥
समाप्तोयं ग्रन्थः ॥
शुभम् ।

वाडीलाल मोतीलाल शाह की

तर्फसे भेट.

'सुविचारमाला'—मणका १२ वा.

सती सावित्री.

प्रयोजक,

गिरिधर शर्म्मा

झालरापटण (राजपूताना).

प्रसिद्ध कर्त्ता,

वाडीलाल मोतीलाल शाह

सम्पादक जैनसमाचार,

अमदाबाद.

प्रथमावृत्ति-प्रत १२००

विक्रम १९६७-ई. स. १९११.

'जैनसमाचार' पत्रकी सन १९११ की १० वी भेट.

'भारतबन्धु' प्रिन्टिंग वर्क्स नामक मुद्रालयमें

वाडीलाल मोतीलाल शाहने छापा.

हरएक फीरके के सज्जनों के लिये उपदेशी कीतावें.
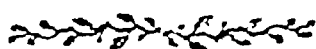
सप्त रत्नो.—इसमें जीव रुपी मुसाफीर विविध गति रुप सफर करता है उसकी कथा अति रमुजो है और भी ६ उपदेशी प्रकरण हैं ०।≈

रास--रासः—मुनिश्री केशराजजी कृत राम--रासको अति शुद्ध करके सुंदर पुस्तक बडी तकलीफसे बनाया है. रसका सागर है, उपदेशका भंडार है, खुबीओंका खजाना है. सुन्नेरी नाम, पक्का जील्द, सुंदर कागज होने पर भी मूल्य शीर्फ रु. १—८—०

सद्‌गुण प्राप्तिके उपाव.—प्रत्येक धर्मके मनुष्यको गुणानुरागकी जुरुरत है. उस गुणका बडी ही उमदा शैलिसे इस ग्रंथमें बोध किया गया है. और भी सत्य वचन, सद्‌भावना इत्यादि विषयोंका बोध है. रु ०।

संसारमें सुख कहां है ? भाग १ ला—प्रत्येक मनुष्य सुखको ढुंढ रहा है, मगर बतानेवाले अनुभवी नहीं होनेसे गैरमार्गको लग जाते हैं. आपको ज्यादा कहनेकी कोइ जुरुरत नहीं है. एक दफा यह पुस्तक पढ लो, सुखका रास्ता स्वत प्राप्त हो जायगा ६ मासमें ४००० प्रत जैन व अन्यधर्मी महाशयोंने खरीद करके विना मूल्य बांट दी हैं. अखबार वालोंने उसकी प्रशंसा की है. मूल्य शीर्फ ०-४-०

संसारमें सुख कहां है—भाग २ रा— मूल्य ०—४--०

सच्चे सुखकी कुंजियां—इसमें सुखकी कुंजियां बताइ गइ हैं मूल्य रु ०।

धर्मसिंह-बावनी.—स्वर्गस्थ महात्मा श्री धर्मसिंहजी महाराज कृत उपदेशी काव्य अति मनोरंजक है रु ०।

स्वरशास्त्र—जिसमें इडा, पींगला, सुषुम्णा नाडीका बयान है हर एक काममें विजय प्राप्त करनेकी तरकीब बतानेवाला यह पुस्तक देवनागरी लिपिमें मगर गुजराती जबानमें है मूल्य ०-४-०

नमीराज—अध्यात्मका ज्ञान और व्यवहार-शुद्धिका ज्ञान चाहिये तो नमीराज' प्रथम पढो. गृहस्थका कर्त्तव्य व त्यागीका कर्त्तव्य किसको कहना, जैसा 'नमीराज पुस्तकमें समझाया गया है वैसा थोडे ही पुस्तकमें दिखा पडेगा वार्त्ता भी अति रसिक है हिंदी भाषांतरका रु. ०।

पताः—वाडीलाल मोतीलाल शाह.

सम्पादक, जैनसमाचार, मु अहमदाबाद.

सती सावित्री.

અથવા

एक नमुना रुप आर्य पत्नी.

(૧)
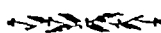
આર્યાવર્તમાં મદ્રદેશમાં અશ્વપતિ નામે ધર્મમૂર્ત્તિ ભૂપતિ રાજ કરતો હતો. ત્હેને તપોબળથી એક પુત્રીરત્ન પ્રાપ્ત થયુ હતુ, જ્હેનુ નામ 'સાવિત્રી' એવુ રાખવામાં આવ્યું હતું.

રાજાએ આ બાળકીને લાડપૂર્વક ઉછેરી હતી પરન્તુ ઘણા જ પ્રેમથી સર્વ કળાઓ શીખવવામાં કચાશ રાખી નહોતી. ત્હેને ભણાવી-ગણાવીને 'સુશિક્ષિતા' બનાવી હતી.

આ કન્યા જ્હારે વિદ્યાલયમા જતી ત્હારે પોતાને શિક્ષણ આપનારી આચાર્યાને નમન કરતી, પોતાની જગાએ બેસીને પાઠ આપતી અને વર્ગમા ઉંચો નબર રાખતી.

જો કે તે એક રાજકુમારી હતી, તથાપિ ગર્વ અથવા મિથ્યાભિમાન-નો સ્પર્શ ત્હેને થયો નહોતો. કોઇ કન્યા એને પાઠ પૂછતી તો ત્હેને તે પ્રસન્નતાપૂર્વક બતાવતી

ત્હેના દસ્કત અતિશય સુન્દર હતા. કળા અને કુશલતાની તો તે છબી જ હતી ! ત્હેના હરફ જોઇને ગુરૂજન ચકિત થઇ જતા હતા.

ભણવામા, લખવામા, શીવવામાં, ભરવા-ગુંથવામાં, પાક શાસ્ત્ર અથવા ગ્રેહ સબધી કામકાજમા સર્વ કલામા તે કન્યા અનુપમ હતી

જે કાઇ તે એકવાર સાભળતી તે એના સ્મરણ ખજાનામાથી કદી ભુસાતુ નહિ જે નિશાળમા તે ભણતી તે નિશાળ આવી કન્યા માટે "મગરૂર" બને એમા શુ આશ્ચર્ય ! અને એવી કન્યા પોતાનાં માબાપ-ના 'પ્રાણ' સમાન થઇ પડે એમા શુ નવાઇ !

જ્હારે આ કન્યા ઉમરમા પહોંચતી થઇ ત્હારે એના રગ અને રૂપ અજબ જ ખીલી ઉઠ્યા દેખાણી અને કામદેવની સ્ત્રી રતી પણ એને જોઇને લજવાય એવી તે દેખાવા લાગી !

જગતમા જેટલા સુંદરતાના પરમાણુ છે તેટલા બધા એના શરીરમા

સમઝાવવામાં આવ્યા હતા ! નખથી તે માથા સુધી તે સુરૂપ હતી.

એના લાંબા—કાળા–સુગંધી–પ્રકાશીત ગુચ્છાવાળા વાળ ઘણા મનહર હતા. એનાં નેત્ર જોઇને હરિણી જંગલમાં દોડી ગઇ અને ત્યહા જ રહેવા લાગી ! એની મધુર વાણી સાંભળતાં સરસ્વતી દેવી પણ પોતાનું મ્હોં બંધ કરી એને એક કાને સાંભળતી !

જેવી તે રૂપમતી અને કલાવતી હતી તેવીજ વળી વિદુષી અને બુદ્ધિમતી હતી, અને તેવીજ પુણ્યવતી—દયાવતી અને શીલવતી હતી તે તેજસ્વિની કન્યા ધર્મનો **મર્મ** પણ સમજતી હતી.

પુત્ર અને પુત્રીમાં રાજાને આ એકજ કન્યા હતી; તેથી તે મનમાન્યું ખર્ચ કરી શકતી હતી. પણ આવી વિદ્યાપ્રેમી કન્યાને બીજુ શું ખર્ચ કરવાનું મન થાય? તે માત્ર બીજી કન્યાઓને જમાડવામાં અને તેમના ભણતરનાં સાધનો જેવાં કે પુસ્તકો, કલમ, સ્લેટ વગેરે લાવી આપવામા જ દ્રવ્ય ખર્ચતી હતી.

સાવિત્રીને માટે એક ખાસ બાગ હતો, જે ઘણો સુંદર હતો. એમાં મખમલ જેવી વનસ્પતિ હતી ફુઆરાઓની શોભા અદ્ભુત હતી ઝાડ અને વેલીઓથી ઠંડી છાયા બની રહેતી હતી જુઇ—મોગરા વગેરે જાતજાતના પુષ્પો એમા ખીલી રહ્યાં હતાં અને તે ઉપર ભમરા ગણગણ કરી રહ્યા હતા. પોપટ, મેના, મોર વગેરે રમણીક પક્ષીઓ એમા મધુર કલરવ કરી રહ્યા હતાં. દ્રાક્ષના વેલા, આંબા, જામફળી, કેળ વગેરે ફળઝાડ પણ ત્યહા પુષ્કળ હતાં.

આ મનોહર બાગમા આવીને અમુક વખત સુધી **સાવિત્રી** હમેશ એકાગ્ર ચિત્તે પરમાત્માની ભક્તિ કરતી હતી અને 'સઘળા પ્રાણીઓ સુખી હોજો ! ' એમ પ્રાર્થના કરતી હતી.વળી પોતે સત્યમાર્ગે જ ચાલનારી અથવા સદાચારિણી હતી એક દિવસ તે બાગમાંથી રાજા–પિતા પાસે આવીને બેઠી

આ કુમારીને લાયક વર કોઇ આજ સુધી મળ્યો નહતો. ભણ્યા–ગણ્યા રાજકુમાર તો જગતમા ઘણાએ હતા પણ **સર્વગુણસંપન્ન** એવો એક પણ હાથ લાગ્યો નહતો.

આ કન્યાના મ્હોનુ તેજ જોઇને કોઇ એના સામે પોતાનુ મ્હોં જ ઊંચુ કરી શકતા નહોતા, તો પછી એની માગણી કરવા જેટલી હિંમત તો કોણ ધરી શકવાનુ હતુ ?

ભૂપતિએ આ વાત જાણી ત્યારે પોતાની તેજોનિધિ જેવી પુત્રીને પાસે બોલાવીને પ્રેમપૂર્વક કહ્યું " પુત્રી ! તું પોતે જ વર શોધવા નીકળી પડ ! મ્હારી આજ્ઞા છે "

લજ્જીત થઈને, આંખો નીચી ઢાળીને, માથું નીચું નમાવીને તથા બે હાથ જોડીને સાવિત્રી ત્યાંથી ગઈ અને રથમાં બેસી ભારતના વર શોધવા ચાલી નીકળી.

(૨)

ભારતમાં શોધ કરતી કરતી અને કુદરતના સુંદર દેખાવોને તથા જૂદા જૂદા રાજાઓને કાળજીપૂર્વક જોતી જોતી સાવિત્રી એક તપોવનમાં આવી પહોંચી.

અહીં એની દૃષ્ટિએ એક યુવક પડ્યો, કે જે ઘણો બુદ્ધિશાળી, ધાર્મિક, વીર્યવાન ભક્તિવાન, નમ્ર, મનોહર અને સત્યને ચાહનારો હતો.

એને જોતાં જ સાવિત્રી મનમાં પ્રમોદ પામી. ગુણનું સ્વાભાવિક આકર્ષણ થતાં એણે એને મનથી જ વરી લીધો ! અને ત્યાંથી પાછી ફરીને પોતાના પિતાને પોતાનો નિશ્ચય કહેવા ગઈ.

નારદ મુનિ તે વખતે રાજા પાસે બેઠા બેઠા પરમાત્માના ગુણગ્રામ કરી રહ્યા હતા. ઋષિને અને પિતાને નમન કરીને પ્રમોદભરી કન્યા એમની આશિષ લઈને નમ્રતાપૂર્વક બેસી ગઈ.

રાજાએ નારદ મુનિને કહ્યું " હે મુનીશ્વર ! આપ પણ સાંભળો. " પછી કન્યાને કહ્યું " હે સુપુત્રી ! કહે કે ક્યા નૃપેશ્વરના સુપુત્રને હું ત્હારો હાથ સમર્પણ કરૂં ? "

પુત્રી શરમાતી દેખાઈ જરા ધૈર્ય ધરીને માત્ર એટલું જ કહી શકી " પિતા ! શાલ્વ દેશના રાજા દ્યુમત્સેનના પુત્ર સત્યવાહનને. "

રાજાએ મુનિને પૂછ્યું " હે મહામુને ! કહો કે એ નૃપપુત્ર મ્હારી પુત્રીને લાયક છે ? "

ઋષિ વદ્યા. " એમાં કાંઇ સંશય નથી. તે વિદ્વાન છે, નીતિમાન છે, ચતુર છે, વીર્યવાન છે, શાસ્ત્ર સંબંધી વિચારોમાં ઘણો પ્રવિણ છે, નયમાં નિપુણ છે, ગુરૂજનોની ભક્તિ કરવામાં અને પરમાત્માની પ્રાર્થનામાં અનુરક્ત છે, અતિ ઉદાર છે, પવિત્ર આશયવાળો છે, કાન્તિમાન છે, સત્ત્વવાન છે–અરે સઘળા સદ્‌ગુણોના ખજાના રૂપ છે. પ.....ણ, એક વાત મ્હારી ઉમંગથી કહી જાય તેમ નથી. એનું આયુષ્ય એક વર્ષથી વધુ બાકી રહ્યું નથી. "

મુનિના શબ્દો સાંભળી રાજાને ઘણું દર્દ થયું. આવા ઉત્તમ પુરૂષનું આવું ભવિષ્ય સાંભળી કોના મનમાં દુઃખ ન થાય?

પછી ધૈર્ય ધારણ કરીને રાજા બોલ્યો "હે પુત્રી! અહીં આવ મ્હારી વાત સાંભળ. બેટા! ગુણી—સુંદર અને તે સાથે જ લાંબા આયુષ્યવાળા કોઇ બીજા પુરૂષને પસંદ કર"

સાવિત્રી બોલી "પિતાજી! જેને હું મનથી વરી ત્હેને તો વરી જ ચૂકી. હવે મ્હારે બીજો વર ન જ જોઇએ, અને આપને એવું કહેવું પણ યોગ્ય નથી. સુકુલમાં જન્મ પામેલી અને દૃઢ નીતિવાળી કન્યા જેને પોતાનું **મન અર્પે છે ત્હેને જ પરણે છે.** એ દીર્ઘાયુ હોય કે નહિ તો પણ તેજ મ્હારો પતિ છે, બીજો નહિજ. બીજા જનક, સહોદર કે પુત્ર તુલ્ય પુરૂષોથી મ્હારે શું લેવાદેવા છે? આપ પિતા થઇ આવું નિંદીત કર્મ મ્હને બતાવો છો એ શું? **પતિવ્રતા તો હૃદયથી પણ વ્યભિચાર કરી શકે નહિ**"

× × × ×

પુત્રીની આવી હઠ જોઇને પિતા દુઃખમાં પડ્યો મુનિએ કહ્યું "હે રાજન્! ભવિતવ્યતાની ગતિ પ્રબલ છે કરી દે વિવાહ, સૌ સારા વાના થશે"

જ્યારે ઘણી વાતો કહેવા છતાં કન્યા એકની બે થઇ નહિ ત્યારે કન્યા તથા પરિવારને લઇને રાજા, જ્યાં શાલ્વપતિ દ્યુમત્સેન તપોવનમાં રહેતો હતો ત્યાં ગયા

પરોણાઓનું આતિથ્ય કર્યા બાદ દ્યુમત્સેને રાજા અશ્વપતિને આગમન કારણ પૂછ્યું.

"મ્હારી આ પુત્રી આપના સુપુત્ર માટે લગ્નમાં સ્વીકારો હે મહોદય! આ વિનતિ સ્વીકારીને અમને આનંદ આપો" અશ્વપતિએ કહ્યું

"હે નૃપ! મ્હારૂં રાજ્ય મ્હારા હાથમાંથી ચાલ્યું ગયું છે, મ્હારાં ચક્ષુ નકામાં થયાં છે, હું આ તપોવનમાં રહી માત્ર પ્રભુભજન કરૂં છું. આવી સ્થિતિમાં આપની પુત્રીને સ્વીકારીને દુઃખી કરવી એ મ્હારે માટે શોભાપ્રદ નથી" દ્યુમત્સેને જવાબ આપ્યો આહા, સજ્જનો કેટલા બધા દયાળુ અને સ્વાર્થત્યાગી હોય છે!

અશ્વપતિએ કહ્યું "હે કરૂણાનિધે! આવો વિચાર કરતા જ નહિ દુઃખ કોઇની પાસે સ્થાર રહેતું નથી, તેમ સુખ પણ રહેતું નથી. વિશ્વનો

નિયમ જ છે કે સઘળા દિવસ સરખા જતા નથી. નિયતિનું ચક્ર ઘડીમાં ઉપર અને ઘડીમા નીચે આવ-જા કરે છે તેથી સજ્જનોએ ખેદ કરવો ઉચીત નથી. કૃપા કરી આપ મ્હને 'ના' કહેશો નહિ. મ્હારી પ્રાર્થના સફલ કરો અને આ મ્હારી પુત્રી આપની પુત્રવધુ અત્યારથી જ બની એમ માનશો "

વિનયપૂરિત કોમલ વાક્યથી પ્રસન્ન થયેલા **શાલ્વ**-પતિએ 'તથાસ્તુ' કહીને આનંદ જણાવ્યો

મદ્રદેશનો રાજા અશ્વપતિ પોતાની કન્યા **સાવિત્રીનો હાથ શાલ્વ**-પતિના કુમાર **સત્યવાહનના હાથમા** વિધિપૂર્વક મુકીને પોતાના પરિવાર સહિત પોતાના રાજ્યમા ગયો

(૩)

સઘળા વસ્ત્રાલંકાર ઉતારીને નૃપકન્યાએ હવે વૃક્ષની છાલના બનાવેલા વલ્કલ પહેર્યા એક નદી જેમ સમુદ્રમા સમાઇ જાય તેમ આ સતી પોતાના પ્રાણેશના સત્કુલમા સમાઈ!

'ગૃહિણી' તરીકેના સઘળા ઉત્તમ કર્ત્તવ્યકર્મ તે કરવા લાગી. ગુરૂલોકની સેવા પૂર્ણ આનંદથી કરવા લાગી એનાથી સાસુ-સસરા પ્રસન્ન થયા, આશ્રમમા રહેનારા સર્વ કોઇ સન્તુષ્ટ થયા અને આખો આશ્રમ 'આનન્દ સ્થલ' બની ગયો!

તે સુઘડ સ્ત્રી સ્વચ્છતાથી ભોજન બનાવતી, ફળ—ફુલ લાવતી અને સઘળા કર્ત્તવ્ય કર્મ કરી પતિ-દેવતાને સારી રીતે રીઝાવતી. નગરના લોકો અહીં કદી કદી આવતા તો આની વાણી અને વર્ત્તન જોઇ ધર્મના રાગી બનતા, તેઓની ઉદાસી નાશ પામતી અને ત્હેમના મનમા અશાન્તિની જગાએ શાન્તિ શાન્તિ થઇ જતી.

આ પ્રમાણે કેટલાક માસ વ્યતીત થયા પછી સખ્ત તાપથી દુનીઆને આકુળવ્યાકુળ કરનારો જેઠ માસ આવ્યો. ત્રાસદાયક 'લૂ' જગતને સતાવવા લાગી પૃથ્વી આગ જેવી તપવા લાગી નદી—કુવા સુકાઇ ગયા અરણ્ય તો છેક દાવાનલ જેવા જ થઈ ગયા. પ્રાણી માત્ર આકુલવ્યાકુલ થવા લાગ્યા

અને હવે સતીને પણ ભવિષ્યકથનનું સ્મરણ થઈ આવ્યું. "પ્રાણેશને હવે માત્ર ત્રણ દિવસ બાકી છે,' એ ખ્યાલ આવતા જ એના

અંતરમાં વિષની કટારીના પ્રહાર જેવું દર્દ થયું પણ તે દર્દ હેણે છૂપાવ્યું. મહાજનો પોતાની પીડા કોઈને કહેતા નથી

પછી હેણે ત્રણ દિવસ સુધી આહાર ન લેતાં પરમાત્માની પ્રાર્થના કરવાનું જ ઠરાવ્યું. સાધુસંતોની પૂજા કરી એમની આશિષ મેળવીને તથા સાસુ-સસરાને પગે લાગી હેમની પણ શુભાશિષ લઈને હેણે તપ શરૂ કર્યો. ભૂખને લીધે તદ્દન કુમળાઈ ગયેલી હોવા છતાં બાહારથી પ્રસન્નવદના રહેતી હતી, કે જેથી બીજાઓને કાંઈ દુઃખ થાય નહિ.

હવે ત્રીજો દિવસ—છેલ્લો દિવસ આવે છે. પિતાની આજ્ઞા લઈ સત્યવાહન જંગલમાં વૃક્ષ કાપવા માટે નીકળે છે, "મ્હને પણ વન જોવાની ઉત્કંઠા છે, મ્હને સાથે લ્યો!" એમ સતી માગણી કરે છે. આ માગણીનો આશય કોઈ જાણતું નથી, કારણ કે નારદજીએ કહેલું ભવિષ્યકથન તેણીએ કોઈને હજી સુધી જણાવ્યું નથી. પતિ કોમળ પ્રિયાની દયા ખાઈને પ્રથમ તો હેને પોતાની સાથે લેવા ના કહે છે, પણ હેનો બહુજ આગ્રહ જોઈ છેવટે વડીલજનોની આજ્ઞા લેવા કહે છે આજ્ઞા મળતાં બન્ને સાથે વનમાં જાય છે.

(૪)

જોતજોતામાં દંપતી ઘોર વનમાં આવી પહોંચે છે. સતી પતિને માટે અહીંતહીંથી થોડાં ફળ એકઠાં કરે છે અને પછી સૂકી ડાળીઓ એકઠી કરે છે. ત્રણ પહોર એમ વીતી જાય છે. પાછા ઘેર ફરવાની તૈયારીઓ થવા લાગે છે. એટલામાં "અરરર" એવી બૂમ સત્યવાહનના મ્હોંમાંથી નીકળી પડે છે. એના શીરમાં ઓચીંતું દર્દ થઈ આવે છે અને તે શિથિલ થઈ ભોંય પડે છે. "ઓ પ્રિયે! હું મરૂં છું" એવા બોલ હેના મ્હોંમાંથી નીકળવા સાથે જ તે અબોલ થાય છે.

સતી ફીકી પડી જાય છે પતિનું માથું પોતાના સાથળ પર મૂકીને પંપાળતી પંપાળતી અને ટગટગ જોયાં કરતી બેઠી છે.

એટલામાં જો સામેથી પેલું કોઈ આવે છે!

એક દોલતફત સતીની નજરે પડે છે, એની તરફ સતીનો એક કોમળ હાથ [illegible] પરાય છે અને પ્રચંડ શક્તિવાળો તે યમ એ કોમળ હાથો જતાં જ ડરે છે—દૂર રહે છે—ને પાછો હઠે છે.

* * * *

હવે [illegible] ધર્મરાજને આવવું પડે છે. સતી મગ્ન ભાવથી પ્રાર્થના કરે છે, "[illegible] પવિત્ર પિતા ધર્મરાયનાં ચરણો સ્પર્શ થાય છે તે સ્થાન પવિત્ર જ થાય છે."

તથાપિ ધર્મરાય સત્યવાહનના જીવને ખોળીઆમાંથી જૂદો પાડી ત્હેની સાથે ચાલના માંડેછે રતી ખાળીઆની સગી નહોતી—પણ એમાંના આત્માની સગી હતી માટે તે આત્માની પાછળ પાછળ જવા લાગે છે અને યમને આગ્રહ કરેછે.

ધર્મ કહેછે. "હું ત્હારાથી પ્રસન્ન છું. આને જીવતો કરવાના વર સિવાય બીજો કોઇ પણ 'વર'-વરદાન માગ."

સાવિત્રી માગેછે: "મ્હારા સસરાનાં નેત્ર પાછાં મળો! ત્હેમનું ગુમાવી બેઠેલું રાજ્ય પુન પ્રાપ્ત થાઓ!"

ધર્મ કહેછે: "તથાસ્તુ! હવે, હે સુમુખિ! પાછી ફેર જા માણુસ મરી જાય છે ત્હારે 'સ્નેહ'ની અવધિ આવેછે. પિતા-પુત્ર વગેરે જે સઘળા 'ભાવ' છે તે 'સમય' રૂપી સિન્ધુમા લીન થઈ જાયછે."

સતી કહેછે "હે વિભો! પતિવ્રતાની ગતિ કોઇ રોકી શકતું જ નથી. માટે હે ધર્મ! મ્હને મ્હારા ધર્મ અથવા કર્ત્તવ્યથી જૂદી કરો મા. હું 'આર્યપત્ની' છુ, આર્યપત્ની કદી પોતાના પતિદેવના ચરણ સેવાથી દૂર ખસી શકતી નથી—સ્વધર્મથી કદી દૂર જઇ શકતી નથી

ધર્મ ત્હેને સાન્ત્વન કરેછે "હે સુમુખિ! સ્વસ્થ થા, સ્વસ્થ થા. હું ત્હારાથી પ્રસન્ન છુ; માટે પેલી એક વાત સિવાય બીજી ગમે તે વાત માગી લે"

અને હવે બુદ્ધિશાલી સતી વરદાન માગવા તૈયાર થાય છે. તે કહે છે "મ્હારા પિતા પોતાના પૌત્રને રમાડે એટલુ જ હુ માગું છુ."

ધર્મ 'તથાસ્તુ!' કહે છે અને સતી હર્ષાયમાન થાય છે—હશી પડેછે પોતાનું ધારેલ કામ બુદ્ધિના પ્રતાપે પાર પડતું જોઇ કોને આનદ ન થાય?

હવે તે સતી ધર્મરાયને પ્રેમ ખુલ્લો કરેછે "અહો દેવ! આપની પ્રશસા એકદર આર્ય ધર્મશાસ્ત્રો કરી રહ્યા છે. સર્વ કોઇ કહેછે કે, આપ જે કાંઇ બોલોછો તે મિથ્યા થતુ નથી. વળી આપ સર્વના મનના ભાવ પણ જાણો છો તો હવે આપની અલૌકિક શક્તિથી મ્હારૂં હૃદય તપાસો અને પછી કહો કે ત્હેમા આ મ્હારા પતિ સિવાય બીજા કોઈનું ચિત્ર છે ખરૂં? જો ન જ હોય તો મ્હને તે મ્હારી પ્રેમમૂર્તિ સાથે હમેસને માટે રહેવા દો! મ્હારા પિતાને હુ એક જ છુ—મ્હારે કોઈ

ભાઇ કે બ્હેન નથી અને આપે મ્હારા પિતાને પૌત્ર થશે એવું વરદાન આપી દીધુ છે, તો મ્હને મ્હારા પ્રિયતમની સાથે રાખ્યા સિવાય આપનું વચન કેમ પળશે ? આપ જાણોછો કે **આર્યપત્નીઓ એક જ પતિને અને એક જ વાર પરણે છે. પતિવ્રતા ધર્મ એ આર્યપત્નીઓનું એકનું એક અને અમૂલ્ય ભૂપણ છે.** ”

અમૃતભર્યા વાક્યો સાંભળી ધર્મરાય છેવટે ફરમાવે છે: “ અયિ પતિવ્રતે ! આર્ય અંગને ! આ ધર્મનાં વચન કદી પાછા ફરતાં નથી, માટે જા, પુત્રી ! ત્હારા પ્રાણનાથ સાથે લાંબો વખત ધર્મજીવન ગાળ. જા, બેટા ! **માતૃભૂમિને વિમલતાના આદર્શ રૂપ બનાવ.** ”

એમ કહેતાં જ ધર્મરાજા ચાલતા થાયછે અને સાવિત્રી પોતાના પતિના ચૈતન્યરહીત શરીર પાસે જાયછે.

* * * *

અને જો હવે સત્યવાહન આળસ મરડી બેઠો થાયછે. “ પ્રિયે, ચાલો ” એમ કહી સતીને પોતાના તપોવનમા જવા તૈયાર થવા કહેછે. “ હાં નાથ, પધારો ! ” એવા શબ્દો સાથે સતી પતિની પાછળ ચાલવા માંડેછે.

પોતાની પર્ણકુટિકામાં પહોંચતા જરા અંધારૂં થઇ ગયુ છે મુનિજનો એકઠા થઇ બેઠા છે. પુત્ર—પુત્રી નજીકમા આવતા જ “ ત્હમને જોઇને આજે મ્હારૂ હૃદય હર્ષથી ઉભરાઇ જાયછે, આજે મ્હારાં નેત્ર કેવી અજાયબ રીતે ખુલ્યા છે ! એમ કહી દ્યુમત્સેન સર્વને અચંબામા ગરકાવ કરી દે છે.

એટલામા પ્રજાજનો દોડતા આવીને ખબર આપે છે કે, શત્રુ એકાએક મરણ પામ્યો છે અને દ્યુમત્સેન માટે સર્વ કોઇ રાહ જોતુ બેઠું છે.

સતી અહીં ધર્મરાજાની સાથે બનેલી હકીકત જાહેર કરેછે, જે સાંભળી સર્વ કોઇ ચિત્રવત્ બની જાયછે અને સર્વના મ્હોંમાંથી શબ્દો નીકળી પડેછે “ જય પતિવ્રતે જય ! ધન્ય સતી ધન્ય ! પિતા—માતા—દેશ સર્વને ઉજ્વલીત કરનારી હે ‘ આર્ય ગૃહિણી ’ ! ત્હારો યશ મહાન કવિઓ અને પવિત્ર ઋષિઓ હમેશને માટે ગાયા કરશે. ભારતભૂમિ ત્હારા જેવા રત્નોને ઉત્પન્ન કરવા માટે વાજબી ગર્વ લેશે. જય, સતી ! જય ! ”

[વા. મો. શાહ.]

---
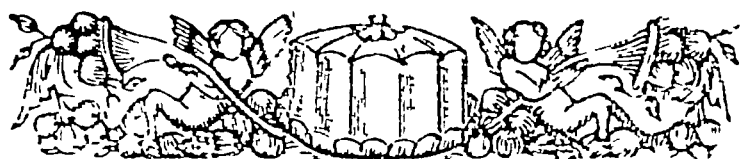
१ पहिला सर्ग.

मद्रदेशका अश्वपति था
    धर्ममूर्ति भूपति, उसके घर—
जनमी सुता तपोबलसे थी,
    नाम पडा 'सावित्री' उसका.

इसे भूपने बडे चावसे,
    स्नेह भावसे, लाड लडाकर,
पाल पोष सब कला सिखाई,
    पढा लिखाकर की सुशिक्षिता.

यह कन्या विद्यालय जाती,
    शीश नमाती आचार्योंको;
पाठ सुनाती बैठ जगह पर,
    उत्तम रहती कक्षा भरमें.

यद्यपि थी यह राजकुमारी,
गर्व इसे पर छू न गया थाः
कोई कन्या पाठ पूछती,
उसे बता देती यह सुख पा.

इसकी लिपि थी अतिशय सुन्दर,
कला-कुशलताकी यह छवि थी.
इसका लिखना मजमूनोंका-
देख चकित होते थे गुरुजन.

पढनेमें भी, लिखनेमें भी,
सीने और पिरोनेमें भी,
चतुरा पाकशास्त्रमें ही क्या-
सभी हुनरमें थी यह अनुपम.

जाना एकबार जो इसने-
उसका यह होगई खजाना;
विद्यालयका यही मान थी,
यही प्राण थी मातपिताके.

जब यह हुई अवस्थावाली
अजब निराली रंगरुपसे,
इसको देख शची सकुचानी,
पानी उतर गया रति-मुखका.

इसकी तनुका सुन्दर वर्ण-
समझ, ताव पर सुवर्ण रक्खा
खूब तपाया जाताहै वह
पाताहै कब तुलना तब भी ?

जितने जगमें थे परमाणु-
सुंदरताके, सभी जडे थे-
इसकी तनुमें; नखसे सिखतक
बस सरूप यह थी इसकीमी.

घूंघरवाले. लम्बे लम्बे.
काले, सुरभित, घने, मुलायम.
केश सुकेशी भी लख इसके
कभी नहीं सन्मुख आतीथी.

सुलोचनाका मान विमोचन–
हुआ, देखकर लोचन इसके;
हरिणी दौडगई जंगलमें,
जलमें डूबरही मछली भी,

इसकी सुनें सुरीली वाणी
मानी वृथा मंजुघोषाको;
यह गाती जब कभी प्रवीणा
निजवीणा रख देती वाणी.

पुण्यवती यह, दयावती यह,
कलावती यह, शीलवती यह;
रूपमती यह, बुद्धिमती यह,
भाग्यवती यह, अतिविदुषी यह.

तेजस्विनी, यशस्विनी यह,
धर्म–मर्मकी वेदिनी यह,
जग भीतर थीं प्रसिद्ध जितनी
उससे तो थी सौगुनी यह.

नृपकी इकलोती बेटी यह,
मनचाहा धन व्यय करती थी:
रोज जिमाती कन्याओंको,
शिक्ष-सामग्री लेदेती.

इसका एक बाग़ था सुन्दर,
मन हर लेताथा जो सबके;
लहराती थी उसमें दूब
हरी हरी, मखमलसे अच्छी.

अद्भुत शोभा फव्वारोंकी,
मिली हुई अलबेली बेलें-
तरुओंसे, त्यों भूलभुलैयां.
जिसे देख हो परमानन्द.

जुही-मोगरा गुलाबकोले.
सहस जातिके कुसुम खिलेथे.
गूंज रहे थे जिनपर मधुकर,
सबके मनको लुभा रहे थे.

सुलोचनाका मान विमोचन–
हुआ, देखकर लोचन इसके;
हरिणी दौडगई जंगलमें,
जलमें डूबरही मछली भी,

इसकी सुनें सुरीली वाणी
मानी वृथा मंजुघोपाको;
यह गाती जब कभी प्रवीणा
निजवीणा रख देती वाणी.

पुण्यवती यह, दयावती यह,
कलावती यह, शीलवती यह;
रूपमती यह, बुद्धिमती यह,
भाग्यवती यह, अतिविदुषी यह.

तेजस्विनी, यशस्विनी यह,
धर्म–मर्मकी वेदिनी यह,
जग भीतर थी प्रसिद्ध जितनी
उससे तो थी सौगुनी यह.

नृपकी इकलोती बेटी यह,
मनचाहा धन व्यय करती थी;
रोज जिमाती कन्याओंको,
शिक्ष-सामग्री लेदेती.

इसका एक बाग़ था सुन्दर,
मन हर लेताथा जो सबके;
लहराती थी उसमें दूब
हरी हरी, मखमलसे अच्छी,

अद्भुत शोभा फव्वारोंकी,
मिली हुई अलबेली बेलें-
तरुओंसे, त्यों भूलभुलैयां,
जिसे देख हो परमानन्द.

जुही-मोगरा गुलाबकोले,
सहस जातिके कुसुम खिलेथे,
गूंज रहे थे जिनपर मधुकर,
सबके मनको लुभा रहे थे.

सदा सुनाती मीठी तानें
मोदभरी श्यामा सबको थी,
विविध विहंग बताते थे छवि
शुक, सारिका, मयूर, पिकादि.

कहीं अनार, आम, अमरूद,
कमरख कहीं, कहीं कचनार,
केले कहीं, कहीं नारंगी,
कहीं फालसे, कहीं बदाम,
कहीं नाशपाती, अंगूर,
कहीं जामने, लीची, ताड,
कहीं मनोहर लगे कदम्ब,
लगी सिरुंकी कहीं कतार.

गरज बाग यह अति सुन्दर था
इसमें ही था गारी--मन्दिर;
सावित्री कर भक्ति चित्तसे-
प्रतिदिन हित चहतीथी जगका.

सत्यमार्गपर चलनेवाली,
रहनेवाली सदाचारसे,
एक दिवस यह नित्य--कृत्य कर
नृपके समीप जाके बैठी.

थे यद्यपि बहु राजकुमार,
अच्छे, पढेलिखे, जग भीतर;
इसके वर होनेके लायक,
सबगुणनायक पर, वे नहिं थे.

नहीं तेजके सन्मुख इसके
हो सकताथा मुख भी उंचा;
फिर किसका इतना साहस था--
जो खुद मंगनी करता इसकी ?

ऐसा देखा जब भूपतिने,
तेजोनिधि जैसी तनयाको--
पास बुलाकर, कहा प्रेमसे:
" देखो वर जाकर बेटी, ! वर "

शरमा कर, कर नीची आंखें,
हाथ जोड कर, शीश झुकाकर,
फिर. चढ़ रथ पर, गई वहांसे
भारतमे खोजने योग्य वर.
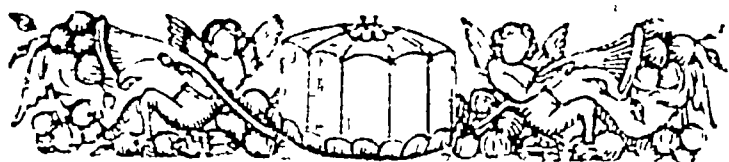
२ दुसरा सर्ग.

भ्रमण भारतमें करती हुई,
विविध सुन्दर दृश्य विलोकती,
नृपतिमंडलके नृपकन्यका
जब तपोवनमें नमके गई--
युवक देख पडा उसको वहां.
बुधशिरोमणि. धार्मिक, धैर्यवान्.
चतुर. भक्त, विनीत. सुबुद्धिमान् ,
अति मनोहर, सुन्दर, सत्ववान्.
प्रमुद देख उसे इसको हुआ.
वर लिया मनमें इसने उसे;
फिर विदा गह आश्रमसे गई
जनक शोभित था इसका जहां.

मुनिशिरोमणि नारद भी वहां
कर रहे, प्रभुके गुणगान थे:
कर प्रणाम प्रमोदभरी उन्हें.
विनत बैठ गई गह आशिष.

हुकुम पा मुनिका नृपने कहा:
"मधुर बात मुनीश्वर भी सुनें
किस नृपेश्वरके सुतको तुझे,
कह सुपुत्रि! समर्पित मैं करूं?"

सुन नृपेश्वरकी बचनावली
सकुचमें सहसा घिरसी गई;
कह विशेष सकी इससे नहीं:
"जनक! शाल्व--नृपेश्वर-सूनुको."

विनत होकर यों मुनिराजसे.
तब नरेन्द्र लगे हित पूछने:
"अयि कृपालु! सुरर्षि! महामुने!
इस सुता सम है वर क्या वह?"

"न इसमें कुछ संशय है" कहा,
सुन गिरा नृपकी ऋषिराजने,
"विबुध है वह, है वह नीतिमान्,
चतुर है वह, है वह वीर्यवान्,
अतिविशारद शास्त्र-विचारमें.
प्रबल है शुचि-धर्म-प्रचारमें,
निपुण है नयमें, गुरु-भक्त है,
भजनमें प्रभुके अनुरक्त है.
अति उदार, महाशय, कान्तिमान्,
सकल सद्गुण--शोभित, सत्ववान्,
सब प्रकार सुशोभित--गात है,
अखिलविघ्न-तमिस्र-प्रभात है;
पर नृपाल कहूं किस भांति मैं
न रसना कहना मम मानती;
अहह शेष रही उसकी नहीं
अधिक आयुष वत्सर एक से."

सुन गिरा मुनिकी महिपालके
  हृदय बीच विषाद हुआ महा;
इस प्रकार भविष्यत जानके
  न किसके मनमें दुख हो कहो ?

नृपतिने धर धीरज यों कहा:
  "अयि कुमारि ! यहां मम पास आ
कर पसन्द सुते ! वर अन्यको
  सगुण, सौम्य, चिरायुष, धन्यको."

नृपसुता तब यों कहने लगी:
  "वर चुकी जिसको वरही चुकी:
अब मुझे वर अन्य न चाहिए.
  न प्रभुको कहना यह योग्य है.

सुकुलमें जिनका शुभ जन्म है,
  अटल नीति सदा उनकी यही
कि जिसके करमें मनको दिया
  बस दिया! उसको ध्रुव तुल्य है;

वह चिरायुष हो अथवा नहीं.
वर वही मम है, दुसरा नहीं,
जगतमें जितने जन और हैं
जनक. सोदर. आत्मज हैं सभी;

जनक होकर कर्म बता रहे,
अह मुझे असतीजनशोभित ?
हृदयसे तक सत्य पतिव्रता
न करती व्यभिचार कभी कहीं. "

इस प्रकार सुता-हट देखके,
पड गया नृप सोचसमुद्रमें;
" प्रबल, भूपति ! है भवितव्यता;
कर विवाह " मुनिश गये कह.

महिपने बहु नीति-कथा कही,
पर सुता प्रणसे पलटी नहीं,
तब उसे गह, ले परिवारको,
नृप नृपाल-तपोवन को गया.

अतिथि-सत्कृति पा अतिही वहां,
विनत होकर त्यों कर जोडके,
वचन शाल्वपति--क्षितिपालसे,
महिपतीश्वर यों कहने लगाः

" मम सुता अपने सुतके लिये
अयि महोदय ! सज्जनतालय !
अति कृपा कर स्वीकर लीजिये,
सकल सज्जनको सुख दीजिये. "

तब कहा उसनेः-- " धरणीपते !
विगतराज्य, विचक्षु बना हुआ--
इस तपोवनमें भज कृष्णको
कर रहा अपने दिन तेर हूं.

इस लिये चहता नहि हूं कभी,
दुख उठाय सुता यह आपकी; "
सुजन और जनोंपर डालना
नहि कभी अपना दुख चाहते.

तब कहा नृपनेः—"करुणानिधे !
कुछ विचार करें इसका नहीं;
हरि-कृपा-वश पाकर लाभको
जन दुखी रहता नहि है कभी.

दुख नहीं स्थिर हो रहता कहीं,
नहि कहीं सुख भी रहता सदा
नियम ही यह है इस विश्वका,
सब समान नहीं दिन बीतते.

नियतिचक्र रहे यह घूमता,
ठहरता नहि एकहि ठौर है;
सुजन, सज्जन की शुभ--दृष्टिमें
इसलिये न अमान्य बने कभी.

कर कृपा कहिये मत 'ना' मुझे,
सफल ही करिये मम प्रार्थना;
यह सुता मम आत्मजकी वधू–
बन चुकी, मनसे यह मानिये."

विनयपूरित कोमल वाक्य ये
जब सुने सब शाल्व--महीपने
तब 'तथास्तु' कहा मुद पा महा,
मधुर वाक्य किसे नहिं मोहते ?

निज सुता विधिसे नृप शाल्वके
तनयके करमें कर अर्पित
गह बिदा निज पत्तन को गया
सपरिवार महीश्वर मद्रका.

३ तीसरा सर्ग.

उतार सारे पट भूषणादि
नृपाल-कन्या तरु-छाल धारे
प्राणेशके सत्कुलमें समाई
समुद्रका रूप लिया नदीने
गृहस्थिनीके सब कर्म नीके
लगी निभाने: गुरुलोक सेवा
आनन्द उत्साह प्रमोद पूर्णा
तपस्विनी हो करने लगी ये.
प्रसन्न सासू सुसरे गये हो
सन्तुष्ट त्यों आश्रमके निवासी
आनन्दकी भू अपने बनाया
प्रभावसे आश्रमको इसीने.

महाशया भोजन स्वच्छतासे
अच्छा बनाती, फल फूल लाती,
कर्तव्य सारा अपना निभाती,
अच्छे रिझाती पतिदेवताको.

आते यहां जो पुरके निवासी
होते स्वयं धर्मपथानुरागी,
विनाश पाती उनकी उदासी,
अशान्ति जाती, शुभशान्ति आती.

व्यतीत यों मास कई गये हो
परन्तु आया जब जेठ मास
बडी कडी धूप लगी तपाने
आने लगी लू जगको सताने

थी आगकीसी जलती हुई लू,
सूखे पडे थे सर, ताल, झील,
अरण्य दावानलसे घिराथा,
प्राणी सभी थे झुलसे हुए से.

" हे वारिका 'जीवन' नाम सच्चा "
प्रतीति अच्छे यह हो रही थी:
पाने सुधी जीवन–दान–लाभ
इसी लिये पै विकला रहेथे.

जो याद आया सहसा सतीको,
" प्राणेशकी केवल आजसे है–
आयुष्यके वासर तीन बाक़ी "
लगी कटारी विषकी बुझी सी.

होने लगी बेहद वेदना भी,
नहीं जताया दुखपै किसीको.
महाजनोंका यह धर्म ही है
जीकी जताना न व्यथा किसीको.

सौभाग्यकारी व्रतको निभाने,
ऐसे महा भीषण कालपे भी
रही निराहार, पिया न पानी,
श्री शांघ्रि–पूजा विधिसे शुरू की.

पूरा अनुष्ठान हुए सतीने
प्रणाम साष्टांग किये द्विजोंको.
आशीष दी ब्राह्मण मण्डलीने,
" विनाश पावे सब विघ्न बाधा-

आनन्द हो, मंगलमोद छावे,
आशा नहीं निष्फल एक भी हो.
हों काम चींते मनके सदा ही,
अखण्ड सौभाग्यवती सती हो."

इसे चढ़ा के शिरपे सती ये,
पावों लगी जा ऋषिपत्नियोंके
" हो अष्टपुत्रा सुखिया " उन्होंने
असीस दी खूब प्रसन्न होके

पैरों पड़ी जा गुरु-लोकके भी
कहे उन्होंने शुभ वाक्य ऐसे
" आरोग्य सम्पत्ति अटूट होवे
हो बाल बांका पतिका न तेरे."

यों सास बोली तब " पुत्रि तेरा
निर्विघ्न पूरा व्रत हो गया है.
आहार पानी कर ले ज़रासा
ज्यों शान्ति आवे मनमें हमारे."

" संकल्प मैंने पहिले किया है
मातेश्वरी ! शाम हुए बिना मैं
पानी पियूंगी न, न अन्न लूंगी,
न दूर हूंगी प्रियसे कदापि."

जो अन्नपानी दिन तीनसे ही
लिया नहीं था कुम्हला गई थी,
ज्योतिष्मती के मुखकी गिरा यों
तथापि अत्यन्त लुभा रहीथी.

परन्तु चिंता दिल खारहीथी.
सुखा रहीथी इसकी तनूको,
" है आजका ही दीन नाथको हा!
भारी" विचारे घबरा रहीथी.

तथापि बाला यह राजकन्या
सारे मनोभाव छिपा रहीथी,
अत्यन्त ही व्याकुल हो रहीथी,
'प्रसन्न हूं' पै दिखला रहीथी,

मनारहीथी शत देवताको,
महेश मृत्युञ्जय ध्या रहीथी,
सुना रहीथी हरिको हियेसे
"विनाश कीजे सब भीति मेरी

उबार लीजे, कुछ ध्यान दीजे,
हरे मुरारे जगदीश प्यारे
श्रीनाथ गोलोकपते दयालो
है लाज मेरी करमें तुम्हारे."

योंही ज़रासा दिन आ गया था
आज्ञा पिताकी गह सत्यवान,
तैयार जाने वनको हुआ ज्यों
लाने महात्मा समिधा वहांसे,

अत्यन्त ही दैन्य लगी दिखाने
बोली " यहां छोड मुझे न जाओ,
प्राणेश ! ले साथ चलो, मुझे भी--
इच्छा बडी है वन देखनेकी."

यों वाक्य बोले तब सत्यवान
जा वत्लसे मातपिता जहां है.
आज्ञा उन्हींसे गह आ, हमारे--
हो साथ लेना फिर शौकसे तू

गई वहां मातपिता जहां थे
आज्ञा किसीभांति विनीत होके
लेली उन्होंकी, वनको सिधाने
प्राणेशके संग, महाशयाने

तैयार बाला पतिसंग जाने
हो, आगई शीघ्र, लगी न देरी
हुए रवाना तब दम्पती ये,
दोनों निभाते निज धर्मको ही.

४ चौथा सर्ग.

विपिनमें गये देखते हुए.
विविध दृश्यको खूब दम्पती
फल मिले वहां वन्य जा पके
धर लिये उन्हें तोड वृक्षसे.

फिर जहां जहां सूख सूखके
गिर पडी हुई डालियां मिली
बस वहीं वहीं घूमघूमके
तुरतही उन्हें एक ठौर कीं

पहर तीन तो बीत यों गये,
सकल वस्तुअें ठीक ठाक कीं.
घर चलो चलें चित्त जो किया,
अहह ! क्या हुआ एकबार ही.

प्रबल वेगसे सत्यवानके
दरद होगया शीशमें महा,
शिर हरेहरे झूमने लगा,
शिथिल इन्द्रियां होगई सभी,

सुध रही नहीं देहकी उसे
" अयि प्रिये ! मरा " बोल सोगया.
नृपतिकन्यका फक्क होगई,
कर सकी नहीं हा उपाय भी,

हृदयनाथका शीश जानुपै
रख, लगी सती सिर्फ दाबने,
टकटकी लगा देखती हुई,
लख पडी उसे एक छांह सी.

दृग उठा लखा, कालदूत था
तब उठा दिया एक हाथ को;
रह गया वहीं, आमका नहीं,
नहिं यही—उसे लौटना पडा.

तब वहां स्वयं धर्म आगये
महिप पै चढे पाशको लिये;
उठ खडी हुई हाथ जोडके,
सरल भाव से प्रार्थना करीः

"यह पवित्र है स्थान हो गया
चरण जो यहां आपने दिये."
पर निकाल वे सत्यवानके
जब सुजीव को संग ले चले-

प्रणयसे भरी साथ ही चली
हृदयनाथ के, धर्मराजसे-
विविध धर्मकी बात बोलती
मधुरतामयी विश्वमोहिनी.

तब कहा उसे धर्मराजनेः
"अति प्रसन्न हूं-'सत्यवान ये
तुरत जी उठे' छोड-अन्य जो
वर सुगात्रि हो इष्ट, मांग ले."

" श्वशुरको लगे दीखने. प्रभो !
विगत राज्य भी प्राप्त हो उन्हे. "
वचन जो सुने धर्मने कहा:
" सुमुखि ! लौट जा दे दिया यह;-

अवधि है यही सृष्टिनेहकी
मरण हो गया लीन हो गया
सुत पितादिका भाव मात्र हो,
समय सिन्धुकी भृतवीचिमें. "

तब कहा: " विभो ! सत्पतिव्रता
जगतमें जहां जाय जासके
गति रुके नहीं तीन लोकमें.
दृढ प्रमाण है धर्म ही यहां.

इसलिये विभो ! धर्म ! धर्मसे
न करिये जुदा, आर्यपत्नी हूं.
न टलनी कभी जीवितेशके
चरणदास्यसे, स्वीय धर्मसे. "

" सब प्रकारसे स्वस्थचित्त हो,
सुमुखि! जो चहे और मांग ले;
तब प्रसन्न हूं धर्म वृत्तिसे,
न कह किन्तु तू नाथ जी उठे."

" मम पिता बने पुत्रका पिता,
मुख लखे तथा पुत्रका मम
अधिक चाहना है नहीं मुझे."
तब 'तथास्तु' ही धर्मने कहा.

मुदित हो गई, मुस्करा गई,
मधुरतामयी सुन्दरी तभी;
निकल आय जो काम बुद्धिसे
खुश न हो कहो कौन तो सुधी?

चतुरता भरे वाक्य बोलने
फिर लगी यही बुद्धिशालिनी:
" वचन एक ही सत्य संघके
निकलते, कभी लौटते न जो;

धर सरस्वती ध्यान सर्वदा,
विमल सत्यको खोज खोजके-
मुनि बड़े बड़े छोड़ हैं गये
विविध ग्रंथ जो. ज्ञान पूर्ण हैं

सकल एकसे एक श्रेष्ठ हैं
भरतभूमिके आर्यशास्त्र ये-
कि जिनको लिये आर्यजातिका
विमल होरहा आज भी सुख-

सच बता रहे, आप धर्म हो.
न टलती कभी बात आपकी,
सकल लोक के हैं छिपे नहीं
हृदय भाव भी आपसे कहीं,

यदि पतिव्रता जानते मुझे,
यदि मुझे नहीं ध्यान औरका,
कर कृपा मुझे शान्ति दीजिये,
सजनको मेरे साथ कीजिए,

मम पिता लखे पुत्रवान हो
मम सुतास्यको सौख्य पा महा,
वचन पूर्ण हो आपका दिया,
प्रमुद हो मुझे, विश्व हो सुखी,

शिथिल हों नहीं नारियां कहीं
शुचि पतिव्रता धर्मसे कभी,
अटल विश्वमें धर्मराज्य हो,
भुवन मान्य हों आर्यशास्त्र ये."

अमृतके भरे वाक्य ये सुने
मुदित हो गये धर्मराज भी:
कह जिला गये सत्यवानको:
"अयि पतिव्रते ! आर्य अङ्गने !

वचन लौटते धर्म के नहीं,
तव चिरायु हो प्राणनाथ भी
यह बनासको मातृ भूमिको
विमल दृश्यसे पूर्ण शीघ्र ही."

तब सती वहां आगई. जहां
सुतनु थी धरी सत्यवानकी.
जग गया तभी सत्यवान भी.
उठ खड़ा हुआ शौर्य पा महा.

"अयि प्रिये चलें" "नाथ हां चलो"
"अति विलम्ब है आज हो गया.
विकल होरहे तात होंयगे,
दुख उठारही मात होयगी"

कह. अरण्यसे लौट ये चले
सुभग दम्पती. रात हो गई,
नहिं तमिस्रका ध्यान भी किया,
पहुंचही गये स्थानको सुखी.

मुनि वहां जमां होरहे सभी
श्वशुर नेत्रवान, प्रीत सास भी;
लख इन्हें भरे नेत्र वारिसे,
पुलक देहमें रम्य छा गई,

बन गये सभी चित्रसे लिखे,
बन पडी नहीं एक बात भी;
जब कथा सुनी सत्यवानकी,
कह उठे सभी एक साथही:
"जय पतिव्रते ! धन्य तू सती !
जनक धन्य त्यों ! धन्य *मालती !
श्वशुर धन्य है ! सास धन्य है !
सुभग धन्य है सत्यवान भी !
भरत भूमिकी आर्यपत्नियां
अमर हो गई आजसे सभी
रसमयी सदा काव्य भारती
सुयश गायगी सत्कवीशकी."
इस प्रकार तो तारिका भरी
निशि तुरंत सी बीतही गई,
तिमिर हो गया नष्ट लोकका,
द्युमत्सेनको राज्य भी मिला,

* मालती–सावित्रीकी माता.

'सुविचार-माळा'-मणको २ जो.

स्वरशास्त्र.

जेमां

शारीरिक, आर्थिक अने आत्मिक हित साधवानी विद्यानुं स्पष्टीकरण करवामां आव्युं छे.

लेखकः—एक ग्रॅज्युएट.

प्रसिद्धकर्त्ता

वाडीलाल मोतीलाल शाह,

अधिपति अने मालिक

'जैनसमाचार' साप्ताहिक पत्र तथा 'जैनहितेच्छु' मासिक पत्र

व्यवस्थापकः 'सुविचार प्रसारक मंडल'.

अमदावाद.

विक्रम संवत् १९६६-इ स १९१०

प्रथमावृत्ति—प्रत १५००

मूल्य ०-४-०

अमदावाद श्री 'भारतबंधु प्रिण्टिंग वर्क्स'मां शाह वाडीलाल मोतीलाले छाप्युं

प्रस्तावना.

गुरु अने शिष्यना संवाद रूपे आ पुस्तकमां स्वर
जेवा उपयोगी विषयनुं स्पष्टीकरण करवामां
आव्युं छे. आ ग्रंथ कोइ जैन शास्त्रमांथी सार
खेंचीने रचायलो नथी पण उपनिषदोना आधारे
एक विद्वाने लखेलो छे. शरीरसुखाकारी, संकटनिवर्त्तन अने ध्यान
जेवी वावतमां आ ग्रंथमांनुं ज्ञान घणुं उपयोगी थइ पडे तेम छे एम
समजी गुजराती भाषामां त्हेने प्रगट करवानुं उचित धार्युं छे. वा-
चको जूदा जूदा धर्म अने जूदी जूदी मान्यतावाळा हशे; परन्तु तेओ
दरेक जे वात पोताने उपयोगी लागे एटली ज ग्रहण करी बाकीनी
वात पर आत्मक्लेश करवाना विचारथी दूर रहेशे तो विनामूल्य
पुस्तको फेलाववाना साहसमां समायलो द्रव्यव्यय अने परिश्रम स-
फळ थयो समजी ए साहसने वधारे आगळ खेंचवानुं बनी शकशे.

वा. मो. शाह.

स्वरशास्त्र.

शिष्य—हे गुरुदेव ' मारा उपर कृपा करो अने जे ज्ञानथी सर्व बाबत जाणी शकाय ते ज्ञान मने जणावो आ जगत क्याथी उद्भव्युं ? ते केवी रीते टकी रह्युं छे ? ते केवी रीते अदृश्य थाय छे ? आ विश्वनुं तत्त्वज्ञान, हे देव ! मने आपो.

गुरु—आ विश्व पाच तत्त्वमाथी उद्भव्युं, ते पाच तत्त्वथी टकी रह्युं छे, अने पांच तत्त्वमा अदृश्य-विलय थशे आ तत्त्वोवडे ज विश्वव्यवस्था जाणी शकाय छे

शिष्य—तत्त्वोना ज्ञाता आ तत्त्वोने बधाना मूळरूप गणे छे, पण हे देव ' ते तत्त्वोनुं स्वरुप केवुं छे, ते विषय पर प्रकाश पाडो

गुरु—अव्यक्त, निराकार, प्रकाश आपनार एक महान्· शक्ति छे, तेमांथी प्रथम आकाश प्रकट थयुं अने ते आकाशमांथी वायु प्रकट थयो.

वायुमाथी अग्नि उत्पन्न थयो, अग्निमांथी जळ प्रकट थयुं, अने जळमाथी छेवटे पृथ्वी उद्भवी आ पाच तत्त्वो छे.

आ पांच तत्त्वोथी जगत प्रकट थयुं, आ पाच तत्त्वोथी जगत् टकी रह्युं छे, आ पांच तत्त्वोमा जगत विलय पामे छे, अने फरीथी तेज तत्त्वोमा जगत प्रकट थाय छे

शरीर पण पांच तत्त्वोनुं बनेलुं छे हे शिष्य ! पांच तत्वो मनुष्यना शरीरमां सूक्ष्मरूपे रहेलां छे जेओ आ तत्त्वोना अभ्यास पा[illegible]ंतथी मेळवी रहे छे, तेओ ते तत्त्वोने जाणी शके छे

आ कारणथी हुं प्राणायाम संबंधी तने कहीश, कारण के श्वासोच्छ्वासना (स्वरना) ज्ञानथी माणस त्रिकालज्ञानी बने छे

आ स्वरशास्त्र गुप्तमां गुप्त रहस्य छे, कल्याणनु दर्शावनारुं छे, अने डाह्या पुरुषोना हाथमां रत्न समान छे

आ ज्ञान सूक्ष्ममा सूक्ष्म छे, छता सहेलाइथी समजाय तेवु छे तेथी सत्यमां श्रद्धा थाय छे ते अज्ञानोना मनमां आश्चर्य उत्पन्न करे छे, अने समजदाराने श्रद्धाना पायारुप थइ पडे छे

जे मनुष्य शांत छे, शुद्ध छे, सद्‌गुणी छे, श्रद्धावान् छे, कृतज्ञी छे, अने गुरुनो परम भक्त छे, तेवाने आ स्वरनु ज्ञान आपवुं जोइए

जे मनुष्य दुराचारी छे, अपवित्र छे, क्रोधी छे, असत्यवादी छे, व्यभिचारी छे अने जे विपयासक्तिथी पुरुपार्थहीन बनेलो छे, तेवाने आ ज्ञान आपवुं न जोइए

हे शिष्य! शरीरमां रहेलु ज्ञान साभळ, जो ते बराबर समजवामा आवे तो तेथी सर्वज्ञपणुं थाय छे

स्वरमा वेद अने शास्त्रो समाइ जाय छे, मोटा गंधर्वो स्वरमा आवी वसेला छे, त्रण भुवन पण स्वरमा समाय छे, स्वर ए परब्रह्मनुं प्रतिबिंब छे

स्वरशास्त्रना ज्ञानविना जोशी, स्वामी विनाना घर जेवो, ज्ञान विना भाषण करनार जेवो अथवा तो माथा वगरना धड जेवो छे

जे माणसने नाडीओनुं, प्राणनुं, तत्त्वनुं अने सुषुम्णानुं ज्ञान छे, ते मनुष्यने मोक्ष मेळववुं सहेलुं छे

ज्यारे स्वर उपर संपूर्ण सत्ता मळे छे, त्यारे ते मंगळकारी गणाय छे हे शिष्य ! स्वरशास्त्रनुं ज्ञानज मंगलसूचक छे

आ विश्वना केटलाक विभागो अने मूळ तत्त्वो स्वरथी उत्पन्न थया छे स्वर ए महान्‌शक्ति छे, तेनामां उत्पन्न करवानी अने नाश करवानी शक्ति रहेली छे

---

* आ वाक्यमा ज्ञान अने क्रियानो भेद बताववामा आव्यो छे ज्ञान प्रमाणे क्रिया थाय ता उत्तम छे, पण ते प्रमाणे न वर्ताय तो पण ज्ञानने बलिहारी छे

स्वरशास्त्र करतां वधारे ऊंडुं ज्ञान, स्वरशास्त्र करतां वधारे उपयोगी दोलत, स्वरशास्त्र करतां वधारे निमकहलाल मित्र कदापि जोवामां के साभळवामां आव्यो नथी

स्वरशक्तिथी शत्रु नाश पामे छे, मित्रो एक बीजा प्रति आकर्षाय छे स्वरशक्तिथी धन, आश्वासन अने कीर्ति प्राप्त थाय छे

स्वरशक्तिथी पुत्री के पुत्र मळे छे, अथवा राजाने मळी शकाय छे, देवो पण ते शक्तिथी संतुष्ट थाय छे, अने राजा पण मनुष्यने वश थाय छे

स्वरशक्तिथी गति करी शकाय छे स्वरशक्तिथी खोराक लेइ शकाय छे मूत्र अने पुरीपोत्सर्ग क्रिया पण स्वरनी शक्तिथीज थाय छे

सघळां शास्त्रो, सघळां पुराणो, वेदांत अने उपनिषद्थी शरु करीने सर्व शास्त्रोमां स्वरज्ञान करतां वधारे उत्तम तत्त्व बीजुं एक पण नथी

सघळां नाम अने रुप छे, आमां भूल खाइ लोको आथडे छे ज्यां सुधी मनुष्यो तत्वोने न जाणे त्यां सुधी तेओ अज्ञानमां भटके छे

आ स्वरशास्त्र उच्चमां उच्च छे आत्ममंदिरने प्रकाश आपवाने ते एक दीपक समान छे

ज्यां सुधी कोइ सवाल न पूछे त्यां सुधी आ के पेला माणसने आ स्वरशास्त्रनुं ज्ञान आपवुं न जोइए माटे पोताना ज प्रयत्नथी आत्मामां अने आत्माथी ज जाणवुं जोइए

ज्यारे आ स्वर उपर मनुष्यने संपूर्ण सत्ता मळे छे, त्यारे हे शिष्य! चंद्र के दिवस, नक्षत्र के सूर्य, वार के ग्रह, देव के वरसाद, व्यतिपात के वेध्रत–आ सर्व तेना पर असर करी शकतां नथी पण सर्व बदलाइ तेने लाभरुप थाय छे

शरीरमां नाडीओने घणा आकारो होय छे, अने घणी जग्याए फेलायेली होय छे ज्ञानने खातर डाह्या पुरुषोए ते नाडीओने ओळखवी जोइए

नाभिना मूळमांथी शरु करी आखा शरीरमां ७२००० नाडीओ आवेली छे

नाभिनी अंदर कुंडलिनी शक्ति सर्पनी माफक आवेली छे, त्यांथी दस नाडीओ उंचे जाय छे, अने दस नाडीओ नीचे जाय छे

आमांनी बे नाडीओ एक बीजानी आडी आवेली छे आ रीते नाडीओनी संख्या चोवीश थाय छे मुख्य नाडीओ दश छे, अने तेमां दश प्रकारनी शक्ति काम करे छे

उंचे नीचे के वाको आवा शरीरमा प्राण तेमनी मारफते प्रकट थाय छे. शरीरमां चक्राकार ते नाडीओ आवेली छे, अने प्राणने प्रकट थवामा ते आधारभूत छे

आ बधीमा दश मुख्य छे, अने ते दशमा पण त्रण मुख्य छे-इडा, पिंगळा अने सुषुम्णा

बीजी नाडीओना नाम गंधारी, हस्ति जीह्वा, पूषा, यशस्विनी, आलम्बुषा, कुहू, शंखिनी अने दमिनी छे

शरीरना डाबा भागमा इडा रहे छे, पिंगला जमणा भागमा रहे छे, सुषुम्णा वचमां रहे छे, गंधारी डाबी आखमा रहे छे

जमणी आखमा हस्तिजीह्वा, जमणा कानमा पूषा, डाबा कानमां यशस्विनी अने मुखमा आलम्बुषा रहे छे

लिंगमां कुहू, गुदामा शंखिनी रहे छे आ प्रमाणे दरेक द्वारे एक नाडी आवेली छे

इडा, पिंगळा अने सुषुम्णा प्राणना मार्गमा आवेली छे
आ दश नाडीओ शरीरमा जूदी जूदी रीते पथरायेली छे

उपर प्रमाणे नाडीओना नाम आप्या, हवे हुं शक्तिओना नाम आपीश (ते शक्तिओ वायुरुपे छे) तेओना नाम (१) प्राणवायु (२) अपानवायु (३) समानवायु (४) उदान (५) व्यान (६) नाग (७) कूर्म (८) क्रिकिल (९) देवदत्त (१०) धनंजय आ दश वायुमाथी प्राण छातीमा रहे छे अपान गुदा भागमा रहे छे

समान नाभि चक्रमा रहे छे उदान गळामा रहे छे, व्यान आखे शरीरे व्याप्त छे आ मुख्य पाच वायु छे

प्रथमना पाच आपणे वर्णवी गया बीजा पांच नागथी शरु थाय छे तेओना नाम अने स्थान हुं हवे आपुछुं

हेडकी अथवा वरधनीमां नागवायु काम करे छे आंखना उघाड-मींचवामां कूर्म नामनो वायु काम करे छे. भुखनुं कारण क्रिकिल नामनो वायु छे बगासुं खावामां देवदत्त नामनो वायु उपयोगी थाय छे

सर्वव्यापी धनंजय तो मृत शरीरने पण छोडतो नथी आ बधा वायु ज्यारे नाडीओमां फरे छे त्यारे माणस जीवे छे एम आपणने ज्ञान थाय छे

इडा, पिंगला अने सुषुम्णा नामनी मुख्य त्रण नाडीओ वाटे स्वरनी केवी क्रियाओ थाय छे, ते सुज्ञ मनुष्ये जाणवा प्रयत्न करवो जोइए

शरीरना डाबा अर्धा भागमा इडा नाडीने जाणवी अने शरीरना जमणा अर्धा भागमां पिंगला नाडीने ओळखवी जोइए.

इडा नाडीमा चंद्रनी स्थापना छे, अने पिंगलामां सूर्यनी स्थापना छे सुषुम्णामा शंभुनी स्थापना छे शंभु, हे हंस (श्वास अने उच्छ्वासनो) नो आत्मा छे

चंद्र शक्तिरुपे प्रगट थइ डाबी नाडीने वहेवरावे छे, अने सूर्य शंभु रुपे प्रकट थइ जमणी नाडीने वहेनी करे छे

डावी नासिकामा ज्यारे वायु व्हेतो होय त्यारे सुज्ञ पुरुषे करेलु दान आ जगतमां करोडगणुं वृद्धि पामे छे

योगीए एक चित्तथी अने ध्यानपूर्वक पोताना मुख तरफ जोवुं, अने सूर्य नाडी चाले छे के चंद्र नाडी चाले छे, तेनी बराबर खात्री करवी

ज्यारे प्राण शांत होय त्यारे योगीए तत्वोनुं ध्यान करवुं, पण प्राण अशांत होय त्यारे कदापि ध्यान करवु नहि जो आम करे तो तेनी इच्छा पार पडे, अने तेने वणो लाभ अने विजय प्राप्त थाय

जे मनुष्यो अभ्यास पाडी चंद्र तथा सूर्य नाडीने पोतानी इच्छा प्रमाणे व्यवस्थापूर्वक चलावे छे. तेओने भूत अने भविष्यकाळनुं ज्ञान हस्तामलकवत् थइ रहे छे

डावी नाडीमा ज्यारे प्राण होय त्यारे ते अमृत तुल्य गणाय छे ते आखा जगतने पोषण आपनार छे गति आपनार विभाग जे जमणी नाडी तेमां जगत्ना मनुष्यो जन्मे छे

वचमां रहेली सुषुम्णा बहुज खराबरीते वर्ते छे, अने सर्व कार्योमां अशुभ गणाय छे दरेक प्रकारनां मंगल कार्योमां डावी नाडी बळ अर्पनार गणाय छे

बहार जवामां डाबी नाडी मंगलसूचक छे, अने अंदर आववामां जमणी नाडी मंगलकारी छे चंद्र बेकी दर्शक छे अने सूर्य एकी दर्शक छे

चंद्र स्त्री छे अने सूर्य पुरुष छे चंद्र सुंदर छे अने सूर्य (चंद्रनी अपेक्षाए) काळो छे ज्यारे चंद्र नाडी वहेती होय त्यारे सघळा शान्तिमयी कामो करवां जोइए सूर्य नाडी वहेती होय त्यारे बधा उग्र-तेजस्वी कार्यो करवां पण सुषुम्णा नाडी चालती होय ते वखते तो एवां काम करवा के जेथी सिद्धिओ प्राप्त थाय अने मोक्ष पण मळे

शुक्लपक्षमा चंद्र प्रथम आवे छे अने कृष्ण पक्षमां सूर्य प्रथम आवे छे पहेला सोमवारथी शरु करीने त्रण त्रण दिवसने आतरे नाडीओ बदलाय छे एक दिवसनी साठ घडीओ छे, तेमां दर अढी घडीए सूर्य नाडी अने चंद्र नाडी बदलाय छे दरेक घडीए पांच तत्त्व वहे छे दिवसनी गणत्री प्रतिपदा एटले शुक्ल पडवेथी गणवी. जो आ नियममां फेरफार पडे तो असर पण विपरित आवे शुक्ल पक्षमा डाबी नाडी शक्तिमान् होय छे, अने कृष्ण पक्षमां जमणी नाडी जोरथी वहे छे शुद पडवेथी शरु करीने योगीए आ अनुक्रममां नाडीओने लाववा प्रयत्न करवो

'जो सवारमां सूर्योदय वखत चद्र नाडी चालती होय अने सूर्यास्त वखत सूर्य नाडी वहेती होय तो ते बहु लाभ आपनार गणाय आथी उलटुं होय तो परिणाम उलटुं आवे

आखो दिवस चंद्र नाडी वहेवा देवी जोइए, अने आखी रात्रि सूर्य नाडी वहेवा देवी जोइए जे आ प्रमाणे नाडीओने वहेवा देइ शके छे तेने खरेखर योगी ज जाणवो चंद्र नाडीने सूर्य नाडीमां फेरवी शकाय, अने सूर्य नाडीने चंद्र नाडीमां फेरवी शकाय जे मनुष्य आ रीते एक नाडीमां चालता स्वरने बीजी नाडीमां फेरवी शके छे, ते त्रण भुवन उपर विजय मेळवे छे (त्रण भुवनमा कोइ पण चीज तेना पर असर करी शके नहि)

गुरुवार, शुक्रवार, बुधवार अने सोमवारना दिवसोमां अने खास करीने शुक्ल पक्षमां डाबी नाडी बधां कार्योमा विजय आपे. छे

रविवार, मंगळवार अने शनिवारना दिवसोमां अने खास करीने कृष्ण पक्षमा जमणी नाडी सघळां ठोस कार्योमां विजय आपे छे,

पांच घडिमां दरेक घडीए घडीए एकेक तत्व अनुक्रमवार बदलाय छे

दिवस अने रात्रिमां बार फेरफार थाय छे

वृषभ, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर अने मीन आ राशिओमां चंद्रस्वर चाले छे, एटले डाबी नाडी चाले छे

मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन अने कुंभ आ राशिओमां सूर्यस्वर चाले छे एटले डाबी नाडी चाले छे.

आ उपरथी शुभ अशुभ फळनो निश्चय करी शकाय छे.

सूर्यनुं स्थान पूर्व अने उत्तर दिशा छे, अने चंद्रनुं स्थान पश्चिम अने दक्षिण दिशा छे माटे डाबी नाडी एटले चंद्र स्वर चालतो होय त्यारे कोइए पूर्व के उत्तर दिशामां मुसाफरी करवी नहि.

पोतानुं कल्याण इच्छनारा सुज्ञ पुरुषोए उपर जणाव्या प्रमाणे मुसाफरी करवी नहि. कारण के तेम करवाथी कां तो दुःख के कां तो मरण निपजे छे

ज्यारे शुक्ल पक्षमां चंद्र स्वर वहेतो होय त्यारे ते माणसने ते लाभदायी गणाय छे तथा कार्योमां ते माणसने ज्यां त्यां सिद्धि मळे छे.

ज्यारे सूर्य नाडी चालवी जोइए त्यारे चंद्र नाडी चाले अथवा तो चंद्र नाडी चालवी जोइए त्यारे सूर्य नाडी चाले तो कलह कंकाश उत्पन्न थाय छे अने भय जागृत थाय छे अने सघळुं शुभ काम नाश पामे छे

ज्यारे सवारमां स्वर विपरित चाले एटले सूर्य स्वरने बदले चंद्र स्वर अने चंद्र स्वरने बदले सूर्य स्वर चाले त्यारे प्रथम दिवसे मनमां गभराट थाय छे, बीजे दिवसे धननुं नुकशान थाय छे, त्रीजे दिवसे मुसाफरी करवी पडे छे, चोथे दिवसे इष्ट वस्तुनो विनाश थाय छे, पांचमे दिवसे कीर्ति के पदवीनी हानि थाय छे, छठे दिवसे सर्व वस्तुओनो नाश थाय छे, सातमे दिवसे रोग अने दुःख थाय छे अने आठमे दिवसे मरण थाय छे

आठ दिवस सुधी लागलागट त्रणे वखते (सवार, बपोर अने सांजे) स्वर विपरित चालतो होय तो अवश्य तेनी असर माठी थाय छे. पण जो ते प्रमाणे न होय तो असर थोडी घणी सारी थाय छे।

ज्यारे सवारमां अने बपोर (मध्याह्न काले) चंद्र स्वर चालतो होय अने सध्या समये सूर्य स्वर वहेतो होय तो जरुर विजय अने लाभ मळे छे. आथी उलटो स्वर होय तो ते दुःखना कारणरूप थाय छे

* * * * * * * *

चंद्र स्वर चालतो होय त्यारे झेर नाश पामे छे. सूर्यस्वर समये कोइ पण शरीर उपर सत्ता मेळवी शकाय छे सुषुम्णा नाडी चालती होय त्यारे मोक्ष मेळवी शकाय एकज स्वर पिंगला, इडा अने सुषुम्णा नाडीरुपे परिणाम पामे छे

ज्यारे आपणे काइ काम करवा मागता होइए, अने ज्यारे योग्य स्वर न चालतो होय त्यारे कार्य तो न करी शकाय, तो पछी व्यापारी आ स्वरना आधारे केवी रीते वर्ती शके ?

दिवसे तेमज रात्रे शुभ के अशुभ कार्यो थाय छे ज्यारे जरुर पडे त्यारे नाडीने फेरववी जोइए अने योग्य बनाववी जोइए.

इडा.

जे कार्यो लांबा वखत सुधी चाले तेवां होय तेवां कार्योमां, अलंकार पहेरवामां, दूर मुसाफरी जवामां, कोइ पण आश्रममां दाखल थवामां, धन एकठु करवामां तथा—

कूवा, तळाव अने सरोवर खोदाववामां, स्तंभ आदि स्थापवामां, वासण खरीदवामां, लग्नमा, वस्त्र झवेरात अथवा दागीना तैयार कराववामां—

शात अने पोषण करनारी दवाओ तैयार करवामां, पोताना शेठ (स्वामी) ने मळवामां, व्यापारमां, अनाज एकठुं करवामां तथा—

* स्वर स्वरनी असर तेना बळ उपर आधार राखे छे घणे भागे तो आ परिणाम आववानो संभव थाय छे, अथवा चिंता थाय छे

नवा घरमां प्रवेश करवामां, नवी जग्यानो चार्ज लेवामां, खेडवा-मां, बीज नाखवामां, मंगळ अने शांतिनां कामोमां अने व्हार जवामां

एटलां कामोमां चंद्र स्वर उत्तम छे

वांचवाना कामनो आरंभ करवामां, सगांस्नेहीओने मळवामां, धर्म कार्यमां, धर्मगुरु पासेथी काइ अभ्यास शिखवामां, मंत्रनो जाप जपवामां, काळ ज्ञानना सूत्रो वांचवामां, व्हारथी चोपगां जानवर घेर लाववामां, रोगनो उपचार करवामां, पोताना उपरीनी मुलाकात लेवामां, घोडा के हाथी उपर सवारी करवामां, बोजानुं भलु करवामां, थापण मूकवामां, गावामां, वाजींत्रो वगाडवामां, गायनना सूरोनुं शास्त्र विचारवामां, कोइ गाम के शहेरमां प्रवेश करवामां अने राज्याभिषेकमां, रोगमां, शो-कमां, उदासीनतामां, तावमा, मूर्छामा, पोताना हाथ नीचेना अथवा उपरी मनुष्यो साथे कॉन्ट्राक्ट करवामां, धान्य अने लाकडां एकठां करवामां, स्त्रीए शणगार सजवामां, वरसाद आवतो होय त्यारे, गुरु-भक्तिमा, आटलां कार्योमां, हे शिष्य ! चंद्रस्वर मंगळकारी छे.

योगाभ्यास जेवां महत्वनां कार्यो पण इडा नाडीमां–चंद्रस्वरमां थइ शके छे चंद्रस्वर चालतो होय त्यारे मनुष्ये आकाश अने तेज तत्त्वनो त्याग करवो जोइए

जो चंद्रस्वर चालतो होय तो सघळां मंगळकारी कार्योमां रात्रे के दिवसे लाभ थाय छे

पिंगला.

सघळां दीप्त कार्योमां, कठण शास्त्रो शिखवामां के शिखववामां, व्हाण उपर मुसाफरी करवामां, सघळां खराब कार्योमां, जळ पीवामां, भैरव जेवा विक्राळ देवनो मंत्र जपवामां, शास्त्राभ्यासमा, जवामां, शि-कारमां, प्राणीओ वेचवामां, ईंटो लाकडां पत्थर अने झवेरात महा महेनते मेळववामां, गायन कळानो अभ्यास पाडवामां, जंत्र तंत्र करवामां, उंची जग्या के पर्वतपर चढवामां, जुगारमां, चोरीमां, हाथी के घोडाने केळवीने वश करवामां, नवा उंट भेंस हाथी के घोडा उपर स्वारी कर-वामां, सरो ओळंगवामा, दवामां के लखवामां, मल्लकुस्तीनां, मारवामां के गभराट करवामां, षट्कर्म करवामा, यक्षिनी, यक्ष, वेताल, भूत वगेरे

तथा भेरी वस्तुओ उपर विजय मेळववामां, शत्रुतामां, मेस्मेरीझम (प्राणायाम)थी बीजाने बेभान करवामां, पोतानी आज्ञा प्रमाणे बीजाने चलववामां, कोइने कोइ पण बाबतमां खेंचवामां, खुन के बेवाट करवामां, दानमां अने वेचवामां के खरीदवामां, तरवार माथे पटा मेळववामां, युद्धमां, राजाने मळवामां, खावामां, नहावामां, वेपारनी लेवडदेवडमां, सख्त अने गरम कामोमां आटलां कामोमां सूर्यस्वर लाभकारी छे

जन्म्या पछी तरतज जो सूर्य नाडी चाले तो ते मंगलकारी छे ज्यारे सूर्य नाडी चालती होय त्यारे डाह्या पुरुषे सूझ रहेवुं जे सघळां दीस कामो छे, जे कार्यो तेना स्वभावथीज क्षणभंगुर अने अस्थायी छे, ते सर्व सूर्य स्वरमां विजयवंत थाय छे आ बाबतमां जरा पण शंका राखवा जेवुं नथी.

सुषुम्णा.

ज्यारे प्राण एक पळे एक नाडीमां चाले अने बीजी ज पळे बीजी नाडीमां चाले त्यारे ते स्थितिने सुषुम्णा कहे छे. ते सघळां कार्योनो नाश करनारी छे ज्यारे सुषुम्णा नाडीमां प्राण चाले त्यारे ते चिता समान जाणवा तेने 'विषुवत्' कहे छे अने ते सर्वनो नाश करनार गणाय छे. नाडीओ एक पछी एक चालवी जोइए, तेने बदले जो बन्ने नाडीओ एकज वखते चाले तो जेनी तेवी नाडी चालती होय तेने ते भय आपनार गणाय छे एक पळे जमणी नाडीमां स्वर चालतो होय अने बीजी पळे जो ते स्वर बीजी नाडीमां चाले तो ते विसमभाव अथवा असाम्य स्थिति कहेवाय छे. हे शिष्य ! जाणवुं जोइए के आवा स्वरनुं, धारेला करतां तद्दन विपरित परिणाम आवे छे. ज्यारे बन्ने नाडीओ एकज वखते चाले त्यारे ते स्थितिने सुज्ञ पुरुषो 'विषुवत्' कहे छे, तेवे वखते नम्र के दीस कार्य करवां नहि कारण के बन्ने निष्फळ जशे जीवतां के मरतां, सवाल पूछवामां, आवक संबंधमां अथवा देवा संबंधमां, विजय के पराभव संबंधमां दरेक बाबतमां 'विषुवत्' स्थिति होय त्यारे विरुद्ध अने अनिष्ट परिणाम आवे छे ते समये तो भगवाननुं भजन करवुं एज उत्तम मार्ग छे.

योग के ध्यान वगेरे कार्यो करी भगवाननुं स्मरण करवुं जे मनुष्यो विजय, आवक के शांति इच्छता होय तेमणे ते समये बीजुं कांइ पण कार्य करवु नहि सुषुम्णा नाडी चालती होय त्यारे आशीर्वाद थो के श्राप थो पण बन्ने निष्फळ जवाना ए चोकस छे.

एक पळे एक नसकोरामां पवन चालतो होय अने बीजी क्षणे बीजा नसकोरामां पवन चालतो होय तेवी विसमभाव स्थितिमां कोइए मुसाफरी करवानो विचार करवो नहि कारण के तेम करवाथी दु.ख के मृत्यु जरुर नीपजे छे नाडी बदलाय के तत्व बदलाय ते दान वगेर मगलकारी काँइ पग शुभ काम करवुं नहि

सन्मुख, डाबी बाजुए अने उंचे चन्द्र छे, पछवाडे, जमणीबाजुए अने नीचे सूर्य छे आ प्रमाणे सुज्ञ मनुष्योए "भरेलु" अने "खाली" ए शब्दनो अर्थ बराबर समजवो जोइए

जे खबर आपनार दूत उचे, सन्मुख के डाबी बाजुए होय ते चंद्रमा मार्गमां छे अने जे नीचे, पछवाडे के जमणी बाजुए होय ते सूर्यना मार्गमां छे

* * * * * * * * *

तत्वो.

शिष्ये कह्यु—हे महान् देव ! तमे एवुं ज्ञान धरावो छो के जे ज्ञाननुं रहस्य जाणवाथी आखुं जगत् मुक्त थइ शके, ते ज्ञान शुं छे ते मने जणावो.

गुरु—स्वरज्ञानना रहस्य सिवाय बीजो कोइ देव नथी. जे योगी, स्वर शास्त्र बराबर समजे ते मोटामां मोटो योगी समजवो.

पांच तत्वोमांथी सृष्टिनी उत्पत्ति थाय छे, अने तत्व तत्वमां विलय पामे छे पांच तत्वनुं ज्ञान ए उंचामां उचु ज्ञान छे. आ पांच तत्वोनी पेलीपार अरुपी तत्व (आत्मा) वसे छे

पृथ्वीतत्व, जळतत्व, तेजस्तत्व, वायुतत्व अने आकाशतत्व ए पांच तत्वो छे सघळुं आ पांचतत्वोनुं बनेलुं छे. जे आ पांच तत्वोने यथार्थ जाणेछे ते खरेखर पूज्य छे, वंदनीय छे

जगतनां सघळां प्राणीओमां सर्वस्थळे तत्वो एक सरखां छे जगतथी ते सत्य लोक सुधी फक्त नाडीओना चक्रमां फेर छे

जमणी तेमज डाबी बाजुएथी आ पांचतत्वोनो उदय थाय छे.

आ तत्वोनुं ज्ञान आठ प्रकारनुं छे. हे शिष्य ! ते तुं सांभळ, हुं तने ते कहीश

प्रथम तत्वनी संख्यानु ज्ञान, बीजुं स्वरनी साथे तत्वना संयोगनुं ज्ञान, त्रीजुं स्वरना चिह्ननु ज्ञान, चोथुं तत्वना स्थाननु ज्ञान, पांचमुं तत्वना रंगनु ज्ञान, छठु प्राणनु ज्ञान, सातमु तेओना रसनु ज्ञान, आठमुं तेओना आंदोलननुं ज्ञान

सूर्य स्वर, चन्द्र स्वर अने विषुवत स्वर संबंधी आ आठ प्रकारनी बाबतमां सांभळ हे शिष्य! स्वर करतां उचुं कांई तत्वज आ जगतमां नथी.

वखत जतां दृष्टिजोवानी शक्ति जागृत थाय त्यारे प्रयत्नथी जोवुं जोइए योगीओ काळने छेतरवाने अर्थे उद्यम करे छे*

मनुष्ये पोताना बे कान बे अंगुठा वडे, नसकोरां वचली आंगळीओ वडे, म्होंं छेल्ली अने ते अगाउनी (अनामिका) वडे अने आंखो अगुठानी जोडेनी (तर्जनी) वती बंध करवी

आ स्थितिमां घणे भागे तत्वो धीमे धीमे पीळा, धोळा, राता, वादळी अने बीजी कोइ पण जातनी उपाधि वगरना टपका टपका वाळां मालुम पडता जशे

चाटलामां जोइ तेना पर आपणो श्वास फेंकवो, अने आ प्रमाणे आकार उपरथी तत्वोने ओळखतां शिखवुं जोइए

चोरस आकारना, अर्ध चन्द्राकार, त्रिकोणाकार, गोळाकार अने टपका टपकावाळा अनुक्रमे पांच तत्वोना आकार छे

प्रथम पृथ्वी तत्व वचमां वहे छे, बीजु जळ तत्व नीचे वहे छे, त्रीजुं अग्नि तत्व उचु वहे छे, चोथुं वायु तत्व अमुक काटखुणे वहे छे, अने आकाश दरेक बेनी वच्चे वहे छे

---

* आ शब्दो बहु विचार करवा लायक छे कर्म प्रमाणे मनुष्यने सुख दुःख आवे छे अने वखत जतां कर्मनो उदय थाय छे त्यारे, अमुक प्रकारना सुखना के दुःखना संजोगो हयातीमां आवे छे पण योगी तो योगाभ्यासथी शरीरनां तत्वो पर काबु मेळवे छे, अने रोगनां जे बीज प्रकट थतां अने नाश पामतां घणो वखत लागे ते बीजने एक क्षणमां पकवीने काढी नाखे छे जैन परिभाषामा आ क्रियाने 'उदीर्णा' कहे छे.

पृथ्वी तत्व पीळु छे, जळ तत्व धोळु छे, अग्नि रातु छे, वायु आकाशना जेवु भूरुं छे, अने आकाशमां दरेक रंगना पडछाया पडे छे.

प्रथम वायु तत्व वहे छे. बीजुं तेजस्तत्व वहे छे, त्रीजुं पृथ्वी तत्व वहे छे, चोथु जळ तत्व वहे छे.

बे खभानी वचमां अग्नि तत्व आवेलुं छे, नाभिना मूळमां वायु तत्व रहेलु छे, घुंटणमां जळ तत्व वसे छे, पगमां पृथ्वी तत्व आवेलु छे. अने माथामा आकाश तत्व वसे छे

पृथ्वी तत्वनो स्वाद मीठो छे, जळ तत्वनो कट्ठ छे, तेजनो तीखो छे, वायुनो आम्ल छे, अने आकाशनो कडवो छे

वायु तत्व आठ आंगळ पहोळुं वहे छे, अग्नि चार आंगळ, पृथ्वी बार आगळ, जळ सोळ आंगळ पहोळु वहे छे.

वायुनी उर्ध्व गति मरण लावे छे, नीचि गति शांति तरफ दोरे छे, आडखुणानी गति बेचेनी उपजावे छे, मध्य गति सहनशीलता प्रेरे छे अने आकाश तो सर्वने समान छे

पृथ्वी तत्व वहेतुं होय त्यारे लांबा समय सुधी चाले तेवां कामो करवां, जळ तत्व वखते दररोजनां कामो करवां, तेजस्तत्व चालतुं होय त्यारे सख्त अथवा दीत कामो करवां. मारनारा लोको वायु वखतनो लाग साधे छे

पग आकाश तत्व चालतुं होय त्यारे तो योग वगेरेना अभ्यास सिवाय बीजु काइ पग कांई करवुं नहि; कारण के ते स्थितिमां बीजां कार्योनु फळ आवशे नहि

पृथ्वी अने जळ तत्वमां विजय मळे छे तेजस्तत्वमां मरण थाय छे, वायु तत्वमा घटाडो थाय छे अने तत्वना जाणकार लोको जणावे छे के आकाश तत्व तो तद्दन निरुपयोगी छे

पृथ्वी तत्वमा लाभ बहु मोटो मळे, जळ तत्वमां लाभ तरत ज आवे तेजस्तत्वमा अने वायु तत्वमा नुकशान थाय. अने आकाश तो निरर्थक गणवु

पृथ्वी तत्व पीळा रंगनुं होय छे, तेनी गति धीमी होय छे, ते मध्यमां वहे छे, अने छेक 'स्टेर्नम'ना छेडा सुधी पहोंचे छे, तेनो अवाज भारे होय छे, अने ते थोडुं गरम होय छे. ते लांबा काळ सुधी टकी शके तेवा काममां विजय आपे छे

जळ तत्व धोळा रंगनु होय छे, तेनी गति उतावळी होय छे, ते नीचे वहे छे, ते सोळ आंगळ नीचे छेक नाभि (डुंटी) सुधी वहे छे, तेनो अवाज भारे होय छे, अने ते ठंडुं होय छे ते मंगळकारी कार्योमां विजय आपे छे

तेजस्तत्व (अग्नितत्व) राता रंगनुं होय छे, ते ऊंचे वहे छे, ते चक्राकारे वहे छे, हडपचीथी नीचे चार आंगळ सुधी ते वहे छे, अने ते बहुज गरम होय छे ते सख्त कार्योते—जे कार्योमां जुस्सो प्रधान पद भोगवतो होय तेवां कामोने—जय आपे छे

वायु तत्व आकाश जेवा भूरा रंगनुं होय छे, ते काटखुणे वहे छे. ते गरम पण होय अने ठंडु पण होय. ते क्षणिक कार्योमां विजय आपे छे.

आकाश तत्व ए सघळा तत्वोनी सामान्य सपाटी रुप छे सघळां तत्वोनुं प्रतिबिंब तेमां पडे छे ते योगीने योग साधवामां मददगार थाय छे.

पृथ्वी तत्व पीळा रंगनुं, चोरस आकारनु, मीठा स्वादनु, मध्यमां वहेतुं, अने सुखने आपनारुं होय छे, अने ते बार आंगळ नीचे वहे छे

जळ तत्व धोळा रंगनुं, अर्ध चंद्राकारनुं, कडु स्वादनुं, नीचे वहेतुं अने लाभने आपनारुं होय छे, अने ते सोळ आंगळ वहे छे

वायु तत्व भूरा रंगनुं, गोळाकारनु, आम्ल (खाटा) स्वादनुं, काटखुणे वहेतुं, मुसाफरीने सुचवतुं होय छे ते आठ आंगळ वहे छे

सघळा रंगोना प्रतिबिम्ब रुप, काननां आकारनु, कडवा स्वादनुं, सर्व स्थळे वहेतुं, मोक्षने आपनारुं आकाश तत्व छे, पण आ तत्व सघळां सांसारिक कामोने वास्ते तद्दन निरुपयोगी छे

पृथ्वी अने जळ तत्व मंगळकारी छे, तेजस्तत्वनुं फळ मध्यमसरनु आवे छे आकाश अने वायु अमंगळकारी छे अने नुकशान के मरण करावे छे.

जळतत्त्व पूर्वमा छे, पृथ्वीतत्व पश्चिममा छे, वायु उत्तरमां छे, तेजस्तत्व दक्षिणमां अने आकाशतत्त्व मध्यमा छे

पृथ्वीतत्व के जळतत्त्वमां चंद्रस्वर चालतो होय तो सघळां नम्र कार्योमां विजय मळे छे अग्नितत्त्वमां सूर्यस्वर चालतो होय तो सघळां दीप्त कार्योमां लाभ मळे छे

पृथ्वीतत्व दिवसे लाभनुं कारण थाय छे जळतत्व रात्रिए लाभनुं कारण थाय छे तेजस्तत्व मरणनु कारण बने छे वायुतत्त्वमां घटारो-नुकशान थाय छे अने आकाशतत्व केटलीकवार वांझ छे

जीववानी योग्यतामां, फत्तेह मेळववामां, आवकमां, खेतीमां, (केटलाकना मत प्रमाणे भोग भोगववामां) धन एकठु करवामां, मंत्रनो अर्थ समजवामां, लडाइ संबधी सवाल पूछवामां, जवा आववामां इत्यादि कामोमा जळतत्त्वमां लाभ मळे छे.

पृथ्वीतत्त्वमां मंगळकारी कार्य होय त्यांनुं त्यां पडी रहे छे, वायु तत्त्वमां ते बीजे जतुं रहे छे, अने आकाश के तेजस्तत्त्वमां तो मरण के नुकशान थाय छे

पृथ्वीतत्त्वमां मूळीआंनो विचार आवे छे अने जळ वायुतत्त्वमां जीवता प्राणीओनो विचार आवे छे तेजस्तत्त्वमां खनीज पदार्थनो विचार उद्भवे छे आकाशमां शून्य अथवा कांइ पण विचार उठतो नथी

पृथ्वीतत्त्वमां मनुष्य घणां पगवाळां जानवरोनो विचार करे छे, जळ अने वायुतत्त्वमां बे पगा प्राणीनो अने तेजस्तत्त्वमां चोपगांनो अने आकाशतत्त्वमां पग रहितनो विचार थाय छे

सूर्यस्वर चालतो होय त्यारे मंगळ ते अग्नितत्व छे, रवि ते पृथ्वी तत्त्व छे, शनि ते जळ तत्व छे, राहु ते वायु छे

चंद्रस्वर चालतो होय त्यारे चंद्र ते जळतत्व छे, गुरु ते पृथ्वी तत्व छे, बुध ते वायुतत्व छे, शुक्र ते तेजस्तत्व छे

* आवो मत केटलाएक विद्वानोनो पण आ लेखकनो तथा महान ज्योतिर्वेत्ता वराहमिहिरनो अभिप्राय आ पद्धतिना [illegible]

गुरु ते पृथ्वीतत्व छे, चंद्र अने शुक्र ते जळतत्व छे, सूर्य अने मंगळ ते तेजस्तत्व छे, राहु केतु अने शनि ते वायुतत्व छे, अने बुध ते आकाशतत्व छे

पृथ्वीतत्व चालतुं होय त्यारे कोइ सवाल पूछे तो कहेउं के ते पृथ्वी संबंधी (मूळ संबंधी) छे जळतत्वमां जींदगी संबंधी छे, तेजस्तत्वमां खनीज पदार्थ संबंधी छे, अने आकाशतत्वमा काइ पण संबंधी नथी

पृथ्वी अने जळतत्वमा (१) सुख (२) वृद्धि (३) प्रेम (४) खुशमीजाज (५) विजय अने (६) हास्य थने छे

तेजस्तत्व अने अग्नितत्वमा (७) कर्मेन्द्रिओनी काम करवानी अशक्ति (८) ताव, (९) कम्प, (१०) परदेशगमन आटला कामो थने छे

आकाश तत्वमां, (११) निस्तेजपणुं अने (१२) मरण निपजे छे

आ बार बाबतो चंद्रनी जूदी जूदी स्थितिओ छे

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण अने उत्तर दिशामा पृथ्वीतत्व, जळतत्व, तेजस्तत्व अने वायुतत्व मुख्य होय छे, माटे ते प्रमाणे जवाब आपवो

हे शिष्य ! आ शरीर पृथ्वी, जळ, तेजस्, वायु अने आकाश ए पांच महाभूतनुं बनेलुं छे, एम जाणवुं

ब्रह्मविद्या जणावे छे के— शरीरना हाडका, स्नायु, चामडी, नाडी अने वाळ आ पांच पृथ्वीतत्वना विभाग छे

ब्रह्मविद्या जणावे छे के वीर्य, रजस्, चरबी, मूत्र, अने थुंक आ पांच जळतत्वना विभाग शरीरमा छे

ब्रह्मविद्या जणावे छे के—भूख, तरस, ऊंघ, प्रकाश अने सुस्ती आ पांच तेजस्तत्वना विभाग शरीरमा छे

ब्रह्मविद्या जणावे छे के—दूर करवु, चालवुं, सुंघवुं, संकोचावु अने विस्तार थवुं आ पांच वायु तत्वना विभाग शरीरमा छे

प्रवृत्तिओ जणावे छे के—मेळववानी इच्छा, दूर करवानी इच्छा, ा, भय अने विस्मृति आ पांच आकाशतत्वना विभाग छे

पृथ्वीने पांच गुण छे, जळने चार, तेजस्‌ने त्रण, वायुने बे अने ाशने एक गुण छे. तत्व संबंधी ज्ञाननो आ एक अंश छे

पृथ्वीतत्वनुं वजन ५० पळ छे, जळतत्वनुं ४० पळ छे, तेज- वनु ३० पळ छे, वायुनुं २० पळ छे अने आकाशनु १० पळ छे

पृथ्वीतत्वमां लाभ मळतां वार लागे छे, जळतत्वमां तरत मळे वायुतत्वमां थोडो लाभ मळे छे, अग्नितत्वमां तो हाथमां आवेलुं नाश पामे छे.

धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनाराधा, श्रावण, अभिजित् अने उ- ाषाढा—आटलां नक्षत्र पृथ्वीतत्व सूचवे छे

भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपदा अने स्वाती लां नक्षत्र तेजस्‌तत्व सूचक छे.

पूर्वाषाढा, आश्लेषा, मूल, आर्द्रा, रेवती, उत्तराभाद्रपदा अने शत- रज—आटलां नक्षत्र जळतत्व सूचक छे

विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसू, अश्विनी, मृगशीर्ष ला नक्षत्र वायुतत्वने सूचवे छे

आपणी पूर्ण नाडी तरफ उभा रहीने पूछवा आवनार जे शुभ के भ बाबत संबंधी आपणने पूछे छे ते तेमज बने छे खाली नाडी फ उभो रहीने पूछे तो तेथी उलटुं परिणाम आवे छे *

नाडी पूर्ण होय पण जो तत्व अनुकूळ न होय तो विजय तो नथी तत्वनी साथे अनुकूळ होय त्यारे ज चंद्रस्वर के सूर्यस्वर जय आपे छे

रामने मंगळसूचक तत्वमां ज विजय मळ्यो हतो अने अर्जुनने पण ज थयुं हतुं प्रतिकूळ तत्वने लीधे ज कौरवो युद्धमां मार्या गया हता. पूर्व

* जे नाडीमांथी वायु नीकळतो होय ते 'पूर्ण' नाडी समजवी अने नाडीमांथी वायु न नीकळतो होय ते 'खाली' जाणवी

भवमां मेळवेली शक्ति थी (पूर्व भवना संस्कारथी) अथवा गुरुकृपाथी. मनने पवित्र राखवानी टेव पाडीने आ तत्वनु ज्ञान टुंक वखतमां मेळवी शकाय छे

पांच तत्वो परनुं ध्यान.

/ पृथ्वीतत्वने चोरस आकारनुं, पीळा रंगनुं, मीठा स्वादनुं, तमारा शरीरनो रंग सुवर्ण जेवो शुद्ध बनाववुं, शरीरने रोगथी मुक्त अने हल्कुं करतु कल्पी तेनापर 'लम' शब्दथी ध्यान करो

/ जळतत्वने अर्धचंद्राकारनुं, चंद्र जेवुं धोळुं, भुख अने तरस सहन करवानी शक्ति आपनारुं, अने जळमां डुबकी मारी होय तेवा प्रकारनी लागणी उत्पन्न करतुं कल्पी तेना पर 'वम्' शब्दथी ध्यान करो.

/ तेजस्‌तत्वने त्रिकोण आकारनुं राता रंगनुं, वणो खोराक अने पाणी पचाववानी शक्ति आपतुं, अने सख्त अग्निनो ताप सहन करवानुं बळ आपतुं कल्पी तेनापर 'रम्' शब्दथी ध्यान करो

/ वायुतत्वने गोळ आकारनुं, आकाश जेवा भूरा रंगनुं, अने आकाशमां जवानी अने पक्षीनी माफक उडवानी शक्ति आपतुं कल्पी तेना पर यम् शब्दथी ध्यान करो.

/ आकाशतत्वने आकार वगरनुं अनेक रंगोना प्रतिबिंब ग्रहण करतुं, त्रिकाळ ज्ञानने अने अणिमा, लघीमा वगेरे योगनी आठ सिद्धिओने आपतुं, कल्पी तेनापर 'हम्' शब्दथी ध्यान करो

/ स्वरशास्त्रना यथार्थ ज्ञान करतां मोटुं धन आ जगतमां बीजुं एक पण नथी स्वरशास्त्रने बराबर जाणनार बहु धांधल शिवाय सारुं फळ मेळवे छे.

/ शिष्ये पूछयुं —हे गुरुदेव! हे सुखदाता! स्वरोदयनुं ज्ञान उत्तमोत्तम छे, पण तेथी त्रिकाळ ज्ञान शी रीते थइ शके ?

/ गुरुए जवाब वाळ्यो —हे शिष्य! आ त्रिकाळ ज्ञान छे ते नीचेनी त्रण बाबतोने लगतुं छे.

(१) धन (२) लडाइमां विजय (३) कार्यनु शुभाशुभ फळ.

तत्वोने लीधे ज कोइ पण कामनुं सारं के माठु परिणाम आवे छे, तत्वोने लीधे ज विजय के पराभव थाय छे, अने तत्वोने लीधे ज धन पुष्कळ के ओछु मळे छे. आ तत्वो त्रण रुपमा प्रकट थाय छे.

शिष्य—हे देव ! आ संसाररुपी मोटा समुद्रमां मनुष्यनो मित्र अने मददगार कोण छे ?

गुरु—प्राण एज मोटो मित्र छे, प्राण एज मोटो मददगार छे. हे शिष्य ! प्राण करतां वधारे सारो बीजो कोइ मित्र नथी.

शिष्य—प्राणनी शक्ति शरीरमां केवी रीते रहेली छे ? शरीरमां प्राण देखाय छे ए शुं ? प्राण तत्वोमां कार्य करी रहेलो छे, तेने योगीओ शी रीते जाणे छे ?

गुरु—शरीररुपी नगरमां प्राण ए मोटो रक्षणकर्त्ता छे, ज्यारे प्राण अंदर जाय छे त्यारे तेनी लंबाइ दस आंगल होय छे, ज्यारे ते व्हार नीकळे छे त्यारे तेनी लबाइ बार आंगळ थाय छे

चालती वखते ते २४ आंगळ थाय छे, दोडती वखते ४२ आंगळ थाय छे मैथुन समये ते ६५ आंगळ थाय छे, अने उंघमां १०० आं- गळ थाय छे

हे शिष्य ! प्राणनी साधारण लंबाइ १२ आंगळ छे खावामां अने बोलवामां ते वधीने १८ आंगळ थाय छे.

जो प्राण एक आंगळ ओछो थाय तो तेना परिणामे मनुष्य तृष्णा- ओथी छूटे छे, जो बे आंगळ ओछो थाय तो शरीरमां आनंद व्यापे छे; अने जो त्रण आगळ ओछो थाय तो कवित्व शक्ति प्रकट थाय छे

जो प्राण चार आंगळ ओछो थाय तो वक्तृत्व कळा प्रकाशे छे; जो पांच आंगळ ते ओछो थाय तो अंतरनी दृष्टि खुलवा मांडे छे, जो छ आंगळ ओछो थाय तो मनुष्य उंचे उडी शके छे, जो सात आंगळ प्राण ओछो थाय तो ते वगी ज त्वराथी धारे त्यां जइ शके छे

जो प्राण आठ आंगळ ओछो थाय एटले फक्त चार आंगळ रहे तो अणिमा वगेरे योगनी आठ सिद्धिओ ते मेळवे छे जो नव आंगळ ओछो थाय तो नवनिधिओ तेना हाथमां आवी वसे छे जो प्राण दश आंगळ ओछो थाय तो दश आंकडा तेना हाथमां आवे छे, अर्थात गमे तेवा हिसाबो एक क्षणमां ते गणी शके छे ज्यां अगीआर आंगळ प्राण ओछो थयो त्यारे तेना शरीरनी छाया पडती बंध थाय छे

अने ज्यां बारेबार आंगळ प्राण ओछो थइ गयो त्यां तो श्वास अने उच्छवासमां ते मनुष्य अमृत ज पीए छे ते वखते छेक नख सुधी प्राण तेना शरीरमां व्यापी रहे छे, तो पछी खोराकनी तेने जरुर ज क्यां रही ?

प्राण संबंधी आ महा गुप्त नियम छे गुरु पासेथी ज ते मेळवी शकाय हजारो सायन्सो के शास्त्रो अवलोकता पण ते मळी शके नहि

जो नशीबजोगे चंद्रस्वर सवारमां अने सूर्यस्वर संध्या समये शरू न थाय तो तेओ घणुं करीने मध्यान्ह अने मध्य रात्रि पछी अनुक्रमे शरु थाय छे

युद्ध.

दूर देश साथेना युद्धमां चंद्रस्वर मंगलकारी छे, अने पासेना देश साथेनी लडाइमां सूर्यस्वर मंगळकारी छे चालती वखते प्रथम जे पग उपाडवामां आवे ते तरफनी नाडी वहेती होय तो अवश्य विजय मळे छे

मुसाफरी करवामां, लग्न प्रसंगे, कोइ शहेरमां प्रवेश करवामां अने सघळां मंगळकार्योमां चंद्रस्वर विजयकारी छे

पोताना लश्करने पूर्ण नाडी तरफ अने शत्रुना लश्करने खाली नाडी तरफ उभुं राखीने अनुकूळतत्व प्रमाणे मनुष्य आखी दुनिआने जीती शके

जे बाजुए नाडी वहेती होय ते बाजु उपर उभा रहीने लडवानो पोताना शत्रुओने हुकम आपवो आम करवाथी, सामो इन्द्र आव्यो होय तो पण जरुर विजय मळे

जो लडाइ सबधी कोइ प्रश्न पुछे, अने जो ते पूछनार पूर्ण नाडी तरफ ऊभो होय तो जरुर ते विजय पामशे पण जो ते खाली नाडी तरफ ऊभो होय तो अवश्य ते पराभव पामे

पृथ्वीतत्व जणावे छे के पेटमा घा पडलो छे, जळतत्व पगमां, अग्नितत्व जाघमा, वायुतत्व हाथमा अने आकाशतत्व माथामां घा पड्या जणावे छे आ पाच प्रकारना घा स्वरशास्त्रमा वर्णवेला छे

जेना नामना अक्षर बेकी (बे, चार, छ के आठ) होय ते जो चंद्रस्वरमा सवाल पूछे तो ते जरुर विजय मेळवे छे जेना नामना अक्षर एकी (एक, त्रण, पांच के सात) होय ते जो सूर्यस्वरमा प्रश्न पूछे तो ते जरुर विजय मेळवे छे

जो चद्रस्वरमा सवाल पूछवामां आवे तो ते सवालनो शांतिमां अंत आवे छे, अने जो सूर्यस्वरमां पूछवामा आवे तो अवश्य लडाइ थाय.

पृथ्वीतत्वमा युद्धमा बन्ने पक्ष सरखा उतरशे, जळतत्वमां परिणाम सरखुं आवशे तेजस्तत्वमा हार–पराभव थशे वायु अने आकाशतत्वमां मरण थशे

जो कदाच कोइ कारणथी कइ बाजुनी नाडी वहे छे, ते बाबतनी बराबर सवाल वखते समजण न पडे तो डाह्या मनुष्ये आ नीचेनी युक्तिनो आश्रय लेवो

शांत अने स्थिर बेसवुं, अने पोताना तरफ बीजाने एक पुष्प माखवा जणाववुं, जरुर ते पुष्प पूर्ण नाडी तरफ पडशे पछी तेणे सामा पुरुषने जवाब आपवो

आ के बीजे स्थळे स्वरशास्त्रना नियमोनो जाणनार प्रबळ शक्तिमान् गणाय छे तेना करता वधारे समर्थ बीजो कोण होइ शके ?

शिष्ये पूछ्युं—ज्यारे मनुष्यो माहोमाहे लडे त्यारे तो उपर जणावेला नियमो लागु पडे, पण मनुष्यो ज्यारे यम साथे लडे त्यारे विजय शी रीते प्राप्त थाय ?

गुरु—ज्यारे प्राण शांत होय त्यारे चंद्रस्वरमां इष्ट देवनी स्तुति करवी, अने ज्यारे बन्ने प्राण मळे एटले के सुषुम्णा नाडी चालती होय त्यारे तेणे मरवुं जोइए जो आ प्रमाणे ते करी शके तो तेनी इच्छा प्रमाणे लाभ अने विजय ते मेळवी शके छे

वर्ष.

चैत्र सुद पडवेने दिवसे तत्वोनुं पृथक्करण करीने सूर्यनी उत्तर तथा दक्षिण तरफनी गति द्वारा योगीए जाणवी जोइए.

जो चंद्रस्वर वखते पृथ्वी, जळ के वायुतत्वनो योग होय तो पुष्कळ धान्य पाके छे.

जो आकाश अने वायुतत्व वहेतुं होय तो भयंकर दुष्काळ आवे छे आ काळनुं माहात्म्य छे. आ प्रमाणे वर्षमां, महिनामां के दिवसमां काळनुं शुं परिणाम आवशे ते जणाइ आवे छे.

सघळां सांसारिक कार्योमां अशुभ गणाती एवी सुषुम्णा नाडी जो ते वखते चालती होय तो देशमां नखराट थाय, राज्यनी उथलपाथल थाय, अथवा राज्यने भय थाय, मरकी अने बीजा अनेक रोगोनो उपद्रव थाय.

ज्यारे सूर्य इ—मां जाय, त्यारे योगीए स्वरनुं ध्यान करवुं, अने ते वखते चालतु तत्त्व जोइने आखा वर्षनुं फळ अथवा भाव कहेवा आखुं वर्ष, महिनो के दिवस लाभकारी थशे ए, पृथ्वी वगेरे तत्त्वथी जणाय छे अने ते सर्व खराब नीकळशे ए, वायु के आकाशतत्वथी जणाय छे

जो ते दिवसे पृथ्वीतत्त्व चालतुं होय तो राज्यमां सुख अने वैभव पुष्कळ थशे, पृथ्वीमां धान्य पुष्कळ पाकशे, अने ज्यां त्यां शांति अने सुख व्यापी रहेशे

जो जळतत्त्व चालतुं होय तो पुष्कळ वरसाद वरसशे, पुष्कळ धान्य पाकशे, कोइ पण बाबतनी तंगी पडशे नहि, ज्यां त्यां शांति प्रसरशे अने खेतरो पाकथी उभराइ जशे

जो अग्नितत्त्व चालतुं होय तो दुकाळ पडे, राज्यनी उथलपाथल थाय, अथवा ते संबंधी भय थाय, भयंकर मरकी वगेरे रोगो थाय अने जेम बने तेम ओछो वरसाद वरसे

जे वखते सूर्य—नक्षत्रमां जाय त्यारे जो वायुतत्त्व चालतुं होय तो अकस्मातो, गभराट उपजावे तेवा बनावो, दुकाळ, ओछो वरसाद अने छ प्रकारनी इतिओ (उपद्रवो) थाय.

---

१ आ दिवसे विक्रमादित्यना संवत् वर्षनो आरंभ थाय छे

जो ते वखते आकाशतत्व चालतु होय तो धान्यनी तंगी पडे अने शांतिनो अभाव थाय

जो योग्यस्वर वहेतो होय अने योग्यतत्व चालतुं होय तो सर्व प्रकारनो विजय मळे छे जो चंद्र अने सूर्यस्वर प्रतिकूळ चालता जणाय तो ते वर्षने माटे अनाज भरी राखवुं

जो अग्नितत्व चालतुं होय तो कीमत एक सरखी रहेशे नहि. जो आकाशतत्व चालतुं होय तो दुकाळ लांबो काळ चालशे. माटे वस्तुओ भरी राखवी ते पछी बे मास पछी कीमतमां वधारो जरुर थशे

ज्यारे चंद्रस्वर बदलाइने सूर्यस्वर थइ जाय त्यारे भयंकर रोगोने ते जन्म आपे छे

जो आकाश अने वायुतत्व जोडे अग्नितत्व चाले तो आ पृथ्वी नरक समान थइ जाय.

तत्दोनी समानतानो नाश थवाथी रोग थाय छे, अने दरेक तत्वने लगता रोग होय छे.

रोग. *

पृथ्वीतत्वमां पृथ्वीने लगतो रोग थाय छे, जळतत्वमां जळने लगतो, अग्नितत्वमां अग्निने लगतो अने वायु के आकाशमा वायु के आकाशने लगतो रोग थाय छे

जो दूत (सवाल पूछनार) प्रथम आपणी खाली नाडी तरफ आवे अने पछी आपणी पूर्ण नाडी तरफ बेसे तो जेना संबंधमां ते सवाल पूछवा आव्यो होय ते मरणनी मूर्छामां कदाच पड्यो होय तो पण जरुर जीवे.

---

* ज्यारे बे मनुष्यो एक बीजाना संबंधमां आवे छे त्यारे तेओना प्राणनो रंग बदलाय छे आ रीते पोतानी पासे बेठेला कोइ पण मनुष्यनो रंग पोताना शरीरमां ते क्षणे थयेला क्षणिक फेरफारथी जाणी शकाय छे वर्तमानकाळ ए भविष्यनो पिता छे आ उपरथी ते मनुष्यना रंगनी परीक्षा करीने तेना रोगनो दर्दी अंत आवशे अथवा तो ते दर्दी मरशे ते धारी शकाय.

मांदो माणस जे बाजुए होय ते बाजुए बेसीने जो योगी (आ बाबतना जाणकार स्वरशास्त्री) ने सवाल पूछवामां आवे तो ते मनुष्यना शरीरमां गमे तेटला रोगोए घर कर्युं होय छतां ते मांदो माणस जरुर जीवशे.

जो जमणी नासीका (सूर्यस्वर) व्हेती होय, अने ते दूत पोतानु दुःख दया उपजावे तेवा स्वरमा रडे तो जरुर ते मांदो माणस जीवे पण जो चंद्रस्वर चालतो होय, तो तेनु फळ सामान्य थाय छे.

पोताना प्राण सन्मुख मांदा माणसनी छबी धरीने अने तेना सामुं जोइने जो सवाल पूछवामां आवे तो जरुर ते मांदो माणस सजीवन थाय.

चंद्र के सूर्यस्वर गमे ते चालतो होय, अने योगी गादीमां बेसतो होय तेवामां कोइ दूत तेने सवाल पूछे तो ते दूतनी धारेली इच्छा अवश्य पार पडे.

सवाल पूछवाना समये योगी उपरना माळे बेठो होय अने दरदी नीचेने माळ होय तो जरुर ते दरदी जीवे, पण जो दरदी उपरना माळे होय तो जरुर ते यमने धाम पधारे

सवाल पूछती वखते दूत आपणी खाली नासिका तरफ बेठो होय, पण तेने जे जोइतुं होय तेनाथी विरुद्ध पूछे तो अवश्य ते विजय मेळवे, पण आथी उलटुं बने तो परिणाम पण उलटुं आवे

जो मांदो माणस चंद्र भणी होय अने पूछनार सूर्य भणी होय तो ते दरदी हजारो वैद्यो पासे होवा छतां जरुर मरण पामे *

जो दरदी सूर्य भणी होय अने पूछनार चंद्र भणी होय, त्यारे (कदाच देव रक्षण करनार होय तो पण (ते दरदी मरण पामे छे

जो एक तत्व अव्यवस्थित थाय तो लोकोने रोग थाय छे, जो बे तत्वो प्रतिकूळ होय तो मित्रो अने सगांस्नेहीओमां दुःख उत्पन्न करावे छे बे पखवाडीआं सुधी जो तत्वो प्रतिकूळ रहे तो अवश्य मरण थाय

---

* चंद्र अने सूर्य कइ दिशाओ सूचवे छे ते प्रथम जणाववामां आव्युं छे

मरणनां चिन्ह. *

पखवाडीआ, महीना के वर्षनी शरुआतमां सुज्ञ मनुष्ये प्राणनी गति वगेर उपरथी मरणकाळनो निश्चय करवो

आ पांच तत्वोना दीवानुं तेल चंद्रमांथी आवे छे, माटे सूर्यना बळमांथी तेनुं रक्षण करवुं जोइए तेथी जींदगी लांबी थशे.

स्वर उपर पूर्ण विजय मेळवीने जो सूर्यस्वरने दाबमां राखवामां आवे, अर्थात सूर्यस्वर जेम ओछो वहे तेम वर्तवामां आवे तो जींदगी लंबाय छे

शरीररुपी कमळोने अमृत सिंचतो चंद्र स्वर्गमांथी उतरे छे सारां कामो करवानो अभ्यास पाडवाथी अने योगथी चंद्रना अमृतवडे मनुष्य अमर बने छे.

दिवसनी अंदर चंद्रस्वर वहेवा दो, अने रात्रिनी अंदर सूर्यस्वर वहेवा दो आ प्रमाणे जे दिन रात करी शके छे ते खरेखरो योगी छे

जो एक आखो दिवस अने एक आखी रात एकज नळीमां प्राण चाल्यां करे, तो त्रण वर्षमां मनुष्यनुं मरण थाय

बे आखा दिवस अने बे आखी रात्रि सुधी पिंगला नाडी (सूर्य स्वर) चालु रहे तो तत्वना जाणकार कहे छे के ते मनुष्यने माटे हवे बे वर्ष बाकी छे

जो आखी रात चंद्रस्वर वहे अने आखो दिवस सूर्यस्वर वहे तो तेनु मरण जरुर छ मासनी अंदर आवे

जो सूर्यस्वरज चाल्यां करे अने चंद्रस्वर तद्दन बंध थइ जाय तो ते माणस पंदर दिवसमां मृत्यु पामे ए प्रमाणे काळशास्त्र जणावे छे

जेनो एक नाडिकामांथी त्रण रात लागलागट प्राण चाल्यां करे ते फक्त एकज वर्ष जीवी शके, ए प्रमाणे आ शास्त्रना जाणकारो जणावे छे

---

* मनुष्ये मरण काळ जाणवो जरूरनो छे, कारण के मरण काळ पासे आव्यो जाणी मनुष्य यथाशक्ति धर्मध्यान करी शके

एक कांसानु वासण लेइने तेने पाणीथी भरो, अने तेमां सूर्यनु प्रतिबिंब जुओ जो ते पडछायाना मध्य भागमां बाकु (छिद्र) देखाय तो ते जोनार दश दिवसमां मरण पामशे जो पडछायो धूमाडावाळो जणाय तो तेज दिवसे मरण थाय

जो ते पडछाया दक्षिण, पश्चिम के उत्तर दिशा भणी जणाय तो जरुर तेनुं मरण अनुक्रमे छ, बे, के त्रण महिनामां थाय आ प्रमाणे सर्वज्ञोए जीवननी मर्यादा बांधी छे

जो मनुष्य जमना दूतनी मूर्ति जुए तो जरुर ते मरी जवानो. ज्यारे बहारथी चामडी ठंडी होय अने अंदरनो भाग गरम होय त्यारे जरुर एक मासमां तेनुं मरण थाय

ज्यारे माणसनो कांइ पण कारण सिवाय एकाएक स्वभाव बदलाय छे, एटले सारी टेवोने बदले नठारी अथवा नठारीने बदले सारी टेवो ग्रहण करे छे त्यारे जरुर मरण थाय छे

ज्यारे नसकोरामांथी नीकळतो श्वास ठंडो होय अने मुखमांथी नीकळतो श्वास अग्नि जेवो उष्ण होय तो जरुर ते सख्त तावथी मरण पामे.

जे भयंकर आपत्तिओ, अने दीवो सळगाव्या सिवाय चळकतो प्रकाश जुए छे, ते नव मास पहेलां मरण पामे छे.

जेने एकाएक भारे वस्तुओ वजनमां हलकी लागे छे, अने हलकी वस्तुओ वजनमां भारे लागे छे, जे स्वभावे काळो होवा छतां रोगथी सोनेरी रंगनो देखाय छे, ते जरुर मरण पामे छे.

नाह्या पछी, जेना हाथ, छाती अने पग एकदम सूकाइ जाय छे, ते दश दिवस पण जीवतो नथी.

जे माणसनी आंखोनुं तेज घटी जाय छे, अने बीजानी आंखनी कीकीमां पोताना मुखने न जोइ शके, ते जरुर मरण पामे छे

हवे तने हुं " छाया पुरुष " संबंधमां थोडुं कहीश, जे जाणवाथी मनुष्य त्रिकाळज्ञानी बने छे.

हुं एवा प्रयोगो-अख्तराओ जणावीश के जेनी मारफते मृत्यु दूर होय ते पण जाणवामां आवे आ बधु प्राचीन आचार्योना अभिप्राय प्रमाणे जणावीश

एकांत जग्यामां जइने अने सूर्यना सामी पीठ करीने पोतानी जे छाया जमीन पर पडे ते पर एक चित्तथी जोइए

ज्यां सुधी " ॐ क्राम् परब्रह्मणे नम " आ मंत्र १०८ वार शांतिथी उच्चारी शके त्यां सुधी ते जोया करवुं पछी एकदम आकाश भणी जोवुं, तो त्यां एक पुरुषनी आकृति जणाशे.

आवुं छ मास सुधी करवाथी ते योगी पृथ्वी उपर चालता सर्व जीवोनो अधिपति थाय छे बे वर्षमां तो ते तद्दन स्वतंत्र अने पोताना आत्मानो स्वामी बने छे

ते त्रिकाळ ज्ञान अने अपूर्व आनंद मेळवे छे. योगना सतत अभ्यासीने आ जगतमां कांइपण असाध्य के दुर्लभ नथी.

ज्यारे योगी निर्मळ आकाशमां काळा रंगनी आ आकृति जुए छे, त्यारे ते छ मासमां मरण पामे छे.

ज्यारे ते पीळी देखाय छे, त्यारे रोगनो भय रहे छे जो ते लाल देखाय तो नुकशान थाय छे ज्यारे ते आकृतिमां घणा रंग होय त्यारे उदासी अने गभराट थाय छे

जो ते आकृतिने पग, अने जमणो हाथ न होय तो जरुर कोइ स्वजन मरण पामे

जो डाबो हाथ न होय तो पोतानी स्त्री मरण पामे, छाती अने जमणो हाथ न जणाय तो जरुर नाश अने मृत्यु थायछे.

जो वायु संचारनी साथे ज झाडो थइ जाय तो ते मनुष्य जरुर दश दिवसनां मरण पामे

जो चंद्र नाडी ज चाल्यां करे अने सूर्य नाडी बीलकुल न चाले तो जरुर एक मासनां मरण थाय आ प्रमाणे काळशास्त्र जणावे छे

जेनुं मृत्यु नजदीक होय ते अरुन्धती, ध्रुव, विष्णुपद, अने मातृमंडळ ज्यारे बतावदामां आवे त्यारे जोइ शकतो नथी.

अरुन्धती एटले जीभ, ध्रुव एटले नाकनी अणी, विष्णुपद एटले भवां, अने मातृमंडळ एटले आंखनी कीकी आ ते न जोइ शके

जे मनुष्य भवां जोइ शकतो नथी, ते नव दिवसमां मरण पामे छे,

जे आंखनी कीकी जोइ शकतो नथी, ते पांच दिवसमां मरण पामे छे,

जे नाकनो अग्र भाग जोइ शकतो नथी, ते त्रण दिवसमां मरण पामे छे,

अने जे जीभ जोइ शकतो नथी ते एक दिवसमां मरण पामे छे आंखने नाक तरफ दाबीने लेइ जवाथी आंखनी कीकी जोवाय छे.

नाडीओ.

इडाने गंगा कहे छे, पिंगलाने जमुना कहे छे, अने सुषुम्णाने सरस्वती कहे छे; आ त्रणेनुं संगमस्थान ते प्रयाग छे

योगीए पद्मासन स्थितिमां बेसीने प्राणायाम करवा.

शरीर उपर निग्रह मेळववा सारु योगीए पूरक, रेचक अने कुंभक क्रिया जाणवी जोइए.

पूरकने लीधे वृद्धि अने पोषण थाय छे, अने वात, कफ अने पित्त शांत थाय छे. कुंभकने लीधे शरीरनी स्थिरता वधे छे, अने आयुष्य लंबाय छे. रेचक सघळां पापोने हरे छे जे आ प्रमाणे करे छे ते योगावस्था प्राप्त करे छे.

जमणी नासिकाथी श्वास अंदर खेंचवो, अने जेटलीवार सुधी ते अंदर रही शके तेटलीवार सुधी प्राणने अंदर रोकवो अने पछी डाबी नासिका वडे ते बहार काढवो. बीजीवार डाबी नासिकाथी श्वास अंदर लेइ जमणी नासिकाथी बहार काढवो श्वास अंदर खेंचवो ते क्रियाने पूरक कहे छे, अंदर राखी मूकवानी क्रियाने कुंभक कहे छे अने बहार पाछो काढवानी क्रियाने रेचक कहे छे

चंद्र सूर्यने पीए छे, अने सूर्य चंद्रने पीए छे, एक बीजानुं उपर प्रमाणे पान कराववाथी ज्यां सुधी चंद्र के तारा चाले त्यां सुधी मनुष्य जीवी शके

नाडीओ पोताना शरीरमांज वहे छे, तेना उपर मनुष्ये पूर्ण जय मेळववो जोइए तेना उपर जय मेळवनार युवान् बने छे.

ज्यारे म्हो, नाक, आंख, कान वगेरे आंगळीओथी ढायवामां आवे छे त्यारे आंख आगळ तत्वो देखावा माडे छे

जे ते तत्वोनां रंग, गति, स्वाद, स्थान अने चिन्ह समजे छे, ते आ दुनियामा रुद्र जेवो शक्तिमान् थाय छे

जे आ बधुं जाणे छे, अने निरंतर तेनो अभ्यास करे छे, ते सघळां दुःखथी मुक्त थाय छे, अने इच्छित वस्तु प्राप्त करे छे

• जेना मगजमां स्वरनुं ज्ञान छे, तेना पग नीचे नीधि आवीने रहे छे जगतमा सूर्यनी मारफते आ ज्ञानने जाणनार वंदनीय छे

जे स्वरशास्त्रनुं अने तत्वोनु ज्ञान मेळवे छे, तेनी साथे हजारो अमृतनी शीशीओ पण सरखावी शकाय नहि

जे माणस तमने आ बाबतनुं अने ओंकारनुं ज्ञान आपे तेना देवामांथी, गमे तेटलो बदलो वाळो छतां, मुक्त थइ शको नहि.

पोताना स्थानमां वेसीने, नियमित खोराक अने उंघ लेइने, योगीए आत्मा के जेनुं प्रतिबिंब स्वर छे, ते उपर ध्यान करवुं. तेवो मनुष्य जे वोले छे, ते प्रमाणे जरुर थाय छे.

गुप्त मददगारो.

प्राचीन समयथी लोको मानता आव्या छे के, आ जगतमां गुप्त मददगारो वसे छे असलना लोकोने ते बाबत पर संपूर्ण विश्वास हतो देवो मदद करे छे अथवा सहाय आपे छे, ए बाबतनी मान्यता प्रथम पूरेपूरी जामेली हती; पण ज्यारथी पश्चिमना जडवादना विचारोनो विशेष फेलावो थवा लाग्यो, अने लोकोनी नजर जगतनी सूक्ष्म बाबतो करतां, व्हारनी वस्तुओ तरफ विशेष खेंचावा लागी, अने लोकोमां हृदयनी निर्मळता ओछा प्रमाणमां जणावा मांडी, त्यारथी आवा मददगारोनी हयाती विषे लोकोना मनमां संशय पडवा लाग्या, अने लोकोनी ते बाबतनी श्रद्धा दिन प्रतिदिन घटवा लागी. आ स्थिति हाल एटले सुधी प्होंची छे के केटलाक मनुष्यो एम पण कहेवा मंडी पडया छे के.—

"देव गया डुंगरे अने पीर गया मक्के !"

देव डुंगरपर नाशी गया अने पीर मक्के चाल्या गया; अर्थात् देवो बधा अदृश्य थइ गया ! केटलाक एम पण कहेवा लाग्या के हाल कळियुगना समयमां देवो अहीं आवी शकेज नहि !

पण आम कहेवुं अथवा मानवुं ते तद्दन भुलभरेलु छे देवो अने फीरस्ताओ तो तेना तेज छे. प्रथमनी माफक हाल पण तेओ पोतानु परोपकारनुं काम कर्ये जाय छे. लोकोने तेमनी हयातीमां अविश्वास आववाथी

तेओए पोतानु काम करवानु छोटी दीधु नथी, पण अमलनी माफक खुल्ली रीते काम करवाने बदले मोटे भागे तेओ छुपी रीते अने शांतिथी काम करे छे आवा देवो जगतना माननी के कीर्तिनी दरकार करता नथी, तेथी तेमनुं नाम अथवा काम छुपुं रहे तो तेनी तेमने रती मात्र परवाह नथी. तेओ तो जे काम करता आव्या छे ते कर्ये जाय छे गारी खात्री छे के जेम जेम लोकोनी विशेष श्रद्धा थती जशे, जेम जेम लोको देवोनी हयातीमां अने तेमना परोपकारी कार्यमां विश्वास राखता जशे, तेम तेम देवो अमलनी माफक लोकोनी साथे वधारे ने वधारे परिचयमां आवता जशे अने खुल्ली रीते पोतानां लोकोपयोगी कामो बजावता जशे

उपर जणाव्या प्रमाणे वधा धर्मवाळा आवा गुप्त मददगारोने मानता आव्या छे. धर्मशास्त्रोमां आवेलां जूनां चरित्रो वांचशो तो तमने जणाशे के देवो के देवीओए घणा प्रसंगे मदद करेली छे हिंदुओ तथा जैनो तेमने 'देवो' कहे छे, पारसीओ अने मुसलमानो तेमने 'फीरेश्ता' तरीके ओळखावे छे, अने युरोपीयनो तेमने 'एन्जल' अथवा देवदूत तरीके जणावे छे नाम गमे ते आपीए, छतां तेवा दूतोनी अवश्य हयाती छे, अने तेओ पोतानुं काम कर्ये जाय छे, ए बाबत तो चोक्कस छे आ कलियुगना समयमां ज्यां जडवाद अथवा नास्तिकता चारे बाजुए फेलायेली छे, तेवा जमानामां पण जो कोइ पण मनुष्य आ बाबत जाणवानी महेनत करे तो तेने घणाक दाखलाओ खुद हमणां पोतानी नजर आगळ बनता मालम पड्या विना रहेशे नहि जे लोको जगतना व्यवहारनो अने तेमां बनता बनावोनो बारीक अभ्यास करे छे, तेओ तो एवा अनुमान पर आव्या विना रहेशे नहि के आ सर्व बनावोमा थोडे घणे अंशे देवोनो हाथ रहेलो छे. आपणी अश्रद्धाथी देवो के फीरस्ताओ काम करता अटकी गया नथी अने जशे पण नहि

आ नानकडा पुस्तकमां आवा केटलाएक हालमां बनेला बनावो आपवा धार्युं छे, पण ते दाखलाओ अहीं टांकवामां आवे ते पहेलां आ संबंधमां उपजती केटलीक शंकाओ दूर करवी ए वधारे योग्य अने वाजबी गणाशे

प्रथम सवाल ए थाय छे के, जो देवो मदद करता होय तो तेओए वधाने मदद करवी जोइए जो थोडाने मदद करे अने थोडाने न करे

तो तेओ पक्षपाती गणाय अने जो देवो पक्षपाती होय तो जगतमां न्याय क्यां रह्यो ?

आ शंका वाजवी छे, पण ते गेरसमजथी उठेली छे. नीचेनो खुलासो वांचवाथी ते शंका जरुर दूर थशे जो देवो मदद करे छे ए वात तो सत्य ज छे, पण जेओ ते मददने लायक होय अथवा पोतानां पूर्वकर्मोने लीधे तेमनी मदद मेळववाने जेओ योग्य होय तेमने जरुर तेओ मदद करे छे तमे जो सारां कामो कर्यां होय छे तो देवो तमने सहाय आपेछे आ भवमां पण जो तमे सारां कामो करो, तो तेना बदलारुपे देवो जरुर तमने मदद आपशे जे मनुष्य जेटलाने लायक होय छे, तेटलुं तेने तेओ आपे छे तमारे वधारे जोइतुं होय तो वधारे मेळ-ववाने लायक बनो एक अंग्रेजी कहेवत जणावे छे के "कोइ पण वस्तुनी इच्छा करो, ते पहेला ते मेळववाने लायक बनो" * मात्र पूर्व भवनां ज सारां कृत्यथी देवोनुं ध्यान तमारा तरफ खेंचाय छे, एम नथी, पण हाल पण जो तमे सारां कृत्यो करता रहो, अथवा तो देवोनी प्रार्थना के बंदगी करो अने तेमनापर संपूर्ण श्रद्धा राखो तो जरुर तमारी प्रार्थनाथी तेओनुं ध्यान तमारा तरफ खेंचाशे, अने तमने योग्य मदद मळशे तमारा प्रार्थना तमारां कर्मोने तोडी नाखे छे, अने देवो तमने सहायभूत थाय छे जो तमारुं 'कर्म' बहु जोरावर होय तो विशेष प्रार्थनानी जरुर पडे छे देवोने कोइ उपर पक्षपात नथी पण तेओ तो कर्मना महान् नियमोने अमलमां मूकनार दिव्य शक्तिओ छे * *

बीजी शंका ए उभी थाय छे के जो देवो मदद करता होय तो शा सारुं तेओ आपणी नजरे पडता नथी ? माटे देवो छे ज नहि.

---

* Deserve before you desire.

** बधा मनुष्योए देवोनी मदद इच्छवी जोइए एम पण कांइ नथी. जेओ महात्माओ छे तेओ पोताना आत्मोत्क्रान्तिना काममां आगळ वध्या करवामां ज सर्व लक्ष आपीने संतोष माने छे त्हेमनी 'मददमां' नहि पण त्हेमनी 'सेवामां' देवो हमेश तैयार रहे छे देवोनी बाबतमां कांइ शक रहे जवा पहेला घणी बाबतो लक्षमां लेवानी छे. सर्व देवो एक सरखा नथी होता, त्हेमा अनेक 'ग्रेड' अथवा वर्ग छे, अने त्हेमनां ज्ञान-शक्ति पण एक सरखां नथी होतां, एटलु याद राखवाथी केटलीक शंकाओ दूर थशे

आम कहेवुं ए पण भूल भरेलुं छे अहीं एक अगत्यनी बाबत ए समजवानी छे के ज्यां सुधी आ जगतनो कोइ पण मनुष्य अमुक काम करवाने मळी आवे छे त्यां सुधी तेओ तेनी मारफते काम करे छे, अने कर्मना नियमोनी गोठवण प्रमाणे घणीवार तो कोइने कोइ मनुष्य मळी आवे छे, एटले तेना द्वारा तेओ ते काम करे छे पण जो कोइ पण मनुष्य न मळी आवे, अने छतां कोइ मनुष्यने मददनी जरुर होय अने ते मेळववाने ते योग्य होय तो तेओ प्रसंगने अनुसरतुं रुप धारण करी आवे छे, अमुक कार्य करे छे, अने पाछा चाल्या जाय छे.

आ विषयने अंते जणावेला दृष्टान्त उपरथी आपणने जणाय छे के 'देवो' अने 'भूदेवो' आ जगतने मदद करवाना काममां पोतानी शक्तिना प्रमाणमां भाग लेछे आपणे पण जो भूदेव थवुं होय, पृथ्वीपर वसवा छतां देव जेवु बीजाओने मदद करवानुं उत्तम अने पवित्र काम करवुं होय तो आपणामां क्या सद्गुणो जोइए ते बाबत हवे आपणे विचारीशुं आ संबंधमां आ बाबतना जाति अनुभवी एक गुप्त मददगार अथवा भू--देवना शब्दोनो ज उतारो आपवो ए मने वधारे उचित लागे छे. ते पूज्य भू--देव जणावे छे के—

जे गुप्त मददगार थवानी इच्छा राखे तेनामां केवा सद्गुणो होवा जोइए, ते विषे कांइ छुपुं नथी क्या सद्गुणो आ काम माटे जरुरना छे, ते जाणवुं मुश्केल नथी, पण ते गुणो आपणामां पुरेपुरा खीलववानुं काम तो अलबत मुश्केल छे

१. पवित्र मन; मननी एकाग्रता अथवा मननी एकज विषयपर संपूर्ण आस्था.

प्रथम तो महात्माओ अथवा महान् देवो अथवा आपणा इष्टदेव जेथी प्रसन्न थाय एवुं, आपणाथी बनी शके एवु एक मोटुं काम आपणे शोधी काढवुं. अने जगतनां सर्व कामो करवा छतां आपणा हृदय आगळथी ए मोटु काम—ए मोटी उद्भावना—जरा पण दूर न थाय एम काळजी राखवी ते कामने ज मुख्य गणीने आपणे अंतःकरणपूर्वक आपणु सर्वस्व ते काम पाछळज लगाडवुं आपणे, प्रथम तो, उपयोगी अने निरुपयोगी कामो वच्चेनो तफावत जोता शिखवुं एटलुं नहि पण उपयोगी कामोमां

पण आपणाथी बनी शके एवुं उत्तममां उत्तम काम पसंद करवुं कोइ नजीवुं भलुं काम के जे बीजा मनुष्यथी सहेलाइथी थइ शके, अने बीजो मनुष्य जेथी पुण्य मेळवी शके, तेवा उतरता काममां आपणो समय आपणे गुमाववो नहि पण आपणा ज्ञान अने शक्तिना प्रमाणमां कोइ चढता प्रकारनुंज काम बजाववानुं माथे लेवुं जे मनुष्य आवो गुप्त मददगार थवानी इच्छा राखे छे, तेणे ब्रह्मज्ञान अथवा आत्मज्ञानने माटे आ स्थूळ भुवन उपर तेनाथी बनी शके एवुं उत्तममां उत्तम काम हाथमां लेइ ते बजाववानो प्रारंभ करवो जोइए

आ स्थळे मारे चेतवणी रुपे जणाववुं जोइए के, आपणे माथे लीधेली सांसारिक फरजो नाखी देवी एम हु केहेवा मागतो नथी आपणा संजोगोने लेइ आवी पडेली सांसारिक फरजो जरुर अदा करवी, पण कोइ पण प्रकारनी नवी सांसारिक जोखमदारी माथे लेवी ए डहापण भरेलु नथी जे कांइ फरजो कर्मना नियम प्रमाणे आपणे माथे आवी पडी होय, ते अवश्य बजाववी ते छोडी देवानो आपणने हक नथी आपणी स्त्री अथवा तो आपणी संतति अथवा तो घरडा मावापने निराधार स्थितिमां रखडतां मूकी सैन्यासी थइ जवानो आपणने हक नथी ज्यां सुधी कर्म प्रमाणे जे संजोगोमां आपणे मूकायेला होइए, ते संजोगोने लगती फरजो आपणे अदा न करीए, त्यां सुधी आपणे उत्तम प्रकारनां कामो करवाने कदापि लायक बनी शकीशुं नहि पण उच्च काम करवानी उत्तम भावना हृदय आगळ दरेक पळे राखी आपणी फरजो बजाववी जोइए, अने आपणे जे जे काम करीए ते ते आपणे कृपाळु महात्माओना चरणकमळमां अर्पण करवुं जोइए

२. संपूर्ण आत्मसंयम—पोतानी जातपर काबु.

सूक्ष्म–गुप्त शक्तिओ आपणने मळे ते अगाउ आपणे आपणी इंद्रिओ उपर संपूर्ण काबु मेळववो जोइए. आपणा स्वभाव अथवा लागणीओ उपर एटलो काबु मेळववानी जरुर छे के आपणे जे जोइए अथवा सांभळीए, तेथी आपणने जरा पण गभरामण के संक्षोभ उत्पन्न थाय नहि कारण के आवा संक्षोभथी आ जगत् करतां सूक्ष्म भुवनोमां वधारे भयभरेलो गभराट थाय छे विचारबळ ए जगतमां बना बळो करतां वधारे मोटुं बळ छे पण अहीं आ जगतमां आ स्थूळ मगजने लीधे ते बळ

बराबर प्रकट थइ शकतुं नथी, पण सूक्ष्मभुवनोमां ते विचारबळ घणुंज छूटुं होवाने लीधे हद वगरनुं होय छे. जेनी शक्तिओ खीलेली छे, तेवो मनुष्य जो सूक्ष्मभुवन पर बीजा कोइ मनुष्य पर क्रोध करे तो ते मनुष्यने ते घणीवार गंभीर अथवा तो प्राणघातक नुकशान करे छे, एटले के मनुष्यनु मरण पण थाय छे आपणा ज्ञानतंतुओ (Nerves) उपर आपणो एटलो वधो काबु होवो जोइए के के जेथी करीने सूक्ष्मभुवन उपर जो कांइ आपणे एकाद कल्पित के भय भरेलो देखाव जोइए, तो तेथी डरीए नहि अने तेनी सामे पुरती हिम्मतथी टटार उभा रही शकीए. आ संबधमा एटलुं खुश थवा जेवुं छे के ज्यारे कोइ पण गुरु अथवा महात्मा कोइ पण मनुष्यने सूक्ष्मभुवन पर प्रथम जागृत करे छे, त्यारे ते मनुष्यना ते भुवनपरनां काम माटे अने सलामती माटे ते गुरु अथवा महात्मा पोताने माथे जोखमदारी लेछे माटे जो नवा शिखाउमां एकला रही सूक्ष्मभुवनमां काम करवानी हिम्मत न आवी होय तो तेना मदद करनारने तेनी सलामती माटे हमेशां तेनी पाछळ पाछळ भमवु पडे, अने आम करवाने माटे ते गुरुने पोताना अमूल्य समयनो मोटो भोग आपवो पडे, माटे ज्यारे चेलामां घणे अंशे हिम्मतनो गुण खील्यो होय छे, त्यारेज तेने सूक्ष्मभुवन पर जगाडवामां आवे छे शिखाउनी हिम्मतनी खातरी करवाने माटे, अने तेने ते काममां लायक बनाववाने माटे असलना समयनी माफक हालमा पण पृथ्वी, पाणी, हवा अने अग्निनी कसोटीओमांथी तेने पसार थवुं पडे छे बीजी रीते कहीए तो आ नवा शिखाउने शब्दोथी नहि पण खास अनुभवथी खात्री करवी पडे छे के अग्नि तेना सूक्ष्म शरीरने बाळी शकशे नहि, पाणी तेने डुबाडी शकशे नहि, पाणी तेने भींजवी शकशे नहि, अने पर्वत तेना मार्गनां विघ्नरुप थशे नहि ज्यारे आपणे आ स्थूल शरीरमा होइए छीए, त्यारे आपणने एवुं मानवानी मजबूत टेव पडी गयेली होय छे के अग्निथी आपणे बळीए छीए, पाणीमां डुबी मरीए छीए, नक्कर पदार्थमांथी आपणाथी पसार थइ शकातुं नथी अने आसपासनी खुल्ली हवानी वचमां आपणाथी अधर रहेवातुं नथी आ विचार एटलो वधो हृदयमा सज्जड चोंटी गयेलो होय छे के सूक्ष्म शरीर आ सघळी असरोथी मुक्त छे, एवी खात्री तेमने महा-[illegible] बहु वखते थाय छे तेओने एकदम खात्री थती नथी के आ सूक्ष्म शरीर [illegible] पदार्थोनी वच्चेथी [illegible] [illegible] पसार थइ शके छे, ते शरीर

पर्वतोनी गमे तेवी ऊंची टोचोपरथी वगर हरकते नीचे कुदको मारी शके छे, पुरता विश्वासथी अने सहेज पण भय विना ज्वालामुखी पर्वतोनां मुखमां पेशी शके छे, तेमज महासागरना अथाग अने ऊंडा जळनी तळीए सहेलाइथी अने वगर हरकते जइ शके छे

तो पण एक माणस ज्यां सुधी मारी पेठे जाणे नहि—जाणे पटलुं ज नहि पण ते प्रमाणे पोताना ज्ञान अने अनुभवथी काम करवाने ते लायक बने नहि त्यां सुधी, तेवो मनुष्य सूक्ष्म भुवन उपर काम करवाने घणोखरो नालायक छे, कारण के अगत्यना प्रसंग, जे प्रसंगो घणीवार आवे छे तेवे प्रसंगे—कोइ पण कार्यमां बेधडक आगळ वधता ते अचकी जाय अथवा बीकथी पाछो हठे, अने आ स्थूल शरीरना संबंधथी मनमां दाखल थयेली बीकथी या होम करीने पोतानुं शरीर झीपलावतां डरी जाय. आम न थवुं जोइए, तेटला ज माटे सूक्ष्म भुवन उपर काम करवानी इच्छावाळा अभ्यासीने सवळी कसोटीओमांथी अने तरेहवार अनुभवमांथी पसार थवुं पडे छे आ रीते ते धीमे धीमे शिखे छे—ज्ञान मेळवे छे घणाज भय भरेला अने त्रास उपजावे तेवा देखावो अने कमकमाट उपजावे तेवा संजोगो साने तेने शांतिथी अने हिम्मतथी काम करवानुं होय छे, अने ज्यारे गुरुनी संपूर्ण खात्री थाय छे के गमे तेवा अणगमता अने त्रासदायक बनावो के देखावो वच्चे पण पोतानो शिष्य गभराशे नहि पण हिम्मत राखी शकशे, अने फरमावेलुं काम करी शकशे, त्यारे ज आ सूक्ष्मभुवन उपर ते नवा शिखाउने तेनुं कार्य करवा गुरु तरफथी एकलो छूटो मुकवामां आवे छे.

आ साथे आपणां मन अने लागणीओ उपर पण काबु मेळववानी जरुर छे. जेनुं मन वश नथी, जेनुं मन एकाग्र नथी, ते कदापि बीजाने मदद करवाने लायक बनी शकशे नहि अनेक प्रकारनां खेंचाणकारक प्रसंगो अने भयकारक बनावो वच्चे तेने काम करवानु होय छे जो हवे ते पोताना मनने एकाग्र बनावतां न शीख्यो होय तो ते मनुष्य कांइ पण सारुं काम धार्या प्रमाणे करी शकशे नहि भटकता मनवाळो मनुष्य आ भुवन तेमज सूक्ष्मभुवन उपर नकामो छे

इच्छाओने कावुमां राखवानो हेतु ए छे के सूक्ष्मभुवनमां मनुष्य जेनी इच्छा करे छे ते पोतानी नजर आगळ जुए छे. त्यां कोइ पण चीज मेळववाने माटे 'इच्छा'ज पुरती छे हवे जो आपणी इच्छाओ हलकी होय तो हलका पदार्थो आपणी नजर आगळ आवी उभा रहेशे; आथी आपणे तेमां लोभाइ जइशुं, अने बीजाओने सहाय करवानुं काम थइ शकशे नहि जो ते समये आपणा गुरुदेव आपणी पासे होय तो ते वखते आपणने भारे लज्जा उत्पन्न थाय छे माटे आ कामना अभ्यासीए हलकी इच्छाओ उपर पूर्ण काबु मेळववो जोइए

३. शांति—आ गुणनी आ मार्गना अभ्यासीमां खास जरुर छे. चिंता, उदासी, उद्वेग, शोक वगेरे बिल्कुल असर न करी शके तेवी मननी शान्ति जाळववानी घणी जरुर छे गुप्त मददगार थवा इच्छनारे जे काम करवानां छे, तेमांनुं मुख्य लोकोने शांति आपवानुं, लोकोनी दिलगीरी उदासी अने फीकर दूर करवानुं छे पण मदद करनारनुं पोतानुं ज मन खीजवाट, उस्केरणी, चिंता, शोक वगेरेथी भरपूर होय तो ते बीजाने शुं मदद करी शके ? जे पोते बंधायेलो होय ते बीजाने शी रीते मुक्त करी शके ? आ वीसमी सदीनी कांइक जुदाजप्रकारनी धांधल, दोडाट, नजीवी बाबतो माटे लांबी लांबी चर्चाओ, अने 'कागनो वाघ' अथवा तो 'रजनुं गज' बनाववानी टेव—आ सर्व गुप्त ज्ञानना वधाराने माटे बहुज नुकसानकारक छे आपणामांना घणाखरा पुरुषो एक नजीवी बाबतने मोटुं रुप आपवानो ख्याल करीए छीए, अने नकामी बाबतने गंभीर जेवी गणीने चिंतातुर थवामां अमूल्य समय गुमावीए छीए, अने आथी शांति आपणाथी हजार गाउ दूर भागे छे

जेओ ब्रह्मविद्याना भक्त छे, तेओए तो मूर्खाइ भरेलो संक्षोभ अने वगर कारणनी नकामी चिंता या उदासीने पोताना दिलमांथी दूर करवी जोइए जेओ आखा विश्वनुं ज्ञान मेळववाने आतुर छे, तेओए तो मन साथे दृढ निश्चय करवो जोइए के 'जे कांइ बने छे, ते भलाने माटेज थाय छे ' आ विचार ब्रह्मज्ञानने मळतो छे, अने तेटला माटे ईश्वरी छे, एम चोक्स मानवुं कारण के दरेक मनुष्यमां जे कांइ सारुं अने पवित्र सत्व छे तेज स्थायी छे, अने जे कांइ अशुभ के अपवित्र जणाय ते थोडा वखतनुं छे ब्राउनींग नामना कविए बरोबर कह्युं छे के "बुरुं ते कांइज नथी, तेनी हयाती ज नथी पण ते भद्रभनी पेठे पार दिव्य हवा-

तीमां सघळुं शांत, आनंदथी अने मृदुल आशीर्वादोथी भरपुर छे" आ कारणथीज आ वातना जाणकार महात्माओ, पवित्रपुरुषो अने जगदुद्धारको सदा शांत स्वभाव राखे छे तेओ जाणे छे के आखरे सघळुं ठीक अने सारुंज थशे, तेथी तेवा ज्ञानने लीधे तेओ शांति साथे आनंद पण मेळवी शके छे आ कारणथी तेओने महात्मा पुरुषोने पगले चालवुं होय तेओए चिंता शोक अथवा उद्वेग वगरनी स्थितिमां रहेवानी टेव पाडवी जोइए.

४. ज्ञान—मनुष्यने जे भुवन उपर काम करवानु छे, ते भुवनने लगतुं ज्ञान तेणे मेळववुं जोइए आ बाबतनुं ज्ञान जेम मनुष्यने वधारे होय तेम ते वधारे उपयोगी बनी शके आ कामने माटे लायक थवाने गुप्तज्ञान अने अध्यात्मने लगतां पुस्तकोमां जे कांइ माहितीओ प्रकट थयेली छे ते सघळुं संभाळथी वाची, विचारी मनन करवुं जोइए जेओने वधारे उपयोगी काम करवानुं होय, तेओने वार घडीए पूछी तेओनो अमूल्य वखत लेवो जोइए नहि पण अत्यार अगाउ पुस्तकोमां जे काइ प्रकट थयु होय ते जाते वांचीने अभ्यास करवो जोइए जे कोइ अभ्यासी आवां पुस्तको वांची, तेने लगतुं ज्ञान मेळववा उद्यम करतो नथी, तेणे कदापि सूक्ष्मभुवनमां परोपकारने लगतां कामो करवानी आशा राखवी नहि

५. प्रेम—सौथी छेल्लो पण सौथी वधारे अगत्यनो गुण प्रेमनो छे आ स्थळे मारे भारे भार देइने जणाववुं जोइए के आ प्रेम ते फक्त शब्दोना दर्शावातो, अथवा संजोगो बदलातां बदलातो, कोइक क्षणिक जुस्सो नथी. तेमज सत्यने खातर हिम्मतथी उभुं रहेवानी जेनामां ताकात नथी, तेमज जे लागणी लागणीरुपे ज रहे छे पण कदापि कार्यना रुपमा बदलाती नथी, ते लागणी पण प्रेमना नामने योग्य नथी तेवा प्रेमथी काइ पण महत्वनुं कार्य बजावी शकाय नहि खरो प्रेम अथवा साची प्रीति तो तेनेज कही शकाय के जेमां खोटो डोळ होय ज नहि तेमज वडाइ पण होय नहि अने जे वखत आव्ये छुपचुप परोपकारनुं काम करवाने मनुष्यने प्रेरे छे. आवा प्रेमवाळो मनुष्य हमेश बीजानुं भलुं करवाना प्रसग शोधतो ज होय छे, अने दरेक प्रसंगे कोइने पण जणाव्या सिवाय ते तेना सवधर्मी आवता दरेक पुरुषनुं कल्याण करे छे मनुष्यने धीमे धीमे मालुम पडतुं

जाय के परमकृपालु महात्माओ साथे एक थइ, तेमना एक गरीब दास बनी, तेमने करवानां अनेक परोपकारोनो बने तेटलो बोजो पोते उपाडी लेवो ए एक परिश्रम नहि पण आनंदनुं काम छे, तो तेवा मनुष्यने खरेखर भाग्यशाळी मानवो.

आवो प्रेम ! आवी प्रीति ! आवी दया ! खरेखर ते उत्तमोत्तम गुण छे. ए प्रेम हृदयगारनो होय छे अने दुनियाना कोइ पण प्रेमनी साथे ते सरखावी शकाय तेम नथी.

उपर जणावेला सद्गुणो खीलववाने 'गुप्त मददगार' थवा इच्छनारे सतत् अने चालु कोशीश करवी जोइए अने कोइ पण :महात्मा अथवा महात्मानो शिष्य सूक्ष्म भुवन उपर परोपकारी काम करवाने जणावे ते पहेलां, आमांना बधा गुणो थोडे घणे अंशे तेनामां खीलेला होवा जोइए. आ स्थिति बहु उच्च छे अने तेटलाज वास्ते प्राप्त करवी ए मुश्केल छे. ते छतां कोइए पण आ काममां नासीपास थवुं जोइए नहि, अथवा तो ते मूकी देवुं जोइए नहि तेणे जाणवुं जोइए के ते निरंतर संपूर्ण भान साथे सूक्ष्म भुवन उपर भय अथवा जोखम विना काम करवाने समर्थ नथी, छतां हमणां पण ज्यारे ते तेवी हालत मेळववाने खंत राखे छे, त्यारे पोतानी शक्तिना प्रमाणमां सूक्ष्म भुवन उपर जोखम अने जवाबदारी वगरनुं केटलुंक काम ते बजावी शकशे

ज्यारे रात्रे आपणे उंघीए छीए, त्यारे आपणा शरीरमांथी बहार नीकळी दूर जइए छीए. ते वखते आपणामांनो कोइ पण मनुष्य कोइ पण दयाळु के भलु काम करी शकतो नथी, एम नथी मनुष्य जो इच्छा करे, तो उंघमां पण केटलुंक परोपकारी काम करी शके छे. उंघमां आपणे घणे भागे एक विचारमां तल्लीन अथवा गरक थइए छीए. आपणा दिवसनी जागृत स्थितिमां जे विचार मुख्य होय, ते विचारमां घणे भागे आपणे उंघमां रोकाइए छीए तेमा मुख्य करीने सूती वखते आपणे जे छेल्लो विचार कर्यो होय छे, ते विचार उंघमां घणे भागे पोषाय छे आपणो कोइ प्रिय मित्र, अथवा सगुं व्हालुं, अथवा तो कोइ पण मनुष्य जेने आपणे मदद करवा इच्छता होइए, ते मनुष्यने सघळी रीते मदद करवानो विचार करी, तेना तेज विचारनुं रटन करतां आपणे उघवु जोइए. आनुं परिणाम ए जरुर आवशे के जेने तमे मदद करवा

मागता हो, तेने जरुर मदद मळशे. ते हजारो माइल दुर होय तो पण अवश्य तमे तेने मदद करी शको छो मदद करती वखते मदद करनारनुं सूक्ष्म शरीर मदद लेनारनी बाजुए भमतुं घणी वार मदद लेनारना जोवामां आवे छे. आवा घणा दाखला नोंधायेला छे

कोइए पण नाउमेद थइ एम न धारवुं के आवा भला काममां ते कांइ पण भाग लेइ शके नहि आम विचारवुं ए मूलभरेलुं छे कारण के जे मनुष्य विचार करी शके छे, ते बीजाने मदद पण करी शके. आवुं परमार्थी याने परोपकारी काम उंघती वखतेज करवुं एम पण नथी. कोइ पण वखते दिवसे के रात्रे ज्यारे तमने मालूम पडे के तमारो कोइ सगो के दोस्त मांदो छे, के दुःख के संतापमां छे, अने तमे तेने मदद करवा च्हाता हो, तो जरुर तमारे तेने माटे भला, प्रेमना, दिलसोजी भर्या विचार जोरथी करवा कदाच समज सहित तमारुं सूक्ष्म शरीर ब्हार काढी मोकलवानुं तमने नहि आवडतुं होय, तोपण तमारा मजबूत अने भला विचारोनुं एक रुप–आकार बंधाशे, अने ते जेने तमे मदद करवाने धारता हो तेने जरुर मदद करशे, एमां जरापण शक के संदेह राखवा जेवुं नथी. जे प्रमाणमां तमारा विचारो एकाग्र हशे, अने जे प्रमाणमां तमारी शुभ लागणी बळवाळी अने विखराया वगरनी हशे, ते प्रमाणमां वधारे जलदीथी अने फायदाकारक रीते, ते मनुष्यने मदद थशे विचार ए खाली हवाइ कल्पना नथी, पण विचार ए खरी वस्तु छे अने जेनी अंतर्दृष्टि खीलेली छे तेवा मनुष्यो ते विचारने जोइ पण शके छे आ उपरथी आपणने जणाशे के जगतनुं भलुं करवाने जेटलो एक पैसादार मनुष्य समर्थ छे, तेटलोज एक गरीबमां गरीब मनुष्य पण छे तद्दन अपंग अने लाचार मनुष्य पण पोताना विचारो अने शुभ आशिषथी बीजानुं कल्याण करी शके छे. आपणे भान सहित सूक्ष्म भुवन उपर काम करवाने शक्तिमान् थइए, ते अगाउ पण, उपर प्रमाणे काम करीने अत्यारथी पण आपणे गुप्त मदद करनाराओना टुकडीमां सामेल थइ शकीए आ लेख वांची दरेक मनुष्ये भला विचारो करीने ते परमार्थी टुकडी साथे जोडावुं जोइए

गुप्त मददगारनां थोडांक दृष्टान्तो.

(१)

लंडनना परामां काम करतो एक मजुर बे छोकरांने निराधार अने मा वगरनां मुकी मरी गयो. तेना मरण पछी ते बे छोकरानी संभाळ करनार कोइ नथी, ए विचारमां तेनुं मन एटलुं बधुं गरक थइ गयुं हतुं के ते आगळ वधी शक्यो नहि ते मजुर हतो अने विलायतमां खर्च पुष्कळ होवाथी ते कांइ पण धन बचावी शक्यो नहतो तेनी स्त्री अगाउ मरण पामी हती अने जे घरमां ते रहेतो ते घरनी मालीक बाइ जो के बहु दयाळु अन्तःकरणनी हती, छतां आ बे छोकरांने दत्तक लेइ उछेरी शके एवी पैसा संबंधी तेनी स्थिति नहती तेथी तेणी नाखुशीथी एवा ठराधपर आवी हती के, अनाथाश्रममां ते बे छोकरांने मोकली आपवां आथी ते मरण पामेला पिताने अत्यंत दुःख थतुं हतुं, जोके ते घरनी मालीक बाइने टपको आपतो नहतो छतां शुं करवुं ते तेने सूझतुं नहतुं

आपणा 'गेबी मददगारे' ते पिताने पूछयुं " जेने तमे आ छोकराओ निर्भयरीते सोंपी शको एवो कोइपण तमारो स्वजन छे ? "

ते मरण पामेलाए जवाब आप्यो ' एवो तो कोइ मारो सगो नथी पण मारे एक नानो भाइ हतो, अने जो ते मारी हकीकत जाणे तो जरुर मदद आप्या विना रहे नहि. पण छेल्ला पंदर वर्षथी ते मने छोडी चाल्यो गयो छे, अने हाल ते क्यां रहे छे, अथवा जीवे छे के मरी गयो छे, तेनी पण मने खबर नथी छेल्लीवार ज्यारे मने पत्र

मळ्यो त्यारे एवी खबर पडी हती के ते सुतारने त्यां नोकर तरीके रहेलो छे. ते होंशीआर अने महेनतु होवाथी मने आशा छे के जो बराबर रीते ते चाल्यो हशे तो अत्यारे तेनुं कारखानुं सारी रीते चालतुं हशे ”

आटला ज उपरथी तेना भाइने शोधी काढवो ए काम सहेलुं नहतुं, छतां ते बिचारां निराधार बाळकोनी तेमज तेना पितानी दयामणी स्थिति खातर ते काम ते 'मददगारे' मन उपर लीधुं ते मरण पामेलाने साथे लेइ ते 'मददगार' पोताना सूक्ष्म शरीरमां शोधवा नीकळ्यो अने घणी महेनते अने घणा कलाक सुधी शोध कर्या पछी ते भाइ मालुम पड्यो.

अत्यारे ते पोतेज मोटो सुतार बनेलो हतो अने घणाक नोकरो तेना हाथ नीचे काम करता हता. तेनी पैसा संबंधी स्थिति सारी हती. ते परणेलो हतो, छोकरांनी ते बहु इच्छा करतो हतो पण तेने छोकरुं थेयुं नहतुं. टुंकमां कहीए तो आ कामने बराबर बंधबेसतो आवे तेवो ज ते मनुष्य हतो.

हवे तेने खबर शी रीते आपवी एटलोज सवाल हतो. सारा भाग्ये ते निर्मळ हृदयनो हतो अने तेथी आपणा 'मददगारे' त्रण रात्री सुधी तेने स्वप्न आप्यां अने स्वप्न मारफते तेने सूचव्युं के “ तारो भाइ मरी गयो छे, तेना बे छोकरा निराधार स्थितिमां छे, ते अमुक गाममां अमुक स्त्रीने त्यां रहेला छे, माटे तुं त्यां जा अने तेमने लावीने उछेर ” आवो भावार्थ जे रीते तेना मनपर ठसे तेवां स्वप्न आप्यां आ स्वप्ननी तेने एटली बधी असर थइ के तेणे पोतानी स्त्रीने ते स्वप्ननी हकीकत कही, तेथी तेणीए ते शिरनामे पूछाववा कह्युं, पण ते तेने पसंद पड्युं नहि. मातेज त्यां जवानो ने ते घर आगळ पुछपरछ करवानो विचार कर्यो. एवामां तेनी स्त्री बोली उठी “ स्वप्न तो आळपंपाळ छे, एवा मगजना खोटा ख्याल सारु आखा दिवसनो रोज शा सारु खोवो ? माटे त्यां जशो करशो नहि. ”

तेणे त्यां जवानो विचार मांडी वाळ्यो आ रीते ज्यारे ते मददगार पोताना काममां फतेहमंद न नीवड्यो, त्यारे तेणे बीजी युक्ति पसंद करी. आ पृथ्वी उपर वसता ते 'मददगारे' एक कागळ तेना भाइ

उपर लख्यो अने ते कागळमां स्वप्नमां तेणे जे जोयुं हतुं तेवी बधी बाबत अने छोकराओनी स्थिति वगेरे लखी मोकल्युं आ कागळ मळतांज तेना स्वप्ननी तेने खात्री थइ, अने जरा पण विलंब न करतां ते चाली नीकळ्यो अने ज्यां तेना भाइना बे छोकरा रहेता ते घर आगळ आवी पहोंच्यो ते घरनी मालीक स्त्रीए तेने सारो आदर सत्कार आप्यो. आटला दिवस सुधी ते 'मददगारे' स्वप्न मारफते ते डोशीने पण सूचव्युं हतुं के कोइने कोइ माणस आवी ते छोकराने तेडी जशे, माटे तेटला थोडा दिवस सुधी तमे छोकराने साचवी राखजो. आ कारणथीज ते डोशीए छोकराओ अनाथाश्रममां मोकली दीधा नहतां हवे ते छोकरानो काको तेमने पोताने घेर लेइ गयो, अने पोताने छोकरुं न होयाथी, तेमने तेणे पोताना पेटना छोकरानी माफक पाळ्या ते मरण पामेलो पिता पण हवे चिंतारहित थयो अने आनंद पामी 'आगळ चाल्यो गयो.' आवी गुप्त रीते देवो काम करे छे

(२)

मरण पामेलाने देवे आपेली सहायनो दाखलो आपणे उपर विचारी गया हवे जीवताने तेओ केवी रीते मदद करी शके छे ते आपणे विचारीए

एक वखते मद्रासना नाना गामडामां एक खेडुत अने तेनी स्त्री पोताना खेतीना काममां रोकायला हतां, अने तेओना बे नानां छोकरां खेतर व्हार रमतां हतां रमतमां अने रमतमां तेओ घणे दूर चाल्यां गयां, अने भूलां पड्यां ज्यारे आखा दिवसना कामथी कंटाळी गयेलां माबाप पोताने घेर पाछा आव्यां, त्यारे तेमने मालुम पड्युं के छोकराओ तो घेर नथी पण खोवायां छे पाडोशीओना घरमां तपास कर्या पछी चारे बाजुए पोताना नोकरोने सगां व्हालांने अने पाडोशीपाडोशीओने ते छोकरांनी सभाळ काढवा दोडाव्या तेओए चारे बाजुए तपास करी, पण कांइ पत्तो लाग्यो नहि तेथी तेओ निराश थइ पाछा फर्या तेवामां आघेथी तेओए कोइक प्रकारनो प्रकाश खेतरमां थइ मुख्य मार्गपर आवतो जोयो ते साधारण दीवाना प्रकाश जेवो नहतो, पण गोळा जेवुं कांइ चळकतुं हतुं तेवा ते प्रकाशमां बे भूलां पडेलां छोकरां था बधा मनुष्योनो नजरे पड्यां ते छोकराओनो बाप अने तेना सोबतीओ

एकदम ते प्रकाश भणी दोड्या. ज्यां सुधी तेओ ते छोकरानी नजदीक आवी पहोंच्या, त्यां सुधी ते प्रकाश चालु रह्यो, पण जेवा तेओए ते छोकराने हाथमां लीधा के प्रकाश अदृश्य थयो अने तेओ अंधारामां गोथां खावा लाग्या

छोकराओने पूछतां तेओए जवाब आप्यो "रात पडी गइ तेथी अमोए जंगलमां बूमो मारी करी, पण कोइए ज्यारे ते बूम न सांभळी, त्यारे अमे झाड तळे सूइ रह्या तेवामां कोइ सुंदर स्त्री हाथमां दीवा सहित आवी तेणे अमने जगाड्या. हाथथी दोरी ते अमने घर भणी लाववा लागी. ज्यारे अमे तेने कांइ सवाल पूछता, त्यारे ते हसती हती. पण एक पण शब्द बोलती न हती !" आ प्रमाणे ते बे छोकराओए वात करी अने उथलावी उथलावीने सवाल पूछतां छतां तेओ तो ते मतने ज वळगी रह्या.

आ बनाव एटलो बधो स्पष्ट छे के तेमां देवे लीधेला भागना संबंधमां विशेष समजण आपवानी जरुर नथी

(२)

एक वकील के जेनी स्त्री एक वर्ष उपर मरण पामी हती ते पोताना एक छोकरा अने छोडीने लेइ पोताना मित्रने पासेना गाममां मळवा गयो हतो. ते बे छोकरां तेमज तेना मित्रनां छोकरां साथे रमवा लाग्यां. तेना मित्रनुं मकान एक भव्य महेलना खंडेरमां आवेलुं हतुं, अने ते खंडेरना लांबा अंधारा गलीवाळा रस्तामां छोकराओ रमता रमता आगळ वधी गया, पण त्यांथी तेओ एकदम पाछा दोडी आव्या अने तेमना पिता पासे उपर जइ कहेवा लाग्या के "अमने अमारी मा मळी, तेणे अमने कह्युं के अहींआं रमशो नहि, उपर जता रहो, एम कही ते अदृश्य थइ गइ!" पाछळथी तपास करतां मालूम पड्युं के ते गलीवाळा मार्गमां उंडो कुवो हतो अने ते छोकराओ जराक आगळ वध्या होत तो तरत कुवामां पडी मरण पामत आ रीते मानो प्रेम मरण पछी छोकराओनी संभाळ राखे छे.

छेवटना बे बोल.

आ लखनार सारी रीते जाणे छे के आ विषय पर सर्वनी श्रद्धा बेसी शकशे नहि आजकाल 'देवो'ना नामे अने 'भूतो'ना नामे एटला बधा ढोंग ढोंग चाले छे के जेथी खरी वातो पण मनावी मुश्केल थइ पडी छे पण ते माटे शोक करवो नकामो छे. जेओ पवित्र छे–जेओ परोपकारी छे--जेओ विवेक साथे श्रद्धा धरावे छे तेओने तो आ वातो जेवी वातो पोताना स्वधर्मी बन्धुना दाखला जोवा मळ्या हशे ज अगर नजीकना भविष्यमां मळशे ज जेमने आ वातो मानवी न गमती होय तेमने आ लेखक टुंकमां अरज करे छे के, आ वात मानो तो तेथी तमारा धर्मने काइ नुकसान थवानु नथी अने न मानो तो सत्यने के देवोने काइ नुकसान थवानु नथी मानवाथी सारां कामो करवामां तमने श्रद्धा बंधाशे अने श्रद्धाथी तमे परोपकारना काममां कटाळो के डर राखवानुं भूली जइ हिमतवाळा बनशो (कारण के एवा काममां गुप्त मदद करनार देवो दूर नथी.एवी तमने खात्री होय छे). एटलो लाभ छे आ मान्यतामां श्रद्धा राखवी ए खोट वगरनो धंधो छे

एकदम ते प्रकाश भणी दोड्या. ज्यां सुधी तेओ ते छोकरानी नजदीक आवी पहोंच्या, त्यां सुधी ते प्रकाश चालु रह्यो, पण जेवा तेओए ते छोकराने हाथमां लीधा के प्रकाश अदृश्य थयो अने तेओ अंधारामां गोथां खावा लाग्या.

छोकराओने पूछतां तेओए जवाब आप्यो " रात पडी गइ तेथी अमोए जंगलमां बूमो मार्या करी, पण कोइए ज्यारे ते बूम न सांभळी, त्यारे अमे झाड तळे सूइ रह्या तेवामां कोइ सुंदर स्त्री हाथमां दीवा सहित आवी तेणे अमने जगाड्या. हाथथी दोरी ते अमने घर भणी लाववा लागी. ज्यारे अमे तेने कांइ सवाल पूछता, त्यारे ते हसती हती. पण एक पण शब्द बोलती न हती ! " आ प्रमाणे ते बे छोकराओए वात करी अने उथलावी उथलावीने सवाल पूछतां छतां तेओ तो ते मतने ज वळगी रह्या.

आ बनाव एटलो बधो स्पष्ट छे के तेमां देवे लीधेला भागना संबंधमां विशेष समजण आपवानी जरुर नथी

(२)

एक वकील के जेनी स्त्री एक वर्ष उपर मरण पामी हती ते पोताना एक छोकरा अने छोडीने लेइ पोताना मित्रने पासेना गाममां मळवा गयो हतो. ते बे छोकरां तेमज तेना मित्रनां छोकरां साथे रमवा लाग्यां. तेना मित्रनु मकान एक भव्य महेलना खंडेरमां आवेलुं हतुं, अने ते खंडेरना लांबा अंधारा गलीवाळा रस्तामां छोकराओ रमता रमता आगळ वधी गया, पण त्यांथी तेओ एकदम पाछा दोडी आव्या अने तेमना पिता पासे उपर जइ कहेवा लाग्या के " अमने अमारी मा मळी, तेणे अमने कह्युं के अहींआं रमशो नहि, उपर जता रहो, एम कही ते अदृश्य थइ गइ ! " पाछळथी तपास करता मालूम पड्युं के ते गलीवाळा मार्गमां उंडो कुवो हतो अने ते छोकराओ जराक आगळ वध्या होत तो तरत कुवामां पडी मरण पामत आ रीते मानो प्रेम मरण पछी छोकराओनी संभाळ राखे छे

છેવટના બે બોલ.

આ લખનાર સારી રીતે જાણે છે કે આ વિષય પર સર્વની શ્રદ્ધા બેસી શકશે નહિ આજકાલ 'દેવો'ના નામે અને 'ભૂતો'ના નામે એટલા બધા ઢોંગ સોંગ ચાલે છે કે જેથી ખરી વાતો પણ મનાવી મુશ્કેલ થઇ પડી છે પણ તે માટે શોક કરવો નકામો છે. જેઓ પવિત્ર છે--જેઓ પરોપકારી છે--જેઓ વિવેક સાથે શ્રદ્ધા ધરાવે છે તેઓને તો આ વાતો જેવી વાતો પોતાના સંબધમાં બન્યાના દાખલા જોવા મળ્યા હશે જ અગર નજીકના ભવિષ્યમાં મળશે જ જેમને આ વાતો માનવી ન ગમતી હોય ત્હેમને આ લેખક ટુકમાં અરજ કરે છે કે, આ વાત માનો તો તેથી તમારા ધર્મને કાંઇ નુકસાન થવાનું નથી અને ન માનો તો સત્યને કે દેવોને કાંઇ નુકશાન થવાનું નથી માનવાથી સારાં કામો કરવામાં તમને શ્રદ્ધા બંધાશે અને શ્રદ્ધાથી તમે પરોપકારના કામમાં કંટાળો કે ડર રાખવાનું ભૂલી જઇ હિંમતવાળા થનશો (કારણ કે એવા કામમાં ગુપ્ત મદદ કરનાર દેવો દૂર નથી; એવી તમને ખાત્રી હોય છે). એટલો લાભ છે. આ માન્યતામાં શ્રદ્ધા રાખવી એ ખોટ વગરનો ધંધો છે

'सुविचारमाळा'—मणको १० मो.

मोती-काव्य.

प्रथम खंड.

कर्त्ता.

मोतीलाल मनसुखराम शाह

प्रसिद्ध कर्त्ता.

वा. मो. शाह.

'जैन समाचार' पत्रनी १९११ नी सालनी ७मी भेट.

(वा. मो. शाह तरफथी).

'जैनसमाचार'नी १९११नी सालनी

१२ भेटो.

'सुविचार-माळा'ना मणका १९१०नी आखेरीथी शरु करवामां आव्या हता अने ए सालमां (१) 'साधुपरिषद्नो गुजराती रिपोर्ट', (२) 'स्वरशास्त्र' तथा (३) 'क्या ईश्वरे आ विश्व रच्युं?' ए नामना (३) मणका आपवामां आव्या हता. त्यार बाद चालु १९११ नी सालमां नीचे मुजब १२ भेटो-मणका नंबर ४ थी १५ सुधीनी-आपवानुं ठराव्युं छे त्हेनी विगत नीचे मुजब छे:-

भेट १ लो. कल्याण मंदीर स्तोत्र — मणको ४ थो छपाइ चुकी .....
,, २ जो. संसारमें सुख कहां है? भा. १ — ,, ५ मो छपाइ चुकी ....
,, ३ ,, दशवैकालीक सूत्र-पूर्वार्धे — ,, ६ ठो. . छपायछे.
,, ४ थो धर्मसिंह-बावनी — ,, ७ मो छपाइ चुकी ....
,, ५ मो. महात्मा कबीरनां पदो — ,, ८ मो. .. . . छपायछे.
,, ६ ठो. साधुपरिषद्की हिंदी रिपोर्ट — ,, ९ मो छपाइ चुकी. ....
,, ७ मो. मोती काव्य खंड १ लो — ,, १० मो छपाइ चुकी. . ..

नं. ८-९-१०-११-१२ पैकी केटलीक छपाय छे, केटलीकना विषयो पण हजी मुकरर करवामां आव्या नथी. डीसेम्बर १९११ नी अंदरमां ते सर्व रची, छापी, मोकली आपवामां आवशे.

कोइ उत्साही महाशय आमांना एकाद मणकाना खर्च पेटे थोडी पण रकम आपवा इच्छा लखी जणावशे तो त्हेमना नामथी ते भेट बहार पाडवामां आवशे.

मूल्य (मुफतमें) दिया जाता है
नामका साप्ताहिक अखबारका खरीददार बनकर १० मो.
मूल्य रु. ३) भेज देनेवालेको.

सिवाय भी, कल्याणमंदीर स्तोत्र आदि ७–८ पं

(२) श्री उत्तराध्ययन सूत्र जो कि हालमें रु. ६ ग्र
नहीं मिलता है, उसकी शुद्ध मत--अर्थ--टीका सहित ग्र.
(मुफतमें) हम देते हैं, और साथमें श्री विपाक सू
दशांग सूत्र और निरावळीका सूत्र और महावीर च
कीत कौमुदीका रास वगेरा अमूल्य पुस्तक मुफ
किसको ? 'जैनसमाचार' अखबारके खरीददार हो क
वा मूल्य रु. ३) और पोष्ट खर्च रु.१) मनीआर्डरसे भेज ाम शाह.

आपकी भी इच्छा हो तो अभी--इस वक्त आपका नाम
गाम--पोष्ट--जील्ला स्पष्ट हरफसे लिख भेजो और साथमें रु.
मनीऑर्डर भी भेजो.

पत्र लिखो तो साफ हरफमें लिखना; मुडी और उरदु हम नहीं

हमारा पताः--वाडीलाल मोतीलाल

अधिपति, जैनसमाचार, दाणापीठ--मु. अहम

(३) आपको संवत्सरीकी कुमकुम पत्रिका, लग्नकी कुमकुम प गां छापी
स्तवन, पोथी, इत्यादि कुछ भी छपानेका काम हो तो हमारे
काम भेजनेसे सफाइदार--शुद्ध व जलदी कर दिया जायगा.
उपर लिखा है उसी मुजब कर देना.

(४) आपको जैनधर्मकी कोई भी कीताब चाहिये तो हमारे ना
पत्र मत लिखो; सीधा नीचे लिखे हुवे पते पर चिठी लिख
मंगवा लेना. वाजबी दामसे पोथी भेज देंगः--

पोपटलाल मोतीलाल शाह जैनबुकसेलर
सारंगपुर--तळीआकी पोळ--मु.

‘सुविचार–माळा’–मणको १० मो.

श्री

मोती–काव्य.

प्रथम खंड.

जेमां,

श्रीयुत मोतीलाल मनःसुखराम शाह.

एमनां रचेलां प्रास्ताविक काव्योनो

संग्रह करवामां आव्योछे.

‘जैनसमाचार’ साप्ताहिक पत्रना ग्राहकोने

भेट आपवा माटे

स्वकीय ‘भारतबंधु प्रिन्टिंग वर्क्स’ नामक मुद्रालयमां छापी

प्रसिद्ध करनार

वा. मो. शाह.

‘जैनसमाचार’ ऑफिस–अमदावाद.
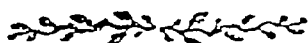
प्रथमावृत्ति, प्रत १५००

वीरसंवत् २४३७–इ स १९११–विक्रम १९६७

श्रीयुत

मोतीलाल मनःसुखराम शाह.

'जैनहितेच्छु' ऑफिसना जन्मदाता, 'सदुपदेशमाळा',
'शब्दप्रकाश', 'प्राणीहिंसा निषेधक' वगेरेना कर्त्ता
विसलपुर (हाल निवास अमदावाद)

[illegible] — અમદાવાદ

ગ્રંથકર્ત્તાનું જીવનચરિત્ર.

વિદ્યમાન પુરૂષોનાં જીવનચરિત્રો લખવામાં જે મુસ્કેલી અને જોખમદારી સમાયલી છે ત્હેનો ખ્યાલ માત્ર સહૃદય લેખકોને જ આવી શકે તેમ છે; ત્હેમાં પણ જીવનચરિત્રનું પાત્ર કોઇ આપ્તજન હોય છે ત્હારે તો એ મુસ્કેલીમા ઓર વધારો થાય છે આ કારણથી મ્હેં ઇચ્છ્યુ હતુ કે મ્હારા પૂજ્ય વડીલશ્રી અને આ પુસ્તકના કર્ત્તાનું જીવનચરિત્ર કોઇ જૂદી જ વ્યક્તિથી લખાય તો ઘણુ સારૂ; પરન્તુ તુરતમાં એ કામ ઉઠાવી લેનાર કોઇ નામ ન જડી આવવાથી, અત્યત સક્ષેપમા તે કામ જાતે જ બજાવી લેવાની જરૂર પડી છે, એવી આશા સાથે કે ભવિષ્યમાં તે પર કોઇ અન્ય મહાશય પુરતો પ્રકાશ અવશ્ય પાડશે.

'મોતી—કાવ્ય'ના કર્ત્તાની પીછાન જૈનવર્ગને કરાવવાની રહેતી જ નથી. પાચ લાખની સખ્યા ધરાવતા, જૈન વર્ગના સ્થાનકવાશી નામક એક પેટાવર્ગની સેવા અર્થે છેલ્લા ૧૩ વર્ષથી ચાલતા 'જૈનહિતેચ્છુ' માસિકના જન્મદાતા શ્રીયુત મોતીલાલ રતન-સુખરામ શાહે, પોતાના પેટા-વર્ગ ઉપરાત જૈનના અન્ય ફીરકાઓમાં, વૈષ્ણવો અને પારસી-મુસલમાનોમા પણ ત્હેમનાં લોકોપયોગી પુસ્તકો દ્વારા એવી સારી પ્રસિદ્ધિ મેળવી છે કે, પોતાના એક ક્ષુદ્ર બાલક દ્વારા પોતાની પીછાન કરાવવા જેવી સ્થિતિમા તે રહ્યા નથી. 'શબ્દાર્થકોષ' જેવા ગ્રથ વડે ગરવી ગુર્જર ભાષાની સેવા બજાવનાર તરીકે કેળવણીખાતાનો સત્કાર પામેલા, 'સદુપદેશમાલા' જેવા ગ્રથ વડે જનસમાજમાં નીતિનો પ્રચાર અસરકારક રીતે કરનાર તરીકે વિદ્વાનોની પ્રશસા પામેલા, 'પ્રાણીહિસા અને પ્રાણીખોરાક નિષેધક' જેવા ગ્રથ વડે અભણ તેમજ વિદ્વાન બન્ને જાતના માસાહારીઓને નિર્દોષ જીવન માર્ગપર મૂકનાર તરીકે દયાળુ દુનિયાની આશિષ પામેલા, 'રામરામ' જેવા જૂના ગુજરાતી ગ્રંથોનું સંશોધન કરીને જૈનસાહિત્ય-ને ખીલવનાર તરીકે જૈનોમાં પ્રિય બનેલા શ્રીયુત શાહ શારીરિક મુસ્કેલીને લીધે 'જૈનહિતેચ્છુ' માસિક સાથેનો સંબધ છોડવા છતાં પણ સુપ્રસિદ્ધ જ છે અને એક દસકા પછી ઓર વિશેષ સુપ્રસિદ્ધ થશે એમના જીવનચરિત્ર-માં મ્હોટી મ્હોટી બહાદુરીઓ કે ઝળકતા બનાવોની આશા રાખનારને નિરાશ થવું પડશે, પણ એમાથી આત્મસંશ્રયનો જે અમૂલ્ય પાઠ મળે છે તે નિરાશાનું સાટું વાળવા પુરતો છે. સ્થિતિઓના વારાફેરા એમણે

ગભીરતાથી અને સ્થીર ચિત્તે સહ્યા છે, એ બીના જ એમના લખાણોની ગભીરતાનુ કારણ છે

શ્રી શ્વેતામ્બર સાધુમાર્ગી (સ્થાનકવાસી) જૈનધર્મના મહાન ઉપકારી પુરૂષ શ્રીમાન્ લોંકાશાહની રાજધાની તુલ્ય અમદાવાદ શહેરથી પાચ કોશ દૂર આવેલા, એકવાર ઘણુ આબાદ અને આબરૂદાર પણ હાલ પડી ભાગેના વિમલપુર ગ્રામમા ઇ સ ૧૮૫૭ ના એપ્રીલમા ત્હેમનો જન્મ થયો ત્હારે ત્હેમના વડીલ શ્રી મન સુખરામ પ્રેમચદ પુર જાહોજલાલીમા હતા એક લખપતિ તરીકેજ નહિ પણ એક પ્રમાણિક અને આબરૂદાર ગૃહસ્થ તરીકે તેઓ આસપાસના ગામો અને શહેરોમા સુપ્રસિદ્ધ હતા. તેઓ એક જમીનદાર હતા મ્હોટા પાયા પર આ ો કૃષિનો ધ ધો ચલાવતા.

પોતાના ત્રણ મ્હોટા ભાઇઓ સાથે ત્હેમણે પિતા પાસેથી જ જૂની પદ્ધતિનુ જ્ઞાન સપાદન કર્યુ હતુ; કારણ કે તે વખતે ત્હા નિશાળ જ નહોતી છતાં જ્ઞાનનો શોખ સ્વાભાવિક રીતે જ ઉત્કટ હોવાથી સરકારી વાચનમાળા વગેરેનો અભ્યાસ ખાનગી રાહે કરીને ૧૮૭૬મા અમદાવાદ ટ્રેનીગ કૉલેજની પ્રવેશક પરીક્ષા પસાર કરી અને શિક્ષણ પદ્ધતિનુ જ્ઞાન મેળવી પોતાની બુદ્ધિ ખીલવવા માટે કૉલેજમા દાખલ થયા. પરન્તુ વિધાતાને એ પસદ ન હતું કે આપબળથી જ્ઞાન મેળવી શકે એવા પુરૂષો ગોખણીઆ જ્ઞાનમા વ્યર્થ સમય ગુમાવે ! તેથી તે દીર્ઘદર્શી માતાએ એવોજ ખેલ રચ્યો કે જેથી ભાઇઓને પતીઆળા વ્યાપારની વ્હેચણી કરવાની ઇચ્છા થઇ અને તેથી કૉલેજમાં તાજા જ દાખલ થયેલા જ્ઞાનાભિલાષીને વ્યાપારની જજાળમા જોડાવા માટે ઘેર પાછા ફરવાની ફરજ પડી થોડાએક માસ વ્યાપારનો અનુભવ લીધા પછી ૧૮૭૮મા વ્હેંચણી થઈ. પછી વ્યાપારનો સઘળો બોજો પોતાના શિર પડ્યો.

તથાપિ એ જજાલ તરફ પોતાનું લક્ષ ઘણુંજ થોડુ હતુ. જ્ઞાન વધારવાનો પ્રયાસ, હવે સ્વતત્ર બનતાં, અગાઉ કરતા બેવડા ખતથી આગળ લબાવ્યો. કાયદા અને વૈદકનો અભ્યાસ ઘેર બેઠાં કર્યો અને ગરીબોની દવા વગર ફીએ કરવાનું શરૂ પણ કરી દીધુ. તે વખતના ડીસ્ટ્રીક્ટ ડૅપ્યુટી કલેક્ટર ખાન બહાદૂર એદલજી ડોસાભાઇ સાહેબે ત્હેમની મુલાકાતથી ખુશ થઇ ત્હેમના કાયદા સંબંધી બારીક જ્ઞાનની તારીફ કરવા સાથે વકીલાત કરવાનુ સર્ટિફિકેટ આપ્યુ.

પરન્તુ વ્યાપાર, વકીલાત કે વધકીય કામ ઉપર ત્હેમનું લક્ષ વધારે વાર ટકી શક્યું નહિ; કારણકે ત્હેમણે જ્યહારથી એક બ્રાહ્મણના મુખથી

'રુક્મિણી હરણ' નો સલોકો સાભળ્યો હતો ત્હારથી ભગવતી કાવ્ય દેવીની ઉપાસના કરવાની એટલી તીવ્ર ઇચ્છા થઇ હતી કે થોડાજ દિવસમાં 'ઓખાહરણ'નો 'સલોકો' રચી નાખ્યો કે જે આસપાસના ગામોમાં ઘણા લોકો મુખપાઠ કરવામા આનંદ માનવા લાગ્યા સને ૧૮૭૮માં રચાયનું આ ન્હાનુ સાદુ પણ રસીલુ કાવ્ય એ, દેવી સરસ્વતીના ચરણારવીંદમાં અર્પણ કરાયલુ ત્હેમનું પહેલુજ પુષ્પ હતુ. ત્યાર પછી નેમવિવાહ, રુક્મિણી હરણ, લીલહમીરના વાર્તા વગેરે રચ્યુ, પણ એવા ઓછા ગભીર વિષય ઉપરથી ત્હેમનુ 'કાઇક નવુ—કાઇકિ નવુ' એમ ઝખતું મન થોડા વખતમાં ઉઠી ગયુ અને ભાષાની સેવા બજાવવા નિમિત્તે એક કોષ લખવા માડયો. વૈદક, કાયદા, જૈન ધર્મ અને ગુર્જર સાહિત્યનાં પુસ્તકોનો પરિચય થયેલો હોવાથી તથા ખેડુતો સાથે દરરોજ કામ પડતું હોવાથી, ત્હેમને જણાયુ કે કવિ નર્મદાશંકરના કોષમા ઘણા શબ્દો રહી જવા પામ્યા છે અને ત્હેમણે તે ખોટ પુરવા પ્રયાસ આરભ્યો ફુરસદ થોડી જ હતી; કારણ કે જજાળ વધારે હતી, તથાપિ કામના વખત વચ્ચે જ્હારે પણ થોડી મીનીટનો અવકાશ મળે ત્હારે પોતાને યાદ આવતા શબ્દો ટાકી લેતા; વખતે કોલસા કે ખડીના ટુકડાથી જમીન પર નોંધી લેતા અને પછીથી કાગળ પર ઉતારતા. લગભગ ૧૦–૧૨ વર્ષના ફુરસદના વખતના પરિણામ તરીકે ' ગુજરાતી શબ્દાર્થ કોષ ' સને ૧૮૮૬મા બહાર પડયો અને સરકારી તથા ગાયકવાડી કેળવણી ખાતામા મજુર થવાથી ૧૮૮૮ માં ત્હેની બીજી આવૃત્તિ બહાર પડી.

જે વખતે ' કોષ 'નું કામ આરભ્યુ તે અરસામાં ત્હેમનુ ચિત્ત વધુ ગભીર બાબતો ઉપર વળ્યુ હતુ એમ પાછળ કહેવાઇ ગયુ છે. આ ગભીરતાનુ કારણ પરમગુણી પૂજ્યપાદ મુનિવરશ્રી હિરાચદજીનાં દર્શન જ. એ તેજસ્વી, ક્રિયાપાત્ર અને જ્ઞાનાલકૃત મુનિ દરિયાપુરી સમુદાયના વડીલ હતા, અને એવા તો પ્રતાપી હતા કે એક ગજવશીથી પણ વધારે દીપતા હતા અને સ્વર્ગવાસ વખતે ત્હેમના શબે શુદ્ધ સુવર્ણમય આકૃતિ ધારણ કરી હતી. એ પુરૂષનો સમાગમ થતાં ધર્મજ્ઞાન તરફ પ્રેમ જાગ્યો અને સુત્રો અને ગ્રથો લખવા, વાચવા, વિચારવામાં દિવસો નિર્ગમન કરવા લાગ્યા.

શોખથી જ હાથ લીધેલો આ પવિત્ર વ્યવસાય આગળ જતાં એમને ઘણો ઉપકારી થઇ પડયો; કારણકે વિમલપુરની પડોશમાં સ્નેહી સાબર-મતીએ જ્હારે મર્યાદા છોડીને આખા ગામને પોતાના મસ્તકે લઇ નચાવવા

માંડ્યું અને પોતાની ઘણી જમીન અને મીલ્કતને નુકશાન પહોચવાથી તથા લ્હેણું ધલાઇ જવાથી ત્હેમનુ મન ધીરધાર કરવા અને ખેતી કરાવવા પરથી ઉઠી ગયું ત્હારે, વૈદક અને વકીલાતથી પૈસા રળવાનુ જૈન દષ્ટિએ ઉચીત નહિ લાગવાથી, જૈન શાસ્ત્રો લખવાનુ કામ કરવા માંડયુ એમના હસ્તક ઘણા સુદર હોવાથી અને શુદ્ધ લખવાની શક્તિ હોવાથી થોડા કલાકની મહેનતથી તેઓ જરૂર જેટલી આવક કરી શકતા અને બાકીનો વખત જ્ઞાન વધારવા પાછળ ખર્ચતા વિસલપુરથી અર્ધ કોશ દૂર આવેલા કામડા ગામમાં મ્યુનીશીપાલીટી નવી સ્થાપન થતા મે૦ બા૦ બ૦ બમનજી એદલજી મોદી સાહેબના ખાસ આગ્રહથી ત્હેમણે મ્યુનિસિપલ સેક્રેટરી તરીકેની જગા સ્વીકારી હતી (સને ૧૮૮૧) બા૦ બ૦ મોદી સાહેબે તથા ગ.બા૦ મોતીલાલ ચુનીલાલ સાહેબે ત્હેમની કાર્યદક્ષતા અને પ્રમાણિકપણા માટે પ્રશસાપત્રો લખી મોકલ્યા હતા અને સારા પગારથી બીજી જગાએ નીમણુક કરી હતી; પરન્તુ બહોળા કુટુંબની સારસભાળ કરવાની હોઈ ત્હેમણે નોકરી મુદ્દલ છોડી દીધી હતી

સને ૧૮૯૪ માં ત્હેમના વડીલ પુત્રના-મ્હારા અભ્યાસ અર્થે અમદાવાદ આવી રહેવાનું થયુ. મ્હારા મોસાળ વિરમગામમાં રહી ગુજરાતી ૬ ધોરણ પૂરાં કર્યા બાદ અગ્રેજી પાચ ધોરણ શીખીને મ્હારે ઘેર પાછા ફરવુ પડયું હતું; કારણ કે વિરમગામ સ્કુલમા વધુ ધોરણ શીખવાતા જ નહોતાં અને મ્હારા શિક્ષકોએ તથા ત્હાના મામલતદાર સાહેબે મ્હારા વડીલ જોગ એક ખાનગી ભલામણ પત્ર લખ્યો હતો કે " આ છોકરાને આગળ ભણાવવામાં ગમે તેટલુ કષ્ટ પડે તે સહન કરવા અમારી સલાહ છે. વગેરે, વગેરે, "

તે વખતથી તેઓએ અત્રે રહેવા માડયુ અને વિસલપુરની જમીન વગેરે સબધી કામ થોડુ વણું સંભાળવાનુ ચાલુ રાખ્યુ. ત્હેમના ૩ વડીલ ભાઇઓ પૈકી એકજ હાલ વિદ્યમાન છે અને ૭ પુત્રો પૈકી ૫ હયાત છે.

અમદાવાદમાં આવ્યા પછી "પ્રાણીહિંસા અને પ્રાણીમોરાક-નિષેધક" નામનું જે પુસ્તક ત્હેમણે પ્રગટ કર્યું હતુ ત્હેના તુલ્ય હજી સુધી એક પણ પુસ્તક એ વિષયપર રચાયુ નથી એમ હુ નમ્રતાથી દાવો કરી શકીશ. એમાં આપેલા દરેક ધર્મના પુરાવા, દેશી અને અગ્રેજી તબીબોના મતો અને દયા ઉત્પન્ન કરનારો ઉપદેશ એ સર્વની અસર કેટલાક પારસી અને મુસલમાનો ઉપર 'એવી તો સચોટ' થઇછે કે તેઓએ માસાહાર

છોડયા બાબતના પત્રો લખ્યા છે. આ પુસ્તક તથા સદુપદેશમાળા વગેરેના સબધમાં અનેક વિદ્વાનોએ ઉચ્ચ મત પ્રદર્શીત કર્યા છે. મરહુમ વૈદ્યશાસ્ત્રી મણિશકર ગોવિંદજીએ "ગુજરાતી ગ્રથકારો અને ગ્રંથો" નામના સાહિત્ય-ગ્રથમા લખ્યુ છે કે "મી. મોતીલાલનાં પુસ્તકો સ્વતંત્ર અને પ્રસાદ ગુણવાળા છે"

સાધુમાર્ગી જૈન કોમની ખેદજનક દશાનો અનુભવ ત્હેમને અત્રે આવ્યા પછી જ થયો અને તે ઉપરથી એક માસિક પત્ર કહાડવા ઇચ્છયું. 'જૈનહિતેચ્છુ' માસિક હજી વિદ્યમાન છે અને ત્હેના સ્થાપક તથા હમણાનો સમ્પાદક વગેરે સર્વ વિદ્યમાન છે માટે એ સબધે કાઇ લખવું ઉચીત ગણાય નહિ, એટલુ કહેવુ બસ થશે કે મ્હારા રગુનથી આવ્યા પછી મ્હારા વડીલશ્રીની શારીરિક પ્રકૃતિ લક્ષમા લઇ તે બોજો મ્હારે લીધા અને ત્હારથી માસિક, પાક્ષિક તેમજ સાપ્તાહિક વગેરે મ્હારા વ્યવસાયને શિર જે કાઇ લોક પ્રિયતા મળી છે તે સર્વ મ્હારા તે વડીલશ્રીની કૃપાદૃષ્ટિનુ જ પરિણામ છે

મ્હારા વડીલશ્રીનુ વય આજે ૫૩ વર્ષનું છે. સરસ્વતીસાધનાએ ત્હેમની આખ પર, અને દુનીઆદારીના વારાફેરાએ ત્હેમના શરીરપર નિષ્ઠુરતા વાપરી છે, છતા હજી તેઓ બને તેટલો સમય જૈન ગ્રંથોના સશોધન પાછળ ખર્ચ્યા સિવાય રહી શકતા નથી.

જ્ઞાનનો મ્હને થોડો પણ શોખ લાગ્યો હોય તો તે, આત્મબળથી જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરનારા પૂજ્ય વડીલશ્રીનુ અનુકરણ કરવાની ઇચ્છાને આભારી છે; એટલે એ ત્હેમનો જ પ્રતાપ છે તેમ મ્હારા સદ્દગત માતુશ્રી અને સદ્દગત પિતામહી કે જે બન્ને માત્ર દશેક વર્ષ ઉપર સ્વર્ગવાસી થયા છે ત્હેમના હૃદયની વિશાળતા અને ત્હેમની ઉપકાર વૃત્તિને પણ આજનો 'હુ', થોડો ઓશીગણ નથી લેશ પણ અતિશયોક્તિ વગર હુ કહેવાની રજા લઇશ કે તે બે આર્યાઓ તુલ્ય સરળ પ્રકૃતિ, વિશાળ હૃદય, માયાળુ સ્વભાવ, પરોપકાર વૃત્તિ અને હસમુખુ છતા ગભીર વદન હુ આજ સુધી કોઇ આર્ય કુટુબમાં જોવા પામ્યો નથી. એ બન્ને દેવીઓ દુશ્મન પ્રત્યે પણ પરોપકારનો પ્રવાહ વહેવડાવતી અમિના સાગર તુલ્ય તે માતાઓના અભણ શબ્દકોષમાં દ્વેષ, વૈર, દુર્ભાવના કે કઠોર વચન લખાયુ જ નહોતું. દૈવી શક્તિઓ! ત્હમારા અમૃત ઝરતાં પ્રેમી મુખડાનું દર્શન કરવાનુ સુભાગ્ય હવે ક્યારે પ્રાપ્ત થશે? ત્હમે દેવલોકમાથી પણ અમને જુઓ છો, સન્માર્ગ સૂચવો છો, એ જાણતા હું કેટલો ઇંતેજાર છુ!

પણ ના; હું અહીં મ્હારૂં આત્મકથન લખવા બેઠો નથી, તેથી આ બધા પ્રસંગો અને મ્હારા એ લગભગ બગેબગીઆ થઈને 'રસ્તે પડેલા' બંધુઓના સ્વર્ગવાસની બાબત પર વધારે વાર રોકાવું મ્હને ઉચીત નથી. તેઓ જ્યાં હો ત્યાં સુખી હો! તેમના પ્રત્યેની મ્હારી ફરજો અદા કરવામાં થયેલી ગફલતો માટે મ્હને ક્ષમા મળો!

આ પુસ્તકના કર્તાએ રચેલા પુસ્તકો પૈકી કેટલાંક, ઉપર જણાવવામાં આવ્યાં છે; તે ઉપરાંત બીજાં નીચે મુજબ પુસ્તકો તેમણે રચી પ્રગટ કર્યાં છે—

(૧) '**બારવ્રત**. આ પુસ્તક જેવું શુદ્ધ એક પણ એ વિષયનું પુસ્તક હજી સુધી બહાર પડયું નથી. એની ૬૦૦૦ પ્રતોનો પ્રચાર વિના-મૂલ્યે કરવામાં આવ્યો હતો

(૨) '**શ્રાવકની આલોચણા.**' પ્રથમ ગુજરાતી અને પછી બાળ-બોધ લિપિમાં એમ બે આવૃત્તિઓ લોકપ્રિય થઈ પડી છે.

(૩) '**રામ-રાસ**'. ઈ. સ. ૧૬૧૭ મા મુનિશ્રી કેશરાજજીએ રચેલા આ અદ્‌ભૂત સાહિત્ય ગ્રંથનુ સંશોધન કરી પ્રગટ કરવામાં આવતાં ગાયકવાડી કેળવણી ખાતા તરફથી ગ્રંથ મંજુર થયો છે.

(૪) '**જૈન શાસ્ત્રમાળા**' **ભાગ ૧ લો,** કે જેમા જ્ઞાતા સૂત્ર, નિરાવલીકા સૂત્ર વગેરે ૭ સૂત્રોનો સાર આપેલો છે અને જે થોડાક ફારફેર સાથે, **વિનામૂલ્યે** પ્રચાર કરવા માટે, મ્હારા તરફથી ગઈ સાલમાં પ્રગટ થયો હતો.

'**જૈન કોષ**' અથવા જૈન પારિભાષિક શબ્દોનો કોષ લખાઈને તૈયાર થયો છે; માત્ર ઉત્તેજનને અભાવે પ્રગટ કરવાનું કામ ખોળંભે પડયું છે.

'**સમકિત કૌમુદી**'નો રાસ સુધારવાનુ કામ હાલ આસ્તે આસ્તે ચાલે છે.

'**મોતી-કાવ્ય**' ખંડ ૧ લો નામનું પુસ્તક આજે મ્હારા સાપ્તાહિક પત્રના વાચકોને વિનામૂલ્યે આપવા માટે મ્હારા તરફથી પ્રગટ કરી કવિની કાવ્ય શક્તિ સંબંધે સ્વતંત્ર રીતે અભિપ્રાય બાંધવાનુ કામ વાચકને જ સોંપુછું જો એ કૃતિ ઉપકારી જણાશે તો બીજો ભાગ પણ પ્રગટ કરવા ચુકીશ નહિ.

વા. મો. શાહ.

कर्त्तव्य.

(ભૂજંગી છંદ.)

નદી નીર ચાલે અને વાયુ વાયે,
કરે કામ કેવું ? ઉગે છોડવા એ;
કહો આપણે આળસુ બેશીં રે'વુ ?
કરો તો ખરા દીલથી કામ લેવું. ૧

દુખે દીનતા કે બીજાથી ડરીને,
નહીં સુસ્ત થાવું નિરાશા કરીને;
અતિ અલ્પ લક્ષ્મી છતા ધૈર્ય ધારો,
નરાધિપતિ યે દુખોને વિદારો ૨

કરે રાય ચિંતા અને બીક ભારે,
નથી આપણે એ, ડરો કેમ ત્યારે ?
વદો નમ્ર શબ્દો કરો કામ રૂડા,
અતિ લાભ આપે અને મૂળ ઉંડાં. ૩

ઘણા હાથીં ઘોડા અને પાલખી એ,
રખેવાળ એના ખરેખાત છીએ;
કર્યું દ્રવ્ય ભેળું ધર્યું સર્વ રે'શે,
બજાવો તમારી અહીં ફર્જ જે છે ! ૪

અતિશે **ત્વરાથી** નહીં કામ કીજે,
અતિશે **ધિમાશે** નહીં કામ સીઝે;
ખરા દીલથી ને ખરા શુદ્ધ ભાવે,
કરો કામ તો આખરે શ્રેય થાવે. ૫

વૃત્તિ ઉંચ રાખી ધરો ધારણાઓ,
કરો શૂભ કામો દુખી છે ઘણાઓ;
નહીં હામ હારો કદી ખોટ પામો,
નહીં ફૂલ મારો કદી લાભ જામો ૬

ધરી કાળજી ને કરી ઈશ માથે,
ડરી પાવ મૂકો ધરી પાઘ હાથે;
પહોળા ઝરા સાંકડા મૂળમાંથી,
ઉગે વૃક્ષ મોટાં લઘુ બીજમાંથી; ૭

થતાં કામ મોટાં શરૂઆત નાની,
કરો કાળજીથી મહાકાર્ય માની;
સુવર્ણાક્ષરે સુચિતે જે લખી લે,
પછી પાઠ મોતી કિધે ઇશ રીઝે ૮

કોણ શૂરો ?

પચીશસેં વર્ષ પર બંગાળાનો રાજપૂત્ર,
શાકયસિંહ સભા ભરી બીરાજ્યો ઉમંગથી:
ભાટ અને કવિઓએ યુદ્ધનું વર્ણન કરી,
સગ્રામે શુરો તેને વખાણ્યો શૂરો કથી;
કુદરતી ખ્યાલ આવ્યે શાકયસિંહે એમ કહ્યું—
"જીવને સંહારવો તે કામ હીણું સર્વથી;"
જીવહીંસા તજે અને તજાવે તે પૂરો શૂરો.
મોતી એથી જગનમા બીજો શુરો કો નથી.

અજ્ઞ લોકો દયાના ગુણને નામરદાઇ કહેછે એનુ કારણ માત્ર એટલું જ છે કે તેઓ જાણતા નથી કે, "દયા કરવા માટે આત્મભોગ આપવો પડેછે, બીજાને માટે પોતાના શિર પરિશ્રમ, ખર્ચ તથા અગવડોનો બોજો ઉપાડવો પડેછે," કે જે સઘળા ગુણો ખરેખર મરદાનગીના છે. એટલાજ માટે સંતજનોએ કહ્યુંછે કે **"તરવાર અને દયાનો ગુણ એ બે તો માત્ર બહાદુર પુરૂષ જ ધારણ કરી શકેછે."**

एक गरीबनी हाय.

☞ ગરીબના નિસાસા અને આશિર્વાદ લાગ્યા વીના રહેતા નથી. ગરીબને અન્ન આપવાથી તેની આંતરડી સતોષાય છે તેથી પુન્ય પ્રકૃતિ બધાય છે. તે કારણથી જૈનશાસ્ત્રમા નવ પુન્ય મધ્યે પહેલુ પુન્ય અન્નને ગણેલું છે આથી ઉલટું ગરીબને અન્ન મળધી અતરાય પાડવાથી કે ઓછુ આપવાથી પાપ પ્રકૃતિ બધાય છે.

દોહરા.

છપ્પનના દુષ્કાળમાં, રૂપૈયે શેર શોળ—
વેચે જાર બજારમા, વરતાયો બહુ રોળ. ૧

ઘાચી નામે 'ગાંગલો', નિર્ધન નિરાધાર;
વેચી વાળી કાનની, લેવા ચાલ્યો જાર. ૨

'કર્મચંદ' કણિયા[1] તણી, દુકાન છે ઉત્કૃષ્ટ,
લીધી આના આઠની, જૈ જાર શેર અષ્ટ. ૩

જોખાવી ઘેર આવીને, પૂર્ણ યે શેર સાત,
રાંધી ઘેંશ પાણી વિષે, ખાતાં [2]ખોરી ખાત ૪

ગાગો થઇ [3]કાગો અને, રોવા લાગ્યો નેટ,
હાય નિસાસા નાખીને, કુટયાં માથું પેટ. ૫

આ ભવ કે ભવ પૂર્વનાં, કર્મચંદનાં કર્મ;
તાત્કાલિક ત્યાં આવિયા, રાખી નહિ કંઇ શર્મ. ૬

દવ લાગ્યો દુકાનમાં, બળી થયું સહુ ખાખ;
પ્હેર્યે વસ્ત્રે નીકળ્યો, ઊડે નહિ મુખ માંખ. ૭

"હાય નિસાસા ગરીબકા, કબુ ન ખાલી જાય"
કહેવત એ સાચી ઠરી, મોતી મૂર્ખ પોમાય[4]. ૮

---

૧ કણિયા ૨. 'ખારી ખાતર જેવી' એમ કહેવાય છે. ૩ ગરીબડા. ૪. મૂર્ખ માણસો ગરીબને પજવીને પોમાય છે—મલકાય છે પણ પાછળથી પસ્તાય છે

दुःखमां दिलासो.

(દોહરા.)

દુખ આવ્યે ડરવું નહીં, કર્મ-બનાવટ કામ;
નિજ દોષોને દેખતાં, હૈયે આવે હામ. ૧

પર દોષોને દેખતાં, વળી કરતાં અફસોસ;
દુખ બેસે જે પીઠપર, કરી અતિશય રોષ. ૨

હીમત રૂપી હાથમાં, ધર જબરૂં હથિયાર;
આવી અહર્નિશ નમ્યો, દેવ ધરીને પ્યાર. ૩

કરિયાતૂ કડવું ઘણું, ખાતાં છે ગુણકાર;
દુખમાં પણ એક ગુણ છે, સુજ્ઞ કરે સ્વીકાર. ૪

દુઃખતણા પડદા થકી, દુનિયાં અથિર જણાય;
સગપણ સહુ જૂઠું દિસે, ભાન હરીનું થાય. ૫

સુખમાં સોની સાંભરે, દુખમાં હરિનું નામ;
કે'વત એ સાચી ગણી, અનુભવિ રાખે હામ. ૬

મલીન કિમતી વસ્ત્રને, ધોઇ કરે બહુ સાફ;
દુઃખ ધુએ છે દીલથી, ઉત્તમ જનનાં પાપ. ૭

બડા બડાને દુઃખ છે છોટાથી દુખ દૂર;
તારા સહુ ન્યારા રહે, ગ્રહણ શશી ને સૂર. ૮

હીમત હૈયે હોય તો, કરે ન દુઃખ હેરાન;
મોતી રોતી છોકરી, દેખી કરડે શ્વાન. ૯

ધનાઢયનો ધર્મ.

(ભૂજંગી છંદ.)

ધનાઢયો ! સુણો વીનતી એક મારી,
કહું દીનતાથી લહો તે વિચારી;
બઝાડી ઉદ્યોગે ગરીબો ઉગારો,
તમે ધૈર્યતાથી સ્વધર્મી સુધારો. ૧

મળ્યું દ્રવ્ય ઝાઝું બધું આહી રે'શે.
કમાઈ કુટુંબી સહુ વ્હેચી લેશે;
નહીં સાથ આવે પ્રિયા પૂત્ર પ્યારો,
તમે ધૈર્યતાથી સ્વધર્મી સુધારો. ૨

ગયા રાવ રાણા અને રાયજાદા,
મુઆ શૂરવીરો મુકી કૂળ-માઝા;
જવું આપણે એમ નક્કીજ ધારો,
તમે ધૈર્યતાથી સ્વધર્મી સુધારો. ૩

પુરાણો પુરો ધર્મ તે મદ ચાલે,
અદ્યાપી નહીં કોઇ આધાર આલે;
છની શક્તિએ તેહને કા વિસારો ?
તમે ધૈર્યતાથી સ્વધર્મી સુધારો. ૪

સુધારો વધારો કુધારો ન ધારો,
ભણે બાળ બાળા કરો ઊપકારો;
કરો સાધનો જ્ઞાનનાં ઠાર ઠારો,
તમે ધૈર્યતાથી સ્વધર્મી સુધારો. ૫

અતિ જ્ઞાનનું દાન છે શ્રેયકારી,
બિજું અન્ય તેવું ન જૂઓ વિચારી;
રૂડી શીખ મોતી તણી ઊર ધારો,
તમે ધૈર્યતાથી સ્વધર્મી સુધારો. ૬

शोख निमित्ते थती जिवहिंसा.
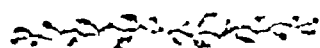
(એડો ખાઈ ગડનો તાગરે—એ દેશી.)

આવી કેમ અજ્ઞાનતા આવીરે ? દયા બુદ્ધિ એહ દબાવીરે (ટેક)
[1]કલેવર કીડી કેરૂં જોઈને. મનમાંહી [2]શોચના થાય;
જૂ માંકડ ને મચ્છર જૂઆ, રક્ષણ એનું કરાય. આવી. ૧

[3]દાતણ પરનું કરતાં કાપેલુ, મન માંહી નીમ રખાય;
પ્રાણીની નીપજ મારીને લાવે, તેની ન રહેમ જગાય. આવી. ૨

અરેરે ! અરેરે ! મૂખે કરોછો. ચંપાતા નાના જીવ.
શોખને કારણ પ્રાણી મરે પણ, તેની ન ગુણો રીવ. આવી. ૩

હાથીનું હાડકું પહેરતાં હાથે, આણે ન રહેમ લગાર;
શાણી થઇ રાણી પાણી ગળે છે, દીનમાં દો દો વાર ! આવી. ૪

“લક્ષ રૂપૈઆ કીમત જેની, મુઆ પછી સવા લાખ;”
હાડને કારણ હાથી મરાતા, એ શીર કોને પાપ ? આવી. ૫

દાંતનો ચૂડો જોઈને રૂડો, ચૂડગર વહેરે આપ;
[4]દંતવાણિજ્ય કરવાનું મોટું, શાસ્ત્રમાં કીધું છે પાપ. આવી. ૬

અવર પ્રાણીના હાડને અડતા, આભડછેટ ગણાય;
હાથીનું હાડકું પહેરીને હાથે, નિત્ય રસોઇ કરાય. ! આવી. ૭

દાંતનો ચૂડો પહેરવો હાથે, એવો નથી કોઈ લેખ;
વસ્તૂ મોંઘી ને પ્રાણીનુ મૃત્યૂ, તજો ધરીને વેગ. આવી, ૮

ટકાઉ સોંઘી ચીજ શોધીને, સરવે કરો જ પસંદ;
જીવ બચે ને જર બચે એ, લાભ દીસે તદ્દન આવી. ૯

આ વીણ બીજી હિંસાઓ થાતી, શોખ ને શોભા માટ.
પીંછાના માટે પક્ષીઓ મારે, માછલી મોતી ઘાટ. આવી ૧૦

---

૧ જીવ વિનાનું ખોળિયુ, મડદું. ૨. અફસોસ. ૩. એક દાતણ આટલા દિવસ સુધી ચલાવવું અથવા અમુક ઝાડના દાતણ સિવાય બીજું દાતણ કરવું નહિ એવો કેટલાક માણસો નીમ (બાધા) લે છે. ૪ હાથી દાંતનો વેપાર.

કીટ કોસંટો હીર કરે છે, ચીર વણે વણનાર;
નીર ઉનામા બોળીને મારે, જીવતા જીવ અપાર. આવી. ૧૧
'અહિંસા' એ ધર્મ છે રૂડો, શાસ્ત્ર સહુ તણો સાર,
મોતી કહે ગોતી પાપના કામો, તજી થાઓ ભવપાર. આવી. ૧૨

ત્રેવડ (मितव्यय.)

દોહરા.

[1]પૂત્રો બે પેદાશના, 'ઉદ્યમ' 'ત્રેવડ' જાણ;
ઉદ્યમમાં નુકશાનનો, ભય રહ્યો નિરવાણ. ૧

જાવકથી આવક તણું, [2]પલ્લું ઉંચું જાય;
[3]પલ્લું તે નિજ નારનું, નિશ્ચય મૂકી ખાય. ૨

તરાળા રૂપે વાદળી, ગ્રહે નીર સમુદાય;
ફરફર–ફોરા રૂપથી, નદીઓ ઉભરી જાય. ૩

કોડી કોડી જોડિને[4], ક્રોડપતિ થૈ જાય;
સોમણની, કણ કણ લીધે, વખાર ખાલી થાય. ૪

ગર્ધવ ચાલ્યો ગર્વથી, કણ ભરી લે ગુણ પીઠ;
અકેક દાણો વેરતાં, ખાલી ગુણ મેં દીઠ. ૫

જુજ કિમતની વસ્તુઓ, મળતાં બહુમુલી થાય;
"[5]ચડતો ચોખો" આપતા, ધનાઢ્ય ડૂબી જાય. ૬

તાજી ત્રેવડ રૂપ આ, [6]રમવતી રસદાર;
મોતી મળતી સ્હેજમા, થતું ન ખર્ચ લગાર. ૭

---

૧. પેદાશના, ઉદ્યમ અને ત્રેવડ એ બે પુત્રો (સાધનો) છે. ઉદ્યમમાં નુકશાન જવાનો ભય રહે છે પણ ત્રેવડમા તેવો ભય રહેતો નથી. ૨. જાવવાનું પલ્લુ. ૩ સ્ત્રીધન ૪ ભેગી કરીને ૫ આજે એક, કાલે બે એમ ચ્હડતે હિસાબે ચોખાના દાણા (પગારમા) આપવાથી ચોડ઼ં વર્ષમાં લક્ષાધિપતી પણ ડૂબી જાય છે ૬. રસોઈ.

वात्सल्य अथवा खरी लागणी.

મનહર છંદ

સ્થાનકવાશીને શીર કે'વાતી ' કૃપણુ ' છાપ,
ધોવાતી જોઇને અતિ આનંદ ઉભરાયછે,
મોટા ઠાઠમાઠ થકી મોટા મોટા સંઘ કહાડી,
સવિનય સાધુજીને વાંદવાને જાય છે,
વાસણુની લ્હાણી કરી સંઘને જમાડી—જમી,
પતાસાની પ્રભાવના કરી હરખાયછે.
ઉદારતા આવી થકી સ્વધર્મ દીપે છે ખરો,
છતાં **મોતી** દીલગીર એક વાતે થાય છે ૧
અજ્ઞાન, દુકાળ અને પ્લેગ તણા વેગ થકી,
સ્વધર્મી પીડાતા જોઈ હૃદય દુઃખાય છે,
સુખીને સંતોષવામા ખરૂં પુણ્ય ઠર્યું નથી;
દીનતાની દાઝ એજ વૃત્તિ વખણાયછે;
કીડીને મંકોડી જેવા જીવનું રક્ષણુ કરો,
મનુષ્ય—રક્ષણુનાં તો વેવલાં વીણાય છે!
વાત્સલ્યતા વીના નહીં ધર્મનો ઉદય થશે,
'મોતી' કીર્ત્તિ-દાન ખરૂં પુણ્ય ના ગણાયછે. ૨

દીન અથવા દુખી માણસોને ગુપ્ત મદદ કરવી, અશક્તિમાન ચાલાક દેખાતા યુવાનોને વિદ્યાભ્યાસના સાધનો પુરા પાડવા, જેથી બુદ્ધિ અને નીતિ ખીલે એવા પુસ્તકોનો બહોળો ફેલાવો કરવો: આ સર્વ ઉચ્ચ પ્રકારની વાત્મલ્યનાં કામો છે. અને જેઓ છતી શક્તિએ આમાંનું કાંઇ કરવા ઇચ્છતા નથી તેઓનુ જીવતર વ્યર્થ છે; તેઓ આ દુનીઆમાં કૃપણ તરીકે વગોવાય છે, ત્હેમના ઉપર કોઈ પ્રેમ કરતું નથી અને મુઆ પછી પણ ભોગાંતરાયી કર્મને લીધે સુખ પામી શકતા નથી.

ધર્મોપકરણમાં જૈનોની કંજુસાઇ.

મનહર છંદ.

પૂર્વે ન હતા એવાં ઘાટ ને ઘરેણા થતાં,
છતા વસ્ત્ર ઘર માહી નવા નીપજાવેછે,
વાસણકૂસણ રાચરચીલા વસાવે નવા,
વરા વડા કરી અને હર્ષ ઉપજાવેછે,
પુત્ર પુત્રી તણાં લગ્ન સમયે બનીને મગ્ન,
કરજ કરીને વરઘોડાઓ ચઢાવેછે,
આવી શ્રીમંતાઇ સાહી છતા કંજુસાઇ ભાઇ,
પથરણા મૂળપટી ગુચ્છામા જણાવેછે. ૧

અન્યધર્મી તણી પ્રથા સાવધાન થઈ સૂણો,
પાવલાની પોથી વસ્ત્ર રેશમી ચઢાવેછે,
લાકડાની માળા માટે ગોમુખી બનાવે ઘર,
દેવને પે'રાવી ઘાટ લાડ તો લડાવેછે,
પોતાને લંગોટી તોય દેવને પે'રાવે વાઘા,
સિંહાસન શણગારી સોનાથી મઢાવેછે;
ધર્મ--ઉપકરણમાં જૈન કરે કંજુસાઇ,
મોતા અફસોસ! ધન નાહક સડાવે છે!! ૨

જેમનાથી મુહપતિ કે રજોહરણ કે ધર્મપુસ્તક ખરીદવા જેટલુ બનતુ નથી તેઓ દેશોદેશમા પોતાનો ધર્મ ફેલાવવા માટે સ્થાનકો, પુસ્તકશાળાઓ અને નિશાળો સ્થાપવા જેવું કામ તો શાના કરી શકે? આપણા સ્થાનકોની ચીથરેહાલ દશા આપણને લજ્જાને તેવી છે અને આપણી આવી કૃપણતા—કહો કે સ્વાર્થપરાયણતા જ આપણા હૃદયને મલીન અને પાપી બનાવે છે અને તેવી આપણો પ્રતાપી ધર્મ પણ પ્રસિદ્ધિમાં આવી શકતો નથી.

કીસમત.

કીસમત એ કોઇ અચાનક બનતી ચીજ નથી. પૂર્વ જન્મોમા આપણે કર્મોનુ જે સત્ત્વ સ્થૂલ દેહના બળી જવા પછી પણ, બીજા જન્મમા સાથે આવેછે તે સત્વ પરિપક્વ થઇને સ્થૂલ રૂપે દેખા દેછે: એનુ નામ 'કીસમત' અગર 'કર્મ' છે. બોલાયલો ન્હાનામાં ન્હાનો શબ્દ, કરાયલુ ન્હાનામાં ન્હાનુ કાર્ય અને ભાવાયલી સૂક્ષ્મમાં સૂક્ષ્મ ભાવના અથવા વિચાર એ સર્વ આપણા કહેવાતા મરણ પછી સૂક્ષ્મ શરીરમા આવે છે અને સુખ અથવા દુ:ખરૂપે પરિણમે છે. કર્મનો અચળ કાયદો રંક તેમજ રાય પાપી તેમજ યોગી કોઇને છોડતો નથી. માટે એકાંતમા પણ ખોટુ કામ કરવુ નહિ, **ખોટો શબ્દ બોલવો નહિ, ખોટો વિચાર લાવવો નહિ** આ બાબત સંપૂર્ણ કાળજી રાખવી એ મ્હોટામા મ્હોટી અગત્યની વાત છે

મનહર છંદ.

[૧] રત્નાકર માંહી પડી રત્ન લેવા યત્ન કર,
કા તો પ્રાણ ખોઇશ કે [૨] પાણ કર આવશે;
[૩] કણ [૪] રણ કરી અને ભરીશ ભંડાર પણ,
કા તો જીવ કાં તો ધાડ પડી તે ઉઠાવશે;
વિદેશથી વ્હાણ ભરી કમાઇને આવતામાં,
કાં તો આવે કોલેરા કે સમુદ્ર ડુબાવશે;
લક્ષ્મી આપોઆપ આવી લક્ષ ધન આપે પણ,
મોતી કીસમત વીના ચોર તે પડાવશે. ૧

પૂર્વ તણી કરણીનું નામ 'કીસમત' જાણો,
કીસમત વિના બધી [૫] કરામત પાગળી;
જન્મ થયો રાય–ઘરે ખમા ખમા સહુ કરે,
ઋદ્ધિ વિધ વિધ બહુ પૂર્ણ કર્ણીએ મળી;
"પગ રળે પેટ ભરે, કીસમત ઘર ભરે,"
[૬] કીસ મતે કીસમત જુઠું કહેછે વળી?
જગત રૂપી જમીનમાં જેવાં બીજ વાવે તેવાં,
મોતી ફળ પામે એવાં કર કરણી ભલી. ૨

---

૧ સમુદ્ર. ૨ પત્થર. ૨ અનાજ. ૪ રૂણ–દેવું ૫ હુન્નર. ૬ કોના મતથી.

પેટના ઊપાય છે !

મનહર ૭૬.

જાદુવાળા જાદુ કરી ધૂતવાને ઢોંગ કરે,
ભૂત જેવા જન 'ભૂત વ્હેમ' મા કૂટાયછે;
દેવ દેવી શેવી શેવી ધન માટે ધધ રચે,
અચેત ને જડ પૂજયે નિષ્ફળ થવાયછે,
લખેશરી થવા માટે તપેશ્વરી ખોળ્યાં કરે,
કીમીઆની લત માંહે ખાસડા ખવાય છે,
જાદુ જયારે સાચું છે તો, કહો કોણે ગાદી લીધી ?
સોતી સત્ય નથી સર્વ **પેટના ઉપાય છે.** ૧

કાલની ખબર નથી છતાં મૃત્યુકાળ આકી,
તપ જપ કરી દૂર કરવાને જાયછે,
બાળરંડ નીજ ઘેર, પરનુ સૌભાગ્ય રે'વા,
મ્હુર્ત્ત પાણિગ્રહણનું આપી હરખાયછે,
પોતે નીરવશ છતા પરનો કે' વંશ રાખું,
કંશ ગયો નીરવશ આશ્ચર્ય પમાય છે,
પૂર્વ તણી કરણીનુ નીમીત ન ફરે કદી,
સોતી સત્ય નથી સર્વ પેટના ઉપાય છે.

'વિદ્યા' એવો એક કીમીઓ છે કે જે વડે ધાર્યુ કરી શકાય છે એ વિદ્યા (Science)માં વળી અધ્યાત્મવિદ્યા નામની જે વિદ્યા છે તે વડે ચમત્કારી કામો થઈ શકે છે, ખરાં પરન્તુ તેવુ કરી શકનારા પુરૂષોના મનમા આખી દુનીઆનુ રાજ્ય મળવાથી થતા આનંદ કરતા પણ અનેકગણો આનંદ અહોનિશ થતો હોવાથી તેઓ એ વિદ્યા સ્વાર્થના કોઇ પણ કામમાં વાપરતા જ નથી માટે કોઇએ વિદ્યાનો દેખાવ કરનારાથી ઠગાવું નહિ જ્યોતિષ વગેરે સર્વ ખરૂ છે પણ તે પેમા માટે વિદ્યા વેચનારની પાસે નથી હોતુ; તે તો કોઈ નિસ્વાર્થી, જગહિતકારી, યોગારૂઢ પુરૂષો પાસે જ હોય છે, કે જેઓ તેહેનો ઉપયોગ કરવાની ઇચ્છા માત્ર પણ રાખતા નથી.

मूर्खो न मळयो धन के धर्म !

'ઓધવજી ગદેશો કહેજો શ્યામને'—એ દેશી.

સ્નેહ ધરીને સજ્જન સરવે સાંભળો,
વિવેક તણી કહું એક વિચારી વાત જો;
કાળ અનાદિ ભમતાં આ સંસારમાં,
મહા મહેનતે આવ્યો ધર્મ આ હાથ જો— સ્નેહ૦ ૧
ધન—લોભે કરી ધર્મક્રિયા કરવા ભણી,
સમજુ જન પણ ધરે નહીં કાંઇ સાન જો;
તે ઉપર કહું એક સુબોધક વારતા,
એક ચિત્તે થઈ સૂણજો ધરીને કાન જો— સ્નેહ૦ ૨
એક સમયને વિષે દેવ દેવાંગના,
ભોગવતાં બહુ દિવ્ય અલૌકિક સૂખ જો;
દેવાંગના કે':-" ધર્મ વડે સુખ આ મળ્યું,
" છતા રહીએ તેનાથી વિમૂખ જો— સ્નેહ૦ ૩
' મનુષ્ય ભવમાં ધર્મક્રિયાઓ થાયછે,
" ચાલો જોવા જઇએ મૃત્યુલોક જો; "
દેવ કહેછે:-" ત્યાં પણ ધનના લોભથી,
" બાંધી ન શકે પુણ્ય તણા બહુ થોક જો "—સ્નેહ૦ ૪
એમ કહીને બન્ને ત્યાંથી સંચર્યં,
દેવે ધર્યું છે ધર્મ ઉપદેશક રૂપ જો;
દેવાંગનાએ રૂપ ધર્યું લક્ષ્મી તણું,
આવ્યા જોઇ નગરી કોઈ અનૂપ જો— સ્નેહ૦ ૫
લક્ષ્મી પાછળ મૂકી સાધુ સંચર્યા,
આવી કહે કોઇ ભક્ત વણીકના ઘેર જો:-
" ઉતરવાને સ્થાનક આપો મૂજને;
" ધર્મકથા સંભળાવુ રૂડી પેર જો— સ્નેહ૦ ૬

" ધર્મ પસાયે ધન અતિશય સાંપડે,
" પરભવે પણ મળે અલૌકિક સૂખ જો;
" ધર્મ તણો સહુ મર્મ તને સમજાવશું,
" પણ નથી જોતો નારી તણું હું મૂખ જો— સ્નેહ૦ ૭
" આવાગમન જો નારી તણું તુંજ આંગણે,
" દેખીશ તો હું થોભીશ નહીં પળવાર જો, "
વણીક કહે-- "ઘરમા નથી નારી માહરે,
વળી આવવા નહિ દેઉં કોઇની, દ્વાર જો"— સ્નેહ૦ ૮
એમ કહીને સ્નેહે સાધુ ઉતારીઆ,
એટલે આવ્યા લક્ષ્મી તેણી વાર જો;
વણીકને કહેઃ—" આવુ તારે આંગણે,
" મુજ થકી તું પામીશ ધન અપાર જો— સ્નેહ૦ ૯
" ધનવડે જન જીવે આ સંસારમા.
" વિજયપતાકા ધન તણી ચોમેર જો;
" સુખ સઘળું સમાયું છે એ ધન વિષે,
" તે હું હાલીચાલી આવી તુજ ઘેર જો— સ્નેહ૦ ૧૦
" સ્પર્શ ન જોઇએ પુરૂષ તણો તુજ આગણે.
" એ સરતે હું આવું તારે દ્વાર જો "
કબુલ કરા બેસાર્યાં વણીકે ઓટલે,
ઘરમાં જઇને કાઢયા સાધુ બહાર જો— સ્નેહ૦ ૧૧
સાધુ નીકળ્યા દેખી લક્ષ્મીજી કહેઃ—
" અલ્યા વણીક ! તું જૂઠ વચન વદનાર જો;
" હવે હું નહીં આવું તારે આગણે "
એમ કહીને ચાલ્યા તેણી વાર જો-- સ્નેહ૦ ૧૨
વણીક વિમાનણ કરવા ત્યાં બહુ લાગિયો,
દોષ દાધો અફસોસ કરીને કર્મ જો,
સમય ગયો તે ફરી કદી લાધ્યો નહી,
'મોતી' મૂર્ખો ન મળ્યો ધન કે ધર્મ જો— સ્નેહ૦ ૧૩

ધર્મ કોણ કરી શકે: ધનવંત કે નિર્ધન ?

('ઓધવજી સંદેશો કહેજો શ્યામને'—એ દેશી.)

ધર્મકરણી તો ધર્મતણી દાઝે થતી.
હોય ભલે નિર્ધન કે કો ધનવાન જો;
તે ઉપર કહું એક અલૌકિક વારતા,
સ્નેહ ધરીને સુણજો સરવે કાન જો
ધર્મકરણી તો ધર્મતણી દાઝે થતી (એ ટેક) ૧

દેવપૂરીમાં બેશી દેવ-દેવાંગના,
ધર્મ સંબંધી કરતા વાદ વિવાદ જો.
દેવ કહે—" નિર્ધન નવ ધર્મ કરી શકે,
"અહો રાત્રી ધન રળવા ઉદ્યમ યાદ જો—ધર્મકરણી ૨

"ત્રણ સાંધે ને ત્રૂટે તેર જ તેહને,
" ગમે ન કરવું ધર્મ-ગીત કે ગાન જો",
દેવાંગના કહે:—" તર્ક ખોટો એ આપનો,
"નિર્ધન છે ધર્મ કરવા શક્તિવાન જો--ધર્મકરણી. ૩

" ધન તણી નહીં ઉપાધિ તેને કશી,
" કરી શકે તે ધર્મ નિરાંતે ખાસ જો,
" ધનવંતો નર ધંધામા વળગી રહે,
" મળે ન કરવા ધર્મ જરા અવકાશ જો—ધર્મકરણી. ૪

" ધન વધે તેમ ધંધો પણ વધતો કરે,
" કીર્ત્તિ વધવા ધરે અતિ અભિલાષ જો,
" ધન રક્ષણ ને વૃદ્ધિના શોધે બહુ
" ઉપાય અહોનીશ, થઇ લક્ષ્મીનો દાસ જો"—ધર્મકરણી ૫

" નિર્ણય કરવા " દેવ કહે "તે વાતનો,
" ચાલો જઇએ મૃત્યુ લોક મોઝાર જો; "
સાધુ વેષે બન્ને ત્યાથી સંચર્યા,
આવી ઊભા નિર્ધન નરને દ્વાર જો–ધર્મકરણી. ૬

દેવ કહે:–"અલ્યા ! ધર્મ કેમ કરતો નથી ?
" મિથ્યા તારો જાય મનુષ્ય અવતાર જો, "
નિર્ધન કહે:–" ધન વિના શું કરૂં બાપજી ?
" રાત્રી દિવસ થઉ ધન માટે ખૂવાર જો"–ધર્મકરણી. ૭

દેવ કહે –" તને ધન અતીશય આપશું,
" ધર્મ તણી જો છે કરવા અભિલાષ જો; "
એમ કહીને ત્યાથી તે પાછા વળ્યા,
નિર્ધનને ઘેર થયો લક્ષ્મીનો વાસ જો–ધર્મકરણી. ૮

મહેલ મંદીર ને બાધ્યા મોટા માળીઆ,
ચાકર નોકર રાખ્યા અપરંપાર જો,
ગાડી લાડી વાડીનો શોખી થયો,
રાત દિવસ ધન રળવા ઉપર પ્યાર જો–ધર્મકરણી. ૯

ધન મળતા ધર્મ–હીરો રોળ્યો ધૂળમાં,
પત્થર-પૈસે પ્રોયું તેણે ચિત્ત જો.
એહ હકીકત જાણી દેવ દેવાગના,
સાધુ વેષે આવ્યા કરવા હીત જે–ધર્મકરણી. ૧૦

નિર્ધનને કહે –" ધન અલ્યા તુજને મળ્યું,
" ધર્મ ઉપર હવે કેવી છે તુજ પ્રીત જો ? "
" પાણી પીવા " નિર્ધન કે'–" નવરો નહીં.
" મધ્યાને હું જમવા પામું નિત્ય જો–ધર્મકરણી ૧૧

" સંસારી બહુ કામો વળગ્યાં મૂજને,
" નથી દેતાં એ કરવા ધર્મ લગાર જો; "

એટલું કહીને નિર્ધન વળગ્યો કામમાં.
સાધુ નીકળ્યા ખેદ ધરી ઘર બહાર જો-ધર્મકરણી. ૧૨

વૃક્ષ સુકું એક મહેલ તણી વાસે હતું.
તેને જઇને વળગ્યા તે અતીત જો,
બૂમ પાડી કે—" ધાજો ધાજો મહુ આંહી,
" છોડે નહીં આ વૃક્ષ મુને અજીત જો"-ધર્મકરણી ૧૩

સાદ સૂણીને નિર્ધન ત્યાં આવી કહેઃ—
" મૂર્ખ સાધુ ! કાં મિથ્યા કરો બકવાદ જો.
" નિર્જીવ વૃક્ષ તમને એ વળગ્યું નથી.
" છોડી દો તમે બેહુ તમારા હાથ જો ! "—ધર્મકરણી. ૧૪

સાધુ કે':—" અલ્યા ! મૂર્ખ તું કે અમે છીએ ?
" વિચાર કરી જો એહ તણો તું ચિત્ત જો,
" કાર્ય સંસારી તુંજને કયાં વળગી રહ્યાં ?
" અજીવ અને વળી એ તો છે જ અનિત્ય જો"--ધર્મકરણી ૧૫

એમ કહીને અદર્શ થયા એ સાધૂજી,
આશ્ચર્ય પામી ઘરમાં આવ્યો શેઠ જો;
વિચાર કર્યોઃ " આ ઘરકામો વળગ્યાં નથી,
" વળગી રહ્યો છું મૂર્ખ હું તેને નેટ જો "--ધર્મકરણી ૧૬

એમ વિચારી ત્યાગવૃત્તિ સ્વિકારીને,
કરવા માંડયો ધર્મ ધરી બહુ ભાવ જો,
અલ્પ ભવે તે મોક્ષ ગતિને પામિયો,
મોતી છે ધર્મ ભવોદધિનું નાવ જો--ધર્મકરણી. ૧૭

દોહરો.

નિર્ધન ને ધનવાનનું, લક્ષ્મી રળવા લક્ષ;
દાઝ નહિ દીલ ધર્મની, સરખા બન્ને પક્ષ. ૧૮

शितकाळ अथवा शियाळो.

दोहरा.
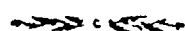
શીઆળામાં શોખથી, કરે વસાણું પાક;
માત્રાઓ વિધવિધ કરે, કેક કરે છે ખાખ. ૧

શરીર રક્ષણ કારણે, ભક્ષણ અન્ય અનેક;
રક્ષણ નહિ નિજ આત્મનું, એ સૂખાંમી છેક. ૨

શરીરને બહુ પોષતાં, ઇન્દ્રીઓ મજબૂત;
'મન' રૂપી જે ઘોડલો, કરે આત્મની લૂટ. ૩

તન તારૂં નહિ જાણવું, આત્મન્ તારો જાણ;
કાયા વાડી કારમી, સધ્યા કેરો વાન. ૪

ભાડે લીધી ઓરડી, ટુંક મુદતને માટ;
શણગારી શા કામની, કરી ઘણેરો ઠાઠ ? ૫

વજ્ર તુલ્ય કાયા કરી, વજ્રનું બખ્તર પે'ર;
પેઠયે વજ્રની ઓરડી, મટે ન કાળનું વે'ર. ૬

માટે મારા વીર ! તું, સમજી થા હોંશિયાર;
પોષણ કર નિજ આત્મનું, ધર્મ કરી શ્રીકાર. ૭

માત્રાઓ મ્હા જ્ઞાનની, ખા પ્રીતે પ્રતિદીન;
પાક પ્રભૂજી ધ્યાનનો, ખા ખાંતે થૈ લીન. ૮

ભસ્મો વ્રત પચખાણની, સ્નેહ ધરી સ્વીકાર;
સમય ભલો શિતકાળનો, **મોતી** મનમાં ધાર. ૯

एक धूर्त धनाढ्य श्रावक.

દોહરા

નગરી લક્ષ્મીપૂરીમાં, લક્ષ્મીચંદ છે શેઠ.
લક્ષ્મીવંત લેખાય પણ, મ્હોટલો બહુ ઠેઠ. ૧

નોકર રાખીને કરે, ઘીનો બહુ વેપાર,
શાખ મેળવી લોકમા, રળવા કાજ અપાર. ૨

ઉપાશરે જાતો વળી, સુણતો શાસ્ત્ર વચન;
સાંજ સવાર સમાયિકો, કરતો બે પ્રતિદન. ૩
પોસો આઠમ પાખીએ, કરતો રાખી ધીર,
રાત્રિભોજન ત્યાગિયુ, પીતો ઊનું નીર. ૪
ત્યાગ કીધો કંદમૂળનો, લિલોતરીનો નેમ;
શ્રાવક નામ ધરાવિયુ, પૈસા ઊપર પ્રેમ. ૫

કૂડા રાખી કાટલા, ભૂંડા કરતો કામ,
ઓછું દે અધિકું લહે, ખરો ઠગારો નામ. ૬

ગરીબના શિર કાપતા, દયા ન આણે મંન,
[1] સૂક્ષ્મ જીવ હણાય તો, ધૂણાવે તે તંન. ૭

પાખી દીન પ્રભાતમાં, આવ્યો તેને હાટ;
શીર મુકી ઘી–દેઘડી, **ભોળો** નામે ભાટ. ૮
ભોળો જાતે ભોળિયો, રોળો[2] નહિ પૈ એક;
ખાધા સાટે નોકરી, કરે ધરાવી ટેક. ૯
પોસો કરવો મૂકીને, શેઠે જોખી દેઘ;
ઘટાડયું અઢીશેર ઘી, કૂડે તોલે છેક. ૧૦
ભોળો રોવા લાગિયો, થઇ ગયો નિર્માલ્ય;
કહે શેઠને એટલું "રે મારા શા હાલ ?" ૧૧

---

૧ સુક્ષ્મ (ઝીણા) ૨ કમાણી, પેદાશ

શેઠે શ્રવણ કર્યું નહીં, કરી સામાયિક બેય;
નોકરને કે' આપજે, આ રૂપૈઆ લેય. ૧૨

ભોળે દામ લીધા નહી, ગયો શેઠની પાસ,
સૂણો શેઠજી વીનતિ, કહુછુ થેને દાસ. ૧૩

ચોખાહરણની દેશી.

"શેઠજી ! હું છું ભાટનો તન, તે વાત ધરજો તમે મન;"
"આજ તમારી થઈ છે પાખી, શેઠે એક અઢીશેરી રાખી. ૧૪"

"કરૂં વાત એ બધે પ્રસિદ્ધ, તમે વસ્ત્ર મારાં હરી લીધ, "
"ભાટ વાત સૂણી શેઠ ચમકયા, લાજ જવા બીકે એમ વદ્યા. ૧૫

"ભોળા ! બેસ, મારી થઇ ભૂલ, ફરી ગણીએ કાટલા કૂલ,"
એમ કહી સામાયિક પાર્યું, જોઇ કાટલા ઘી પાછુ આલ્યું. ૧૬

વળી ભોજન ભાવતુ દીધું, તે ઉપર આપ્યું એક સીધુ;
ભોળો દામ લેઇ ત્યાંથી ભાગ્યો, ફરી મોતી કે' હાથ ન લાગ્યો ! ૧૭

☞ "જે પરકાને ઠગે છે, તે પોતાના આત્માને ઠગે છે" એવું માણસે જ્યહાં સુધી જાણ્યુ નથી ત્યહાં સુધી આત્માનું શ્રેય થવાનુ નથી. પછી ભલેને ગમે તેટલા વ્રત પચ્ચખાણ કરે પણ એ સહુ "રેત ઉપર લીંપણ" સમજવું. "ઓછુ આપવું અને અધિક લેવુ" એ વિદ્યા કેટલા-એક વણિક પુત્ર જાણે પોતાની જનેતાની કૂખમાંથી શીખીનેજ અવતર્યા ન હોય ! અફસોસ ! જૈનધર્મ પામ્યા છતાં પણ તેઓનામાંથી આવી ધૂર્તવિદ્યા નાશ પામી નહિ ! આ દ્રવ્યશ્રાવકનુ દષ્ટાંત છે, પણ ભાવશ્રાવક તો એવા હોય છે કે ભોંયથી જડેલી અથવા ભૂલથી મળી આવેલી હજારો રૂપિયાની કીમતની વસ્તુ ત્હેનો માલિક શોધી ત્હેને પાછી આપે છે, કદાચ માલીક ન મળી આવે તો ધર્માદામાં નાખે છે. આવી રીતે વગર અનીતિએ મળેલું નાણું તેઓ લેતા નથી, તો પછી તેઓ અનીતિએ રળવુ તો પસંદ કેમજ કરે ! ધન્ય છે આવા નીતિવાન સુશ્રાવકને !

પર્યૂષણ પર્વનો મહિમા.
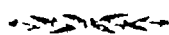
(૧)

(મામેરાની દેશી.)

સુણો સ્નેહે સકળ નર નારીઓ, રૂડા પર્વ તણો મહિમાય,
દેવાદિ પણ ન્હાય—પર્યૂષણ આવિયાં. ૧

પ્હેરી વસ્ત્રાભૂષણ અતિ શોભતાં, માનો આજ ઉછરંગનો દીન,
થાઓ અતિ લીન—પર્યૂષણ આવિયા.

રમવા જમવાના પર્વ દિવસ ઘણા આવા ધર્મકરણી દીન અષ્ટ,
છૂટે કર્મ કષ્ટ—પર્યૂષણ આવિયાં. ૩

અતિ આનંદે જઈ ઉપાશરે, વાંદો સર્વ સાધુજીનો સાથ,
જોડી દોનું હાથ—પર્યૂષણ આવિયાં. ૪

સુણો વ્યાખ્યાન વાણી વિવેકથી રૂડું લેઇ સામાયિક વૃત્ત,
તજો દુષ્ટ કૃત્ય—પર્યૂષણ આવિયાં. ૫

કરો પોસા પ્રતિક્રમણ પ્રિતથી; વળી દેસમું વૃત ઉચીત,
બની શકે નિત્ય—પર્યૂષણ આવિયાં ૬

અતિ ઓછામાં ઓછા કરવા કહ્યા; ઊપવાસો એકંદર ચાર,
ધરી અતિ પ્યાર—પર્યુષણ આવિયાં. ૭

પાળો વૃત્ત શિયળ અતિ શોભતું; ખાંડણુ પીસણનો પ્રતિબંધ,
દયાનો સંબંધ—પર્યૂષણ આવિયાં. ૮

વૃત્ત નિયમ લેવાં વિધવિધના; જેથી પુન્ય પ્રકૃતિ બંધાય,
ભવાબ્ધિ તરાય—પર્યૂષણ આવિયાં. ૯

પર્વ પર્યૂષણનો મહિમા ઘણો, પ્રતિક્રમણ કરો ધરી પ્રીત;
ક્ષમા તણી રીત—પર્યૂષણ આવિયાં. ૧૦

ક્ષમા માગો નાના ને મોટા તણી, બોલ્યું ચાલ્યું કરો સહુ માફ,
ધોવાય છે પાપ—પર્યૂષણ આવિયા. ૧૧

આવો લ્હાવો લેશે નર નારીઓ; ધન્ય જન્મ છે તેનો નિશંક,
કહે **મોતી** રંક—પર્યૂષણ આવિયાં. ૧૨

(૨)
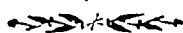
(સાભળને તુ સજની મારી—એ દેશી.)

નરનારી સહુ સ્નેહ ધરીને, પર્વ પર્યૂષણ પાળોજી;
સુંદર વસ્ત્ર પ્હેરી આભુષણ, આનદે અતિ મ્હાલો—
રગે રાચોજી. ૧

રમવા જમવા કેરાં પરવો, વર્ષે માહી બહુ આવેજી;
ધર્મ કરણીના દીવસ આવા, ફરી ફરી ન સુહાવે—
રંગે રાચોજી. ૨

ઉપાશરામાં જઇને ઉમગે, સાધુજીને વાંદોજી,
વ્યાખ્યાન વાણી સુણવા સ્નેહે, વ્રત સામાયિક બાધો—
રંગે રાચોજી. ૩

પ્રતિક્રમણ ઉપવાસો પોષધ, પ્રીત ધરીને કરવાંજી;
વ્રત્ત શિયળને સ્નેહે પાળી, દુષ્કૃતને પરીહરવા—
રંગે રાચોજી. ૪

ખાંડણ પીસણ ધોવણ લીંપણ, તજવાં પાપનાં કામોજી;
વિધવિધનાં બહુ વ્રતો પાળી, પુન્ય પ્રકૃતિ પામો.—
રંગે રાચોજી. ૫

દાન દયા બહુ પાળી પળાવી, લ્હાવો રૂડો લેવોજી;
ક્ષમા માગી સર્વ જીવોની, વિરોધને તજી દેવો—
રંગે રાચોજી. ૬

અષ્ટ દિવસ આ કષ્ટ નિવારણ, પાળો પૂરણ પ્યારેજી;
"જૈનહિતેચ્છુ" સર્વ જીવોથી, વેર વિરોધ નિ ારે—
રગે રાચોજી. ૭

जैन दृष्टिए जैनोनी भूल.

દોહરા—ચોપાઈ.*

પાળે નાના જીવને, મોટા પર નહિ રે'મ,
કે'વત એ શિર જૈનને, છતાં ન સમજે કેમ ? ૧

બાંધે પરબો[1] પંખી માટ, વેરે દાણા હાટોહાટ;
કીડીને દર પૂરે લોટ, મિન[2] માટે દેતા દમદોટ. ૨

ભૂખે મરતાં માનવી, નિજ નજરે દેખાય;
ધંધો કે ધન આપીને, કરે ન તેની સ્હાય. ૩

પાંખ તુટી પંખીની હોય, બળદ ભાગ્યો ખેડુનો કોય.
પાડાં ને બકરાં ધરી સ્નેહ, મોકલે મ્હાજનવાડે એહ. ૪

અંધાં લૂલાં રોગિયાં, મનુષ્ય નિરાધાર;
આશ્રમ કે અન્ન આપીને, કરે ન તેની વ્હાર. ૫

સાધુ વંદન સંઘ કઢાય, લ્હાણી પ્રભાવના બહુ થાય;
સંઘ-જમણ આપી હરખાય, ધર્મ ઉન્નતિ એમ મનાય. ૬

શિક્ષણશાળા શાસ્ત્રની, વાચનશાળા જોય,
ખોલે નહિ ખાંતે કરી, ધર્મ ઉન્નતિ ન્હોય. ૭

જૈનો કાંતે ઝીણું ખૂબ, સંચે સૂતર જેમ અનૂપ,
મૂખ્ય વાત વીસારે જાય, એહ અતિ અચરજ કે'વાય. ૮

---

* દરેક દોહરામાં જૈનોની ખામી અને દરેક ચોપાઇમા જૈનોનું વર્ત્તન જણાવ્યું છે.

૧. પરબો બાંધે છે અથવા પરબડિયો ચણાવે છે.

૨. મચ્છ માટે બીજેથી પાણી લાવે છે, અથવા માંછલાને થોડા પાણીમાંથી પકડી વધારે પાણીમા મૂકે છે તથા તેઓને ખાવા લોટ નાખે છે.

જીવ તણા બે ભેદ છે, સ્થાવર ને ત્રસકાય;
ત્રસ છે ઉત્તમ તેહમાં, તથાપિ સ્થાવર ચ્હાય. ૯

બદામનો ગણતા હીસાબ, રૂપિયાનો ભૂલે છે બાબ;
એ તો જૈન તણી છે ભૂલ, જીન તણો છે માર્ગ અમૂલ્ય. ૧૦

ખાળે ડૂચા મારિને, ખુલ્લા મૂકે દ્વાર,
ચુઆ ચોરી જાય ધન, મળે ન સોતી ઠ્હાર. ૧૧

कर्मदेवनी कहाणी.
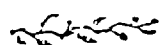
(બેડા બાઇ બૂડતો તારોરે, અબે આઇ પાર ઉતારો રે—એ દેશી.)

સુણો સહુ સ્નેહ જ આણીરે, કહુ કર્મ-દેવની કા'ણી રે--એ ટેક.
બાળપણામા બાળાઓ રાડે, છાંડ વૈભવ આશ;
દુઃખ દેખીને દીલમા એનુ, કોણ ન પામે ત્રાસ ? સુણો. ૧
પંચ ઇન્દ્રિઓ પૂરણ પામી, પામ્યો નિરોગી કાય;
પેટના કારણ ઘરઘર ભીખે, તો પણ પૂરૂ ન થાય—સુણો. ૨
બાળ ઉછેરી આશાએ મોટો, કીધો વેઠી બહુ દુઃખ;
વૃદ્ધપણામા વે'રી યે મૂઓ, નષ્ટ થયું સહુ સૂખ.—સુણો. ૩
સુંદર કાયા માયા અતીશે, વિધવિધ વૈભવ સાર,
રોગ ભગંદર આદિ થયેથી, મૃત્યુ ઇચ્છે નિરધાર. સુણો. ૪
વિવિધ પ્રકારે એવા દુખોને, દેખી કરે અફસોસ;
દોષ ન દેખે કર્મ પોતાનો, દૈવને દે છે દોષ. સુણો. ૫
દૈવને કરવાપણું નથી કાઇ, કર્મ-દેવ છે દૈવ;
રાજ્ય તેનુ ત્રીલોકમા જબરૂ, હુકમ ચાલે સદૈવ. સુણો. ૬
કર્મ તણો જો મર્મ સમજે તો, થાય તેનું સહુ કામ;
'કર્મ-દેવ' છે 'પૂર્વની કરણી', સોતી કરે પરણામ. સુણો. ૭

पांच इन्द्रिओनो संवाद.

ચોપાઇ.

શ્રી જીનેશ્વર લાગી પાય, સહાય ઇચ્છોં શી શારદમાય;
મોક્ષ મળવાનો કહુ ઉપાય, સ્નેહ ધરી સુણજો સઘળાય.

દોહરા.

એક દિવસ ઉદ્યાનમા, બેઠા શ્રી મુનિરાજ;
ધર્મબોધ દે ધૈર્યથી. ભવિજીવને કાજ.

સમ્યક્દૃષ્ટિ શ્રાવક અને, મળ્યા બહુ ત્યા લોક;
ક્રિડા કરવા વિદ્યાધરો, આવી રહ્યા બહુ થોક.

ચાલી વાત વ્યાખ્યાનમાં, પંચ ઇંદ્રિયો દુષ્ટ,
ત્યમ ત્યમ દેતી દુઃખ એ, જ્યમ જ્યમ કીજે પુષ્ટ.

પંચ ઇદ્રી બોલે પછી, લેઇ વિદ્યાધર પક્ષ,
દુષ્ટ નથી સ્વામી અમે, કારણ સુણો પ્રત્યક્ષ.

અમથી તપ જપ થાય છે, ધર્મ ક્રિયા અનેક;
સંજમ પળતો અમવડે, અમ વીના નહિ એક.

મુક્તિ મારગ મોકળો, કીધ અમારા માટ;
દુષ્ટ નર નહીં દેખતા, એહ કરે બકવાદ.

રાગી-દ્વેષી જીવડા, દોષ અમોને દેય;
ન્યાય અમારો કીજીએ, વીનતી સુણી લેય.

મુનિ કહે તમે પાંચમાં, કહો કોણ શીરદાર ?
ચર્ચા તેની આંહી કને, કરો ખુલાસા વાર.

નાક–**કાન**-**નેત્રો** અને, **રસના**-**સ્પર્શ** વિખ્યાત;
પ્રબળ પોતાનું પાઠવે, થઇ અતિ રળીઆત.

પ્રથમ **નાક** કે' હાક દઈ, વાક સુણો શ્રોતાય;
નાક ફુલાવી બોલતું, હુંપદ અતિ ઉભરાય.

ઢાલ ૧ લી.

(ઓધવજી સંદેશો કહેજો શ્યામને એ દેશી)

નાક કહે સ્વામીજી જગમાં હુ વડું,
મુજ સમ જગમાં અન્ય ન દીસે કોય જો;
કારણ કહું છું તેનાં સરવે સાંભળો,
પ્રથમ વદન પર શોભીતું એ હોય જો; નાક. ૧૨

સ્નાન કરાવે શીશે શ્રી જગદીશને,
ત્યારે **પ્રથમ** થતું **અમારે** સ્નાન જો;
સોળ વરસની સુંદર દીસે સુંદરી,
નાક વીણ નહીં શોભા તેની જાણ જો. નાક ૧૩

ઇજત રહેતી નાક થકી આ લોકમાં,
ઈજત સરવે નાક ગયાથી ખોય જો,
વહાલુ દીસે નાક સહુને વિશ્વમાં,
નાક વીણ જન ખૂણે બેશી રોય જો. નાક ૧૪

નાક રાખણ કારણ જુઓ વિશ્વમા
દીક્ષા ગ્રહી બાહૂબળ બળવંત જો;
રામચદ્રે સીતા આણી યુદ્ધથી,
વળતી સયમ લેવા ઉદ્યમવંત જો. નાક ૧૫

સીતા સતી પણ અગ્નિકુંડમાં પેસિયા,
નાક રાખણ કીધું એવું કામ જો,
સત્ય હતું તો સિંહાસન દેવે રચ્યું,
તે ઉપર જઈ બેઠાં ધરીને હામ જો. નાક ૧૬

દશાર્ણભદ્ર મહામુનિએ દિક્ષા ગ્રહી,
ઈંદ્ર નમિયો ચરણે આવી ત્યાંય જો,
અભયકુમારે તાત તણા હુંકારથી,
દિક્ષા ગ્રહી હર્ષ ધરી મન માહ્ય જો. નાક. ૧૭

નામ ગણાવું શાસ્ત્રાધારે કેટલાં ?
લખવાથી બહુ ગ્રંથ વિસ્તરી જાય જો;
જીવ તર્યા એ નાકતણા પ્રસાદથી,
નાકતણી પ્રસંશા અતિશય થાય જો. નાક. ૧૮

ત્રિવિધ પ્રકારે વૃક્ષ તણી સુગંધતા,
તિર્થંકરના ત્રણુ દીસે નિવાસ જો,
અનેક પ્રકારે સુગંધી મહા ઉલસે,
તે સુખ જાણે નાકતણા હુલ્લાસ જો. નાક. ૧૯

દોહરા.

કાન ફફડાવી કાન કે', માં કર નાક ગુમાન;
જો ચાકર આગળ ચલે, તે નહિ ભૂપ સમાન. ૨૦

નીર ઝરે નસકોરથી, વહે શ્લેષ્મ અપાર;
ગુમાન કરતા આટલું, લાજે નહીં ગમાર. ૨૧

તારી છીંક સુણી કરી, ન કરે ઉત્તમ કાજ,
દુર્ગંધી વહે આગળે, તોય ન આવે લાજ. ૨૨

વૃષભ-ઉંટ નારી તણાં, વિંધે નાક જગમાંય;
તોપણુ તે લાજે નહિ, વધુ શું કે'વું આંય ? ૨૩

સૂણુ પ્રબળ મારૂં હવે, તારૂં તજી ગુમાન;
અવર નહીં કો જગતમાં, મહાન મૂજ સમાન. ૨૪

ઢાળ ૨ જી.

(એક દીન ઇંદ્ર પ્રશંસીયોજી—એ દેશી)

કાન કહે સુણો સ્નેહથીજી, મુજ સમો નહીં કોય;
કાને કુંડળ ઝળકતાજી, મણી મુક્તાફળ હોય—
કાન કહે સુણો સ્નેહથીજી, મુજ સમો નહીં કોય. એ આંકણી ૨૫

સારા સ્વરનું ગાવણુંજી, અદ્દભૂત સૂણનો સ્વાદ;
એહ કાન પરીક્ષા કરેજી, સૂણી મીઠો નાદ— કાન. ૨૬

કાને સુણી શ્રાવક થયાજી, કાને સૂણી મુનીરાજ;
કાન સુણે ગુણ દ્રવ્યનેજી, કાન વડો શીરતાજ— કાન. ૨૭

સણત વચન સુણી ધનોજી, છટક દિયોરે આવાસ;
દિક્ષા ગ્રહી ક્રિયા કરીજી, પામ્યો શીવગતિવાસ— કાન ૨૮

મુની અનાથી-બોધથીજી, શ્રેણિક જીવ વિચાર;
સમકીત ક્ષાયકને લહ્યુંજી, જેથી ભવ--જળ પાર— કાન. ૨૯

કેશી સ્વામીનાં સુણીજી, રાય પ્રદેશી વચન;
રૂધીર ખરડયા હાથનેજી, ધોઇ થયા રે પાવન— કાન ૩૦

વાણી સુણી શ્રી નેમનીજી, દિક્ષા ગ્રહી બહુ લોક;
દ્વારીકાંના દાહથીજી, દૂર થયા બહુ થોક— કાન. ૩૧

જીન વાણી કાને સુણીજી, જીવ તરે જગ માંહી;
સદૈવ સુણો સિંહગશી કે'જી, વ્યાખ્યાનવાણી આંહી—કાન ૩૨

દોહરા

આંખ તાણીને આંખ કે', મા કર કાન ગુમાન;
સંભળાવી છેટો રહે, નહિ કંઈ તુજને સાન. ૩૩

દુષ્ટ વચન શ્રવણે સુણી, ક્રોધ અતિ ઉપજંત;
તુજ પ્રમાદે જીવ બહુ, નર્કે જાઇ પડંત. ૩૪

પે'લાં તો બે વીંધીએ, નરનારીના કાન;
તોપણ તુ નહિ લાજતો, કેમ કરે અભિમાન ? ૩૫

કાને વાત જે સાંભળી, સત્યાસત્ય તે હોય;
આંખ દેખે તે વાતમાં, ફારફેર ન હોય. ૩૬

અબ[illegible] સારૂં પાડવું, સુણ તજને શોર;
સુગ[illegible]ના સહુ જાણવું, જગત અંધારૂં ઘોર, ૩૭

ઢાળ ત્રીજી.

(જનુની છજેરે ગોપીચદની—એ દેશી.)
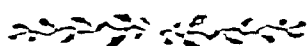
આંખ કહેરે જગ હુ વડી. મુજથી સુખી સસારજી;
આખે દેખી રક્ષા કરે, ઉપજે પુન્ય અપારજી;
આખ કહેરે જગ હું વડી. એ આકણી. ૩૮

ઇર્યા સમિતીએ ચાલતા, સાધુ સમતા ભરેલજી;
મોક્ષ ગતી તેહ પામીયા, એમ શાસ્ત્ર લખેલજી. આખ ૩૯
દેવ ગુરૂના દર્શન થતા, આખ તણે પસાવજી;

આખ વીના રસ્તે ચાલતાં, પડી કૂપ મગાયજી. આખ. ૪૦
એષણીક આહાર વહોરાવતાં, ગોત્ર તિર્થંકર ધારજી;

ગાથાપતિ—ત્રિયા રેવતી, પદ પામી એ સારજી. આંખ. ૪૧
શરમ સરવ છે આંખને, આંખ ગયે ન કોયજી;

ગ્રંથ સિદ્ધાંતની વાંચણી, આંખ વીના ન હોયજી. આંખ. ૪૨
ચારે પ્રતિબુદ્ધ ઉધર્યા, તરીયા ભવજગ પારજી;

પૂર્વ ભવ દેખી આપનો, તરિયા અંશ કુમારજી. આંખ. ૪૩

શાળીભદ્ર ને શ્રેણીક વળી, ગ્રહ્યા સંજમ ભારજી;
એહ વીના બહુ દાખલા, દેખો શાસ્ત્ર મોઝારજી. આંખ ૪૪

દોહરા.

જીભ કહે રે આંખ તું, માં કર મોટી જીભ;
ડરાવતી ડોળા વતી, ડરતી રહે સદૈવ. ૪૫

કાળી કરી કાજળ વતી, તોપણ નહિ તુજ લાજ;
જિહાં તિહા ફરતી રહે, ખાતી ચીજ અખાજ. ૪૬

સ્વરૂપ સુદર દેખીને, કરતી મનને ભ્રષ્ટ;
તુજ વડે સહુ પામિયે, ઇંદ્રિયો અમે કષ્ટ. ૪૭

ઝેર—સ્નેહ તુંજમાં વસે, કામદેવનું બાણ;
અનેક જીવ નરકે ગયા, તુંજ થકી નિર્વાણ. ૪૮

મુજ વડે સુખ પામતો, સઘળો આ સંસાર;
વીસ્તારીને વર્ણવું, જીભ કહે સુણ યાર. ૪૯

ઢાલ ૪ થી.

(રૂપિયાની શોભા હું શી કહું—એ દેશી.)

જીભ કહે રે હું વડી. મુજથી જીવે સંસાર;
ખટરસ ભોજન ભાવતા, ખાતા નર ને સહુ નાર;
જીભ કહે રે હું વડી,--એ આકણી. ૫૦

મુજ વિણ આંખ ન ખુલતી, કાન સૂણે ન વેણ;
નાક ન સુંઘે રે વાસના, મુજ વીણ કાંહી ન ચેન. જીભ૦ ૫૧

મુજવડે મંત્ર નવકારનો, જપતા બેડો રે પાર;
વૈરી જનને રે વશ કરૂ, બોલી વાણી રસાળ. જીભ૦ ૫૨

પ્રતિબોધું હું અબૂઝને, દેઈ શાસ્ત્ર દ્રષ્ટાંત,
જીનવર કેરા રે નામને, જપતા મોક્ષ એકાંત. જીભ૦ ૫૩

જંબુકુમારે બૂઝવી, અષ્ટ પોતાની નાર,
કહી કથા સોહામણી, પ્રતીબોધ્યો પરિવાર. જીભ૦ ૫૪

શાકા ભાગે રે સહેલથી, પૂછયે પ્રશ્ન વિચાર;
ક્ષમા માગ્યે સહુ જીવની, પામે ભવજળ પાર. જીભ૦ ૫૫

મુજ અગ્રે રહે શારદા, લક્ષ્મી ચૈને રે' દાસ,
કરતા હેને આલોયણા, પાતિક પામે સહુ નાશ. જીભ૦ ૫૬

મોક્ષ પામ્યા બહુ મૂજથી, શાસ્ત્ર માંહી છે માન;
જીભ વીના રે જીવતા, જાણો મુઆ સમાન. જીભ૦ ૫૭

દોહરા.

સ્પર્શ કહે સુણ જીભ તું, ખોટો ગર્વ કરંત,
લંછન લાગે જુઠ કહે, તોપણ નહિ લાજંત. ૫૮

"આળાલુલી જીભડી, બોલે આળપંપાળ,
બોલીને અળગી રહે, જોડા ખાય કપાળ." ૫૯

ક્રુર વચન વદતાં થકાં, ક્રોધ અતિ ઉપજંત,
તુંજ પસાયે માણુસો, કરે દેહનો અંત. ૬૦

તુંજ રસના કારણ થકી, કરે પાતિક બહુ જન,
તોપણ નહિ તૃપ્તિ થતી, દિન દિન ઇચ્છે મન. ૬૧

તુંજમાં છે અવગુણ ઘણા, કે'તાં ન આવે પાર;
તુંજ પસાયે શીરને, જતાં ન લાગે વાર ૬૨

અસત્ય ગ્રંથે તું ભણે, દેતી જુઠ ઉપદેશ;
જગત જીવ ફેરાવતી, ડરતી નહિ લવલેશ ૬૩

* જે જિવ સ્થાવરમાં વસે, તે માંહિ તુમમા કોણ ?
કેમ ગર્વ ખોટો કરો, કાન- નાક--મુખ--નેણ ૬૪

* * જીવ અનંતા મેં ધર્યા, તુમ તો સંખ્ય—અસંખ્ય;
મુજ વીણ તો કોઇ નહિ, કેમ ઉઠાવત ઝંખ ? ૬૫

નાક--કાન-નયણાં સુણી, જીભ કેમ ગભરાય ?
નાયક સર્વના શીર હું, લાગત મેરે પાય. ૬૬

અલીક વચન વદતી ફરે, સાચું કહે ન કોય,
વિણ દાયા કેમ તપ તપે, મુકિત કયાથી હોય ? ૬૭

---

* આ ગાથાનો ભાવાર્થ એવો છે કે, સ્થાવર જીવને કાન-નાક-મુખ-નેણ હોતાં નથી.

* * સ્પર્શ ઇંદ્રિય બીજી ઇંદ્રિયોને કહેછે કે—મ્હે **અનંતા** જીવ ધર્યા છે અને બીજી ઇંદ્રિયોએ **અસંખ્ય** જીવ ધર્યા છે એટલે કે બીજી ઇંદ્રિયો માત્ર ત્રસ જીવનેજ હોય છે તેથી તેઓ અસંખ્ય છે અને સ્પર્શ અનંત છે.

પરિસહ ખમે ભાવિશને, મહા કઠણ મુનરાજ;
ત્યારે કર્મ ખપાવીને, પામેછે શિવરાજ. ૬૮

ઢાળ ૫ મી.

(વૈદર્ભી વનમા ટળવળે, એ દેશી.)

સ્પર્શ કહે જગ હું વડો, મુજ સમો નહિ કોય;
મૂજ મહત્વ સાભળી, જીભ રહેશે રોય. સ્પર્શ. ૬૯

હેવે દક્ષીણ કરથકી, દાન જીનેશ્વર દેવ;
તેથી શોભા પામીએ, મટે મરણની ટેવ. સ્પર્શ. ૭૦

દાન દીધે મુનીરાજને, પામે પરમાનંદ;
સુરનર કોટી સેવા કરે, તપે તેજ દીણંદ. સ્પર્શ. ૭૧

નર નારી કઇ ઉધર્યા, શિયળ વ્રતે શિરદાર;
સુખ અનેક જીવે લહ્યા, દેખો સ્પર્શ પ્રકાર. સ્પર્શ. ૭૨

તપ કરી કાયા શોષવ્યે, થાય નિર્જરા સાર.
સુખ વિલસે સંસારના, અથવા ભવજલ પાર. સ્પર્શ ૭૩

ભાવ જયું આત્મ ભાવતો, બેઠો મોહની માંહિ;
કાયા વીણ ક્રિયા નહીં, ક્રિયા વીણ સુખ નાંહિ. સ્પર્શ. ૭૪

ગજસુકુમાળ ડગ્યો નહિં, સ્પર્શઇંદ્રિની સ્હાય;
કેવળજ્ઞાન ઉપગજીયું, પહોંચ્યો શીવગતિ માય. સ્પર્શ ૭૫

ત્વચા ઉતરી સ્કંધઋષિની, સહ્યો પરીસહ જોર;
પુર્વ બંધ છુટે નહીં, તુટયો કર્મ કઠોર. સ્પર્શ. ૭૬

શેઠ સુદર્શનને દીધો, રાજા દંડ પ્રહાર,
સહ્યો પરિસહ ભાવશું, પ્રગટયુ પુન્ય અપાર. સ્પર્શ. ૭૭

એ વિણ બીજા દાખલા, છે શાસ્ત્ર મોઝાર,
સાંભળતાં પાપે પળતાં, પામે ભવજળ પાર. સ્પર્શ. ૭૮

દોહરા.

મન બોલ્યું તે સાંભળી, મન ધરી ઉત્સાહ,
અન્યોઅન્ય સંસારમાં, ઇંદ્રીઓની સહાય ૭૯

વ્યર્થ ગર્વ કાયા કરે, રોગ તણું છે ખાણ;
નર્ક અવસ્થા ભોગવે, પળમાં પામે હાણ. ૮૦

મન મોટું હું સર્વમાં, મુજ સમો નહિ કોય,
મુજથી કર્મ ખપાવીએ, મુજથી પુન્ય જ હોય. ૮૧

હું ઇંદ્રીનો ભૂપ છું, ઇંદ્રિયો મુજ દાસ,
મુજથી સર્વે થાય છે, કાર્ય કેરો પ્રકાશ ૮૨

ઢાળ ૬ ઠી.

ચોપાઇની દેશી.

મન કેરી સૂણીને વાત, મુનિરાય બોલ્યા સાક્ષાત,
મન ખોટો કરે છે ગર્વ, પાતીક બાંધે એથી સર્વ ૮૩

તંદુલ મચ્છ ઇચ્છે થઇ લીન, જાણે સઘળા ભક્ષુ મીન,
મીન એકકેનો ભક્ષ **ન** થાય, તંદુલ મરીને નર્કે જાય. ૮૪

મન વડે એમ બાંધે પાપ, ઇંદ્રીઓને દોરે આપ,
મન તું સુણને મારી વાત, શુભ કર્મ ટેણે જગ તાત ૮૫

ઘણી વાત કરવે શું થાય? મનથી માઠા કર્મ બંધાય;
માટે લઇએ પરમાત્મા નામ, થશે એથી સ્વઆતમ કામ. ૮૬

મન કહે પરમાતમ દેવ, ઓળખાવો મુજને સ્વયમેવ,
માનીશ તમારો હું ઉપકાર, કૃપા કરી સમજાવો સાર ૮૭

કીહાં વસે ને કોણ કે'વાય? બતલાવો મુજને, મુનિરાય!
મુનિ કહે સાંભળ તું ચિત્ત, પરમાત્મ ઓળખાવું મિત્ત. ૮૮

દોહરા.

વસે પરમાત્મા મુકિતમાં, રાગ દ્વેષ નહિ જાણ;
ધ્યાન ધરંતાં તેહનું, પામે પદ નિરવાણ. ૮૯

વળી તુંજ ઘટમાંહી વસે, દેખ દૃષ્ટિ ધરિ ધ્યાન,
કસ્તૂરી નિજ નાભીમાં, છતાં ફરે મૃગ રાન. ૯૦

પંચ ઇદ્રીને વશ્ય થયે, જગમાં જીવ ફરંત,
જન્મ મરણનાં દુખ સહુ, કહિએ નહિં છુટંત. ૯૧

[1]કણ ઈદ્રીને વશ થયે, મૃગ મરે વન માંહિ,
અહી પડયો વશ કાનને, કેમે છૂટે નાંહિ ૯૨

[3]દૃગ વશે જઇ દપીમાં, પતંગ પડે પ્રમાણ,
[4]રસનાએ મચ્છ મારીયો, દુર્જન સંગ નિર્માણ. ૯૩

વશ્ય પડયો રસ નાકને, ભ્રમર કમળ મોઝાર,
પ્રાણ ખુએ તે પલકમા, દેખત સઉ સંસાર. ૯૪

સ્પર્શ ઇંદ્રીની સંગતે, [5]મયગળ પામે મર્ણ;
એ રીતે દુઃખ પામીએ, થાતાં ઈંદ્રી શર્ણ. ૯૫

મન રાજાને જીતીને, ઇંદ્રીઓ કરો વશ,
કામ ક્રોધ કષાય સહુ, કસણી કાઢો કસ. ૯૬

નીકટ જ્ઞાન દૃગ દેખતે, વીકટ ચર્મ દૃગ હોય;
ચીકટ મટે જયું રાગનો, પ્રગટ ચિદાનંદ જોય. ૯૭

પરમાત્માને ઓળખી, કરો તેહથી સ્નેહ;
મોક્ષ તણાં સુખ પામશો, એમા નહિ સંદેહ. ૯૮

વસી વિસલપુર ગામમાં, કીધી કાવ્ય કળાય,
દેખો દોષ જો દૃષ્ટિએ, માફ કરો સઘળાય, ૯૯

ઓગણીં ઓગણસાઠ ને, માઘ શુદિ બિજ ચંદ;
મનસુખ સુત મોતી કહે, બોલો જયજિનેંદ. ૧૦૦

---

૧ કાન. ૨ સર્પ. ૩ આંખ ૪ જીભ ૫ હાથી ·

" एमां दोष अपार ! "

(બાર વ્રતના, અતિચાર સિવાયના, મ્હોટા બાર દોષ.)

દોહરા

પર દેવો નહિ પૂજવા, સમકિત લીધું સાર, ૧
બાધા લે નિજ દેવની, ૧ એમાં દોષ અપાર !
જિવહિંસા કરવી નહીં, વ્રત રહેલું ઓકાર, ૨
જીવાઈ તોડે જીવની, ૨ એમા દોષ અપાર !
અસત્ય વચન ન બોલવું, વ્રત બીજું સ્વીકાર, ૩
જૂઠ જણાવે શાનમા, ૩ એમા દોષ અપાર !
અદત્ત વસ્તુ કોઇની, કરે ન અંગીકાર; ૪
ભુલથી આવ્યું ગોપવે, ૪ એમા દોષ અપાર !
નિજ દારા સંતોષીને, પર દારા પરિહાર; ૫
વધુ ઇચ્છા વરવા વધૂ, ૫ એમા દોષ અપાર !
પરિગ્રહને સંકોચવા, નીમ કીધો નિર્ધાર, ૬
તણાય તૃષ્ણા-નીરમાં, ૬ એમાં દોષ અપાર !

---

૧ તીર્થંકર દેવની બાધા લેવી અગર ગચ્છાધિપતિની પાટે રૂપિયા મૂકવાની બાધા લેવી એ મિથ્યાત્વ છે; એને 'લોકોત્તર ધર્મગત મિથ્યાત્વ' કહેવાય છે. ૨ કોઇ મનુષ્યનો ધંધો તોડી નાખવો—હેના પેટ ઉપર પગ મૂકવો એથી પહેલા વ્રતને મ્હોટો દોષ લાગે છે. ૩ મૂખથી જૂઠું ન બોલે પણ ઇસારામાં સમજાવે તે. ૪ ભૂલથી આવેલી વસ્તુ હેના માલેકને નહિ આપતા રાખી લેવી અગર લ્હેણા ઉપરાંત દેણદારે ભૂલથી આપેલી વધારે રકમ જાણીબુઝીને રાખી લેવી તે ૫ પરસ્ત્રીની બાધા છે પણ પોતે વધારે સ્ત્રીઓ પરણે તો તે 'નવીન સ્ત્રીઓ' પરસ્ત્રી ન ગણાય એમ સમજી વધારે સ્ત્રીઓ પરણવાથી હેનું મન ચિયળસંતોષી નહિ થતાં અહોનિશ ભટકતું રહે છે. ૬ પાંચમું વ્રત તૃષ્ણાને સંકોચવાનુ છે છતાં પોતાને કોઇ વખત પ્રાપ્ત થવાની આશા નથી એવી અતિ બારે રકમ કે વધારે વસ્તુ રાખવાના મર્યાદા કરે તે

[1]જીંદગી સૂધી રોકવી, ક્રિયા આશ્રવ દ્વાર ;
હદ રાખે અતિ મોકળી, એમાં દોષ અપાર ! ૭

પંદર કમ્માદાણોંના, ત્યાગ કીધા વેપાર,
ધીરે દ્રવ્ય કસાઇને, એમાં દોષ અપાર ! ૮

ડરી અનર્થા દોષથી, છાંડયા ચાર પ્રકાર,
[2]પચાતો પરની કરે, એમાં દોષ અપાર ! ૯

સમતા જળમાં ઝીલવા, કર્યું સમાયિક સાર;
કષાય-કાદવમાં ખુંચે, એમા દોષ અપાર. ૧૦

સાધુ સમ દીન એકનું, દિસાવગાસિક સાર,
ઇચ્છા ઉત્તમ આ'રની, એમા દોષ અપાર ! ૧૧

નિજ આતમને પોષવા, પોષધ કીધો સાર,
તન પોષે સૂખે સુઇ, એમાં દોષ અપાર ! ૧૨

[3]અન્નોદક વ્હોરાવિયાં, સાધુને ધરિ પ્યાર,
ન્યુનાધિકપણું તેવડે, એમાં દોષ અપાર ૧૩

તજી ત્રયોદશ દોષ એ, વળિ બીજા અતિચાર,
'મોતી' મળવા મોક્ષપદ, સ્વીકારો વ્રત બાર. ૧૪

---

૧ આ છઠ્ઠું વ્રત આશ્રવક્રિયા રોકવા સારૂ જીંદગીપર્યંતનું છે અને દશમું વ્રત એક અહોરાત્રિનું છે તેથી દશમા વ્રત કરતા આ વ્રતમાં દિશાઓનું પરિમાણ લાંબું ધારવાનું છે ખરૂં, પરન્તુ અત્યંત લાંબું ધારવું નહિ. ૨ પારકી પંચાયત કરવામાં આત્મદોષ થવા સંભવ છે. ૩ આ સાધુ મ્હોટા ગુરૂ છે—આ નથી, આ મોટું વિદ્વાન છે—આ નથી એવા વિચારોથી એકને ઉત્તમ અને બીજાને હલકો આહાર વ્હોરાવવો નહિ.

'हितेच्छु' मारफत श्रावकोने संदेशडो.*

(ફુલાવનાર—મી. બાવાભાઇ મકનજી ગોડા—ગોંડળ)

મનહર છંદ.

વિનવું "હિતેચ્છુ" નમ સ્કાર વારવાર કરી,
ચાર તું ફરે છે ઘણું-ઘણા જૈની સ્થાનમા,
મ્હેરબાની કરી એક મ્હારૂં કર કાજ આજ,
સંદેસો જઇને કહેજે શ્રાવકોના કાનમાં:
"સજ્જન સુભટ્ટ વીર વિરલાઓ સજ્જ થાઓ !
"આવી અવદશા ન્હડી જઇની ઉદ્યાનમાં;
"ધરી અભિમાન મહા- જનનું, મેદાન પડો !
"હેરાન થયા ને થશો રહ્યા જો ગુમાનમાં."

* *

"દિન પ્રતિ દિન, હીન સ્થિતિ થતી ચાલી અતિ,
"થઈ મતિ ભ્રષ્ટ, નષ્ટ દયા-દાન-માનમાં;
"ગઇ રિદ્ધિ-સિદ્ધિ-બુદ્ધિ બગડતી પ્રજા જતી,
"ભર્યું ઉર ક્રૂર કૃત્ય ઈર્ષા ને અજ્ઞાનમાં.

---

* આ ઉત્સાહી રસીલા કાવ્યને સુધારી અત્રે પ્રગટ કરવામા સ્વધર્મી-ઓની જાગૃતિનો જ આશય છે. સંદેશાનો તેમજ સદેશો લઇ જનારનો કેવો સત્કાર થાય છે તે જોવાનું છે. ૧ જ્હાં ત્હાં સઘાડાના તડોને લીધે ઈર્ષા અને ત્હેને લીધે અજ્ઞાન વધતું જાય છે તે કોણ જાણતું નથી !

" દાખવી વીરત્વ આપ [1]વડવાએ મેળવેલ
" તે ગુમાવ્યું; પડે ' શાહ—પણું ' અવસાનમાં !
" **ધરી અભિમાન મહા—જનનું, મેદાન પડો !**
" **હેરાન થયા ને થશો રહ્યા જો ગુમાનમાં.** "

* * *

"થશે વસવસો[2] માટે કમ્મર કસીને ધસો !
"વીર ! વરતાવો જય જૈનોનો જહાનમાં[3] !
"થાઓ એકસંપી મત- મતાંતરો મુકી હવે,
"દાંડો નહિ વળે કાંઈ બડે બડે બ્યાનમાં. ૫
"બાવો' આપ ચરણનો દાસ [4]અરદાસ કરે,
"ક્ષમા કરો વધુ બોલ બોલાયો બેભાનમાં;
"**ધરી અભિમાન[5] મહા જનનું, મેદાન પડો !**
"**ફરીને કહું છું થાશો હેરાન ગુમાનમાં** " ૬

* * *

સોંપેલો સંદેશડો પહોંચાડવાની ખાત્રીનું વચન.

"બાવા! બની બ્હાવરો હું બ્યુગલ બજાવી બપે,
"સંદેશો કહીશ ત્હારો દેશ પરદેશમાં;
"ઉત્તર ને દક્ષિણમાં પૂર્વ ને પશ્ચિમ માંહી,
"ઘેર-ઘેર ફરી, ફરી- ફરીને[6] આવેશમાં. ૧
"ઉંઘેલાઓ જાગે પણ જાગતાઓ સુણે નહિ
"બધીર ને બાયલાઓ બોન એ હમેશમાં;
"વૃષ્ટિ અતિ સૃષ્ટિ માંહી છતાં ન જવાસા લીલા,
"હઠીલા ને મૂર્ખ ઘણા, 'મોતી', મ્હાલે દેશમાં." ૨

---

૧ ત્હમારા વડવાએ બહાદુરી દાખવીને જે નામ મેળવ્યુ હતું તે પણ ત્હમે ગુમાવી બેઠા એવા તમારા 'શાહપણા'મા ધૂળ પડી ! ૨ ખેદ, પસ્તાવો. ૩ દુનિયાના. ૪ અરજ. ૫ અભિમાન (Pride) એ સદ્‌ગુણ છે અને ગુમાન (Vanity) એ દુર્ગુણ છે. ૬ પુન પુનઃ

શિયળ વિષે ગરબો.

(સાંભળજો સજ્જન નરનારી, હિતશિખામણુ મારી જી. એ દેશી.)

શ્રીમહાવીરને શીશ નમાવી, શીખામણુ એક દઉછું જી;
સારૂં કહેતાં લાગે ખારૂં તો, માફી માગી લઉછું-સુણજો સજનીજી. ૧

લટકતી ચાલે ચાલ ન ચાલો, બાઇઓ તમે શાણાંજી,
ઝીણાં વસ્ત્ર અંગે ન સજીએ, તજીએ નહારા ગાણાં- સુણજો ૨

પ્રકટ ન કરીએ રૂપ પોતાનું, પર પુરૂષની આગેજી;
એકાંતે જઇ હશી પડીએ તો, શિયળ પોતાનું ભાગે-- સુણજો. ૩

તાળી પાડી દાંત દેખાડી, વાત ન કરિયે પરવસ્થીજી,
રૂપ તેનું નિહાળી ન જોઇએ, લલચાઇએ નહીં જરથી-સુણજો. ૪

પર પુરૂષની પ્રીત ન કરીએ, જરીએ વિશ્વાસ ન ધરીએજી;
અસુર એકલડાં ગામ ન જઇએ, થેએ અધીરાં ડરીએ—સુણજો. ૫

છેલ છબીલા રંગ રસીલા, અલબેલા થઇ ચાલેજી;
નજર ભરીને નારી નીરખે, નિશ્ચે તે ખાપણ આલે- સુણજો. ૬

કુવા કાંઠે-નદી કીનારે, સ્નાન મરજાદે કરીએજી,
આઘું ઓઢી નીચી નજરે, સરળ ચિત્તે ફરીએ— સુણજો. ૭

કંથ પોતાનો હોય કરૂપો, પૈએ એક ન રળતોજી;
તોપણુ તેને પ્રભુ સમ જાણો, ફરીથી તે નથી મળતો-સુણજો. ૮

પત્થર સમ પરપુરૂષ જાણો, હોય ગુણવંતો રૂડોજી,
તે ઉપર કદી મોહ ન આણો, કોયલ ન ઇચ્છે સૂડો-સુણજો. ૯

શિખામણુ આ હૈએ ધરશો, ઠરશો શિયળવંતાંજી;
નામ તમારૂં ચીરકાળ રહેશે, કહેશે ગુણવંતાં-સુણજો ૧૦

રાજેમતિ--સીતા -ચંદનબાળા, દિઠાં નથી તમે તેનેજી;
તોપણ તેને પૂર્ણ પીછાણો, જાણો અમર એને— સુણજો. ૧૧

શિયળમાં છે સદ્‌ગુણ એવો, મેવો મુક્તિ કેરોજી;
અતુલ્ય સુખ તો એથી પામો, સૂખ સમુદ્રે લહેરો,-- સુણજો. ૧૨

જીવ વિનાનું ખોળિયું જેવુ, સુગંધ વિનાનું ફુલજી;
શિયળ વિનાની નારી તેવી, જેવી રખડતી ધૂળ— સુણજો. ૧૩

હોય જેનામાં સદ્‌ગુણ બીજા, ન હોય શિયળનો ગુણજી,
તો તે ગુણમા વાટ જ ઊડી, નામ મીઠું પણ લૂણ-- સુણજો. ૧૪

સોળ વરસની સુંદરી સુદર, સુદર શણગાર સજીઆજી;
નાક કપાવી શીર મુંડાવ્યું, ઝાઝી પામે લજીયા— સુણજો. ૧૫

પુન્ય પરમારથ પૂરણ કરતી, ધરતી હરીનું ધ્યાનજી;
(પણ) શિયળ ન પાળે સ્નેહ થકી તો, જાણો વિખ પકવાન- સુણજો. ૬૧

શિયળ એ તો મોક્ષનાં મોતી, સદ્‌ગુણ મીણીયાં મોતીજી;
ઉપાય છે એ તરવા કેરો, બીજો નથી જુઓ ગોતી-- સુણજો. ૧૭

શિયળ ન પાળે સુદરી કોઈ, ગણો તે હલકે માપજી;
મરીને નવ તમુ નાકજ કાપો, તોએ ન બેસે પાપ ! સુણજો. ૧૮

વ્યભિચારિણીએ ભવ બગાડયો- મરીને નરકે જાશેજી;
દેશનીકાલો કરીએ તોએ, શિક્ષા બસ નહિ થાશે - સુણજો. ૧૯

મરખી આ કોઇ શિયળ કેરી, સજની ભણશે ગાશેજી;
મનસુખનો સુત 'મોતી' કહે છે, પૂર્ણ મનોરથ થાશે-- સુણજો. ૨૦

हितशिक्षा द्वादशी.

(સાંભળજો સજ્જન નર નારી—એ દેશી.)

સત્યવંતાને દુઃખ પડે પણ, આખર આજુ સુખજી;
વિજયપતાકા સત્યની ફરકે, અસત્ય કાળુ મૂખ—સુણજો સ્નેહીજી. ૧
સજ્જન કેરી મ્હોબત સોબત, દુર્જનની નવ કરીએજી;
બાવળ--છાંયે શૂળ જ વાગે, આમ્ર--છાંયે ફળ મળીએ--સુ. ૨
જૂઠ થકી તો રાયજી રૂઠે, ખૂટે આયુષ્ય કહીએજી,
સત્ય વચનથી શાખ વધે છે, તો જૂઠું કેમ વદીએ ? સુ ૩
ક્રોધ તણાં ફળ કડવાં રે કહીએ, રસ હળાહળ વિષજી,
સકળ સદ્‌ગુણને તેહ અભડાવે, છે ચંડાળઅધીશ-- સુ ૪
હુંપદ રૂપી ઉન્મત્ત હસ્તી, ચઢશે તે પછડાશેજી,
પૂર્ણ ભર્યો છલકે નવ જાશે, આછકલો છલકાશે - સુ. ૫
પાપનો બાપ એ લોભને જાણો, ક્રોધ ચંડાળનો ભાઈજી;
એ લોકે બુડાડે તે તો, જાએ સગાની સગાઇ-- સુ. ૬
વ્યભિચારી નર નર્કમાં પડશે, સુખ સંપત્તિ ખોશેજી,
વચન ફળે ને સ્વર્ગ મળેએ, શિયળવંતને હોશે-- સુ. ૭
ચોરી તે કરતાં રાયજી દંડે, પરભવ નર્કમા જાવેજી,
ત્રાસને પૈસે ઉંચો ન આવે, ગાંઠની મૂડી ગુમાવે-- સુ. ૮
ભલા તે જનનું ભલુજ હોવે, ભૂંડા તે જનનું ભૂંડુંજી,
અવગુણ ઉપર ગુણ કરે તે, માણસ અતિશય રૂડું-- સુ ૯
ઠાઠમાઠ ને ઉપર ઢોલ, અંદર દીસે પોલજી;
એવું તે રૂપ કદી નવ ધરીએ, ખુણે બેશી ખૈએ ગોળ. સુ. ૧૦
ત્રવડ એ તો ત્રીજો રે ભાઈ, સજ્જન સહુ એમ બોલેજી,
દ્રવ્ય વાપરતાં જેહ બચાવ્યું, તેહ રળ્યાની તોલે-- સુ. ૧૧
કરણી એવી પાર ઉતરણી, સંસાર--માયા જૂઠીજી;
પુન્ય પાપ બે સાથે જ આવે, જાવું ઉઘાડી મૂઠી-- સુ ૧૨
દ્વાદશી કેરા દ્વાદશ વિષયો, નરનારી તમે શુણોજી,
દાસ **મોતી** સુખસંપત્તિ સાથે, પામો વળી સદગુણો--સુ. ૧૩

'મોતી-કાવ્ય'

બીજો ભાગ.

[સંશોધનનું કામ ચાલેછે.]

કોઇ ગૃહસ્થ તરફથી
ભેટ આપવાની ઇચ્છા જણાવવામાં આવ્યેથી
તાકીદે બહાર પાડવામાં આવશે.

आजना अंकनो वधारो.

कानपुरनिवासी गुजराती श्रावको तरफथी भेट.

अर्हम्

महेन्द्रस्वर्गारोहः ।

शास्त्रविशारदजैनाचार्यश्रीविजयधर्मसूरिचर-
णान्तेवासिना न्यायतीर्थ-न्यायविशारद-
मुनिन्यायविजयेन विरचितः ।

स च

वाराणस्यां

श्रेष्ठिभूरामात्मजहर्षचन्द्रेण निजधर्माभ्युदययन्त्रालये
मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

वीरसंवत् २४३८ ।

Printed and Published by Shah Harakhchand [illegible]
at the Dharmabhyudaya Press Benares City.
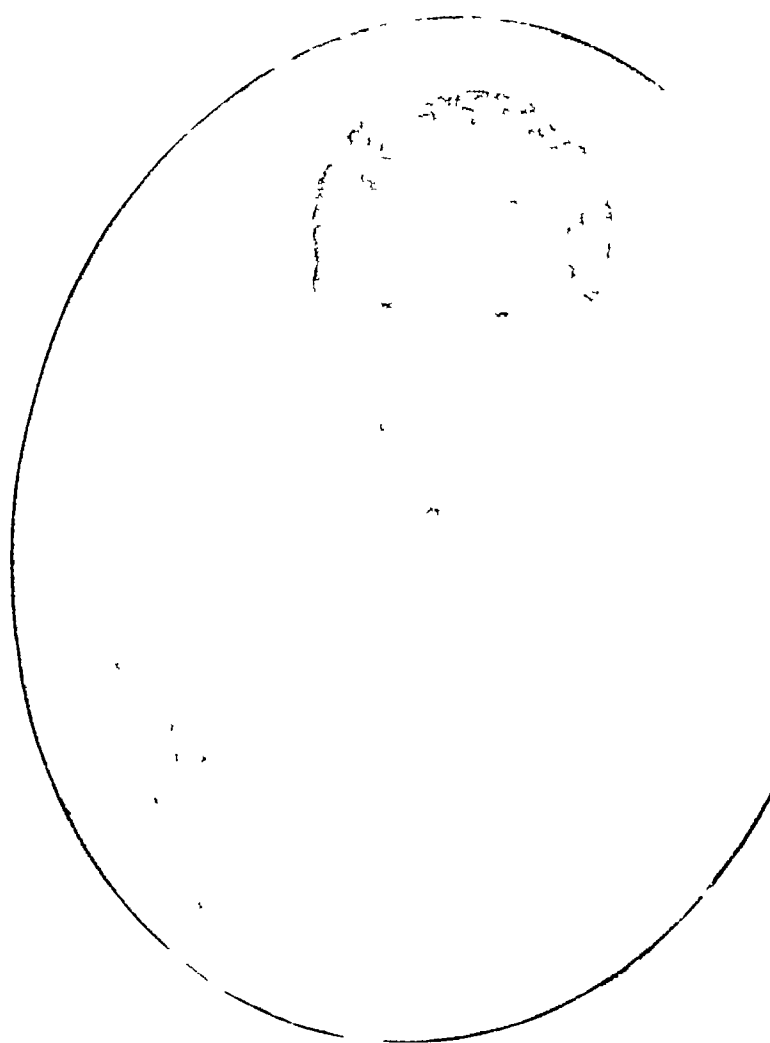
अर्हम् ।

श्रीविजयधर्मसूरिगुरुभ्यो नमः ।

महेन्द्रस्वर्गारोहः ।

जैनेन्द्रशासनरतः परमः कृपालुः
स्वल्पं वचः समुचितं मधुरं प्रणेता ।
सन्तोषपोषजनकः स्वमुखप्रसादात्
स श्रीमहेन्द्रविजयः स्वरगान्महात्मा ॥ १ ॥

नैपुण्यमाकलितवान् किल शाब्दशास्त्रे
साहित्यशास्त्रविनिविष्टमतिप्रकर्षः ।
अध्यापनां रचयिता मधुरं बहूनां
स श्रीमहेन्द्रविजयः स्वरगान्महात्मा ॥ २ ॥

पार्श्वद्यमानसपयोरुहभानुभान-
व्याख्यानमारचयिता परिपूर्णतरम् ।
नेता दयादिकगुणैकपदीं ततश्च
स श्रीमहेन्द्रविजयः स्वरगान्महात्मा ॥ ३ ॥

चारित्रगात्रजननीः परिपालयित्री-
रेतस्य शोधनकरीः समितीश्च गुप्तीः ।
संसेविता प्रवचनस्य सदाष्टमातॄः
स श्रीमहेन्द्रविजयः स्वरगान्महात्मा ॥ ४ ॥

भक्तिप्रियः प्रतिदिनं गुरुदेवनानु

क्लिष्टे तपश्चरणवर्त्मनि सञ्चरिष्णुः ।
एवंविधोऽप्युपहतो न कषायचौरैः
स श्रीमहेन्द्रविजयः स्वरगान्महात्मा ॥ ५ ॥
क्रोधो हि योजनशतं किल दूरमासीत्
तस्माच्छमैकसुहृदं परिषेवमाणात् ।
नो जातु नाम मनसा वचसाऽङ्गतश्चा-
ऽवष्टम्भलेशमपि दर्शयिता बभूव ॥ ६ ॥
आक्रोशितोऽप्यतितरां कटुजल्पधारया
कुर्याद् रुषं तु कथमेष मुनिर्महेश्वरः ।
किन्तु प्रभूतपरितोषसुधाभिपूरितै-
राक्रोशमानयत शान्तिपथे गवां गणैः ॥ ७ ॥
सत्यं समस्य पुरतः परिघोषयामः
शत्रुस्वभावपतितेऽपि हि नम्रतोच्चैः ।
एकः क्षमाश्रमणतां क्षमितागुणोऽस्य
श्रीलस्य तत्रभवतः प्रकटीचकार ॥ ८ ॥
दम्भस्य तु प्रणयने न कदाप्यमुष्य
प्राप्तः प्रसङ्ग उपघातितसंयमस्य ।
स्वाध्यायमेव हि सदा विजने स्थलेऽसौ
धीमान् समाद्रियत बाह्यविरक्तचेताः ॥ ९ ॥
संबिभ्रतोऽस्य शरणं परितोषराजो
नित्यं विवेकसदलङ्कृतिमण्डितस्य ।
सम्यक्परिग्रहयमाऽऽत्मरमागृहीतौ

लोभस्य शौर्यमुदभूद् नहि तस्करस्य ॥ १० ॥
एकाशनव्रतमहो ! संततं वितन्वन्
भुङ्क्ते स्म भोजनमसौ समयोपलब्धम् ।
स्वादिष्ठवस्तुनि मनागपि निर्मिमाणो
गाद्‌र्ध्यं कदाऽपि न पुनः परिदृश्यते स्म ॥११॥
नव्यं च वस्त्रमसकौ न कदाऽपि दध्रे
ग्रन्थान् पुनः समुचितान् प्रशमानुकूलान् ।
एकोऽहमस्मि मम कोऽपि न नास्मि चाहं
कस्याप्यदीनमनसेति सदापि दध्यौ ॥ १२ ॥
निष्टङ्कनेऽसति सति स्वकभारतीं न
प्रायः समादित जिनेन्द्रवचोऽनुरक्तः ।
संशीतिगोचरपदे तु महानुभावः
संशीतिशब्दमपि सार्धमनूच्चचार ॥ १३ ॥
माधूर्यपूरितमबाधितमप्यतुच्छं
संप्रोचुषोऽत्रभवतः श्रमणेश्वरस्य ।
क्व स्याद् मृषावचनदूषणसंप्रवेशः
संभावना त्वददितग्रहणे कुतस्त्या ? ॥ १४ ॥
भिक्षार्थमार्हतमुखाम्बुजदर्शनार्थं
नीहारकर्मकृतयेऽप्यथवा प्रयातः ।
मेधाविनः शमसुधारसमेदुरस्य
क्वापि स्त्रियां न नयनं निपपात तस्य ॥१५॥
पञ्च व्रतान्यपि महान्त्यभिरक्षतः सत्-

कालानुभावमनुसृत्य मुनीश्वरस्य ।
धैर्यं परीषहचमूसहने महिष्ठं
संबिभ्रतः परमसत्त्वगुणालयस्य ॥ १६ ॥

गाम्भीर्यमद्भुतमुपेतवतः समस्त-
कर्मक्षयात्मशिवसम्पदऽवेप्सयैव ।
सम्यक् क्रियां विदधतो गुरुवाक्य आस्ते
धर्मश्चकासदिति धारयतश्च चित्ते ॥ १७ ॥

स्वच्छप्रसादकिरणाततहर्षवर्षो
वक्त्रेन्दुरक्षिपदवीविनिपातमात्रात् ।
पापं क्षिणोति चिनुते च शरीरभाजां
श्रेयः पिपर्त्यभिमतं च किमत्र वाच्यम् ? ॥१८॥

(त्रिभिर्विशेषकम्)

किं ब्रूमहे बहु महोदयसम्पदास्पदे-
ऽस्मिन् ज्ञानदर्शनतपोविशदात्मशालिनि ! ।
एकप्रसादगुणतः खलु विस्मयामहे
दृष्टो भविष्यति कदा स मुनिर्महेश्वरः ॥ १९ ॥

क्रोधाग्निदग्धमनसः प्रशमार्पणाकृते
नास्य प्रमोदजलधेर्वचसः प्रयोजनम् ।
एकं प्रसादसुधया परिधौतमक्ष्यलं
दृष्टो भविष्यति कदा स मुनिर्महेश्वरः ॥ २० ॥

तस्य प्रसादविमलं नयनं विलोक्या-
ऽरातिस्वभावपतितोऽपि भृशं तुतोष ।

तद्दर्पसर्पपरिपन्थिगुणप्रसादं
  बिभ्रत् कदा स परिपावयिता महेन्द्रः ॥ २१ ॥
सम्भावनामपि न कुर्म इमां कदाऽपि
  यन्नाम तं मुनिवरं परिचिन्वतोऽत्र ।
संपश्यतोऽपि खलु दुर्जनदृष्टिरूपाद्
  दोषो विलोचनपथेऽवततार तत्र ॥ २२ ॥
किं कुर्महे तनुमहे गमनं क्व वा वयं
  कं वा भुवीह पुरुषेश्वरमाश्रयामहे ।
कस्याग्र आपदमिमां परिदर्शयामहे
  प्राप्येत येन पुनरेष मुनिर्महेश्वरः ? ॥ २३ ॥
भो भोः ! प्रदर्शयत तादृशमुच्चमन्त्रं
  यज्जापतः सुमनसा सहसा नयामः ।
श्रीमन्महेश्वरमहोदयशारदेन्दु-
  नीहारहारधवलाननमक्षिमार्गम् ॥ २४ ॥
  तस्मिन् गते मुनिपतौ महनीयकीर्त्ता-
वस्माकमाकलयतां विषयानुरागम् ।
साधूपदिश्य हृदयं गतगाढ्र्यपङ्कं
  कुर्याच्चिरं रहसि को मधुरैर्वचोभिः ? ॥ २५ ॥
लोकेऽत्र किं स परिभावितवान् महेन्द्रो
  नैर्गुण्यमाशु परिहाय यतो जगाम ।
अत्र प्रयाम्यहकमित्यपि यन्न चोचे
  कस्माद् गतोऽपि पुनरेष्यति वा नवाऽथ ॥२६॥

धीमन् ! तवाऽद्भुतनतिर्मनसो न याति
धीमन् ! तवाऽद्भुतमतिर्मनसो न याति ।
धीमन् ! त्वदीयमुदितं मनसो न याति
धीमन् ! त्वदीयगमनं मनसो न याति ॥ २७ ॥

किं नाम कर्म परिसाधयितुं समीहसे
यत्सत्त्वरं प्रगतवाननिवेद्य सुन्दर ! ।
अप्यस्मदा चरितुमिच्छसि गुप्तरूपतो
यादृङ्मतिर्वद परञ्च कदा मिलिष्यसि ? ॥ २८ ॥

स्पष्टं निवेदय महेन्द्र ! महानुभाव !
कुत्र प्रयाणमकृथाश्च किमर्थकं च ? ।
अन्वेषणाय सहसा गुणरत्नसिन्धो !
श्रीलस्य तत्रभवतः प्रयतामहे यत् ॥ २९ ॥

पूर्णः शशाङ्क उदितश्च तमोगृहीतो
जातस्तरुश्च फलदः करिणा च भग्नः ।
अभ्युन्नतश्च जलदः पवनाद् विकीर्णः
तीरं तरी गतवती च तटाद्रिभग्ना ॥ ३० ॥

निष्पन्नवद् व्रीहिवणं दवाग्निना
दग्धं हहा ! दैववशेन सत्वरम् ।
वैदुष्यचारित्रगुणैकसुन्दरी-
भूतो महेन्द्रो यमरक्षसा हतः ॥ ३१ ॥
(युग्मम्)

नाऽस्मन्मनस्तिष्ठति सुस्थभावे

नाऽस्मन्मनस्तिष्ठति सद्विवेके ।
नाऽस्मन्मनस्तिष्ठति शास्त्ररूपे
गीर्वाणगेहं गतवत्यमुष्मिन् ॥ ३२ ॥

कुक्षे ! कथं मुञ्चसि मां न हि स्वयं
प्राणाः ! किमद्यापि न याथ दूरतः ।
सुदुःसहेदृग्व्यसनाऽपरिक्षम !
त्वमङ्ग ! किं तद्वपुषा न सङ्गतम् ? ॥ ३३ ॥

अथवा मोहचिह्नोऽयं शोको युक्तो न धीमताम् ।
सर्वे हि गत्वरा नाम कुत्र शोकः प्रणीयते ? ॥३४॥

नीयमानं कृतान्तेन परं शोचन् विमुग्धधीः ।
आत्मानं नेष्यमाणं तु मनागपि न शोचति ॥३५॥

किञ्च सार्थक्यमानीय नृजन्माऽयं मुनीश्वरः ।
अभ्युन्नतिं प्रपेदानोऽचिरादस्ति मुदां पदम् ॥३६॥

सम्यग् मुनिचरित्राणां पालकस्य मुनीशितुः ।
कालधर्मः समायात उत्सवः सम्मतः सताम् ॥३७॥

किमन्यद् ब्रूमहे तत्र मुनिरत्नशिरोमणौ ।
चित्रकृच्चरितं तस्य श्रूयमाणं मनागपि ॥ ३८ ॥

तथाहि—

अस्तीह सिद्धगिरिणा परिदीप्यमानः
श्रीगूर्जरा जनपदो विदितस्वरूपः ।
श्रीमाण्डलं च निकषाऽभिधया दसाडा-
ग्रामोऽस्ति तत्र जिनमन्दिरमण्डनाढ्यः ॥३९॥

सम्यग्यशा इह च सांकलचन्द्रनामा
  श्रद्धागुणाऽमलमना विकसद्विवेकः ।
तत्स्थैर्जैनैर्नगरशेठ इति प्रणीतो
  न्यायाऽनुपालनपरो वणिगेक आसीत् ॥ ४० ॥

आसीदमुष्य शुचिशीलगुणा झवेरी-
  त्याख्याङ्गना व्रततपोनियमानुरक्ता ।
कालक्रमेण तनयः परिजायते स्म
  कल्याणपात्रमनयोः सुकृतोदयेन ॥ ४१ ॥

स्ववर्गे मिलिते साधुदिवसे पितरावथ ।
  सूनोर्नाम मफालाल इत्यस्थापयतां मुदा ॥ ४२ ॥

अथ क्रमाद् बालक एधमान-
  श्चक्षुर्युगानन्दकरो बभूव ।
पित्रोः परं नापरपश्यतोऽपि
  नाऽऽनन्दयत्यम्बुधिमेव हीन्दुः ॥ ४३ ॥

नियुज्य भूमौ निजपाणियामलं
  पृष्ठं मृगारातिरिवोन्नमय्य च ।
कुर्वन् क्रमाभ्यां गमनं शनैः शनै-
  र्मुखाब्जिनीतः प्रथयन् स्मिताम्बुजम् ॥ ४४ ॥

असौ किमीयं मुदितं न बालको
  मनश्चकारेन्दुविकासिभूघनः ।
सुकोमलस्तस्य च पाणिपल्लवः
  संस्पृष्टमात्रो मुदमार्पिपत् पराम् ॥ ४५ ॥

वृत्तं तदास्यं मसृणं निसर्गतः
शोचिःसमूहं प्रथयत् समन्ततः ।
दृष्ट्वा निशारत्नसहोदरं न कः
स्वाऽङ्के न्यधित्सद् रमणाय तं मुदः ? ॥ ४६ ॥

जातेऽथ वर्षदशके कुमरस्य तस्या-
युःपूरणे दिवमगाज्जनकस्ततोऽम्बा ।
कीदृग् विधेर्विलसितं जगदङ्गिवर्गे
क्रीडां यथेच्छमपनीतदयः करोति ? ॥ ४७ ॥

गत्वा ततो मातुलगेहरूपे
तस्थौ स वर्षत्रितयं यथेष्टम् ।
ततः पुनर्माण्डलपत्तनेऽस्थाद्
मातुःस्वसुः सद्मनि सप्रमोदम ॥ ४८ ॥

पितुःस्वसुश्चाऽपि गृहेऽथ तत्र
तिष्ठन् निराबाधमसावपाठीत् ।
को नाम रत्नं शुभवृद्धिहेतुं
गृहे स्वकीये परिरक्षयेन्न ? ॥ ४९ ॥

अध्येतुमिच्छुस्तत आङ्ग्लभाषां
जगाम धीमान् सवयस्सनाथः ।
साऽऽमोदचेताः सुरते पुरेऽसौ
धीरा विधेये न किलाऽऽलसन्ति ॥ ५० ॥

ततः पुनः संस्कृतभाषया स
महामतिः नपरिचेतुमिच्छुः ।

विडम्बयन्तं कलशस्य लक्ष्मी-
मुष्णीषमेतस्य बभौ वराङ्गम् ॥ ६२ ॥

मृदुलताकलिताः किल कुन्तला
रविसुताजलवीचिमहोदराः ।
विकचवक्त्रकजे किमु लीननी-
रवषडङ्घ्रय उत्तमसौरभे ॥ ६३ ॥

गम्भीरचारुध्वनिबन्धुरः पुनः
कण्ठोऽस्य वृत्तोऽनतिदीर्घ आबभौ ।
श्रियं यदीयामसहिष्णुरम्बुधौ
निपत्य कम्बुस्त्रपया विशीर्णवान् ॥ ६४ ॥

आजानुदीर्घौ परिदिद्युताते
पीनौ भुजौ दन्तिकरायमाणौ ।
नितान्तसौम्येऽस्य च पाणिचन्द्रे
रेखाऽल्पपर्यायुष एव कार्ष्ण्यम् ॥ ६५ ॥

रम्भास्तम्भप्रतिमौ स्निग्धौ मृदुलावुरू विरेजाते ।
एणीजङ्घानुहरे क्रमवर्तुले पुनर्जङ्घे ॥ ६६ ॥

पादौ तस्य समतलौ पङ्करुहोदरमृदू बभासाते ।
कामाङ्कुशाश्च कामाऽङ्कुशा बभुः कनककान्तिभृतः ॥६७॥

स्वच्छा सुकोमला हेमद्रवेणेव विलेपिता ।
चारुवर्णा शरीरस्था त्वगमुष्य व्यभासत ॥ ६८ ॥

रूपलावण्यकान्त्यादिविवेकप्रतिभादिभिः ।
शरीरात्मगुणै राजन्न कस्याऽभूत् स वल्लभः ? ॥ ६९ ॥

इतः पुनर्माण्डलपत्तनात्त-
न्मातुःस्वसुर्नन्दन आजगाम ।
गीर्वाणवाणीनिपुणीबुभूषुः
श्रीकाशिपुर्यां नरसिंहनामा ॥ ७० ॥
सदा नृसिंहस्य सहायभावं
व्यधाद् महाबन्धुरसावधीतौ ।
परोपकारैकपरोत्तमानां
वाच्यं किमात्मीयलघिष्ठबन्धौ ? ॥ ७१ ॥
अथैकदाऽऽयातवति स्ववप्तुः
पत्रे ज्वराद्यामयबोधिवर्णे ।
श्रीधर्मसूरीन्द्रपदं प्रणम्य
ग्रामे स्वकीये गतवान् नृसिंहः ॥ ७२ ॥
मासत्रयाभ्यन्तर एव तस्य
पितुश्च मातुश्च गतौ परत्र ।
हृद्दारणं शोकमनल्पमायन्
स्मरन् भवाम्भोनिधिभीमतां च ॥ ७३ ॥
आगादधीरः परिसोढुमेतद्
दुःखं महिष्ठं सहसा नृसिंहः ।
काश्यां पुनस्तस्य शमार्पणाया-
ऽऽददे सफालाल इमां च वाचम् ॥ ७४ ॥
भ्रातः ! सदा सन्निहितोऽस्ति मृत्युः
समाश्वासे वसतां जनानाम् ।

किं सर्वसाधारण आगतेऽस्मिन्
  पित्रोर्विषण्णीकुरुषे मनः स्वम् ? ॥ ७५ ॥
सदा परिस्फूर्जति भूत्रयेऽपि
  दुर्वारवीर्यप्रसरे कृतान्ते ।
ततो विगूढः किमु कोऽपि दृष्टः
  श्रुतोऽथवा येन स वञ्चितः स्यात् ? ॥ ७६ ॥
जनिर्विकारः प्रकृतिश्च मृत्युः
  कस्तत्र शोकः प्रकृतौ विधेयः ? ।
भिन्नेन मार्गेण समे समेता
  यास्यन्ति भिन्नेन यथा तथैव ॥ ७७ ॥
संबन्धवान् कोऽत्र समस्ति तादृशः
  खिन्नीभवामः खलु यद्वियोगतः ।
तथाविधं साधयिताऽपि कोऽत्र नः
  स्वार्थं च संबन्धितयोच्यतेऽङ्ग ! यः ॥ ७८ ॥
न वास्तवं कोऽपि ददाति कस्यचिद्
  न वास्तवं कोऽपि कुतोऽपि लाति च ।
विना प्रदानं ग्रहणं च वास्तवं
  को नाम संबन्धितयाऽभिधीयते ? ॥ ७९ ॥
भवार्णवस्यैष किल स्वभावः
  स्थिरं न किञ्चित् शरदभ्रवत्खे ।
अभीप्सिताऽनिष्टवियोगयोगो-
  द्भूतार्तिपुञ्जो भवकूप एषः ॥ ८० ॥

त एव धन्या विषयामिषेभ्यः
प्रत्यागतं बुद्धिमतां यकेषाम् ।
सज्ज्ञानसद्दर्शनसद्यमात्म-
रत्नत्रितय्यामनुरागि चेतः ॥ ८१ ॥

भ्रातः ! प्रणीतेऽपि भृशं विषादे
जनः परासुर्न पुनः समेयात् ।
कथं वृथा तत्खलु मोहनीय-
व्याधं समुत्तेजितमातनोषि ? ॥ ८२ ॥

निपुणोऽसि समर्थोऽसि शिक्षितोऽसि विवेक्यसि ।
मा विषीद महाभाग ! दुर्वारा भवितव्यता ॥ ८३ ॥

स्मर च सत्पद्ये—

विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम ।
असन्तो नाऽभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यस्तनुधनः
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधारा व्रतमिदम ॥ ८४ ॥

उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवाऽस्तमेति च ।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥ ८५ ॥

विवेकदीपं किल धैर्यपात्रे
देदीप्यमानं पुरतो विधाय ।
शोकान्धकारं जहि सत्त्वशालिन् !
स्फारं परिस्फार्य पौरुष स्वम् ॥ ८६ ॥

सद्बोधपीयूषकिरा गिरेदं

किं सर्वसाधारण आगतेऽस्मिन्
  पित्रोर्विषण्णीकुरुषे मनः स्वम ? ॥ ७५ ॥
सदा परिस्फूर्जति भूत्रयेऽपि
  दुर्वारवीर्यप्रसरे कृतान्ते ।
ततो विगूढः किमु कोऽपि दृष्टः
  श्रुतोऽथवा येन स वञ्चितः स्यात् ? ॥ ७६ ॥
जनिर्विकारः प्रकृतिश्च मृत्युः
  कस्तत्र शोकः प्रकृतौ विधेयः ? ।
भिन्नेन मार्गेण समे समेता
  यास्यन्ति भिन्नेन यथा तथैव ॥ ७७ ॥
संबन्धवान् कोऽत्र समस्ति तादृशः
  खिन्नीभवामः खलु यद्वियोगतः ।
तथाविधं साधयिताऽपि कोऽत्र नः
  स्वार्थे च संबन्धितयोच्यतेऽङ्ग ! यः ॥ ७८ ॥
न वास्तवं कोऽपि ददाति कस्यचिद्
  न वास्तवं कोऽपि कुतोऽपि लाति च ।
विना प्रदानं ग्रहणं च वास्तवं
  को नाम संबन्धितयाऽभिधीयते ? ॥ ७९ ॥
भवार्णवस्यैष किल स्वभावः
  स्थिरं न किञ्चित् शरदभ्रवत्खे ।
अभीप्सिताऽनिष्टवियोगयोगो-
  द्भूतार्तिपुञ्जो भवकूप एषः ॥ ८० ॥

त एव धन्या विषयामिषेभ्यः
प्रत्यागतं बुद्धिमतां यकेषाम् ।
सज्ज्ञानसद्दर्शनसद्यमात्म-
रत्नत्रितय्यामनुरागि चेतः ॥ ८१ ॥

भ्रातः ! प्रणीतेऽपि भृशं विषादे
जनः परासुर्न पुनः समेयात् ।
कथं वृथा तत्खलु मोहनीय-
व्याधं समुत्तेजितमातनोषि ? ॥ ८२ ॥

निपुणोऽसि समर्थोऽसि शिक्षितोऽसि विवेक्यसि ।
मा विषीद महाभाग ! दुर्वारा भवितव्यता ॥ ८३ ॥

स्मर च सत्पद्ये—

विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम् ।
असन्तो नाऽभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यस्तनुधनः
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधारा व्रतमिदम् ॥ ८४ ॥

उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवाऽस्तमेति च ।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥ ८५ ॥

विवेकदीपं किल धैर्यपात्रे
देदीप्यमानं पुरतो विधाय ।
शोकान्धकारं जहि सत्त्वशालिन् !
स्फारं परिस्फारय पौरुषं स्वम् ॥ ८६ ॥

सद्बोधपीयूषकिरा गिरैवं

प्रबोधनात् शान्तिपथाऽध्वगीसन् ।
संसारनैर्गुण्यमवेक्षमाणो
नृसिंह ऐच्छत् शिवशर्ममार्गम् ॥ ८७ ॥
इतो मफालालमहानुभावः
श्रीधर्मसूरीन्द्रनिदेशमाप्य ।
भावि प्रयाणं न पुनर्मदीय-
मितीव मन्वान इयाय देशे ॥ ८८ ॥
यात्रामकुर्वन् विमलाऽचलस्या-
ऽप्रणीतपूर्वी प्रबलान्तरायात् ।
सम्मेतशैले प्रभुधर्मसूरि-
पदारविन्दे पुनराजगाम ॥ ८९ ॥
ततः सहैभिः कलकत्तिकाया-
मगाद् मफालालमहानुभावः ।
सत्सङ्गतो हि प्रभवत्प्रमोदं
सत्सङ्गभागेव पुमानवैति ॥ ९० ॥
तत्राऽथ पुर्यां मुनिशेखराणां
साधूपदेशाद् भवतो विरागाः ।
त्रये त्वरन्ते स्म महानुभावाः
श्रामण्यसाम्राज्यरमामुपेतुम् ॥ ९१ ॥
ततो मफालालमहानुभावो-
ऽप्येभिस्त्रिभिर्दीक्षितुमभ्यवाञ्छत् ।
निरन्तरायो हि विविक्तबुद्धि-

मज्जेत् कथं भोगपुरीषपुञ्जे ? ॥ ९२ ॥
ततो नृसिंहोऽपि तमन्वगच्छत्
पुरैव संसारविरक्तचेताः ।
स एव बन्धुः स पुनर्वयस्यः
श्रेयःपथेनाऽनुसरेद् निजं यः ॥ ९३ ॥
एवं च ते पञ्च महानुभावाः
सुशिक्षिताश्चारुविवेकभाजः ।
अभूतपूर्वेण महोत्सवेन
तत्रत्यभक्ताढ्यविनिर्मितेन ॥ ९४ ॥
त्रिषष्ठ्यभ्यधिके चैकोनविंशतिशताब्दके ।
चैत्राऽधवलपञ्चम्यां दीक्षामाददिरे मुदा ॥ ९५ ॥
(युग्मम्)
सिंहविजय-गुणविजयौ
विद्याविजयो महेन्द्रविजयश्च ।
न्यायविजय इत्याख्याः
पञ्चाऽऽसंस्ते मुनीशितुः शिष्याः ॥ ९६ ॥
महेन्द्रविजयेत्येवं मुनिनाम्ना प्रसिद्धवान् ।
महेच्छः श्रीमफालालो रेमेऽथ शमसम्पदि ॥ ९७ ॥
नरसिंहः पुनर्न्यायविजयेत्यभिधां गतः ।
महेन्द्रविजयाभ्यर्णेऽग्रहीद् वैराग्यशिक्षणम् ॥ ९८ ॥
अथ श्रीकलिकातायां कृत्वा मासचतुष्टयम् ।
ततो विहारं विदधुः सशिष्या धर्मसूरयः ॥ ९९ ॥

काशीपुरीं मुनिवराः समुपागमन् पुन-
विद्याऽऽलयं प्रथमनेपत चोन्नतिश्रियः ।
श्रीमान् महेन्द्रविजयोऽपि कुशाग्रतुल्यधी-
र्विद्याविनोदमकरोद् गुरुभक्तिबन्धुरः ॥१००॥

श्रीसिद्धहेमाभिधशब्दशास्त्र-
प्रासादमारोहत आशु तस्मै ।
शश्लाघिरे विस्मयमाश्रयन्तः
सर्वे सहाध्यायिजना नितान्तम् ॥ १०१ ॥

मुक्तावलीप्रभृतितर्कनिबन्धमादौ
कृत्वा स्वबुद्धिविषयं सततश्रमेण ।
जैनेन्द्रतर्कमधिगन्तुमथो निसर्ग-
गम्भीरमैहत स सम्मतितर्कमुख्यम् ॥ १०२ ॥

न्यायोऽप्यसौ मुनिशिशुः प्रतिपद्य तस्य
साहायकं प्रतिदिनं श्रमतो यथाधि ।
व्युत्पत्तिलेशमधिलक्षणशास्त्रमाप-
ज्जैने पुनस्तादितरत्र च तर्कशास्त्रे ॥ १०३ ॥

गुरोर्गिराथो कलिकातिकायां
श्रीन्यायशास्त्रे ददितुं परीक्षाम् ।
श्रीमङ्गलः प्राज्ञमुनीश्वरश्च
न्यायो मुनिश्च प्रकृतौ विहारम् ॥ १०४ ॥

ताभ्यां तदानीं विनिवेदितः सहा-
गमे यथौचित्यसहायताकरः ।

महामुनिः श्रीलमहेन्द्रपण्डितो-
ऽपरिस्पृशन् लोकयशःपरिस्पृहाम् ॥ १०५ ॥
नम्रस्वभावः परिगृह्य तद्वच-
स्ताभ्यां प्रयाति स्म महेन्द्रपण्डितः ।
परोपकाराय सतां हि चेष्टितं
को वा महेन्द्रं न सहायमीहते ? ॥ १०६ ॥

अष्टषष्ठ्यधिके चैकोनविंशतिशताब्दके ।
मृगशीर्षतृतीयायां धवलायां तिथौ पुनः ॥ १०७ ॥
मध्याह्नसमये चैकवादने मुनयस्त्रयः ।
काशीतो निर्गता आसन् व्यहार्षुश्चाग्रतः क्रमात् १०८
(युग्मम्)

अथ तत्र पथप्राप्तं तीर्थं सम्मेतभूभृतम् ।
आरुह्यार्हन्महादेवान् प्रणेमुर्मुनयो मुदा ॥१०९॥
अर्हद्भक्त्येकरभसः श्रीमहेन्द्रो मुनीश्वरः ।
पार्श्वनाथं जगन्नाथमुच्चकैरेवमस्तवीत् ॥११०॥

अद्य प्रभातं समभूत् सुमङ्गलं
महोदयो वासर एष मे पुनः ।
सौभाग्यसिन्धुर्नियमादयं क्षणो
जातोऽद्य कल्याणतरुः सुपल्लवः ॥ १११ ॥
अभूदहो ! कामगवी च सम्मुखा
शयेशयालुः किल कल्पवल्लरी ।
किमेभिरात्तैरथवानुषङ्गिक-

प्रयोजनैर्जन्मविवृद्धिहेतुभिः ॥ ११२ ॥

प्राप्तो ध्रुवं मुक्तिविवाहमङ्गला-
ऽऽलयो मयाल्पेतरपुण्यढौकितः ।
लोकेऽधुना शारदपूर्णचन्द्रमः-
सहोदरं यन्मुखमेतदर्हतः ॥ ११३ ॥

तुभ्यं देव ! नमोऽर्हते भगवते विश्वत्रयीस्वामिने
सर्वज्ञाय जगद्धिताय पुरुषश्रेष्ठाय भूमानवे ।
लोकोद्द्योतकृतेऽभयं प्रददते स्याद्वादिने ब्रह्मणे
मुक्तायादिकराय तीर्थपतये कारुण्यपाथोधये ११४

निर्यामकाय परमाय भवाम्बुराशौ
रागादिरोगशमकर्मभिषग्वराय ।
संसारकूपनिपतज्जनरज्जवे च
तुभ्यं नमः परमपूरुषपुण्डरीक ! ॥ ११५ ॥

तुभ्यं नमोऽखिलविपत्तिनिकुञ्जदन्तिने
तुभ्यं नमो भुवनवाञ्छितकल्पभूरुहे ।
तुभ्यं नमः स्मरकरीन्द्रभिदामृगद्विषे
तुभ्यं नमः पुरुषपुङ्गवगन्धहस्तिने ॥ ११६ ॥

नमोऽस्तु तुभ्यं पुरुषोत्तमाय वा
स्वयम्भुवे वा परमेष्ठिनेऽथवा ।
अगम्यरूपाय विशुद्धयोगिनां
नमोऽस्तु तुभ्यं सुगताय शम्भवे ॥ ११७ ॥

पारं स्वयम्भूरमणाम्बुराशेः

सम्प्राप्नुवानो वियदध्वनोऽन्तम् ।
सम्पश्यमानोप्यथवा महौजाः
स्तोतुं किमीशीत गुणांस्तवार्हन् ! ? ॥ ११८ ॥
त्रैलोक्यसाम्राज्यरमानुभाविनो
भवन्ति दासाः खलु यस्य वज्रिणः ।
तथाप्यहो ! अद्भुतवीतरागतां
बिभ्रत् सकस्त्वं नहि कस्य चित्रकृत् ? ॥११९॥
त्रैलोक्यरक्षा-प्रमयक्षमं बलं
शक्राच्च कीटावधि बिभ्रतोऽद्भुतम् ।
साम्यं क्षमावारिनिधेः क्षमेत क-
स्तव स्वरूपं प्रतिपत्तुमेव वा ? ॥ १२० ॥
अभूतां काणादा-ऽक्षचरणमते नैगमनयात्
तथा साङ्ख्याद्वैते समुदभवतां सङ्ग्रहनयात् ।
दृशो बौद्ध्याः प्रादुर्भवनमृजुसूत्रात्प्रकटयन्
किलैकस्त्वं दृष्टिं समसमनयां नन्दसि जिन !॥१२१॥
यन्नाम त्रिजगत्त्रिभेदविपदम्भोराशिकुम्भोद्भवो
यद्वाचश्चितिमच्चकोरनिचये चाचण्डरोचीरुचः ।
यन्मेधासलिलेऽखिलेन युगपल्लोकेन मीनायितं
स श्रीमन् ! भगवन् ! सदा विजयसे त्रैलोक्यचिन्तामणे !॥
त्वां स्तुमोऽभिनमामस्त्वां त्वामेवोपास्महे सदा ;
त्वां प्रपद्यामहे नाथ ! निदेशय करोमि किम् ? १२३
यद्यस्ति कोऽपि निष्कर्मा सर्वज्ञो यदि कश्चन ।

मोक्षमार्गप्रकाशी चेत् त्वमेव परमेश्वर ! ॥१२४॥
सर्वविन्मूलकत्वेन विरोधानवकाशतः ।
सुधीपरिगृहीतेश्च प्रमाणं नस्त्वदागमः ॥१२५॥
दुर्जनेऽपि नृशंसेऽपि त्वद्दासम्मन्यता मयि ।
परिस्फुरति चेन्नाथ ! तदा खल्वस्मि निर्भयः ॥१२६॥
नरेन्द्रश्रीः सुरेन्द्रश्रीर्मुक्तिश्रीश्चेद् भविष्यति ।
त्वत्सेवयैव दासस्य शङ्का नात्रावकाशते ॥१२७॥
निदाने प्रतिषिद्धेऽपि भगवन् ! तव शासने ।
भवे भवेऽस्तु त्वत्पादसेवेत्येतन्निदान्यते ॥ १२८ ॥
कृताञ्जलि नमस्कृत्यान्तिमं विज्ञपयाम्यदः ।
मराल सततं स्वामिन् ! मम मानसमानसे ॥१२९॥
इत्येवमानयत पार्श्वपरेशितारं
सम्मेतशैलतिलकं स्तवनैकपद्याम् ।
श्रीमान् महेन्द्रविजयो मुनिरार्हताग्र्यः
सान्द्रोल्लसत्पुलककञ्चुकिताङ्गभागः ॥१३०॥
अग्रतस्तत आतेनुः प्रयाणं मुनयस्त्रयः ।
कलिकातां प्रति ज्ञानसम्पदं ददतोऽन्वहम् ॥१३१॥
मासमेकं विहारेण काशीतः कलिकातिकाम् ।
पौषशुक्लतृतीयायां प्राविक्षन्नष्टवादने ॥ १३२ ॥
योगश्रिया चाद्भुतया महेश्वरी-
भूतस्य तीर्थस्य च जङ्गमात्मनः ।
जनान् समस्तान् पुनतः प्रसन्नया

दृशा च संतोषसुधाकिरा गिरा ॥ १३३ ॥

अभीष्टकल्पद्रुमपादपङ्कज-
स्पर्शस्य चिन्तां भ्रत ईक्षयैव च ।
मूर्तस्य वा पुण्यसमुच्चयस्य च
प्रातः प्रणम्यस्य सदा कृताञ्जलि ॥ १३४ ॥

श्रीमन्महेन्द्रस्य महेश्वरस्य
सान्निध्यतोऽमू श्रमणौ व्यधाताम् ।
असम्भवद्विघ्नकथौ विहारे
सम्यक् परीक्षादिकमिष्टकार्यम् ॥ १३५ ॥

अचिन्तितं न्यायविशारदेति
सत्काररूपं समवापतां च ।
बङ्गज्ञवर्गात् कलिकातिकायां
चिन्तामणौ सन्निहिते कथा का ? ॥ १३६ ॥

(चतुर्भिः कुलकम्)

मासत्रयं तत्र कृतस्थितिः सा
मुनित्रयी श्रीगुरुदर्शनेच्छुः ।
ततो विहारं कृतवत्यमन्दं
काशीपुरीमागमदेकमासम् ॥ १३७ ॥

श्रमापनोदाय च तत्र कञ्चित्
कालं त्रयस्ते श्रमणा अतिष्ठन् ।
ग्रीष्मर्तुतापाभिविवृद्धिभीत्या
ततो व्यहार्षुस्त्वरया पुनस्ते ॥ १३८ ॥

साचे देवके विषे जो देवपणेकी बुद्धि साचे गुरुके विषे गुरुपणेकी बुद्धि तथा साचे धर्मके विषे धर्मपणेकी बुद्धि कैसी बुद्धि शुद्ध अर्थात् सुधी निश्चल संदेह रहित इसको सम्यक्त्व कहियेहै ॥ ऐसी सम्यक्त्वकी बुद्धि थोडे वखतभी जिसको आजावैगी सो प्राणी अर्द्ध पुद्गल परावर्त्त कालमेंही संसारसे निकलके मोक्षको प्राप्त होगा यह निश्चय जाननां. यदुक्तं गाथा अंतो मुहुत्त मित्तंपि फासियं जेहिं हुज्ज सम्मत्तं ॥ तेसिं अवढ पुग्गल परियट्टो चेव संसारो ? अर्थ अंतर्मुहूर्त मात्रभी जिन्होंने सम्यक्त्व स्पर्श कियाहै तिन्होंका अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तही उत्कृष्ट संसार जाननां तदनन्तर अवश्यमेव मोक्षको प्राप्त होवै इति सम्यक्त्व स्वरुपम् सम्यक्त्वका प्रतिपक्षी पदार्थ मिथ्यात्वहै अतएव प्रस्तावागतसे मिथ्यात्वका स्वरुप लिखियेहै ॥श्लोक॥ अदेवे देव बुद्धिर्या । गुरु धीर गुरौ चया ॥ अधर्मे धर्म बुद्धिश्च । मिथ्यात्वं तद्विपर्य यात् ॥ १ ॥ अर्थ ॥ जिसमें देवके गुण नही है ऐसे अदेवमें देवकी बुद्धि जैसें तम (अंधकार) मे उद्योतकी बुद्धि जिसमैं गुरु के गुण नहीं है ऐसे अगुरुमें गुरुकी बुद्धि जैसें नीममें आम्रकी बुद्धि अधर्म यागादिमें जीव हिंसादिक तिसके विषे धर्मकी बुद्धि जैसें सर्पके विषें पुष्पमालाकी बुद्धि सो मिथ्यात्वहै सम्यक्त्वसे विपर्य्य होंनेसें अर्थात् साचे देवके ऊपर अदेवपणेकी बुद्धि जैसें कौशिक (घुग्घू) की सूर्यके तेजके ऊपर अंधकारकी बुद्धि साचे गुरुके ऊपर अगुरुपणेकी बुद्धि जैसें फूल मालाके ऊपर सर्पकी बुद्धि और साचे धर्मके ऊपर अधर्मपणेकी बुद्धि जैसें श्वेत रंगके शंखके ऊपर काचकामल रोग वालेकी नील रंगके शंखकी बुद्धि । तिसको मिथ्यात्व कहिये है सो मिथ्यात्व पांच प्रकारका है । एक आभिग्रहिक दूसरें अनाभिग्रहिक तीसरें आभिनिवेशिक चौथें सांशयिक पांचमें अनाभोगिक । ५ प्रथम आभिग्रहिक मिथ्यात्व सो जो जीव मिथ्या-

व. कुशास्त्रोंके पढनेसे कुदेव कुगुरु कुधर्मके ऊपर आस्ता करके दृढ हुवाहै और ऐसा जानताहैकि जो कुछ मैंनें समुझाहै सोही सत्यहै औरोंकी समुझ ठीक नहींहै जिसको सत्य असत्यकी परीक्षा करनेका मनभी नही हो और जो सत्य असत्यका विचारभी नही करता हो प्रायः करके यह मिथ्यात्व दीक्षित शाक्यादि अन्य मत ममत्व धारकोंको होताहै वह अपने मनमें ऐसे जानतेहैं कि जो मत हमनें धारा है सोही सत्यहै और अन्य सर्व मत झूंठे हैं ऐसे जिसके परिणाम हैं सो आभिग्रहिक मिथ्यात्व है १ ॥ दूसरा अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व सो सर्व मताको अच्छा जानैं सर्व मतोंसें मोक्षहै इस वास्तें किसीको बुरा नही कहिनां सर्व देवोंको नमस्कार करनां ऐसी जो बुद्धि तिसको अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व कहते हैं यह जिन्होंनें कोई दर्शन ग्रहण नहीं किया ऐसे जो गोपाल वालकादि तिनको है क्योंकि यह अमृत और विषको एक सरीखे जानने वालेहै २॥ तीसरा आभिनिवेशिक मिथ्यात्व सो जो पुरुष जानकरके झूंठ वोलै प्रथम तौ अज्ञानसें किसी शास्त्रार्थको भूल गया पीछें जब कोई विद्वान कहै तुम इस विषयमें भूलतेहो तब अपने मनमें सत्य विषयको जांनता हुवाभी झूंठे पक्षका कदाग्रह ग्रहण करै जात्यादि अभिमानसे कहनां न मानें उलटी स्वकपोल कल्पित कुयुक्तियां बना करके अपने मन माने मतको सिद्ध करै वादमें हार जावै तौभी ऐसा जीव हठ नहीं छोडता ऐसा जीव अति पापी और वहुल संसारी होताहै ऐसा मिथ्यात्व प्रायः जो जैनी जैन मतको विपरीत कथन करता है उसमें होताहै गोष्ठ माहिलादिवत् ॥ ३ ॥ चौथा सांशयिक मिथ्यात्व सो देवगुरु धर्म जीव काल पुद्गलादिक पदार्थोंमे कि यह सत्यहै कि यह सत्यहै ऐसी बुद्धि तिसको सांशयिक मिथ्यात्व कहते हैं यथा वह जीव असंख्य प्रदेशीहै वा नहीहै इस तरह जिनोक्त सर्व पदार्थोंमें शंका

करनी सो सांशयिक मिथ्यात्व ॥ ४ ॥ पांचमा अनाभोगिक मिथ्यात्व सो जिन जीवेंको उपयोग नही कि धर्म अधर्म क्या वस्तुहै ऐसे जे एकेंद्रियादि विशेष चैतन्य रहित जीव तिनको अनाभोगिक मिथ्यात्व होताहै ॥ ५ ॥ अथ देव लक्षण माह ॥

॥ श्लोक ॥ सर्वज्ञो जिन रागादि दोषस्त्रैलोक्य पूजितः ॥
यथा स्थितार्थ वादी च देवोऽर्हन परमेश्वरः

॥ ३ ॥ अर्थ ॥ देव सो कहिये जो सर्वज्ञ होवे प्रश्न सर्वज्ञ किसे कहिते हैं उत्तर जो अनंता द्रव्य अनंना क्षेत्रका प्रतर घन खंड वा शूची अंगुल प्रतर अंगुल घन अंगुल करके कल्पित चौदह राजुलोक तथा संपूर्ण अलोक यह क्षेत्र अनन्ता अनंते सूक्ष्म बादर पुद्गल परावर्त्तन आठ वर्गना के गये सकल जीवेंके तथा अनंते आगामी वर्त्तमान एक समय ये तीन कालका समय अनंना आवलिका अनंती मुहूर्त्त अनंते दिवस अनंते वर्ष अनंते यावत् अनंते सागर अनंती उत्सर्प्पिणी अनंती अवसर्प्पिणी अनंते काल चक्रोंका एक पुद्गल परावर्त्त होता है ऐसे अनंतानंत भेद पुद्गल परावर्त्तकी परिणमन पांच द्रव्य के ऊपर जो होयहै तिसे तथा अनंते भाव षट् द्रव्यके गुण पर्य्याय एकेक गुणमें अनंत अनंत पर्य्याय अनंत गुणोंका आश्रय सो द्रव्य ऐसे द्रव्य जगतमें अनंते हैं परंतु जाति वाचकतासें षट् द्रव्यही हैं जीव द्रव्यमें अनंते आत्मा नामें द्रव्य है पुद्गल द्रव्यमें अनंते द्विप्रदेशी अनंते त्रिप्रदेशी यावत् अनंते चतुर् पंच षष्ठ सप्त अष्ट नव दश संख्य असंख्य अनंत प्रदेशी स्कंध हैं अनंत प्रदेशी स्कंधमेंका एक प्रदेश परमाणु तिसमें अनंते गुण एकेक गुणमें अनंत अनंत पर्य्याय हैं ऐसे अनंत पर्य्यायोंमें उत्पाद् १ व्यय २ ध्रुव ३ एक समयमें जो परिणमन करै है ऐसे अनंते भावोंको केवल ज्ञान करिकें जानें तथा हस्तामलककी तरह प्रत्यक्ष केवल

दर्शन करिकें देखै सो सर्वज्ञ कहियै परंतु जैसें लौकिक मतमें विनायकका मस्तक ईश्वरनें छेदन कर दिया ॥ पीछें पार्वतीके आग्रहसें सर्वत्र देखने लगा परंतु किसी जगहभी मस्तक नही देखा तव हाथीके मस्तकको लायकें विनायकके मस्तकके स्थानपर चेप दिया जिस वास्तें विनायकका (गणेशका) नाम गजानन प्रसिद्ध भया इत्यादि यदि ईश्वर (महादेव) सर्वज्ञ होवे तो पार्वतीका पुत्र जान कर विनायकका मस्तक कभी न छेदन करै यदि छेदै तौ जगतमें विद्यमान तिस मस्तकको क्यों न देखै इस वास्तें ऐसे अधूरे ज्ञानवालेको देव न कहियै तथा (जितरागादि दोषः) जे संसारके मूल कारण रागद्वेष काम क्रोध लोभ मोहादिक दोष तिन सर्वको जिसनें जीते हैं निर्मूल किये हैं तिसको देव कहियै जिसमें रागादि दोष होवें तिसको अस्मदादिवत् संसारी जीवही कहियै तिसमें देवपणा न होवै तथा (त्रैलोक्यपूजितः) अर्थात् स्वर्ग मर्त्य पातालके स्वामी इन्द्रादिक परम भक्ति करके जिसको वंदें पूजें नमस्कार करैं सेवैं सो देव कहियै परंतु कितनेक इस लोकके अर्थियोंके वंदनेसे तथा नमस्कारादिकसे देवपणा नही होवे है तथा (यथास्थितार्थवादी) जो यथास्थित सत्य पदार्थका वक्ता सो देव कहियै परंतु जिसका कथन पूर्वापर विरोधी होवै और विचारते हुवे सत्य सत्य मिलै नही सो देव न कहियै ॥ देवोऽर्हन् परमेश्वरः ॥ यह पूर्वोक्त च्यार गुण पूर्ण जिसमें होवैं सो अरिहंत वीतराग परमेश्वर देव कहियै इससें अन्य कोई देव नही है ॥ २ ॥ ऐसा पूर्वोक्त देव पिछाणके आराधना करणी सोही कहते हैं.

॥ श्लोकः ॥ ध्यातव्योयमुपास्योयं मयंशरण मिष्यताम् ॥
अस्यैव प्रतिपत्तव्यं शासनं चेतनास्तिचेत् ॥ ४ ॥

॥ अर्थ ॥ पूर्वे जो लक्षण देवके कहे तिन लक्षणों कर संयुक्त जो देव तिसको एकाग्र मन करी ध्यावना जैसें श्रेणिक महाराजनै साक्षात श्रीमहावीरजीका ध्यान किया तिस ध्यान के प्रभावसे आगामी चउवीसीमें श्रेणिक महाराज वर्ण प्रमाण संस्थान अतिशयादिक गुणों करकें श्रीमहावीर स्वामि सरिखा 'पद्मनाभ' इस नाम करकें प्रथम तीर्थंकर होगा इसी तरह औरोंकोभी तल्लीनपणें देवका ध्यान करनां तथा 'उपास्यात्मम्' ऐसे पूर्वोक्त देवकी उपासना (सेवा) करणी श्रेणिकादिवत तथा इसीदेवका संसारके (भयको टालनहार जानके शरण वांछना इसी देवका शासन मत आज्ञा धर्म अंगीकार करनां 'चेतनास्ति चेत्' जो कोई चेतना चैतन्यपणा है तो सचेतन सर्वज्ञका ध्यान करनां योग्य है क्योंकि सचेतन सर्वज्ञका ध्यानही आतम सिद्धिका निमित्त कारण है परंतु अचेतन तथा केवल स्पर्शेनेन्द्रिय वालेके आगे ध्यान करनां श्रीहेमचंद्राचार्यनें योगशास्त्रके द्वितीय प्रकाशमें ऐसा निष्फल कहा है जैसा अरण्यमें रुदन व धिरके आगें कर्ण जाप तथा अंधके आगें मुख मंडन करनां अतएव साक्षात् वीतरागका ध्यान करनां भव्यजनोंको समुचित है तथा 'चेतनास्ति चेत्' जो कोई चेतना चैत्यन्यपणा है तो सचेतन सजाण जीवको उपदेश दिया सार्थक होवै परंतु अचेतन अजाणको उपदेश दिया क्या काम आवै इस वास्तैं चेतनास्ति चेत् ऐसा कहा ॥ ४ ॥ अब अदेवके लक्षण कहते हैं ॥

॥ श्लोक ॥ ये स्त्री शस्त्राक्ष सूत्रादि रागाधंक कलंकिताः
निग्रहानुग्रहपरास्ते देवास्युर्नमुक्तये ॥ ५ ॥

॥ अर्थ ॥ जिनके पास स्त्री 'कलत्र' होवे तथा खड्ग धनुष्य चक्र त्रिशूलादिक शस्त्र (हथियार) होवे तथा अक्षसूत्र जपमाला

आदि शब्दसे कमंडलु प्रमुख होवै यह कैसे हैं रागादिकके अंक (चिन्ह) हैं सोही दिखावें हैं स्त्रीरागका चिन्ह है जो पासें स्त्री होवे तो जाननाकि इसमें राग है शस्त्र द्वेषका चिन्ह है जो पासें हथियार देखिये तो ऐसा जाणिये कि तिसनें किसी वैरीको मारनां चूरनां अथवा किसीका भय है जिस वास्तें शस्त्र धारण किये हैं अक्ष सूत्र असर्वज्ञपणेका चिन्ह है जो हाथमें माला धारण करै तो जाणियेकि इसमें सर्वज्ञपणा नहीं है यदि होवै तो मणके (दाने) बिना गणती की संख्या जाण लेवै अथवा तिससें अधिक बडा अन्य कोई है जि-सका वो जाप करता है यदि अन्य कोई नहीं है तो जपमालासे किसका जाप करता है ॥ कमंडलू अशुचिपणेका चिन्ह है यदि हाथमें कमंडलु (जलका वरतन) देखियै तो ऐसा जानियैकि यह अशुद्ध है सो शुचि करनेके वास्तें यह कमंडलु धारण करता है ॥ यदुक्तम् स्त्री संगः काममाचष्टे द्वेषं चायुध संग्रहः ॥ व्यामोहं चाक्ष सूत्रादि रशौ चंच कमंडलुः ॥ १ ॥ इन पूर्वोक्त दोषें करकें जे कलंकित दूषित है तथा जिसके ऊपर रुष्टमान होवै तिसको निग्रह (वंधन म-रणादिक) करै और जिसके ऊपर तुष्टमान होवै तिसको अनुग्रह (राज्यादिकके वर) देवें ते देवा० जे ऐसें रागादिकों करकें दूषित है वेदेव मुक्तिके हेतु नही होते हैं ॥ ५ ॥ ऐसे पूर्वोक्त देव अपने सेवकोंको मोक्ष नहीं दे सकते हैं सोही वात फिर कहते हैं ॥

॥ श्लोक ॥ नाट्याट्टहास संगीता द्युपप्लव विसंस्थुलाः ॥
लभयेयुः पदंशांतं प्रपन्नान् प्राणिनः कथं ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ नाट्याट्ट० जे देव नाटकके रसमें मग्न हैं अट्टाट्टहास करते हैं वीणा लेकें संगीत गानादिक करते हैं इत्यादि उपप्लव संसारकी चेष्टा तिनों करकें जे विसंस्थुल निःप्रतिष्ठ (अस्थिर हैं) लंभयेयुः जे आपही ऐसे हैं वे देव अपने प्रपन्न अर्थात् अपने आश्रित सेव-

केोंको शांतपद संसार चेष्टा रहित मुक्तिपद केवल ज्ञानादिक पद कैसें प्राप्त कर सकते हैं जैसें एरंड वृक्ष कल्पवृक्षकी तरह इच्छा नही पूर सकता है यदि किसी मूढ पुरुषनें एरंडको कल्पवृक्ष मानभी लिया तो क्या वो एरंड कल्पवृक्षकी तरैं मनोवांछित दे सकता है अपितु कदापि नहीं दे सकता ऐसें ही किसी मिथ्यादृष्टीनें पूर्वोक्त दूषणोंवाले कुदेवों को सुदेव मान लिये तो क्या वे देव 'परमेश्वर' मोक्षदाता हो सकते हैं अपितु त्रिकालमेंभी नहीं हो सकते ॥ ६ ॥

॥ अथ गुरुके लक्षण कहते हैं ॥

॥ श्लोक ॥ महाव्रत धरा धीरा भैक्ष्य मात्रोय जीविनः ॥
सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मताः ॥ ७ ॥

॥ अर्थ ॥ महाव्रत धरा० अहिंसादि पांच महाव्रतके पूर्णरूप सें धारने व पालनेवाले होवै और आपदा आ पडै तब वर वखत आपदाके धीर 'साहसिक'पणा रखै अपने व्रतोंको विराधै नही कलंकित करै नही बयालीस दूषण रहित भिक्षावृत्ति माधु करी वृत्ति करी अपने चारित्र धर्मके तथा शरीर निर्वाह करनेके वास्ते भोजन करै परंतु भोजनभी ऊनोदरता संयुक्त करै भोजनादिके वास्ते अन्न पाणी रात्रिको (लेपमात्र, सीतमात्र, त्रणमात्र, कष्ट मात्र) भीन रखैक धर्म साधनके उपकरण विना और कुछभी संग्रह नही करै तथा धन धान्य सुवर्ण रूपा (चांदी) मणि मोती प्रवालादि परिग्रह नही रखैके ॥ सामायिकस्था० ॥ राग द्वेषके परिणाम रहित मध्यस्थ वृत्ति होकर सदाकाल सामायिकपणेमैं वर्त्तै ॥ धर्मोपदेश० ॥ जो धर्म भव्य जीवोंको संसार सागरसै तरनेके वास्तैं सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप परमेश्वर अरिहन्त भगवन्तनैं स्याद्वाद अनेकान्त स्वरूप निरूपण किया है तिस धर्मका जे भव्य जीवों के ताई उपदेश करै परंतु ज्योतिष शास्त्र अष्ट प्रकारका

निमित्त शास्त्र वैद्य शास्त्र धन उत्पन्न करणेका शास्त्र राज सेवादि अनेक शास्त्र जिनसे धर्मको बाधा पहुंचे तिनका उपदेश न करै ऐसे गुरु कहिये काष्ठमय नौका समान आपभी तरैं और औरोंको भी तारै ॥ ७ ॥

॥ अथ अगुरुके लक्षण कहते हैं ॥

॥ श्लोक ॥ सर्वाभिलाषिणः सर्व भोजिनः सपरिग्रहाः ॥
अब्रह्म चारिणो मिथ्योपदेशा गुरवोनतु ॥ ७ ॥

॥ अर्थ ॥ सर्वा० स्त्री धन धान्य हिरण्य (सोना) रूपादिक सर्व धातु क्षेत्र हाट हवेली चतुःपदादिक अनेक प्रकारके पशु इन सर्वकी अभिलाषा है जिनको वे सर्वाभिलाषिणः सर्व भोजिनः अर्थात् मधु मांस मांखण मदिरा तथा अनंतकाय अभक्ष्यादिक सर्व वस्तुके भोजन करणेवाले होवैं किसी भी वस्तुको छोडें नहीं सपरिग्रहाः अर्थात् जे पुत्र कलत्र धन धान्य सुवर्ण रूपा क्षेत्रादिक करी सहित हैं ॥ अब्रह्म० अर्थात् अब्रह्मचारी हैं ॥ मिथ्यो० अर्थात् मिथ्या वितथ (झूठे) धर्मका उपदेश करैं झूंठा धर्म प्रकाशैं ज्योतिष निमित्त वैदक मंत्र-तंत्रादिकका उपदेश देवैं वे गुरु नहीं लोहमय बेडी (नाव) समान आपभी डूबे और अन्योंकों भी डुबावैं ॥८॥ पूर्वोक्त बातही कहते हैं॥

॥ श्लोक ॥ परिग्रहारंभ मग्नास्तारयेयुः कथं परान् ॥
स्वयं दरिद्रो न परमीश्वरी कर्तुमीश्वरः ॥ ९ ॥

॥ अर्थ ॥ परिग्रहा० स्त्री घर लक्ष्मी आदि परिग्रह और क्षेत्र कृषी व्यवसायादि आरंभ इनमें जे मग्न हैं वे अपही भवसमुद्रमें डूबे हुवे हैं तो तारयेयुः कथं० वे किस तरहसे दूसरे जीवोंका संसार-सागरसे तार सकते हैं इस बातमें दृष्टान्त कहते हैं जो पुरुष आपही दरिद्री है सो परको ईश्वर (लक्ष्मीवंत) करनेको समर्थ नहीं है तैसें ही वे कुगुरु आपही संसारमें डूबे हुए पर अपने सेवकोंको कैसे तार सकें ॥ ९ ॥ अथ धर्मलक्षण माह ॥ अब सत्य धर्मका लक्षण कहते हैं ॥

॥ श्लोक ॥ दुर्गति प्रपतत् प्राणि धारणाद्धर्म उच्यते ॥
संयमादिर्दशविधः सर्वज्ञोक्तो विमुक्तये ॥ १० ॥

॥ अर्थ ॥ दुर्गति० नरक तिर्यंच कुमनुष्य कुदेवत्वादि दुर्गतिमें गिरते हुवे प्राणीकी रक्षा करै गिरने न देवै इस वास्तै धारणा करणेसे धर्म कहियै सो संयमादि दश प्रकार सर्वज्ञका कथन करा हुवा धर्म पालनेवालेको मोक्षके वास्ते होय है संयमादि दश प्रकार यह हैं संयम जीवदया १ सत्यवचन २ अदत्तादान त्याग ३ ब्रह्मचर्य ४ परिग्रह त्याग ५ तप ६ क्षमा ७ निरहंकारता ८ सरलता ९ निर्लोभता १० ॥ इससे उलटा हिंसादिमय असर्वज्ञोक्त धर्म दुर्गतिकादी कारण है ॥ १० ॥ अथ अधर्मत्वमाह ॥ अब अधर्मत्वका लक्षण कहते हैं ॥

॥ श्लोक ॥ अपौरुषेयं वचन मसंभवि भवेद्यादि ॥
न प्रमाणं भवेद्वाचां ह्याप्ताधीना प्रमाणता ॥ ११ ॥

॥ अर्थ ॥ अपौरुषेयं० अपौरुषेय वचन असंभवि है अर्थात् संभव रहित है क्योंकि जो वचन है सो किसी पुरुषके बोलनेसेंही है विना बोले नहीं वच परिभाषणे इति वचनात् और अक्षरोत्पत्तिके उर आदि आठ स्थान नियतहैं सो भी पुरुषकेंहीं होतेहैं अतएव वचन पुरुषके विना संभवै नहीं क्योंकि 'भवद्वाचांह्याप्ताधीना प्रमाणता' वचनोंकी प्रमाणता आप्त पुरुषोंके आधीन है ॥ ११ ॥ असर्वज्ञोक्त धर्म प्रमाण नहीं यह कहतेहैं ॥

॥ श्लोक ॥ मिथ्यादृष्टि भिराम्नातो हिंसाद्यैः कलुषीकृतः ॥
सधर्म इति चित्तोपि भवभ्रमण कारणम् ॥ १ ॥

॥ अर्थ ॥ मिथ्या० मिथ्यादृष्टि असर्वज्ञोंने अपनी बुद्धिसे कहा हुवा पशुमेध अश्वमेध नरमेधादि यज्ञोंके कथनसे और 'अपुत्रस्य-

गतिर्नास्ति' इत्यादि कथनसे जीव वधादिको करकें जो धर्म मलीन है सधर्म० सो धर्म है अर्थात् यज्ञादि हिंसा धर्मही है ऐसा अज्ञाण लोकोंमें विशेष प्रसिद्ध है तो भी भवभ्रमण .(संसार भ्रमण) का कारण है यथार्थ धर्मके अभावसे ॥ १२ ॥ अथ कुदेव कुगुरु कुधर्म निंदामाह॥

॥ श्लोक ॥ सरागोपिहि देवश्चेद्गुरुरब्रह्मचार्यपि ॥
कृपाहीनोपिधर्मस्यात् कष्टं नष्टं हहाजगत् ॥ १३ ॥

॥ अर्थ ॥ सरागोपि० यदि जगतमें सरागः रागद्वेषादि करी सहित भी देव होवै अब्रह्मचारी मैथुनाभिलाषीभी गुरु होवै और दयाहीनभी धर्म होवै तौ हाहा इति खेदे बडा भारी कष्ट है संसार लक्षण जगत् नष्ट हुवा दुर्गतिमें पडनेसे क्योंकि पूर्वोक्त देवगुरु धर्म करकें डूवनाही होवै ॥ १३ ॥ ऐसे पूर्वोक्त अदेव अगुरु अधर्मका परित्याग करकें सत्य देव गुरु धर्मकी आस्था करनी तिसका नाम व्यवहार सम्यक्त है सो सम्यक्त हृदयमें है ऐसा पांच लक्षणों करके मालुम होता है वे पांच लक्षण यह हैं ॥

॥ श्लोक ॥ शम संवेग निर्वेदानुकंपा स्तिक्य लक्षणैः ॥
लक्षणैः पंचभिः सम्यक् सम्यक्तमुपलक्ष्यते ॥ १४ ॥

॥ अर्थ ॥ शम संवेग० । जिस जीवमें अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभका उपशम देखियै अर्थात् अपराध करनेवालेके ऊपर जिसको तीव्र कषाय उत्पन्न होवैही नहीं यदि उत्पन्न होवै तो तिस क्रोधादिको निष्फल कर देवै इस शमरूप लक्षणसें जानियैकि [illegible] जीवमें सम्यक्त है ॥ १ ॥ संवेग-जिसके हृदयमें संवेग [illegible] वैराग्यपणा होवै तिस जीवमें संवेगरूप लक्षणसे सम्यक्त [illegible] ॥ २ ॥ संसारके सुखों ऊपर द्वेषी वैराग्यवान . परवशपणे [illegible] दिकके दुःखसे गृहस्थपणेमें रहा हुवा मो[illegible]

तिसमें निर्वेदरूप लक्षणसें सम्यक्त है ॥ ३ ॥ जिसके हृदयमें दुःखि जीवोंको देखके अनुकंपा (दया) उत्पन्न होवे दुःखि जीवोंके दुःखोंको दूर करनेका चिंतवन होवै जो दुःखी जीवोंको देखके अपने मनमें दुःखी होवै शक्ति अनुसार दुःखि जीवोंके दुःखोंको दूर करै तिसमें अनुकंपारूप लक्षणसे सम्यक्त उपलक्षित होता है ॥४॥ जिनोक्त तत्वोंमें अस्ति भावका होना सो आस्तिक्य ॥ ५ ॥ एतावता शम १ संवेग २ निर्वेद ३ अनुकंपा ४ और आस्तिक्य ५ इन पांच लक्षणोंसे हृदयगत सम्यक्त जानिये है ॥१४॥ अथ सम्यक्त के पांच भूषण कहते हैं ॥

॥ श्लोक ॥ स्थैर्य्यं प्रभावना भक्तिः कौशलं जिन शासने ॥
तीर्थ सेवा च पंचास्य भूषणानि प्रचक्ष्यते ॥ १५ ॥

॥ अर्थ ॥ स्थैर्य्यं० स्थैर्य्य—जिन धर्मके विषे स्थिरता ॥ १ ॥ जिन धर्मकी प्रभावना ॥ २ ॥ जिन धर्ममें भक्ति ॥ ३ ॥ जिन शासनमें कुशलता ॥ ४ ॥ और साधु साध्वी श्रावक श्राविकारूप चतुर्विध तीर्थोंकी सेवा ॥ ५ ॥ ये पांच सम्यक्तके भूषण हैं ॥ अथ सम्यक्तके पांच दूषण कहते हैं ॥

॥ श्लोक ॥ शंका कांक्षा विचिकित्सा मिथ्यादृष्टि प्रशंसनम् ॥
तत्संस्तवश्च पंचापि सम्यक्तं दूषयंत्यमी ॥ १६ ॥

॥ अर्थ ॥ शंका० शंका—धर्म है वा नही इत्यादि संदेह ॥ १ ॥ आकांक्षा—अन्य अन्य धर्मकी अभिलाषा करना ॥ २ ॥ विचिकित्सा—धर्मके फलका संदेह ॥ ३ ॥ मिथ्यादृष्टिकी प्रशंसा करना ॥ ४ ॥ और मिथ्यादृष्टियोंका परिचय करना ॥ ५ ॥ यह पांच सम्यक्तको दूषित करतेहैं ॥ १६ ॥ अतएव भव्य जनोंको सम्यक्तके पांच दूषण परिहरके सम्यक्तके पंच भूषणोंसें सम्यक्तको भूषित करना समुचित है ॥ इति सम्यक्त स्वरूप समाप्त ॥

आनुपूर्वी.

१

१	२	३	४	५
२	१	३	४	५
१	३	२	४	५
३	१	२	४	५
२	३	१	४	५
३	२	१	४	५

२

१	२	४	३	५
२	१	४	३	५
१	४	२	३	५
४	१	२	३	५
२	४	१	३	५
४	२	१	३	५

३

१	३	४	२	५
३	१	४	२	५
१	४	३	२	५
४	१	३	२	५
३	४	१	२	५
४	३	१	२	५

४

२	३	४	१	५
३	२	४	१	५
२	४	३	१	५
४	२	३	१	५
३	४	२	१	५
४	३	२	१	५

५

१	२	३	५	४
२	१	३	५	४
१	३	२	५	४
३	१	२	५	४
२	३	१	५	४
३	२	१	५	४

६

१	२	५	३	४
२	१	५	३	४
१	५	२	३	४
५	१	२	३	४
२	५	१	३	४
५	२	१	३	४

७

१	३	५	२	४
३	१	५	२	४
१	५	३	२	४
५	१	३	२	४
३	५	१	२	४
५	३	१	२	४

८

२	३	५	१	४
३	२	५	१	४
२	५	३	१	४
५	२	३	१	४
३	५	२	१	४
५	३	२	१	४

९

१	२	४	५	३
२	१	४	५	३
१	४	२	५	३
४	१	२	५	३
२	४	१	५	३
४	२	१	५	३

१०

१	२	५	४	३
२	१	५	४	३
१	५	२	४	३
५	१	२	४	३
२	५	१	४	३
५	२	१	४	३

११

१	४	५	२	३
४	१	५	२	३
१	५	४	२	३
५	१	४	२	३
४	५	१	२	३
५	४	१	२	३

१२

२	४	५	१	३
४	२	५	१	३
२	५	४	१	३
५	२	४	१	३
४	५	२	१	३
५	४	२	१	३

१३

१	३	४	५	२
३	१	४	५	२
१	४	३	५	२
४	१	३	५	२
३	४	१	५	२
४	३	१	५	२

१४

१	३	५	४	२
३	१	५	४	२
१	५	३	४	२
५		३	४	२
३	५	१	४	२
५	३	१	४	२

१५

१	४	५	३	२
४	१	५	३	२
१	५	४	३	२
५	१	४	३	२
४	५	१	३	२
५	४	१	३	२

१६

३	४	५	१	२
४	३	५	१	२
३	५	४	१	२
५	३	४	१	२
४	५	३	१	२
५	४	३	१	२

१७

२	३	४	५	१
३	२	४	५	१
२	४	३	५	१
४	२	३	५	१
३	४	२	५	१
४	३	२	५	१

१८

२	३	५	४	१
३	२	५	४	१
२	५	३	४	१
५	२	३	४	१
३	५	२	४	१
५	३	२	४	१

१९.

२	४	५	३	१
४	२	५	३	१
२	५	४	३	१
५	२	४	३	१
४	५	२	३	१
५	४	२	३	१

२०

३	४	५	२	१
४	३	५	२	१
३	५	४	२	१
५	३	४	२	१
४	५	३	२	१
५	४	३	२	१

॥ भजन. ॥

तर्ज ॥ पूजन पापान कब तक नहीं छोडैागे ॥

प्रभु हम अज्ञानैंको–टुक दीजे ज्ञान ॥ टेर ॥

मोह कुमति शत्रुनैं घेरा । विषयननें डारा डेरा ॥ मर गये सगरे मान ॥ प्रभु० ॥ १ ॥ बहु नर्कादिक दुख पायो । अब नर गणितीमैं आयो ॥ सुने जिन बैन महान ॥ प्रभु० ॥ २ ॥ अब यह निज मनमैं ठानी । सुन करकैं श्री जिन वानी ॥ धरूं जिन अविचल ध्यान ॥ प्रभु० ॥ ३॥ लऊं शिव पद कर तुम भक्ती । प्रभु 'चेतन' मइ है शक्ती ॥ मिलै तुम पद निर्वान ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥ इति ॥ १ ॥

॥ पुनः ॥ इसी रागमैं ॥

विन श्री जिनकी वाणी । कोईय न तारनहार ॥ टेर ॥ राय श्रेणक समकित पाई । जो मिथ्या तिमर हटाई ॥ लेसी जिन पद सार ॥ विन० ॥ १ ॥ संसार समुद्र है भारी। जामैं क्रोध लोभ जल खारी ॥ कर्म गती मझ धार ॥ विन० ॥ ॥ २ ॥ ईशान चमर मिथ्याती । जिन वाणी जब घट भाती ॥ होंगे भवदधि पार ॥ विन० ॥ ३ ॥ उरग अमर पद पायो ॥ प्रभु चरणा ध्यान लगायो ॥ श्री पारस उपकार ॥ विन० ॥ ४ ॥ जस मान मोह मद छायो । ये वाणी सुनत विलायो ॥ कियो क्षणमैं परिहार ॥ विन० ॥ ५ ॥ जिन वाणी चित नहिं धारी । जयमाली बहु संसारी ॥ भ्रमैं संसार मझार ॥ विन० ॥ ६ ॥ जब तक गुरु सीख मिलै नां । तब तक कछु ठीक लगै नां ॥ जीयो कहत पुकार ॥ विन० ॥ ॥ ७ ॥ इति ॥ २ ॥

॥ पुनः इसी रागमैं ॥

उतरूं कयसे पार । करम नदी गहिरी है ॥ टेर ॥

जहां तेरह मगर जबर है । अरु उठते आठ भमर हैं ॥

कोईय न खेवनहार ॥ करम० ॥ १ ॥ जहां मछली पंच सवल हैं । मुझ नैया वहुत निवल है ॥ घूम रही मझ धार ॥ करम० ॥२॥ तृष्णाकी पवन प्रवल है । अरु काल मल के दो दल हैं ॥ कयसे हो निस्तार ॥ करम० ॥ ३ ॥ जव तक गुरु मल्हा मिलै नां । यह नैया पार लगै नां ॥ जीयो कहत पुकार ॥ करम० ॥ ४ ॥ इति ॥ ३ ॥

॥ होरी. ॥

॥ छोडौ डगर हमारो । स्यॉम विंध जाओगे नयननमें ॥ जो तेरे मनमैं होरी खेलनकी तौ ले चल कुंजनमैं ॥ ए राग. ॥

छोडौ टेक तुम्हारी स्यांम रुलि जाओगे नर्कनमैं टेर॥ इत अपजस उतगति है खोटी ॥ रुलै तिहुं लोकनमैं ॥ छोडौ० ॥ १ ॥ तन धन जोवन मनको छीनैं ॥ भरे जाऔ नर्कनमैं ॥ छोडौ० ॥ २ ॥ रामसे राजा लछीसे भईया ॥ गंधन कपिदलननमैं ॥ छोडौ० ॥ ३ ॥ राजपाट लकाको छीनैं ॥ मारे सवको एक छिनमैं ॥ छोडौ० ॥ ४ ॥ सीना सती तो वडीरे स्वरुपा क्या करुं वर्णन मैं ॥ छोडौ० ॥ ५ ॥ फिर पछिताओगे मानौं हमारी ॥ करौ सीता रघु चरणनमैं ॥ छोडौ० ॥ ६ ॥ रावण भाषै सुनि मंदोदरि ॥ क्या मारै सर श्रवणनमैं ॥ छोडौ० ॥ ७ ॥ मैं वलवन्त अमर हूं जोधा ॥ राम परै मुझ सरणनमैं ॥ छोडौ० ॥ ८ ॥ मर्ण वेला जाके शिरपर छाई ॥ कैसे पलटै वो वचननमैं ॥ छोडौ० ॥ ९ ॥ कहित जीयो जो भावी होवै ॥ सोई रुचै मनु तन मनमैं ॥ छोडौ० ॥ १० ॥ इति ॥ ४ ॥

एको धनी दरिद्रोऽन्यो विद्वानेको जडोऽपरः ।
स्वाम्येकः सेवकोऽन्यश्च कश्चित्क्षुत्क्षामकुक्षिकः ॥१४८॥
इत्येवं तद्विजातीयमन्योन्यं भवकानने ।
पश्यन्तोऽपि न तद्धेतुं लोका लोकामहे जडाः ॥१४९॥
शुभकर्मवशं सौख्यं विपरीताद् विपर्ययम् ।
अस्माभिः सम्यगालोच्याभ्युपेयं तदिदं ध्रुवम् ॥१५०॥
तन्निरुध्य द्विधा कर्म पूर्वकर्म निहत्य च ।
शेरते सुखमद्वैतं धन्या योगप्रभावतः ॥१५१॥
अष्टषष्ठ्यधिके चैकोनविंशतिशताब्दके ।
द्वादश्यां प्रथमाषाढधवलायां तिथौ पुनः ॥१५२॥
प्रगेऽष्टवादनाकाले श्रीमहेन्द्रमुनीशितुः ।
शोभनं ध्यायतः पञ्चपरमेष्ठिनमस्क्रियाम् ॥१५३॥
पञ्चविंशतिवर्षायुः समापितव्रतः पुनः ।
वेगात् प्रास्थिषत प्राणा लोचनाम्भोरुहाध्वना ॥१५४॥
(त्रिभिर्विशेषकम्)

पुरेऽत्र च श्राद्धगणैः सुभक्तितः
महोत्सवात् खिन्नमनस्कमादृतात् ।
स्मशानभूमावुपनीय तद्वपुः
सुसंस्कृतं केवलचन्दनाग्निना ॥ १५५ ॥
समाद्रियेते स्म च देववन्दनं
श्रीमङ्गल-न्यायमुनी सखेदकम् ।
सरागचारित्ररमानुभाविनः

खिद्यन्त्यहो ! सद्विरहेऽपि साधवः ॥ १५६ ॥

ततो व्यतीत्य त्रिदिनीममू मुनी

मुक्त्वा पुरं कर्णपुरं समागतौ ।

आग्रापुरं श्रीगुरुदर्शनोद्भवा-

मोदौ पयोदर्तुमतिष्ठतामिह ॥ १५७ ॥

आशास्महेऽन्तःकरणेन निर्भरं

महानुभावः स मुनिर्महेश्वरः ।

अस्मत्परोक्षं परलोकमाश्रितः

प्रपद्यतां निर्मलसातसंततिम् ॥ १५८ ॥

अतः परं त्वन्मुखदर्शनं गतं

कथाप्रसङ्गस्य कथा तु का भवेत् ? ।

संबन्ध एवैत् किमनल्पमुच्यते

विभीषणा हन्त ! भवस्य पद्धतिः ॥ १५९ ॥

अभ्यर्थनां कुर्म इमां महेश्वर !

स्वशक्तिलब्धे परलोकवैभवे ।

आकण्ठमग्नोऽपि कृपां विधाय नः

कदाचनानेष्यसि वर्त्मनि स्मृतेः ॥ १६० ॥

कृतिरेषा शास्त्रविशारदजैनाचार्यश्रीविजयधर्मसूरीश्वर-

चरणकमलमधुकरायमाणमुनिशिशु-

न्यायविजयस्य ।

अद्यावधि मुद्रिता ग्रन्थाः

१. प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारः—जैनन्यायदर्शनस्यापूर्वोऽयं प्रवेशग्रन्थः, कर्ता चास्य श्रीवादिदेवसूरिः। मूल्यम् ०-८-०

२. हैमलिङ्गानुशासनम्—अवचूरिसहितम् । लिङ्गबोधकोऽयं मनोहरो ग्रन्थः । कर्ताऽस्य श्रीहेमचन्द्राचार्यः। ,, ०-५-०

३. सिद्धहेमशब्दानुशासनम्—लघुवृत्तिधातुपाठादिसहितम् । कर्ताऽस्य श्रीहेमचन्द्राचार्यः । ,, ३-०-०

४. गुर्वावली (द्वितीयावृत्तिः) श्रीमुनिसुन्दरसूरिविरचिता ०-४-०

५. रत्नाकरावतारिकायाः टिप्पणपञ्जिकासहितायाः परिच्छेदद्वयम्—प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारस्य व्याख्यानरूपं रत्नप्रभाचार्यविरचितम् । ,, १-०-०

६. सिद्धहेमशब्दानुशासनम्—मूलमात्रम् । ,, ०-५-०

७ स्तोत्रसंग्रहस्य प्रथमोभागः । (द्वितीयावृत्तिः) " ०—६—०

८. मुद्रितकुमुदचन्द्रप्रकरणम्-श्रीश्रावकयशश्चन्द्रकृतम् ,, ०-८-०

९ स्तोत्रसंग्रहस्य द्वितीयो भागः । (द्वितीयावृत्तिः) " १—०—०

१०. क्रियारत्नसमुच्चयः—गुणरत्नसूरिरचितः । ,, २-०-०

११. श्रीसिद्धहेमशब्दानुशासनसूत्रपाठस्याकारादिक्रमेण सूचीपत्रम् । ,, ०-४-०

१२. कविकल्पद्रुमः । कर्ता चास्य श्रीहर्षकुलगणिः ।,, ०-४-०

१३. सम्मतितर्काख्यप्रकरणस्य प्रथमो विभागः, श्रीसिद्धसेनदिवाकररचितः । श्रीराजगच्छीयाभयदेवसूरिरचितया तत्त्वबोधविधायिन्या व्याख्यया विभूषितः ।,, ३-०-०

१४. जगद्गुरुकाव्यम्-श्रीपद्मसागरगणिविरचितम् ,, ०-४-०

१५. श्रीशालिभद्रचरित्रम्—टिप्पनसहितं, श्रीधर्मकुमारसुधिया विरचितम् । अपूर्वोऽयं कथाग्रन्थः, (पत्राकारे),, १-४-०

१६. धर्मसंग्रहस्य प्रथमो विभागः, (पत्राकारे) ,, ०-४-०

१७. षड्दर्शनसमुच्चयः—श्रीराजशेखरसूरिविरचितः,, ०-४-०

१८. शीलदूतम्—श्रीचारित्रसुन्दरगणिविनिर्मितम् । ,, ०-४-०

१९. [illegible],, ०-४-०

આજના અંકનો વધારો.

હે જૈન જ્ઞાતિના આગેવાનો વૃદ્ધ વિવાહ અટકાવો, અને સુકોમળ બાળાઓનો આશીર્વાદ લ્યો.

યાને

બુઢ્ઢા વરોને લગ્ન મંડપમાંથી અપમાન સહિત પાછા થતા અને માથા કુટતા જુઓ.

કન્યાવિક્રયનો કેર.

સંગ્રહ કર્તા બાઇ વેજબાઇ ખીમજી.

ઓ. મે. શ્રી ક. જૈ. સ. સ. માંડવી—મુંબઈ.

પ્રસિદ્ધ કર્તા,

મેસર્સ મેઘજી હીરજીની કું૦ જૈન બુકસેલર્સ એન્ડ પબ્લીશર્સ,

પાયધુની નં૦ ૫૬૬—મુંબઈ.

ધી આનંદ પ્રીન્ટીંગ પ્રેસ—ભાવનગર.

પ્રત ૪૦૦૦. સને ૧૯૧૧.

રાસભ બુઢ્ઢાના પાસમાંથી બાળાઓનો બચાવ.

વિનંતી.

બાનુઓ અને સદ્‍ગ્રહસ્થો,

કર્યું જો એક પાતકતો, કરી બીજાં બહુ પાપો;
પતાકા પાપની ફરકાવી, આ સાર છે માથાનો;

આ પુસ્તક છપાવવાનો અમારો ઉદ્દેશ એજ છે કે જ્યારે કેટલાકો કીડી, મકોડી, પશુ પક્ષી ઇત્યાદિની જે હિંસા થાય છે તે અટકાવવાને મહાન પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે ત્યારે અમને વિચાર થયો કે આપણી કોમમા ૧૨ વરસની સુકોમળ કન્યા એક પચાસ વરસની ઉમરના વૃદ્ધને પરણે એ શું હીંસા નથી ? વિચાર કરતાં નક્કી થયું કે એ હિંસા છે, અને તે કેમ અટકે તેના અનેક તરંગો મારા મગજમાં ઉછળવા લાગ્યા, અને તરત પુનાની કોનફરન્સમાં ‘ શ્રીયુત **શિવજીભાઇ**એ કન્યાવિક્રય ઉપર જે પદ ગાઇ સંભળાવ્યું હતું અને તે વખતે કોનફરન્સના મંડપમાં જે બાનુઓ અને સદ્‍ગ્રહસ્થોની સંખ્યા હતી તે કવિતા સાંભળીને તરત મુનીરાજ શ્રી અમરવિજયજીને વિનંતી કરી કે મહારાજ અમો હવે પછી કન્યાવિક્રય ન કરીએ તેવા પચ્ચખાણ આપો આથી મને લાગ્યું કે તે કવિતા ચૌદ લાખ જૈનોમા વંચાય તેવી ગોઠવણ થાય તો સારૂં ત્યારબાદ શ્રીયુત **શિવજીભાઇ**ના બનાવેલા કન્યાવિક્રયના અને વૃદ્ધ વીવાહની વિપત્તી વીશે કેદીજીવના રાસમાં અનેક પદો મારા વાંચવામાં આવ્યા અને તેની ઓછામાં ઓછી એક લાખ કોપી છપાવવાનો વિચાર થયો અને અંતઃકરણમા નક્કી થયું કે જો એક લાખ માણસો આ વાંચે તો એક લાખમાથી ૭૫ ટકા વૃદ્ધ લગ્ન કરવા પોતાના વીચાર માંડી વાળે. પણ

કન્યાવિક્રય તિરસ્કાર.

મારી સાથે છે વિદ્યા દેવી સહાયકારીરે:—એ રાગ.

સુણો મિત્રો વિનતડી આજ મારીરે, જે છે દુષ્ટ રીવાજની સુણો. ૧
કન્યા વિક્રય રીત નઠારી; હાંકી કાઢો દેશથી દૂર એનેરે.
જે છે સુણો. ૨

પાપી પિતાઓ પેટને માટે, વેચે બાળા દ્રવ્ય લઈ આજ જુઓરે,
જે છે દુષ્ટ રીવાજની સુણો. ૩

પણ કહું છું હું તો તમને, ઉઠો જલદી લગાડો ન વાર જરીરે,
જે છે દુષ્ટ રીવાજની સુણો. ૪

ભુખે મરશું ભિક્ષા ધરશું સહી કષ્ટ કાઢશું ચાલ ખોટીરે
જે છે દુષ્ટ રીવાજની સુણો. ૫

કન્યા વિક્રયને બંધ કરાવી લેશું સારી પુન્ય તણી પાળ બાંધીરે
જે છે દુષ્ટ રીવાજની સુણો. ૬

સૌથી પહેલાં એજ સુધારો, કરવા માંડે કહે શિવ આજ ભાઈરે,
જે છે દુષ્ટ રીવાજની સુણો. ૭

શિવવિનોદ ભાગ ૧ લો.

૨

મારૂં વિદ્યાચંદ્ર નામ માટે કરવા તેવા કામ:—એ રાગ.

સુણજો મિત્રો મારા આજ, મારે કરવું મોટું કાજ. એ (ટેક)

આજ કાલમા કન્યા વિક્રય, થાએ છે બહુ ભારી,
કાઢું તેને કમર બાંધી, જે છે ચાલ નઠારી. સુણજો. ૧

નિર્મળ બાળા નિત્ય કકળતી, અંતર બાળી રૂવે;
ઘરડા વરને પરણી માટે, રાત દિવસ નહિ સુવે. સુણુજો. ૨

દાત વિનાના બુઢા વરને, જોઇ વિચારે બાળા:
રાક્ષસ જેવા દુષ્ટપતિ શું, કરશે કાલાવાલા. સુણુજો. ૩

નિર્દય બાપે પૈસા કાજે, જન્મારો મુજ ખોઇ;
પોતે બેઠો મોજ મજામાં, કાઢું આયુ રોઇ. સુણુજો. ૪

દયા હોય જો દિલમા તમને, તો કાઢો આચાલ;
શિવપદ મળશે નિશ્ચે ભાઇ, માની કાઢો હાલ. સુણુજો. ૫

શિવ વિનોદ ભાગ ૧ લો.

૩

(૧) કન્યા વિક્રય વિષે.

કુંવરી કુંવર મારા લાડકા:—એ રાગ.

જાગી જુઓ જૈન બંધુઓ, કન્યારત્ન વેચાય,
માનવ દેહ ધરી કરી, પશુ તુલ્ય ગણાય. જાગી. ૧

શ્રાવક નામ ધરી કરી, કરે કન્યાનો ઘાત;
નિર્દય આપ જાણો ખરે, નથી પુછતી નાત. જાગી. ૨

જિન દરશન કરવા મથે, પૂજન કરવાને ધાય;
કરતાં તિલક કપાળમાં, કેમ શરમ ન થાય. જાગી. ૩

સામાયિક પાળે પ્રીતથી, પ્રતિક્રમણુમા પ્રેમ;
કન્યા રીબાવી મારવા, નથી આવતી રહેમ. જાગી. ૪

વ્યાખ્યાન શ્રવણુ કરે સદા, ભકિત ભાવ ધરાય;
બાળા ચઢાવે શુળીએ, જૈન નામ લજાય. જાગી. ૫

ગાય બચાવે પ્રેમથી, દયા ધર્મો મનાય;
નિજ કન્યાને મારવા, ચિત્ર ઘાટ ઘડાય. જાગી. ૬

કન્યાવિક્રય કરનાર તો, નરક નિગોદે જાય;
સહાય કરે જે માનવી, તે પણ સાથે સધાય. જાગી. ૭

શ્રીમંત વર્ગ સુણો સહુ, કરે બાલા બહુ શોક;
દયા કરો અબળાપરે, આયુ વિતાવો શું ફોક. જાગી. ૮

લીલોતરી બાધા કરો, લોક, રંજન કાજ,
કીડી બચાવો દંભથી, નથી અબળાનો સાજ, જાગી. ૯

સત્ય દયાળુ જો હશો, કરશો પચ્ચખાણુ;
કન્યા વિક્રય કરવો નહિ, ભલે જાયરે પ્રાણ. જાગી. ૧૦

ઉપદેશક લેખક સહુ, કરો પુન્યનું કામ;
અબળા રક્ષક જો થશો, લેશો શિવપદ ધામ. જાગી. ૧૧

શિવવિનોદ ભાગ ૧ લો.

૪

હાય કેમ આ સહેસે ઉજેની રંડાપો:—એ રાગ.

જૈન બધુઓ હિંસા થાએ બહુ ભારી;
હિંસા થાએ બહુ ભારી, પિતા વેચે પુત્રી નિજ પ્યારીરે. જૈન. ૧

આર્ય દેશ થયો પાય માલ, બહુ દીન થયા ધનપાલ,
થયા સહુનારે હાલ હવાલરે. જૈન. ૨

કન્યા વિક્રયને ગણો ઝેર, વર્તી રહ્યો અરે કાળો કેર;
બાંધો પુત્રી સાથે કા વેરરે. જૈન. ૩

કન્યા માને પિતાનો આધાર ધન લેવા થયો તે તૈયાર;
ગાય જેવી થઈ નિરાધારરે. જૈન. ૪

રક્ષા કરે તેને માનો બાપ, થઇ બેઠા હવે તો તે સાપ;
વિત્ત માટે કરો સદા જાપરે. જૈન. ૫

હેતવાળી થઇ ક્રુરમાતા, નિજ પુત્રીને આપે ન શાતા;
થઇ વૈધવ્યતાની તે દાતારે. જૈન. ૬

માન ભુખ્યા થયા આગેવાન, ધર્મ ભુલી થયા તે હેવાન;
નથી ધરતા હૃદય કાંઇ શાનરે જૈન. ૭

રંક ગણાળાને આપોરે સાજ, રાખો કોમ તણી કાંઇ લાજ;
કરો પરોપકારનું કાજરે. જૈન. ૮

કન્યા વિક્રયનું તજો ગાન, નષ્ટ થશે એથી તમ ધન;
નીચ વૃત્તિવાળું થશે મનરે. જૈન, ૯

નીચ પિતા લેવા બેઠા દામ, લજાવે તે ખરે જૈન નામ,
ગુમાવ્યું તેણે શિવપદ ધામરે. જૈન. ૧૦

શિવ વિનોદ ભાગ ૧ લો.

૫

(૨) કન્યા વિક્રયની કહાણી.

અપુર્વ અવસર એવો ક્યારે આવશે—એ દેશી.

કન્યા વિક્રય અધમ દુષ્ટ રીવાજ છે,
કરજો તેને હિમ્મતથી દેશ દૂરજો;
અધમ દશા ભારતની થઇ દુઃખ કારજે,
કારણરૂપ ગણી કરજો ચકચુરજો. કન્યા. ૧

અધમાધમ નર આર્ય દેશમાં જન્મીને,
પાપ કરીને કરે દેશનો નાશજો;
પ્રમાદવશ થઇ મૂરખ ચાહે વિત્તને,
દુર્નીતિમાં કરે પ્રીતથી વાસજો. કન્યા. ૨

વિવિધ હુન્નરનો શોખ ધરે નહિ ચિત્તમાં,
વળી વિદ્યાનો અંતરમાં ન પ્રવેશજો,
મહા મોહ દુર્ધર વૈરીના પાસથી.
ધારે નહિ કદિ સદ્દગુણનો તે લેશજો કન્યા. ૩

નીતિથી વ્યાપાર કરે નહિ જે કદા,
કુમાર્ગેથી ચાહે વિત્તને ચિત્તજો;
સેવા કરવા યત્ન કરે નહિ સર્વદા,
ધન મેળવવા અંતરમા ધરે પ્રીતજો. કન્યા. ૪

નિર્મળ કન્યા રત્નવડે સુખ માનીને,
વેચે જઇને છડે ચોક તે બજારજો;
યોગ્ય પતિ દેવાનો ધર્મ ભુલી જઇ,
વૃદ્ધ જમાઇ શોધે તે નિર્ધારજો. કન્યા. ૫

બાર વરસની નિર્મળ બાળા સુંદરી,
સાઠ વર્ષના ડોસા સાથે જાયજો;
આર્ય બંધુઓ ચેતો કાંઇરે ચિત્તમાં,
અતિ અતિશે આ અન્યાયજ થાયજો. કન્યા. ૬

આંખ ઉઘાડી જુઓ અંતરે જ્ઞાનથી,
કેવો જુલ્મી ઘાતકી છે કુરીવાજજો;
બંધ કરો સહીને કષ્ટો જગમાં તમે,
અંતર ધારી દેશ તણી કંઈ દાઝજો. કન્યા. ૭

જે નર ખર થઈ વેચે કન્યા લોભથી,
તજજો તેના ઘરનું અન્નને નીરજો,
જ્ઞાતિબંધન જો દુઃખકર લાગે મને,
તજજો તે પણ ધીરજથી મુજ વીરજો. કન્યા. ૮

આર્ય દેશની લક્ષ્મી બાળા જાણીને,
કરજો રક્ષણ તેનો આપી પ્રાણજો;
રક્ષણ કરતા જો વિપદા આવી પડે,
સહેશો તો લેશો અંતે નિર્વાણજો. કન્યા. ૯

પારેવાના રક્ષણ શાંતિ પ્રભુ,
પામ્યા અંતે અવિચલ સુખકર ધામજો,

માનવ તનતો પુન્યવંતરે ગણાય છે,
તસ કારણ ખર્ચો પ્રીતે બહુ દામજો. કન્યા. ૧૦

દ્રષ્ટાંત કહું છું તે પર એક સંક્ષેપથી,
શ્રવણ કરી લેજો તેમાથી સારજો;
મનન કરીને વર્તનમાં તે લાવજો,
લેશો તો સુખથી આ ભવનો પારજો. કન્યા. ૧૧

કંચનપુર નગરે વિત્તાનંદ નામથી,
વણિક એક થયો દુર્ગુણનો ભંડારજો;
આશાબાઇ નામે તસ નારી હતી,
આશાવશ થઈ ધરતી આશ અપારજો. કન્યા. ૧૨

સુંદરી નામે કન્યા રૂપે શોભતી,
ચૌદ વર્ષની બાળા થઈ ગૃહમાયજો;
શોધ કરે નિશદિન વિત્તાનંદ પ્રેમથી,
વૃદ્ધ અને ધનવંત જમાઇ ત્યાંયજો. કન્યા. ૧૩

અંતે શોધી વૃદ્ધ ધનિક મહામૂઢને,
દીધી કન્યા સુગુણવતી વિત્ત કાજજો;
ઘરડા વરને પરણી બાળા રાંકડી,
નહિ ઇચ્છે પણ અટકાવે તસ લાજજો. કન્યા. ૧૪

શોલ વર્ષની શ્યામા થઇ જવ સુંદરી,
મદન પીડથી ચાહે તે ચિત યારજો,
વિષયાનંદ પતિને નવ ગણકારતી,
સન્મુખ રહીને કરતી નીચ વ્યભિચારજો. કન્યા. ૧૫

અન્ય પુરૂષની સાથે રમતી સુંદરી,
દેખીને વૃદ્ધ કરતો ચિત્ત પરિતાપજો;
મૂઢ થઈને વૃથા લગ્નની જાળમાં,
પડ્યા પછી બહુ કરતો મન સંતાપજો. કન્યા. ૧૬

અંતે મૃત્યુ પામ્યો વૃદ્ધ દુઃખ પામતો,
મુકી પાછળ લલના સુંદર નારજો;
અધમ સંગથી કુલટા રતિરસ ચાખતી,
પર પુરૂષપર ધરતી અંતર પ્યારજો. કન્યા. ૧૭

ખાઈ ગયા ધનમાલ સર્વ રસલુબ્ધકો,
ઝવેરાતને કંચનના અલંકારજો,
દિન થઇ ભમતી ઘર ઘરમાં આખરે,
દળણું દળવા યત્ન કરે દુઃખકારજો. કન્યા. ૧૮

સંત સમાગમથી અવલોકી તત્વને,
પામી ચિત્તમા અતિ અતિ વૈરાગજો,
પ્રગટ થયો સંવેગ રંગ તે રગોરગે,
કરવા ચાહે જગનો અંતર ત્યાગજો. કન્યા. ૧૯

નિજ દોષો દેખીને દુ.ખ બહુ પામતી,
કારણ તેનું સમજી અંતરમાયજો;
કન્યા વિક્રય દુષ્ટ રિવાજના ભોગથી,
પામી આવી અધમ સ્થિતિ જગમાંયજો. કન્યા. ૨૦

બોધ દઈને સમજાવું ભવિ જીવને,
ઇચ્છા એવી ઉપજી તવ તસ ચિત્તજો;
કન્યા વિક્રય અધમ ચાલના ઉપરે,
તિરસ્કાર ધરતી અંતર તે ખચિત્તજો. કન્યા. ૨૧

જીંદગીમા બહુ પાપ કરી તે સુંદરી,
અંતે થઈ તે કાળ અરિ સ્વાધિન જો;
કન્યા વિક્રય મહા પાપ સમજાવતી,
જીવિત તાવત અંતરમા થઇ દીનજો. કન્યા. ૨૨

ચરિત્ર સુણીને ગેતો વીરો ચિત્તમાં,
અધમ ચાલનો કરજો દેશ નીકાલજો;
શિવાનંદ પદ કારણ પર ઉપકારથી,
ધારણ કરજો નિર્મળ ગુણની માળજો. કન્યા. ૨૩

શિવવિનોદ ભાગ ૩ જો.

[1]શ્રી જૈન શ્રેયઃસાધક વર્ગના માનવંતા મેમ્બરોની સેવામાં.

"આપ કૃપાળુ સાધર્મી બંધુઓને વિનંતી કરવાની કે હું એક બાળ શ્રાવિકા આપની સાધર્મી બ્હેન છુ. મારા પિતા લોભને વશ થઇ મારા સંસારસુખનું છેદન કરવાને તયાર થયા છે. શ્રીનગરના કોઇ નથુભાઇ નામના વૃદ્ધની સાથે મારો વિવાહુ-સંબંધ જોડવા તેમની ઈચ્છા થઈ છે, આ કાર્ય હજુ સિદ્ધ થયું નથી, પણ તેની ઘણી ખરી યોજના થઇ ગઇ છે. આ મહાન અનર્થ થવાના ભયથી મારી માતા કંપી ચાલ્યાં છે. અને તે માયાળુ માતાની મારી તરફ પૂર્ણ લાગણી હોવાથી તેણીના હૃદયમાં શોકાનળ પ્રજવલિત થયો છે. મારૂં રક્ષણ કરવાને તેણી ઘણો પ્રયત્ન કરે છે, તથાપિ મારા લુબ્ધ પિતાની પાસે તેણીનું કાંઇ પણ ચાલતું નથી. અમે બંને મા દીકરી નિરૂપાય થઇ તમારા વર્ગની શરણે આવ્યાં છીએ. જૈન શ્રેયઃસાધક વર્ગ સર્વ જૈન પ્રજાનું શ્રેય કરવાને સમર્થ છે, એવુ ધારી મેં મારી માતાની સંમતિથી આ પત્ર લખ્યો છે. મને પૂર્ણ આશા છે કે, વર્ગના અંગભુત આપ સર્વ બંધુઓ આ તમારી દુઃખી સાધર્મી બ્હેનને શરણ આપી તેનો આ મહા દુઃખમાંથી ઉદ્ધાર કરશો."

લી૦ શરણાગત બાળશ્રાવિકા,
મેનાના જયજિનેંદ્ર.

---

[1] આ અરજી શ્રાવક સંસાર પૃ. ૧૦૭ મા છે, અવશ્ય વાંચો કીં ૦-૨-૦ પોષ્ટેજ જુદું.

વૃદ્ધ વિડંબના.

દોહરા.

કાળાં જઈ ધોળાં થયાં, ગયા મુખેથી દાંત;
ગાત્ર સવી ઢીલાં પડયાં, તોય થયો નહિ શાંત. ૧

સુતો મરણ પથારીએ, ગઇ ન અંતર આશ;
નિર્મળ બાળા કર ધરી, પડે કર્મને પાશ. ૨

આ ભવમાં દુઃખ દેખશે, લેશે પરભવ દુઃખ;
લોક હસે, નિંદા કરે, લજવે જનની કુખ. ૩

જિન શાસનની હેલણા, કરવાની આરીત;
વૃદ્ધ વિવાહ કુરૂઢીને, ગણજો ચિત્ત કુરીત. ૪

વિષય સુખો ખુજલી પરે, ભોગવતા ન સમાય;
શિવાનંદ પદ કારણે, સંતોષે સુખ થાય. ૫

શી. વી. ભા. ૩ જો.

ઢાળ ૨૯ મી.

વૃદ્ધ વિવાહ વિપત્તિ.

ધાર તરવાની સોહેલી દોહેલી ચૌદમાં જિન તણી ચરણ સેવા—એ દેશી.

વૃદ્ધ વિવાહ કરી કર્મ નહિ બાંધજો,
નિર્મલ બાલીકા ભવ બગાડી;
લોકમાં હાંસીપાત્ર થઇ અપજશે,
જીંદગી વ્યર્થ વિષયે લગાડી. વૃદ્ધ. ૧

જાણન વ્યતી ક્રમે ધર્મ આરાધજો,
ઇહભવે પરભવે સુખકારી;
દેવ દુર્લભ નર ભવ ગણો જગતમા,
મુક્તિ પદ આપવા હિતકારી. વૃદ્ધ. ૨

ધ્રુવના ચરિત્ર વાંચી કરી હૃદયમાં,
સ્થાપજો મનનથી ગુણકારી;
નૃપતિ આદિ બહુ વૃદ્ધ ઉમરે થતાં,
જ્ઞાનથી બાહ્ય ઉપાધિ ટારી. વૃદ્ધ. ૩

રાજઋદ્ધિ અને કામ ભોગો ભજી,
સંયમ સુખકર લઇને પ્રીતે;
ઇંદ્રિયો જય કરી મનકું મારી કરી,
વાસના ટાળી છે શુદ્ધ ચિતે. વૃદ્ધ. ૪

યુવક બહુ જગતમાં બાહ્ય સુખને તજે,
નિર્મલ સત્ય સુખ પ્રાપ્તિ કાજે;
અહોનિશ અંતરે ભક્તિમાં લાગીને,
જ્ઞાન અગ્નિ વડે કર્મ દાજે. વૃદ્ધ. ૫

વિષય સુખને ગણો ત્યાજ્ય અંતર વિષે,
ભીમ ભુજંગ સમ પ્રાણ નાશે;
ક્ષણિક સુખકાર તે અંતે દુઃખકાર છે,
શુદ્ધ ચેતનની ઋદ્ધિ જાશે. વૃદ્ધ. ૬

ગાત્ર ઢીલાં થયાં, શ્રોત્ર બહેરાં થયાં,
આંખથી લેશ નહિ વસ્તુ ભાળે:
પગવડે ચાલતાં દંડ કરમાં ધરે,
તોય વિષયો વિષે આયુ ગાળે. વૃદ્ધ. ૭

ભકિત વૈરાગ્યથી જન્મ સુધારજો,
નિંદ્ય દુઃખ કરી મોહ વૈરી મારી;
સંત સેવા કરી તત્વ અંતર ધરી,
ભવતણા સાધનો દુર ટાળી. વૃદ્ધ. ૮

વૃદ્ધ ઉમરે કદિ લગ્નની હોડમાં,
મૂઢતાને વશે કોઇ પડશે,

વિષયાનંદ પરે દુઃખ લહે જગતમાં,
સુખના સાધનો દૂર ટળશે. વૃદ્ધ ૯

લક્ષ્મીપુર નગરમાં વૃદ્ધ એક શેઠીઓ,
નામે તે વિષયાનંદ પ્રસિદ્ધ.
મૃત્યુના સમય તે લગ્નના પાશથી,
ઉત્તમ જન્મને વ્યર્થ કીધ. વૃદ્ધ. ૧૦

નારી તસ સુંદરી રૂપમાં પુટડી,
સોલ વર્ષે થઈ મદન લીન;
વૃદ્ધપતિ દેખીને અંતરે દાઝતી,
નવ રહે વૃદ્ધને તે આધીન. વૃદ્ધ. ૧૧

મૂઢમતિ, દુષ્ટમતિ, મલિનમતિ તુજ સમો.
જગતમાં કો નહિ એમ કહેતી;
વૃદ્ધ ઉમરે કર્યો લગ્ન તેં મુરખા,
વિવિધ અપશબ્દથી ગાળો દેતી. વૃદ્ધ. ૧૨

કાર્ય પતિનો કરી હર્ષ નવ પામતી,
અંતરે રોષને નિત્ય ધારે ;
દીન થઇ બાપડો આજીજી બહુ કરે,
લેશ કયુ જો વદે તો તે મારે. વૃદ્ધ. ૧૩

મદન સમ રૂપમાં જે નરો દેખતી,
મદન પીડા વડે ચિત્ત દાઝે ;
યુવક મદમત્ત નરવર કદિ પેખતી,
પ્રેમથી કંઠમા શીઘ્ર બાઝે. વૃદ્ધ. ૧૪

નજર નિહાળીને વૃદ્ધ અંતર વિષે.
લોક લજ્જાવડે દુઃખ ધરતો;
શુદ્ધમતિ ઉપની સંત સેવા થકી,
ભુલ પોતા તણી નિત્ય સ્મરતો. વૃદ્ધ. ૧૫

શીખ દેવા ધરે ચિતમા તે કદા,
ક્રોધ મુખ જોઇને શાંત થાતો;
શબ્દ નવ વદિ શકે કિમપિ નહિ કરી શકે,
ફરી ફરી અંતરે તે સમાતો. વૃદ્ધ. ૧૬
જીંદગી દુઃખમાં એમ વીતાવીને,
મૃત્યુ પામી ગયો, અન્ય ચોની;
કામવશ બાપડી નારી તસ નિત પ્રત્યે,
શોધતિ કામીને બીક કોની. વૃદ્ધ. ૧૭
વિત્તરાશિ વ્યભિચારમાં હોમતી
આખરે ધન વિના દુઃખ પામે;
રોગ પીડિત થઇ સહાય કો નવ કરે,
આશકો તેહના નાવે કામે. વૃદ્ધ. ૧૮
વૃદ્ધને નિંદતી અંતરે તે સદા,
કર્મ બંધન કરે મલિન મનથી;
રૂપ ગુણ યુકત જવ દંપતી દેખતી.
મદન તવ દીપતો તાસ તનથી. વૃદ્ધ. ૧૯
ગૃહસ્થ વેશે રહે ગુણવતી સાધવી,
મધુર શબ્દો વડે બોધ આપે ;
મલિન સંસ્કાર સવી દૂર કરી જ્ઞાનથી,
મદન પીડા સવી તાસ કાપે. વૃદ્ધ. ૨૦
બોધ પામી થઇ સદ્ગુણી સુંદરી,
વૃદ્ધ વિવાહને દુષ્ટ માને.
બોધ દઇ સર્વને નિંદ્ય પથ ટાળતી,
રૂઢી દુઃખકારક ચિત્ત જાણે. વૃદ્ધ. ૨૧
ચરિત્ર આ સાંભળી નિયમ હૃદયે લહો,
વૃદ્ધ વિવાહ કદિ નહિજ કરવો;
જે કરે તેહને બોધ દઇ જગતમાં,
અંતરે શિવપદ પ્રીતે ધરવો. વૃદ્ધ. ૨૨

શી. વી. ભા. ૩ જો.

લાભ લ્યો ! અપૂર્વ ! ! લાભ લ્યો ! ! !

જૈન સાહિત્યનો સસ્તો પ્રચાર.

નિમ્ન લખીત પુસ્તકોનું ભાષાંતર કર્તા પ્રસિધ્ધ વકતા મુનિમહારાજ શ્રી ૧૦૦૮ ચારિત્ર વિજયજીની અપૂર્વ સહાયતાથી મરહુમ જૈન વિજયના અધિપતી મી૦મોહનલાલ અમરશી.

જણાવેલ પુસ્તકોને પ્રસિધ્ધમાં લાવવા માટે મળેલ રૂપીયા ૧૫૫૧, ની નીચેના સદ્દગૃહસ્થો તરફથી મદદ.

યાદિમાં આપેલ શટ ખરીદનારને અડધી કીંમતે આપવામાં આવશે. નાણાં સંબંધી મદદ આપનારનાં મુબારક નામ—

૧શેઠરતનજીવીરજીભાવનગરવાલા.૨શેઠનથમલજીગુલેચ્છાગ્વાલીઅરવાલા.
૩ શેઠકલ્યાણજી મુળજીમુંબઈવાલા૪શેઠભણુશાલીપ્રેમજીધરમશીપોરબંદર.
૫ જીવરાજ નરશી મુંબઈ. ૬ શેઠ તુળશીદાસ મોનજીકારાણી.માંગરોલ.

એ ઉપરાંત કેટલાંક સદ્દગૃહસ્થો તરફથી—

પુસ્તકનું નામ.	કિંમત.	કર્તા.	પૃષ્ઠ
૧ દ્રવ્યગુણ પર્યાયનો રાસ.	૧–૪–૦	શ્રીમદ યશોવિજયજીવીરચિત	૩૨૪
૨ આગમસાર.	૦-૧૦-૦	દેવચંદ્રજી સૂરીકૃત.	૧૪૬
૩ સુમતીચંદ્ર ભાગ ૧ લો.	૧–૦–૦	એક અદ્દભુત જમાનાને અનુસરતી જૈન નોવેલ.	૧૯૬
૪ ,, ૨ જો.	૧–૦–૦		૧૯૬
૫ સમાધી શતક શમતા શતકતથા અનુભવ શતક	૦–૮–૦	શ્રીમદ યશોવિજયજી.	૧૧૦

૬ સામાયક સૂત્ર (હેતુભાવાર્થ તથા વીવેચન સંયુક્ત)	૦-૪-૦		૯૦
૭ જીનેંદ્ર સ્તવનાવલી.	૧-૦-૦	પૂર્વાચાર્યકૃત	૨૩૮
૮ જૈનસંગીત રાગમાળા.	૧-૪-૦	,,	૨૭૦
૯ ભોજ પબંધ ભાષાંતર.	૦-૧૨-૦	મર્હુમ જૈન કોલમ્બુક વીરચંદ ગાર. ગાંધી.	૧૦૪
૧૦ અધ્યાત્મ વ્યાખ્યાન માળા	૦-૪-૦	શ્રીમદ બુદ્ધિસાગરજી કૃત	૨૦૦

૭-૧૪-૦

રૂ. ૭-૧૪-૦ નાં પુસ્તકો નકલ ૧૦ ખરીદનારને માત્ર અડ-ધી કીંમતે એટલે રૂ. ૩-૧૫-૦માં આપવામાં આવશે. પોસ્ટેજ જુ-દું સમજવું. સટ થોડા છે માટે વહેલો તે પહેલો.

તા.ક.—અમારે ત્યાં જૈન ધર્મના સર્વે જાતનાં જેવાંકે માગધી સંસ્કૃત, અંગ્રેજી અને ગુજરાતી દરેક પુસ્તક મળી શકશે એ ઉપરાં-ત ફાટેલાં તુટેલાં પુસ્તકો બાંધી આપવામાં આવશે.

નોટ—બે આનાની ટીકીટ મોકલનારને ત્રણ સુંદર પુસ્તકો મોકલવામાં આવશે.

ચેતવણી.

મંગાવેલ રૂ.૩-૧૫-૦ નો સટ તથા બે આનાનો સટ પસંદ નહિ આવશે તો મંગાવનારના ખરચે પાછું રાખવામા આવશે.

ટીકીટ મોકલ્યા સિવાય કુંપનીમાંથી જવાબ મળી શકશે નહિં

લખો,

મેસર્સ મેઘજી હીરજીની કું

માંગરોળ જૈન સભા પાયધુની, મુંબઈ

પાંડવ પ્રબોધ, કીંમત રૂ. ૧ાા

આ ગ્રંથની અંદર અપૂર્વ રસીક વિષયો નીચે પ્રમાણે સમાવેલા છે.

પ્રકરણ.	વિષય.	પૃષ્ઠ.

તેમ કરવાને હું અશક્ત નિવડયો કારણકે પૈસાની જોગવાઈ નહોતી.

છેવટ મારા પુજ્ય વડીલ શેઠ હીરજી કાનજી, લાલજી નરશી, પદમશી શીવજી, તથા શેઠ પુંજા કરમશી વીસનજી જેતશીની મદદથી નકલ ૨૦૦૦) અગાઉ તથા. ૪૦૦૦) પછી કુલ. નકલ ૬૦૦૦) છપાવીને આપની સમક્ષ રજુ કરતાં મને કહેવું પડે છે કે આપણી કોમ જીવદયાનો દાવો કરનારી છે. કીડીને બચાવનારી છે ત્યારે કન્યાઓને શામાટે ન બચાવે.

આપણી કોમ તરફ નજર કરશો તો સેંકડે ૭૫ ટકા વીધવાઓ નજરે પડશે. કોમના આગેવાનો તમોને જે લક્ષ્મી મળી છે તે તમારા પૂર્વભવના પુણ્યથી મળી છે તમો કદાચ મોટી ઉમરે સ્રી વગ· ગરનઃ થઈ રહ્યા હો તો બાળસુકોમળ કન્યા ઉપર જુલમ ગુજારશો નહિ, એટલે ખુલ્લા શબ્દોમાં કહું તો વૃદ્ધ લગ્ન કરશો તો ભવિષ્યમાં સુખ તો પામવાનાજ નથી. પણ બાપદાદાની આબરૂપર પાણી ફેરવશો મેં તથા મારા મિત્રોએ માથે લીધું છે કે વૃધ્ધોના પંજામાંથી કન્યાને ગમે તે પ્રકારે બચાવ થાય તેમ કરવું. માટે હવે જો જમાના તરફ નજર કરશો અને લક્ષ્મીના અભિમાનમા આગળ વધશો તો લગ્ન મંડપમાંથી પાછા ફરવાનો વખત આવી પુગ્યો છે .. માટે....સાવધાન?

કોઈ પણ ગ્રહસ્થ આ પુસ્તક છપાવવા મદદ કરશે તો માત્ર રૂા. ૧૦) મા હજાર નકલ છપાવી આપશું.

લી૦ જૈન જ્ઞાતિનો લઘુત્તમ બાળ.

મેઘજી હીરજી.

श्री

चौवीस जिन स्तवनावली.

कूमट विनेचन्द्रजी कृत

यह चोवीसी

राजपूताना--पंजाब--दक्षिणमें लोकप्रिय जान

पंडीत पुरुषोंसे शुद्ध कराके

जैनभाइयोंके हितार्थ

सतारा निवासी

श्रीयुत बालमुकुंदजी चंदनमलजीकी स्हायसे

शहर अहमदाबादमें

स्वकीय 'भारतवन्धु प्रिंटिंग वर्क्स' में छाप कर

शाह वाडीलाल मोतीलालने

प्रसिद्ध की.

इ. स. १९११

द्वितीयावृत्ति—प्रत १:००
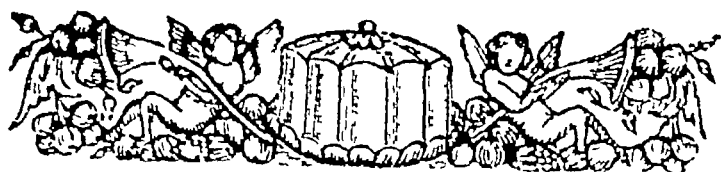
चौवीस जिन स्तवनावली.

पद ॥ १ ॥

(उमादे भटियाणी हो-ए देशी)

श्री आदीश्वर स्वामी हो प्रणमुं शीर नामी तुम भणी,
प्रभू अंतरजामी आप;
मोपर म्हेर करीजे हो मेटीजे चिंता मन तणी,
मारां काट पुरा कृत्य पाप-
श्री आदीश्वर स्वामी हो प्रणमुं शीर नामी तुम भणी
(टेर.) १ ॥

आदि धरमकी कीधी हो भर्त्तक्षेत्र सर्पणि कालमें,
प्रभू जुगल्या धरम निवार;
पहिला नरवर मुनिवर हो तीर्थंकर जिन हुआ केवली,
प्रभू तीरथ थाप्यां चार-श्री आदीश्वर ॥ २ ॥

मा 'मरुदेव्या' थांरी हो गज होदे मुक्ति पधारियां,
तुम जन्म्या ही प्रमाण;
पिता 'नाभि' म्हाराजा हो भव देव तणो करी नर थया,
प्रभू पाम्या पद नीरवाण— श्री आदीश्वर ॥ ३ ॥
भरतादिक सो नंदन हो दो पुत्री 'ब्राह्मी' 'सुंदरी,'
प्रभू ए थारां अंगजात;
सघळां केवल पायां हो समाया अविचल ज्योतमें,
कांइ त्रिभूवनमें विख्यात— श्री आदीश्वर ॥ ४ ॥
इत्यादिक बहु तर्या हो, जिन कुलमें प्रभु तुम उपन्या,
कांइ आगममें अधिकार;
और असंख्या तार्या हो उधार्या सेवक आपरा,
प्रभू-सरणां इमा धार— श्री आदीश्वर. ॥ ५ ॥
अशरण शरण कहीजे हो प्रभु विरद विचारो साहिबा,
कांइ अहो गरीबनीवाज;
शरण तुमारी आयो हो हुं चाकर निज चरणां तणो,
म्हारी सुणीए अरज अवाज— श्री आदीश्वर ॥ ६ ॥
तुं करुणा कर ठाकुर हो प्रभू धर्म दिवाकर जगगुरु,
कांइ भव दुःख दुष्कृत्य टाल;
विनयचंदने आपो हो प्रभू निजगुण संपत शाश्वती;
प्रभू दीनानाथ दयाल— श्री आदीश्वर० ॥ ७ ॥

पद ॥ २ ॥

(कुव्यसन मारग माथेरे धीक धीक—ए देशी ॥)

श्री जिन अजित नमो जयकारी; तूं देवनको देवजी;
' जयशत्रु ' राजा ने ' विजया ' राणीको
आतमजात तुंमेवजी—
श्री जिन अजित नमो जयकारी ॥ (टेर) ॥ १ ॥

दुजा देव अनेरा जगमें, ते मुज दाय न आवेजी;
तह—मन्ने तह—चित्ते हमने, तूंहीज अधिक
सुहावेजी ॥ श्री० ॥ २ ॥

सेव्या देव घणा भव भवमें, तो पिण गरज न सारीजी;
अबकैं श्री जिनराज मिल्यो तुं, पुरण पर
उपगारीजी ॥ श्री० ॥ ३ ॥

त्रिभूवनमें जस उज्वल तेरो, फैल रह्यो जग जाणेजी;
वंदनीक पूजनीक सकलको, आगम एम
वखाणेजी ॥ श्री० ॥ ४ ॥

तुं जगजीवन अंतरजामी, प्राण आधार पियारोजी;
सब विधि लायक संत सहायक, भक्तवच्छल वृध
धारोजी ॥ श्री० ॥ ५ ॥

अष्ट सिद्धि नवनिधिको दाता, तो सम अवर न कोइजी;
बधै तेज सेवककौ दिनदिन, जेथ तेथ जै होइजी ॥
॥ श्री० ॥ ६ ॥

अनंत ग्यान दर्शन संपत्ति, ले ईश भयो अविकारीजी;
अविचल भक्ति 'विनयचंद' कु द्यो तो जाणूं
रिझवारीजी ॥ श्री० ॥ ७ ॥

पद ॥ ३ ॥

(आज मारा पासजीने चालो वंदन जइए--ए देशी.)

आज म्हारा संभव जिनकै हित, चित्तसुं गुण गास्यां;
मधुरमधुर स्वर राग आलापी गहरे साद गुंजास्यां राज--
आज म्हारा संभव जिनकै हित, चित्तसुं
गुण गास्यां (टेर) ॥ १ ॥

नृप 'जितारथ' 'सैन्या 'राणी, तस सुत सेवक थास्यां;
नवधा भक्ति भावसैं करने, प्रेम मगन हुइ
जास्यां राज ॥ आ० ॥ २ ॥

मन बच काय लाय प्रभु सेती, निसदिन सास-उसासां;
संभव जिनकी मोहनी मूरति, हिये निरंतर
ध्यास्यां राज ॥ आ० ॥ ३ ॥

दीनदयालु दीनबंधवके, खाना जाद कहास्यां;
तनधन प्रान समर्पी प्रभुको, इनपर बेग
रिझास्यां राज ॥ आ० ॥ ४ ॥

अष्ट कर्मदल अति जोरावर, ते जीत्यां सुख पास्यां;
जालम मोह मारकै जामें, साहस करी
भगास्यां राजा ॥ आ० ॥ ५ ॥

उबट पंथ तजी दुरगतकै. सूभगति पंथ संभास्यां;
आगम अर्थ तणे अनुसारै, अनुभव दशा
अभ्यासां राज ॥ आ० ॥ ६ ॥

काम क्रोध मद लोभ कपट तजी.निज गुणसुं लिवलास्यां;
" विनयचंद " संभव जीन तूठ्यां, आवागमन
मिटास्यां राज ॥ आ० ॥ ७ ॥

पद ॥ ४ ॥

(आदर जीव क्षमा गुण आदर--ए देशी.)

श्री अभिनंदन दुःखनिकंदन, वंदन
पूजन जोगजी; (टेर)
आसा पूरो चिंता चूरो आपो सुख
आरोग्यजी ॥ श्री० ॥ १ ॥

'संवर' राय 'सिधारथा' राणी, तेहनो आतम जातजी;
प्राणपियारो साहिब साचो, तुहीज मात ने
तातजी ॥ श्री० ॥ २ ॥

केइयक सेव करे संकरकी, केइयक भजै मुरारजी;
गनपति सूर्य उमा केइ समरे, हुं समरुं
अविकारजी ॥ श्री० ॥ ३ ॥

देव कृपासु पामे लिक्ष्मी, सो इन भवको सूखजी;
तो तुठ्यां इन भव परभवमें, कदेइ न व्यापे
दूखजी ॥ श्री० ॥ ४ ॥

जदपि इंद्र नरिंद्र निवाजे, तदपि करत निहालजी;
तूं पुजनिक नरेंद्र इंद्रको, दीनदयाळ
कृपाळजी ॥ श्री० ॥ ५ ॥

जबलग आवागमन न छुटे, तबलग ए अरदासजी;
संपति सहित ग्यान समकित गुण, पाउं दृढ
विसवासजी ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अधम उधारन बृध तिहारो, चावो इण संसारजी;
लाज "बिनयचंद" की अब तोने, भवनिधि पार
उतारजी ॥ श्री० ॥ ७ ॥

पद ॥ ५ ॥

(श्री शीतळ जिन साहिबाजी–ए देशी)
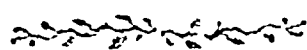
सुमति जिणेसर साहिबाजी, 'मेगरथ' नृपनो नंद;
'सुमंगळा' माता तणो तनय सदा सुखकंद ॥ १ ॥
प्रभू त्रिभूवन तीलोजी (टेर) सुमति सुमति दातार;
महामहीमा नीलोजी, प्रणमुं वार हजार—
प्रभू त्रिभूवन तीलोजी ॥ ॥ २ ॥
मधुकरनो मन मोहियोजी, मालती कुसुम सुवास;
त्युं मुज मन मोह्यो सही, जिन महिमा
सुविमास ॥ प्रभू ॥ ३ ॥
ज्युं पंकज सूरजमूखीजी, विकसे सूरज प्रकाश;
त्युं मुज मनडो गहगहे, सुनि जीनचरित्र
हुलास ॥ प्रभू ॥ ४ ॥
पपइयो पियुपियु करेजी, जान वृपाऋतु जेह;
त्युं मो मन निशदिन रहो, जिन समरनखुं नेह ॥५॥
कामभोगकी लालसाजी, थिरता न धरे मन्न;
पिण तुम भजन प्रतापथी. दाझे दूरमत वन्न ॥६॥
भवनिधि पार उतारियेजी. भक्तवच्छल भगवान;
'विनयचंद'की विनती. थे मानो कृपा
निधान ॥ प्रभू ॥ ७ ॥

पद ॥ ६ ॥

(नाथ कैसे गजको बंध छोडायो--एदेशी.)

पदमप्रभू पावन नाम तिहारो, पतित
उधारन हारो (टेर)
जदपि धिवर भील कसाइ, अति पापिष्ट जमारो ;
तदपि जीवहिंसा तज प्रभु भज, पावैं
भवनिधि पारो ॥ पदम ॥ १ ॥
गो ब्राह्मण प्रमदा बालककी, मोटी हत्या च्यारो;
तेहनो करणहार प्रभू भजने, होत
हत्यामुं न्यारो ॥ पदम ॥ २ ॥
बेस्या चुगल चंडाल जुवारी, चोर महाबट मारो;
जो इत्यादि भजे प्रभू तेने, तो निवृतै
संसारो ॥ पदम ॥ ३ ॥
पाप परालको पुंज बन्यो अति, मानुं मेर अकारो;
ते तुम नाम हुतासनसेती, सहजा प्रजलत
सारो ॥ पदम ॥ ४ ॥
परम धरमको मरम महा रस, सो तुम नाम उच्चारो;
या सम मंत्र नहीं कोइ दूजो, त्रिभूवन
मोहनगारो ॥ पदम ॥ ५ ॥

तो समरण बिन इण कलियुगमें, अवर न को आधारो;
मैं बलिजाउं में समरनपर, दिनदिन प्रित
वधारी ॥ पदम ॥ ६ ॥
'सुसिमा' राणीको अंगजात तूं, 'श्रीधर' राय कुमारो;
'विनयचंद' कहे नाथ निरंजन, जीवन
प्रान हमारो ॥ पदम ॥ ७ ॥

पद ॥ ७ ॥

(प्रभूजी दीनदयाल, सेवक सरण आयो--ए देशी)

'प्रतिष्टसेन' नरेश्वरको सुत, 'पृथवी' तुम महतारी;
सुगण सनेही साहिब साचो, सेवकने सुखकारी--
श्रीजिनराज सुपास[७] पुरो आश हमारी ॥(टेर) ॥ १ ॥
धर्म काम धन मुक्ति इत्यादिक, मनवंछित सुख पूरो;
वारवार मुज विनती येही, भव भव चिंता चूरो ॥
श्रीजिन ॥ २ ॥
जगत शिरोमण भक्ति तिहारी. कल्पवृक्ष सम जाणुं;
पूरण ब्रह्म प्रभू परमेश्वर. भवभव तूंने पिछाणुं
॥ श्रीजिन ॥ ३ ॥

पद ॥ ६ ॥

(नाथ कैसे गजको बंध छोडायो--एदे शी.)

पदमप्रभू पावन नाम तिहारो, पतित
उधारन हारो (टेर)
जदपि धिबर भील कसाइ, अति पापिष्ट जमारो ;
तदपि जीवहिंसा तज प्रभु भज, पावैं
भवनिधि पारो ॥ पदम ॥ १ ॥
गो ब्राह्मण प्रमदा बालककी, मोटी हत्या च्यारो;
तेहनो करणहार प्रभू भजने, होत
हत्यामुं न्यारो ॥ पदम ॥ २ ॥
बेस्या चुगल चंडाल जुवारी, चोर महाबट मारो;
जो इत्यादि भजे प्रभू तैने, तो निवृतै
संसारो ॥ पदम ॥ ३ ॥
पाप पशलको पुंज बन्यो अति, मानुं मेर अकारो;
ते तुम नाम हुतासनसेती, सहजा प्रजलत
सारो ॥ पदम ॥ ४ ॥
परम धरमको मरम महा रस, सो तुम नाम उच्चारो;
या सम मंत्र नहीं कोइ दूजो, त्रिभूवन
मोहनगारो ॥ पदम ॥ ५ ॥

तो समरण बिन इण कलियुगमें, अवर न को आधारो;
मैं बलिजाउं में समरनपर, दिनदिन प्रित
वधारी ॥ पदम ॥ ६ ॥
'सुसिमा' राणीको अंगजात तूं, 'श्रीधर' राय कुमारो;
'विनयचंद' कहे नाथ निरंजन, जीवन
प्रान हमारो ॥ पदम ॥ ७ ॥

पद ॥ ७ ॥

(प्रभूजी दीनदयाल, सेवक सरण आयो--ए देशी)

'प्रतिष्टसेन' नरेश्वरको सुत, 'पृथवी' तुम महतारी;
सुगण सनेही साहिब साचो, सेवकने सुखकारी--
श्रीजिनराज सुपास७ पुरो आश हमारी ॥(टेर) ॥ १ ॥
धर्म काम धन मुक्ति इत्यादिक, मनवंछित सुख पूरो;
वारवार मुज विनती येही. भव भव चिंता चूरो ॥
श्रीजिन ॥ २ ॥
जगत शिरोमण भक्ति तिहारी. कल्पवृक्ष सम जाणुं;
पूरण ब्रह्म प्रभू परमेश्वर. भवभव तूंने पिछाणुं
॥ श्रीजिन ॥ ३ ॥

हुं सेवक तुं साहिब मेरो, पावन पुरुष विग्यानी;
जनम जनम जितथित जाउ तो, पालो प्रीति
पुरानी ॥ श्रीजिन ॥ ४ ॥
तारन तरन असरन सरनको, बीरद इस्यो तुम सोहे;
तो सम दीनदयाळ जगतमें, इंद्र नरेन्द्र न कोहे
॥ श्रीजिन ॥ ५ ॥
स्वयंभुरमण बडो समुद्रामें, सैल सुमेर विराजे;
तूं ठाकुर त्रिभूवनमें मोटो, भक्ति कियां दुख भाजे
॥ श्रीजिन ॥ ६ ॥
अगम्य अगोचर तूं अविनाशी, अलख अखंड अरूपी;
चाहत दरस 'बिनयचंद' तेरो, सत्चितानंद
सरूपी ॥ श्रीजिन ॥ ७ ॥

पद ॥ ८ ॥

(चौकनी देशी.)

जय जय जगत शिरोमणी, हूं सेवक ने तूं धणी,
अब तोसुं गाढी बणी, प्रभू आश पूरो हम तणी--
मुज म्हेर करो, चंद्रप्रभ जगजीवन अंतरजामी;

भवदुःख हरो, सुणीए अरज हमारी त्रिभूवन स्वामी
॥ टेर ॥ १ ॥

'चंद्रपुरी' नगरी पति 'महासेन' नामे नरपति,
राणी श्री 'लिखमा' सती, तसु नंदन तूं
चढती रती ॥ मुज ॥ २ ॥

तूं सर्वज्ञ महा ज्ञाता, आत्म अनुभवको दाता,
तो तूठ लहीये साता, धन्यधन्य जे जगमें तुम
ध्याता ॥ मुज ॥ ३ ॥

शिव सुख प्रार्थना करशुं, उज्वल ध्यान हिये धरशुं,
रसना तुम महिमा परशुं. प्रभु इन विध भव
सागर तरशुं ॥ मु ॥ ४ ॥

चंद चकोरनके मनमें, गाज अवाज हुवे घनमें,
प्रिय अभिलाषा त्रिय तनमें, ज्युं वसिये मो चिंतवनमें
॥ मुज ॥ ५ ॥

जो सुनजर साहिब तेरी, तो मानो विनती मेरी,
काटो भरम करम वेरी. प्रभु पुनरपि न परे भव फेरी
॥ मुज ॥ ६ ॥

आतम ज्ञान दशा जागी. प्रभु तुमसेती लिव लागी,
अन्यदेव भ्रमना भागी. 'विनयचंद' निहारो अनुरागी
॥ मुज ॥ ७ ॥

पद ॥ ९ ॥

(बुढापो वैरी आवियो हो–ए देशी)

'काकंदी' नगरी भली हो, श्री 'सुग्रीव' नृपाल;
'रामा' तसु पटरागनी हो, सुत परम कृपाळ—
श्री सुविधि जिणेसर वंदिए हो–(टेर) १

त्यागी प्रभूता राजनी हो, लीधो संजम भार;
निज आतम अनुभावथी हो, पाम्या प्रभु पद
अविकार ॥ श्री २ ॥

अष्ट कर्मनो राजवी हो, मोह प्रथम क्षय कीन;
शुद्ध समकित चारित्रनो हो, परम क्षायक गुण
लीन ॥ श्री ॥ ३ ॥

ज्ञानावरणी दर्शनावरणी हो, अंतराय कियो अंत;
ज्ञान दर्शन बल ए त्रिहूं हो; प्रगटयां अनंता अनंत
॥ श्री ४ ॥

अव्याबाह सुख पामिया हो, वेदनी करम खपाय;
अवगाहना अटल लही हो, आयु क्षय
करने जिनराय ॥ श्री ॥ ५ ॥

नाम करमनो क्षय करी हो. अमूरतीक कहाय;
अगुरु लघुपणो अनुभव्यो हो, गोत्र करमथी
मुकाय ॥ श्री ॥ ६ ॥
आठ गुण कर उलख्यो हो, ज्योत रुप भगवंत;
'विनयचंद' के उर बसो हो, अहो अहो प्रभु
पुष्प दंत ॥ ७ ॥

पद ॥ १० ॥

(जिंदवारी देशी.)

श्री 'दृढरथ' नृपती पिता, 'नंदा' थारी माय;
रोम रोम प्रभू मो भणी, शीतल[१०] नाम सुहाय ॥ १ ॥
जय जय जिन त्रिभूवन धणी (टेर),
करुणानिधि करतार;
सेव्यां सुरतरु जेहवो, वंछित सुख दातार ॥जय०॥२॥
प्राण पियारो तूं प्रभू, पति भग्ता पती जेम:
लगन निरंतर लग रही, दिनदिन अधिक प्रेम
॥ जय० ॥ ३ ॥
शीतळ चंदननी परे. जपतां निमदिन जाप;
विषय कषायनी उपनी, मेटो भवदुःख ताप ॥जय०॥४

आरत रौद्र प्रणामथी, उपजे चिंता अनेक;
ते दुःख कापो मानमी, आपो अचल विवेक
॥ जय० ॥ ५ ॥

रोगादिक क्षुधा तृपा, शस्त्र अशस्त्र प्रहार;
सकल शरीरी दुःख हरो, हितसुं विरुद विचार
॥ जय० ॥ ६ ॥

सुप्रसन्न होइ शितल प्रभु, तूं आशा विसराम;
'बिनयचंद' कहे मो भणी, दीजे मुक्ति मुकाम
॥ जय० ॥ ७ ॥

पद ॥ ११ ॥

(राग काफी-देशी होरी.)
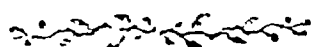
चेतन जाण कल्याण करनको, आन मिल्यो अबसर रे;
शास्त्र प्रमान पिछान प्रभु गुन, मन चंचल थीर कर रे-
श्रेयांस[११] जिणंद सिमर रे. (टेर) ॥ १ ॥

सास उसास बिलास भजनको, दृढ विश्वास पकर रे;
अजपाभ्यास प्रकाश हिये बिच, सो समरन जिनवररे
॥ श्री. ॥ २ ॥

कंदर्प क्रोध लोभ मद माया, ए सब ही परहर रे;
सम्यक्‌दृष्टि सहज सुख प्रगटे, ज्ञानदशा अनुसर रे
॥ श्री० ॥ ३ ॥

जुठ प्रपंच जोबन तन धन अरु, सजन सनेही घररे;
छिनमें छोड चले पर भवको, बंध शुभाशुभ थर रे
॥ श्री० ॥ ४ ॥

मानस जनम पदारथ जिनकी, आसा करत अमर रे;
ते पुरव सुकृत्य करी पायो, धरम मरम दिल धर रे
॥ श्री० ॥ ५ ॥

'बिश्नुसेन' नृप 'विश्ना' राणीको, नंदन तुं सबिसर रे,
सहजे मिटे अज्ञान अविद्या, मुगतपंथ पग भर रे
॥ श्री० ॥ ६ ॥

तुं अबिकार बिचार आतमगुन, भ्रमजंजाल म पररे;
पुद्गल चाय मिटाय 'विनयचंद', तुं जिन ते न अवररे
॥ श्री० ॥ ७ ॥

पद ॥ १२ ॥

(फूलशी देह पलकमें पलटे—ए देशी)

प्रणमुं वासपूज्य जिननायक. सदा सहायक तूं मेरो;
(टेर).

विषमी घाट घाट भय थानक, परमाश्रय सरनो तेरो
॥ प्रणमुं ॥ १ ॥
खल दल प्रबल दुष्ट अति दारूण ज्यो, चो तरफ दीए घेरो;
तो पिण कृपा तुमारी प्रभुजी, अरियणई प्रगटे चेरो
॥ प्रणमुं ॥ २ ॥
त्रिकट पहार उत्चार विचाले, चार कुपात्र करे हेरो;
तिण बिरिया करीए तो समरण, कोइ न छीन शके
डेरो ॥ प्रणमुं ॥ ३ ॥
राजा पादशाह जो कोपे, अति तकरार करे छेरो;
तदपि तूं अनुकुळ हुवे तो, छीनमें छुट जाय केरो
॥ प्रणमुं ॥ ४ ॥
राक्षस भूत पिशाच डाकिनी, साकिनी भय नावे नेरो;
दुष्ट मुष्ट छल छिद्र न लागे, प्रभु तुम नाम भज्यां
गहेरो ॥ प्रणमुं ॥ ५ ॥
विस्फोटक कुष्टादिक संकट, रोग असाध्य मिटे देहरो;
विषप्यालो अमृत होइ प्रगमे, जो विश्वास जिनंद
केरो ॥ प्रणमुं ॥ ६ ॥
मात 'जया' 'वसु' नृपके नंदन, तत्व जथारथ बुध प्रेरो;
कहे कर जोडी 'विनयचंद' विनवे, वेग मिटे मुज भव
फेरो ॥ प्रणमुं ॥ ७ ॥

पद ॥ १३ ॥

(अहो शिवपुर नगर सोहामणो–ए देशी)

विमल[13] जिणेसर सेविए, थारी बुद्ध निर्मळ हो जायरे;
जिवा ! विषय विकार बिसारने, तूं मोहनी कर्म खपायरे–
जिवा ! विमल जिणेसर सेविए ॥ टेर ॥ ॥ १ ॥
सुक्षम साधारणपणे, प्रत्येक वनसपति मांय रे;
जीवा ! छेदन भेदन तें सही, मरमर उपज्यो तिण
काय रे ॥ जीवा० विमल ॥ २ ॥
काल अनंत तिहां गम्यो, तेहनां दुःख
आगमथी संभाल रे;
जीवा ! पृथ्वी अप्प तेउ वायमें, रह्यो असंख्यातो
काल रे ॥ जीवा, विमल ॥ ३ ॥
एकेंद्रीसुं बेइंद्री थयो, पुन्याइ अनंती वृधरे;
जीवा ! संनी पंचेंद्री लगे पुन्य वंध्यां, अनंत अनंतां
प्रसिध रे ॥ जीवा, विमल ॥ ४ ॥
देव नरक तिरयंचमें. अथवा माणस भव नीचरे;
जीवा ! दीनपणे दुख भोगव्यां, इणपेरे चारो गति
वीच रे ॥ जीवा, विमल ॥ ५ ॥
अवके उत्तम कुल मिल्यो. भेटया उत्तम गुरु साध रे;

जीवा! सुण जिन वचन सनेहसुं, समकित वृत्ति
शुद्ध आराध रे ॥ जीवा, विमल ॥ ६ ॥

पृथ्वीपति 'कृतीभान' की. 'गामा' गणी को कुमाररे;
जीवा! 'विनयचंद' कहे ते प्रभू, शिर सेहरो
हियडारो हार रे ॥ जीवा, वि० ॥ ७ ॥

पद ॥ १४ ॥

(वेगा पधारोरे म्हेलथी--ए देशी.)

[14]अनंत जिनेसर नित्य नमो, अद्भूत ज्योत अलेष्य;
ना कहीए, ना देखीए, जाके रुप न रेख ॥ अ० १
सुक्षमथी सुक्षम प्रभू, चिदानंद चिद्रूप;
पवन सबद आकाशथी, सुक्षम ज्ञान सरुप ॥अ० २
सकल पदारथ चींतवुं, जे जे सुक्षम जोय;
तिणथी तूं सुक्षम महा, तो सम अवर न कोय ॥अ०३
कवि पंडीत कहकह थके, आगम अर्थ बिचार;
तोपण तुम अनुभव तिको, न सके रसना उच्चार
अनंत० ॥ ४ ॥
पभणे श्री मुख सरस्वती, देवी आपो आप;

कही न सके प्रभु तुम सता, अलख
अजपा जाप ॥ अ० ॥ ५ ॥

मन बुद्धि वाणी तो विषे, पोंहोंते नही लगार;
साखी लोकालोकनो, निरविकल्प निरविकार
॥ अनंत ॥ ६ ॥

मा 'सुजसा' 'सिंहरथ' पिता, तसु सुत
'अनंत जिनंद';
'विनयचंद' अब उलख्यो, साहिब सहजानंद
॥ अनंत ॥ ७ ॥

पद ॥ १५ ॥

(आज न हेजोरे दीसे नाहलोरे--ए देशी)

[१५]धरम जिणेसर मुज हियडे वसो, प्यारा प्राण समान;
कबहुं न विसरुं हो चीतारु नही. सदा अखंडित
ध्यान ॥ धरम ॥ १ ॥

ज्युं पनीहारी कुंभ न विसरे. नटवो वरत निदान;
पलक न विसरे हो पदमनी पिउ भणी, चकवी न
विसरे भान ॥ धरम ॥ २ ॥

ज्युं लोभी मन धनकी लालसा, भोगी के मन भोग;

रोगी के मन माने औषधी, जोगी के मन
जोग ॥ धरम ॥ ३ ॥
इण पर लागी हो पूरण प्रीतडी, जावजीव परियंत;
भवभव चाहूं हो न पडे आंतरो, भय भंजन
भगवंत ॥ ध० ॥ ४ ॥
काम क्रोध मद मच्छर लोभथी, कपटी कुटील कठोर
इत्यादि अवगुण कर हुं भर्यो, उदय करमके जोर
॥ धरम ॥ ५ ॥
तेज प्रताप तुमारो प्रगटे, मुज हियडामें आय;
तो हूं आतम गुण संभालने, अनंत वलि
कहिवाय ॥ ध० ॥ ६ ॥
'भानु' नृप 'सुव्रत्ता' जननी तणो, अंगजात अभिराम;
'विनयचंद 'ने वल्लभ तूं प्रभू, शुद्ध चेतन गुण
धाम ॥ ध० ॥ ७ ॥

पद ॥ १६ ॥

(प्रभुजी पधारो हो नगरी हम तणी–ए देशी)
'वासुसेन' नृप 'अचला' पटरागनी,
तसु सुत कुल सिणगार–हो सुभागी;

जनमतां शान्ति करी निज देशमें,
मिरगी मार निवार–हो सुभागी—
शान्ति[१६] जिनेश्वर साहिब सोलमा० (टेर) ॥ १ ॥
शान्ति जिनेश्वर साहिब सोलमा,
शान्तिदायक तुम नाम–हो सुभागी;
तन मन वचन शुद्ध कर ध्यावतां,
पूरे सघळी हाम–हो सुभागी, शान्ति० ॥ २ ॥
विघन न व्यापे तुम समरन कियां,
नासे दारिद्र दूख–हो सुभागी;
अष्ट सिद्धि नव निधि पगपग मिले,
प्रगटे नवला सूख–हो सुभागी. शान्ति० ॥ ३ ॥
जेहने सहायक संत जिनंद तुं,
तेहने कमीय न कांय–हो सुभागी;
जे जे कारज मनसं तेवडे
ते ते सफला थाय–हो सुभागी, शान्ति० ॥ ४ ॥
दूर देशावर देश परदेशमें,
भटके भोळा लोक–हो सुभागी:
सान्निध्यकारी समरण आपरो;
सेहेजे मिटे शोक–हो सुभागी, शान्ति० ॥ ५ ॥
आगम शाख सुणी छे एहवी,

जो जिन--सेवक होय--हो सुभागी;
तेहनी आशा पूरे देवता,
चोसठ इंद्रादिक सोय--हो सुभागी. शान्ति० ॥ ६ ॥

भवभव अंतरजामी तुम प्रभू,
हमने छे आधार--हो सुभागी;
बे कर जोरि 'विनयचंद' विनवे,
आपो सुख श्रीकार--हो सुभागी, शान्ति० ॥ ७ ॥

पद ॥ १७ ॥

(राग रेखतो)

कुंथु[१७] जिणराज तूं ऐसो, नहि कोइ देवता जैसो. (टेर)
त्रिलोकी नाथ तूं कहीए, हमारी बांह्य दृढ ग्रहीए
॥ कुंथु ॥ १ ॥

भवोदधि डूबतो तारो, कृपानिधि आशरो थारो;
भरोसो आपको भारी, विचारो बिरुद उपगारी
॥ कुंथु ॥ २ ॥

उमाहो मिलनको तोसें, म राखो आंतरो मोसें;
जिसी सिद्ध अवस्था तेरी, तिसी चेतनता मेरी
॥ कुंथु ॥ ३ ॥

करम भरम जालको दपटयो, बिषयसुख ममतमें लपटयो;
भ्रम्यो हूं चिहुं गति मांही, उदय कर्म भ्रमकी छांही
॥ कुंथु ॥ ४ ॥

उदयको जोर है जौलूं. न छूटे बिषय सुख तौलूं;
कृपा गुरु देवकी पाइ, निजातम भावना भाइ
॥ कुंथु ॥ ५ ॥

अजब अनुभुति उर जागी, सुरति निज रूपमें लागी;
तुम हि हम एकता जाणूं, द्वैत भ्रम कल्पना मानूं
॥ कुंथु ॥ ६ ॥

'श्री देवी'--'सूर' नृप नंदा, अहो सर्वज्ञ सुख कंदा;
'बिनयचंद' लीन तुम गुनमें, न व्यापे अविद्या उनमें
॥ कुंथु ॥ ७ ॥

पद ॥ १८ ॥

(अलगी रहनी देशी.)

तूं चेतन भज "अरहनाथने. ते प्रभू त्रिभूवन राय;
तात 'सुदरसण' 'देवी' माता. तेहनो पूत्र कहाय ॥१॥
साहीव सिधो. अरहनाथ अविनाशी;

शिव सुख लीधौ, निर्मल विज्ञान विलाशी
॥ साहिब ॥ २ ॥

कोड जतन करतां नहि पामे, एहवी मोटी मूम;
ते जिनभक्ति करीने लहिए, मुक्ति अमोलख ठूम
॥ साहिब ॥ ३ ॥

समकित सहित कियां जिनभक्ति, ज्ञान दर्शन चारित्र;
तप विर्य उपयोग तिहांरा, प्रगटे परम पवित्र
॥ साहिब ॥ ४ ॥

स उपियोग सरूप चिदानंद. जिनवर ने तूं एक;
द्वैत अविद्या विभ्रम मेटौ, बाधे शुद्ध विवेक
॥ साहिब ॥ ५ ॥

अलख अरुप अखंडित अविचल, अगम अगोचर आप
निर्विकल्प निष्कलंक निरंजन, अद्भूत ज्योति
अमाप ॥ साहिब ॥ ६ ॥

उलख अनुभव अमृत वाको, प्रेम सहित रस पिजे;
हूं—तूं छोड 'विनयचंद' अंतस, आतम राम रमीजे
॥ साहिब ॥ ७ ॥

पद ॥ १९ ॥ (लावणी)

मल्लीजिन बाळ ब्रह्मचारी; 'कुंभ' पिता 'प्रभावति' मैया,
तिनकी कुमारी; मल्लीजिन बाळ ब्रह्मचारी० (टेर)
मानी कूख कंदरा मांही, उपन्या अवतारी;
मालिनी कुसुम-मालनी बांछा, जननी उर धारी
॥ मल्ली० ॥ १ ॥
तीणथी नाम मल्लीजीन थाप्यो, त्रिभूवन प्रियकारी;
अद्भूत चरित्र तुमारो प्रभुजी, वेद धर्यो नारी
॥ मल्ली ॥ २ ॥
परणन काज जान सज आये, भुपति छय भारी;
महीलापुरी घेरी चोतरफे, सेना विस्तारी ॥ मल्ली ॥ ३ ॥
राजा 'कुंभ' प्रकाशी तुमपे, वितक वीध सारी;
छउं नृप जान करी तो परनन, आया अहंकारी
॥ मल्ली ॥ ४ ॥
श्री मुख धीरप दीधी पिताने, राखो हुशियारी;
पुतळी एक रची जिन आकृत, थोथी ढंकवारी म० ५
भोजन सर्व भरी मा पुतळी, श्री जिम सिणगारी;
भुपति छउं बुलाया मंदिर, बिच बहू दिन पारी ॥ म० ६॥
पुतली देखि छउं नृप मोह्या, अवसर विचारी;

ढांक उघार लियो पुतळीको, भभक्यो अन्न
वारो ॥ मल्ली ॥ ७ ॥
दुसह दुगंध सहि नहीं जावे, उठ्या नृप हारी;
तब उपदेश दियो श्री मुखसुं, मोहदसा टारी
॥ मल्ली ॥ ८ ॥
महा असार उदारक देही, पुतळी इव प्यारी;
संग कियां पटके भव दुःखमें, नार नरक वारी
॥ मल्ली ॥ ९ ॥
भूप छउ प्रतिबोध मुनि होइ, सिद्धगत संभारी;
'बिनयचंद' चाहत भवभवमें, भक्ति प्रभू थारो म०१०

पद ॥ २० ॥

(चेतरे चेतरे मानवी--ए देशी)
श्री मुनि सुव्रत साहिबा, दीनदयाळ देवातणा देवके;
तारण--तरण प्रभू तो भणी, ऊजवल चित्त समरुं
नित्यमेव के—
श्री मुनि॰ सुव्रत साहिबा (टेक) ॥ १ ॥
हुं अपराधी अनादिको, जनम जनम गुना
किया भरपूर के;

लूटिया प्रान छकायना सेवियां पाप अठार क्रूर के
श्री सुनि० ॥ २ ॥

पूरब असुभ कर्त्तव्यता, तेहने प्रभु तुम न बीचारके;
अधम उधारण बिरुद छे, सरन आयो अब किजीये
सारके ॥ श्री० ॥ ३ ॥

किंचित् पुन्य प्रभावथी, इण भव उलखियो जिनधर्म के;
निवर्तू नरक निगोदथी, एवो अनुग्रह करो
परिब्रह्म के ॥ श्री ४ ॥

साधुपणो नहि संग्रह्यो, श्रावक व्रत न
कियां अंगिकार के;
आदर्या तो न आराधियां, तेहथी रुलियो हूं
अनंत संसार के ॥ श्री० ॥ ५ ॥

अब समकित व्रत आदर्या, तदपि आराधिक
उतरुं पार के;
जनम जिवित्व सफलो हुवे, इणपर विनवुं
वार हजार के ॥ श्री० ६ ॥

'सुमित' नराधिप तुम पिता, धनधन श्री
'पद्मावति' माय के;
तसु सुत त्रिभूवन तिलक तूं, वंदत 'विनयचंद'
सीस नमाय के ॥ श्री० ॥ ७ ॥

पद ॥ २१ ॥
(सुणियोरे, बाला कुटिल मंजारी तोता ले गइ--ए देशी)

'विजयशेन' नृप विप्रा राणी. नमीनाथ जिन जायो
चोसठ इंद्र कियो मिल उछव, सुरनर आनंद पायोरे--
सुज्ञानी जीवा भजले जिन एकविसमा–भजन टेर १.
भजन कियां भवभवनां दुष्कृत, दुख दुभाग्य मिट जावे;
काम क्रोध मद मच्छर त्रिसना, दुरमत निकट न
आवेरे ॥ सुज्ञानी० ॥ २ ॥
जीवादिक नव तत्व हिये धर, हेय ज्ञेय समजीजे;
त्रीजी उपाधेय उलखीने, समकित निर्मल कीजेरे.
॥ सु० ॥ ३ ॥
जीव अजीव बंध ए तीनुं, ज्ञेय जथारथ जाणो;
पुन्य पाप आस्रव परहरिए, हेय पदारथ मानो रे
सु० ॥ ४ ॥
संवर मोक्ष निर्जरा निजगुण, उपादेय आदरिये;
कारन कारज समज भली विधि, भिन्नभिन्न
निरणे करिएरे ॥ सु० ॥ ५ ॥
कारन ज्ञान सरुपी जीवको, कारज क्रिया पसारो;
दोनुको साखी शुद्ध अनुभव, आपो खोज
निहारोरे ॥ सुज्ञानी ॥ ६ ॥

तूं सो प्रभू, प्रभू सो तुंहे, द्वैत कल्पना मेटो;
सत चेतन आनंद 'विनयचंद', परमातम पद
भेटो रे ॥ सुज्ञानी ॥ ७ ॥

पद ॥ २२ ॥
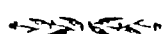
(नगरी खूब वणी छे जी—ए देशी)

'समुद्रविजय' सुत [२२] श्रीनेमीसर, जादव कुल कोटीको;
रतनकुख धरणी 'सिवादेवी', तेहनो नंदन नीको—
श्री जिन मोहन गारो छे, जीवन प्राण हमारो छे.
(टेर) ॥ १ ॥

सुनि पुकार पशुकी करुना, करजाण जगत सुख फीको;
नवभव नेह तज्यो जोवनमें, 'उग्रसेन' तनीयाको
॥ श्री० ॥ २ ॥

सहस्र पुरुषसुं संजम लीधो, प्रभूजी पर उपगारी;
धन धन नेम राजुलकी जोरी, महा बालब्रह्मचारी
॥ श्रीनेमी ॥ ३ ॥

बोधानंद स्वरुपानंदमें, चित्त एकाग्र लगायो;
आतम अनुभव दशा अभ्यासी, शुक्लध्यान
जिन ध्यायो ॥ श्री नेमी ॥ ४ ॥

पुरणानंद केवली प्रगटे, परमानंद पद पायो;
अष्टकरम छेदी अलवेसर, सहजानंद समायो ॥श्री॥५॥
नित्यानंद निराशय निश्चल, निरविकार निर्वाणी;
निरातंक निरलेप निराश्रय, निराकार वरनाणी ॥श्री॥६॥
एहवो ध्यान समाधि संजुत, श्री नेमीसर स्वामी;
पूरण कृपा 'विनयचंद' प्रभूकी, अब ते उलख पामी
॥ श्री नेमि ॥ ७ ॥

पद ॥ २३ ॥

(जिवरे तुं शियळ तणो कर संग--ए देशी)
'अश्वसेन' नृप कुल तिलोरे, 'वामादेवी'को नंदः
चिंतामण चित्तमें वसेरे, दूर टळे दुःख द्वंद-
जिवरे तूं पार्श्वजिनेश्वर वंद (टेर) ॥ १ ॥
जड चेतन मिश्रितपणेरे, करम शुभाशुभ थायः
ते विभ्रम जग कलपनारे, आतम अनुभव न्याय
॥ जीव ॥ २ ॥
वैमी भय माने जथारे, सुनं घर वैतराल;
त्यूं मूरख आतम विषेरे, भाज्यों जग भ्रम जाल
॥ जीव ॥ ३ ॥
सरप अंधारे रासडीरे, रुपो छीप मझार;

मृगतृसना अंबू मृपारे, त्युं आतममें संसार
॥ जीव ॥ ४ ॥
अग्नि विषे जो मणि नहिरे, मणीमें अग्नि न होय;
सुपनेकी संपति नहीं ज्युं, आतममें जग जोय जी०५
वांज पुत्र जनमे नहींरे, सींग सुसे सिर नांहि;
कुसुम न लागे व्योममेंरे, ज्युं जग आतम मांय,जी०
अमर अजोनी आतमारे, हुं निश्चे तिहुं काल;
'विनयचंद' अनुभव जगीरे. तूं निज रुप संभाल
॥ जीवरे० ॥ ७ ॥

पद ॥ २४ ॥

(श्री नवकार जपो मन रंगे--ए देशी)
धनधन जनक 'सिधारथ' राजा, धन 'त्रिसलादे'
मात रे प्राणी;
ज्यां सुत जायो गोद खिलायो; वृधमान विख्यात रे प्राणी-
श्री महावीर ४ नमो वरनाणी ॥ (टेर) ॥ १ ॥
श्री महावीर नमो वरनाणी, शासन जेहनो जाण रे प्राणी;
प्रवचन सार विचार हियामें. कीजे अरथ प्रमाण रे प्राणी
॥ श्री महा० ॥ २ ॥
सूत्र विनय आचार तपस्या, चार प्रकार समाधरे प्राणी;

ते करीए भवसागर तरीए, आतमभाव आराधरे प्राणी
॥ श्री महा ॥ ३ ॥

ज्यु कंचन तिहुं काल कहीजे, भूपन नाम अनेकरे प्राणी;
त्युं जगनाम चराचर जोनी, है चेतनगुण एकरे प्राणी
॥ श्री महा ॥ ४ ॥

अपणो आप विषे थिर आतम, सोहं हंस कहायरे प्राणी;
केवळ ब्रह्म पदारथ परचे, पुदगल भरम मिटायरे
प्राणी श्री महा ॥ ५ ॥

शब्द रुप रस गंधन, जामें नाफरस तप छांहरे
तिमिर उद्योत प्रभा कुछ नाही, आतम अनुभव
मांहीरे प्राणी श्री महा ॥ ६ ॥

सुख दुख जीवन मरन अवस्था, ए दस प्रान
संगातरे प्राणी;
इनथी भिन्न 'विनयचंद' रहीए, ज्यौं जलमें
जलजातरे प्राणी ॥ श्री ॥ ७ ॥

॥ कलश ॥

चोविस तीरथ नाथ कीरत, गावतां मन गहगहे;
कुंमट 'गोकुलचंद' नंदन, 'विनयचंद' इण पर कहे ॥
उपदेश पूज्य 'हमीर' मुनिको, तत्व निज ऊरमें धरी;
उगणीस सौ छके छमछर, महास्तुति पूरण करी ॥

લેખસંગ્રહ.

લેખક,

દોશી મણિલાલ નથુભાઈ, બી. એ.

રતનપોળ–અમદાવાદ.

પ્રસિદ્ધ કર્ત્તા,

શકરાભાઇ મોતીલાલ શાહ.

સારંગપુર તળીયાની પોળ–અમદાવાદ.

આવૃત્તિ ૧ લી.   પ્રત ૧૪૦૦.

ઇ. સ. ૧૯૧૨.   સંવત ૧૯૬૮.

અમદાવાદ.

ધી "ડાયમંડ જ્યુબીલી" પ્રીન્ટીંગ પ્રેસમાં

પરીખ દેવીદાસ છગનલાલે છાપ્યો.

મૂલ્ય ૦—૪—૦.

લેખ સંગ્રહ.

બાર ભાવના.

भावितव्यमनित्यत्वमशरणत्वं तथैकतान्यत्वे ।
अशुचित्वं संसारः कर्माश्रवसंवरविधिश्च ॥
निर्जरणलोकविस्तरधर्मस्वाध्यायतत्त्वचिन्ताश्च ।
बोधेः सुदुर्लत्वं भावना द्वादशविशुद्धाः ॥—प्रशमरति.

(૧) અનિત્ય, (૨) અશરણ, (૩) એકત્વ, (૪) અન્યત્વ, (૫) અશુચિત્વ, (૬) સસાર, (૭) આશ્રવ, (૮) સવર, (૯) નિર્જરા, (૧૦) લોકવિસ્તાર, (૧૧) ધર્મ સ્વાધ્યાય, (૧૨) બોધિ દુર્લભ એ રીતે બાર સિદ્ધ ભાવનાઓનુ નિરતર મનન કરવુ.

બાર ભાવનાનું સ્વરૂપ.

(૧) અનિત્ય ભાવના.

આ જગતમા સઘળી અનિશ્ચિત વસ્તુમા એક વાત નિશ્ચિત છે, અને તે એ છે કે "વસ્તુ માત્રના પર્યાયો ક્ષણે ક્ષણે ફરે છે" જગતની કોઇ પણ વસ્તુ નિત્ય નથી કોઇ લાબો કાળ ચાલે, કોઇ ટુકો સમય રહે, પણ અતે સર્વ વસ્તુઓ વિનાશી છે, માટે અનિત્ય છે પદાર્થ માત્ર અનિત્ય છે એટલુજ નહિ પણ સજીવ પ્રાણીઓની ઉપાધિરૂપ શરીર જેને ભુલથી માણસ હુ પોતે છુ એમ માનવાને દોરાય છે, તે શરીર પણ નાશવંત છે આત્મા સિવાયની સર્વ વસ્તુઓ અનિત્ય છે, દેવોના આયુષ્ય લાબા સમયના હોય, અને તેથી તેમને મળતુ સુખ બહુ ગણવામા આવે, પણ અનતકાળની અપેક્ષાએ તે પણ અનિત્ય છે ટુકમા સર્વ પુદ્‌ગલદ્રવ્ય—અજીવ વિનાશી છે, તેના પર્યાયોમા ક્ષણે ક્ષણે ફેરફાર થયા કરે છે. પ્રાતઃકાળમા જે માણસ આપણી નજરે પડ્યો હતો તે મરણ પામ્યો છે એવી સાયકાળે આપણને ખબર પડે છે સવારે જે ફૂલ સૂર્યના કિરણોથી વિકસ્વર થયેલ અવસ્થામા દેખાતુ તે સાજે સકોચાયેલ નજરે પડે છે

શરીરને પણ બાળપણ, યુવાવસ્થા, વૃદ્ધપણુ વગેરે અનુભવાય છે. લક્ષ્મીને ચપળા કહેવામા આવે છે, એટલે તે એક જગ્યાએ ઠરી બેસતી નથી, પણ સમયે સમયે સ્થાન બદલે છે આવી રીતે તન, ધન, જોબન, બળ, વિષયસુખ, પ્રિયજનસમાગમ અને સસારના સર્વ પદાર્થો અસ્થિર અને અનિત્ય છે. માત્ર આત્મા અમર છે, નિત્ય છે, શાશ્વત છે તેનો કોઇ દિવસ અંત આવવાનો નથી. પણ તે શિવાયના અન્ય પદાર્થો વાયુના આ વેગથી ચાલતી ધ્વજાના પટ જેવા અસ્થિર છે, કુજરના કાન જેવા ચ- ચળ છે, શરદૃઋતુની વાદળીની છાયા જેવા ક્ષણભગુર છે, અને વિદ્યુ- તના ચમકારા જેવા ક્ષણ વિનશ્વર છે પણ અજ્ઞાનતાથી માણસો તે વ- સ્તુઓને નિત્ય સમજી તેનાપર રાગ ધરે છે, મમત્વ કરે છે, અને આ મારૂ છે એવો ખોટો ભ્રમ સ્વીકારે છે. પરતુ તત્ત્વ દૃષ્ટિએ આ સર્વ પ- દાર્થો અનિત્ય છે; અને પરમાત્માપદને મેળવી આપનારા આત્માના જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર, અથવા સદૃ, ચિદૃ અને આનદ એ ગુણોજ નિત્ય છે. કારણ કે તે સ્વાભાવિક ગુણો છે, આ રીતે નિત્ય અને અનિત્ય વસ્તુ વચ્ચે વિવેક કરતા શિખવુ. અને જેમ બને તેમ અનિત્ય વસ્તુના સબધમા ઉદાસીન ભાવ ધારણ કરવો. વિવેકથીજ ખરો વૈરાગ્ય જાગૃત થાય છે. જે વસ્તુઓ અનિત્ય છે તે પરમાર્થ દૃષ્ટિથી મારી નથી એજ ભાવના તે વસ્તુ ઉપર વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન કરાવે છે અને **ज्ञानस्य फलं विरतिः** જ્ઞાનનુ ફળ એ વિ- રતિ એ સૂત્ર ખરૂ પડે છે. અનિત્ય ભાવનાના સબધમાં કહ્યું છે કે.—

सामित्तणधणजुव्वणरइरूववलाउइट्ठसंजोगा ॥
अइलोला घणपणाहयपायवपक्कपत्तव्वा ॥

પ્રભુત્વ, ધન, જોબન, રતિ, રૂપ, બળ, આયુષ્ય, ઇષ્ટસયોગ એ સર્વ વસ્તુ સખત પવનનો ઝપાટો લાગેલાં વૃક્ષનાં પાકા પાદડા જેવી બહુજ ચચળ છે જેમ તે પાકેલા પાંદડાને પવનનો સખત ઝપાટો લાગે તો પડતાં વાર લાગતી નથી, તેમ આ સર્વ અનિત્ય હોવાથી નાશ થતાં વાર લાગતી નથી. આવી રીતે સસારમા સર્વ પદાર્થોની અનિત્યતા અનુભવવી અને અને તેટલો રાગ તે ઉપરથી ઉતારવો.

(૨) બીજી અશરણ ભાવના.

જગમાં જીવ અનેક પ્રકારના મનુષ્યો પર આધાર રાખે છે, અને તેમને પોતાના શરણરૂપ માને છે પણ ખરી રીતે આત્મા સિવાય આત્માનુ કોઇ આધારભૂત નથી આત્મા જ આત્માનો શત્રુ છે, અને આત્મા

જ આત્માનો મિત્ર છે વ્યવહારનયથી માતા, પિતા, સ્વજન, બાંધવ, સ્ત્રી, પુત્ર, ગુરૂ વગેરે આધાર રૂપ ગણી શકાય, પણ નિશ્ચયનયથી અથવા ખરી રીતે કોઇ પણ માણસને શરણ આપે તેમ નથી મરણ સમયે પોતાનુ ચારિત્ર, પોતે કરેલા શુભ અશુભ કર્મો તેની સાથે આવે છે કોઇ પણ માણસ તેને મરણના ક્રૂર પંઝામાથી બચાવવા સમર્થ થતુ નથી જે વસ્તુઓ અનિત્ય છે તે આત્માની સાથે આવી શકે નહિ. કારણકે આત્મા નિત્ય છે, માટે તેના નિત્યગુણો જ તેની સાથે આવે માટે આત્માના ગુણો જે હાલ અપ્રગટ સ્થિતિમા છે, તે જેથી પ્રગટ થાય તેવા સાધનોનો આશ્રય લેવો બાકી બીજું કોઈ શરણ નથી આવી રીતે અશરણ ભાવના ભાવવી. આત્મા જ કર્મદળને વિખેરી નાખવા સમર્થ છે, આત્માજ પરમાત્મ અવસ્થા પ્રાપ્ત કરવા શકિત ધરાવે છે ગુરૂ તો માર્ગ બતાવી શકે, તે વાસ્તે ખરેખર તેમનો ઉપકાર માનવો અને તેમના ઉપર અત્યત ભકિત રાખવી ઘટે છે, પણ તે માર્ગ ઉપર આપણે જાતેજ ચાલવાનુ છે, એવો વિચાર કરી સ્વાશ્રયી થતા શિખવુ જે પદ મહાન્ પુરૂષો પ્રાપ્ત કરી શકયા તે પદ પ્રાપ્ત કરવાનુ સામર્થ્ય આપણા આત્મામા રહેલુ છે, એવો વિચાર કરવો અને કાયર થઇ, હાથ જોડી, દૈવને માથે દોષ મુકી આળસમા–પ્રમાદમા અમૂલ્ય સમય ગુમાવવો નહિ

(૩) સંસાર ભાવના.

સસારની ઘટમાળ નિરતર ફર્યા કરે છે, કાળચક્રના અને કાર્ય કારણના અચળ નિયમ પ્રમાણે સર્વ જીવ પોતપોતાના કર્મનાં ફળ રૂપે કોઇ સુખી તો કોઇ દુ ખી, કોઇ રક તો કોઇ રાજા, કોઇ રૂપવાન તો કોઇ કુરૂપવાન, કોઇ બળવાન તો કોઇ નિર્બળ, કોઇ વિદ્વાન તો કોઇ અભણ, કોઈ ગુણાનુરાગી તો કોઇ ગુણદ્વેષી, એવી રીતે અનેક પ્રકારના સ્વરૂપ આપણી દૃષ્ટિએ પડે છે જુદા જુદા આત્માઓ સાથે જીવ જુદા જુદા સબધમા આવે છે, અનતકાળથી આ જીવ અજ્ઞાન અવસ્થામા અને જીવન ઉદ્દેશના લક્ષવિના સસારમા પરિભ્રમણ કરે છે, તેથી સર્વ જીવોના સબધમા જુદા જુદા ભવમા આવે છે, અને તે ભિન્ન ભિન્ન ભવમા માતા, પિતા, પુત્ર, પુત્રી, સ્ત્રી, નોકર, સ્વજન, શત્રુ, મિત્ર વગેરે અનેક પ્રકારના સબધમા અનેક વાર અનેક જીવોની સાથે જોડાય છે, છતા કોઇ કોઇનુ [illegible] નથી, કારણ કે આ સર્વ સબધ શરીર આશ્રી છે, અને આત્મા તો દેહાતીત છે માટે આસકિત વિનાનુ પ્રેમ (મૈત્રી) સહિત આપણા સબધમા આવતા જીવોનુ કલ્યાણ કરવુ. મનુષ્યને સસારમા

બાંધનાર રાગ, મમત્વ ભાવના છે આ પુત્ર મારો છે. આ સ્ત્રી મારી છે, એવા વિચારથી તેમના ઉપર જે આસક્તિ થાય તે રાગ, અને તે રાગ માણસને તે ઇષ્ટ જનના વિયોગથી અથવા મરણથી દુખ ઉત્પન્ન કરે છે પણ પુત્ર અથવા સ્ત્રી તે આત્મા છે, અને આત્માનુ કલ્યાણ કરવુ તે મારો ધર્મ છે, અને બીજા માણસો કરતા, મારા સબંધમા આવેલા માણસોનુ કલ્યાણ હુ વધારે કરી શકુ **એવા વિચારથી** તેમના ઉપર પ્રેમ રાખવો તે ઉત્તમ છે, અને તે પ્રેમ દરેક મહાન આત્માનો **સ્વાભાવિક** ધર્મ છે પોતે નિસ્પૃહ ભાવથી ટ્રસ્ટી તરીકે વર્તવુ સસાર દુખમય છે, અને જન્મમરણના ચક્રમા ફરતા ખરી રીતે સુખ જરા માત્ર નથી. જેમ ભમરો વાડીમા એક ફુલનો ત્યાગ કરી બીજા ફુલે બેસે છે, ત્યાંથી ત્રીજા ફુલ ઉપર બેસે છે, એમ જીવ અનેક ગતિમાં અથડાય છે, પણ સુખ મેળવી શકતો નથી, કારણ કે ખરૂ સુખ તો આત્મામા રહેલુ છે, પણ જેમ કસ્તુરીઓ મૃગ પોતાની નાભિમાથી નીકળતા કસ્તુરીના વાસથી લોભાઇ કસ્તુરી મેળવવાને સકળ જગલમા ભમે છે, તેમ સુખ આત્મસ્વભાવમાં રહેલુ છે, છતા તે બાબતના જ્ઞાનના અભાવે અજ્ઞાની જીવ બાહ્ય વસ્તુમાં સુખ શોધે છે સસારમા બિલકુલ સુખ નથી એમ આ કથનનો આશય નથી, પણ તે સુખ ઇન્દ્રજાળ જેવુ છે, અને તે મળ્યા પછી પણ ખરી તૃપ્તિ નથી, માટે ચિરકાળ ટકે એવુ સુખ પ્રાપ્ત કરવા ઇચ્છનાર મનુષ્યના પ્રયાસને અનુચિત છે આવી રીતે સસારનુ સ્વરૂપ વિચારવુ અને તે દુખ ગર્ભિત દેખી વૈરાગ્યવાન્ થવુ અને આત્મસ્વભાવમા રહેલુ અનત, અમર સુખ મેળવવા પ્રયત્ન કરવો, એજ આ કથનનો આશય છે

(૪) એકત્વભાવના.

આ સંસારને વિષે જીવ એકલોજ ઉત્પન્ન થાય છે, અને એકલોજ મરે છે, એકલોજ કર્મનો કર્તા છે, અને એકલોજ તે કર્મનો ભોક્તા છે, પરમાર્થ દૃષ્ટિએ વિચારીએ તો સ્વધર્મ સિવાય અન્ય કોઇ પણ સ્વજન તેને સહાયકારી થઈ શકે નહિ માટે કોઈ પણ કાર્યનો આરભ કરતા પહેલાં તે કાર્યનુ શુ પરિણામ આવશે એમ વિચારી તે કાર્યમા જીવે પ્રવર્તન કરવુ, કારણ કે તે કાર્યનુ ફળ પણ પોતાને એકલાને ભોગવવુ પડશે. દરેક કાર્ય વિચાર અને વાસનાને વાસ્તે પોતેજ જવાબદાર છે; માટે દરેક જીવે પવિત્ર અને સુદર **વિચારો** વિચારવા, પવિત્ર અને સુદર **વચનો** બોલવા, અને પવિત્ર અને સુદર **કાર્યો** કરવા, કારણ કે તે સર્વનુ સુદર ફળ પણ

પોતાનેજ મળે છે. આત્મા પોતે એક છે, અને તે સિવાયની સર્વ વસ્તુઓ ભિન્ન છે અને તેને ને આત્માને ખરી રીતે કોઇ સબધ નથી

અધ્યાત્મસારમા કહ્યુ છે કે—

एकः परभवे याति जायते चैक एव हि ॥
ममतोद्रेकतः सर्वं संबन्धं कल्पयत्यथ । १ ॥
व्याप्नोति महतीं भूमिं वटबीजाद्यथा वटः ॥
तथैकममताबीजात्प्रपञ्चस्यापि कल्पना ॥ २ ॥
माता पिता मे भ्राता मे भगिनी वल्लभा च मे ॥
पुत्राः सुता मे मित्राणि ज्ञातयः संस्तुताश्च मे ॥ ३ ॥
इत्येवं ममताव्याधिर्वर्धमानं प्रतिक्षणम् ॥
जनः शक्नोति नोच्छेत्तुं विना ज्ञानमहौषधम् ॥ ४ ॥

જીવ એકલો પરભવમા જાય છે, અને અહીયાં એકલો ઉત્પન્ન થાય છે, પણ મમતાના પ્રધાનપણાથી સર્વ સબધની જીવ કલ્પના કરે છે વડના બીજને લીધે વડનુ ઝાડ બહુજ વિસ્તારવાળી જમીનમા પથરાય છે, તેમ એક મમતા રૂપ બીજ થકી આ સસારના સબધની કલ્પના ઉદ્ભવે છે મારી માતા, મારો પિતા, મારો ભાઇ, મારી બ્હેન, મારી પત્ની, મારા પુત્રો, મારી પુત્રીઓ, મારા જ્ઞાતિજનો, મારા પરિચયવાળા. આ રીતે ક્ષણે ક્ષણે વધતી જતી મમતારૂપ વ્યાધિનો ઉચ્છેદ કરવા સમ્યગ જ્ઞાનરૂપ મહૌષધ સિવાય માણસ સમર્થ થતો નથી **સમ્યગજ્ઞાન** અથવા સદ્ અને અસદ્ કે નિત્ય અને અનિત્ય વસ્તુ વચ્ચેનો વિવેકજ આ મમતાનો નાશ કરે છે. **હું અને મારૂં** એજ માણસની જ્ઞાન ચક્ષુને અધ કરનાર મોહરાજાનો મત્ર છે, અને જે કાંઈ દેખાય છે તે, હુ અને મારૂ નથી એ મત્ર મોહરાજાને જીતનાર છે

નિજરૂપા નિજ વસ્તુ છે, પર રૂપા પરવસ્ત,
જેણે જાણ્યો પેચ એ તેણે જાણ્યુ સમસ્ત ।

(૫) અન્યત્વ ભાવના.

આત્મા સિવાયની તમામ વસ્તુઓ સાથે આત્માનો નિશ્ચયનયની અપેક્ષાએ કાંઇ પણ સંબંધ નથી ઘણા કાળ સુધી અન્નપાનાદિકથી લાલન પાલન કરેલો દેહ તેજ પોતાનો નથી, તો પછી દેહથી બહાર રહેલાં ધન, સુવર્ણ, ઘર, મહેલ વગેરે પોતાના શી રીતે થઇ શકે ? તે સર્વ આત્માના નથી, પણ આત્મા તેને સ્વરૂપના અજ્ઞાનથી પોતાના ગણે છે આ મારૂ ઘર, આ મારૂ ધન, આ મારા સ્વજન એમ તે માને છે; પણ તે સર્વ આત્મદ્રવ્યથી ન્યારા છે કારણ કે સર્વ પદાર્થો અને ચેતનાવાળા પ્રાણીઓની ઉપાધિઓ–શરીરો પુદ્ગલના જુદા જુદા રૂપાંતરો છે, પુદ્ગલ તે અજીવ છે. માટે ખરી રીતે જીવ પુદ્ગલથી જૂદો છે; એવી ભાવનાને '**અન્યત્વ** ભાવના' કહે છે.

(૬) અશુચિ ભાવના.

આ શરીર, આત્માને કાર્ય કરવાનુ સાધન છે; પણ આપણે શરીરનેજ સર્વસ્વ માનીએ છીએ. ઘણા જડવાદીઓ તો શરીર એજ આત્મા એમ કહે છે. પણ તેમાં તેમની મોટી ભૂલ છે, શરીર એ તો આત્માનુ વસ્ત્ર છે. અને તે વસ્ત્ર ઉપર બહુ રાગ રાખવો નહિ, કારણ કે આ ઔદારિક દેહ તે બહુજ અશુચિમય (અપવિત્ર) છે; કેમકે તે રસ, રૂધિર, માંસ, મેદ, હાકડાં, વીર્ય, મજ્જા, શ્લેષ્મ, મળ મૂત્રાદિકથી ભરેલો, ચામડાથી મઢેલો, નસોની જાળાઓથી વીટાયેલો, નિરંતર કૃમિ, રોગ અને ગુમડાથી વ્યાપી રહેલો છે. ફુલની માળા, બરાસ, ચંદન, કસ્તુરી વગેરે સુગંધી દ્રવ્ય શરીરપર લગાડવામાં આવ્યા હોય તો તેને પણ મલિન કરવાને આ દેહ સમર્થ છે; માટે તે ઉપર અત્યંત રાગ ન ધરવો એમ આ અશુચિ ભાવના જણાવે છે. આટલા બધા અવગુણ છતાં તે જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાનુ, ધાર્મિક ક્રિયાઓ કરવાનુ, અને આ જગતના વ્યવહારના દરેક કાર્ય કરવામા તે ઉત્તમ સાધન છે; માટે તેને બરાબર **કેળવવું**. કેળવાએલુ હથિયાર સુતારને બહુ ઉપયોગી થાય છે, તેમ કસરતથી કેળવાયેલુ, અને બ્રહ્મચર્યથી મજબૂત બનેલુ શરીર બહુજ ઉપયોગી થાય છે; માટે શરીરનું અત્યંત લાલનપાલન પણ ન કરવુ, તેમ તેના ઉપર દ્વેષ કરી તેનો અનાદર પણ ન કરવો. તે આપણો નોકર છે એમ માનવુ. નોકરને વશ રાખીએ છીએ, મારી નાંખતા નથી. તેજ રીતે શરીરને વશ રાખવું, પણ તદ્દન દરકાર ન કરી, તેનો નાશ કરવો ઘટતો નથી પણ તેને ઉચિત કાળજીથી અને કુદરતના કાયદા મુજબ વર્તીને તન્દુરસ્ત રાખવું તથા આત્માના ઉદ્ધાર

માટે જે કાંઇ કામ તેની પાસે કરાવવું જરૂરનુ જણાય તે કરવાને તે શરીર જરા પણ આનાકાની ન કરે એમ સભાળવુ.

(૭) આશ્રવ ભાવના.

જીવ ક્ષણે ક્ષણે શુભ અથવા અશુભ કર્મ બાંધે છે. તે કર્મનો બધ થવાનાં કારણો મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, કષાય, પ્રમાદ અને યોગ છે જેના હૃદયમાં મૈત્રી, કારૂણ્ય, પ્રમોદ અને મધ્યસ્થ ભાવના વસેલી છે તેઓ શુભ કર્મ બાધે છે, પણ જેમના મન આર્ત તથા રૌદ્ર ધ્યાન, અને વિષય કષાયથી રગાયેલા છે તેઓ અશુભ કર્મ બાધે છે પુણ્ય અને પાપ શી રીતે બધાય છે અને કેવી રીતે ભોગવાય છે, તેનુ સવિસ્તર સ્વરૂપ નવતત્ત્વથી ગ્રહણ કરવુ. જેથી કર્મ બધ થાય તેવી સરાગપ્રવૃત્તિને આશ્રવ કહેવામા આવ છે, જેમા કર્મના ફળ ઉપર મમતા રહેલી છે તેવા કાર્યથી નવા કર્મ ગ્રહણ કરાય છે; માટે આશ્રવનો ત્યાગ કરવા નિષ્કામવૃત્તિથી કાર્ય કરવા

(૮) સંવર ભાવના.

આશ્રવને રોકવુ તે સવર જેથી નવા કર્મ બધાય તેવાં કાર્યોનો રોધ કરવો તેને સવર કહે છે સમ્યગ્જ્ઞાનથી મિથ્યાત્વનો નાશ કરવો, વિરતિથી અવિરતિનો રોધ કરવો, ક્ષમાથી ક્રોધને, નમ્રતાથી માનને, સરલતાથી માયાને, અને સતોષથી લોભને આ રીતે કષાયોને જીતવા અને મન, વચન અને કાયાના શુભયોગોથી અશુભયોગ ઉપર જય મેળવવો, તે સવર કહેવાય તે સવર સર્વ થકી અને દેશ થકી હોય છે સર્વ પ્રકારે સયમ તો ચૌદમા ગુણસ્થાનકમા બિરાજતા અયોગી કેવળીને હોય, અને દેશથકી સવર એક બે ત્રણ પ્રકારના આશ્રવના રોકનારને પણ મળવી શકે. વળી સવરના બે ભેદ છે દ્રવ્ય સવર અને ભાવ સવર આશ્રવને લીધે જે પુદ્ગલો જીવને લાગતા હોય તે ન લાગવા દેવા, અથવા તેમનો છેદ કરવો તે દ્રવ્ય સવર કહેવાય, અને ભવના કારણરૂપ આત્માની અશુદ્ધ પરિણતિ, તેને ટાળી સ્વસ્વભાવમા રમણ કરવુ, તે ભાવ સવર કહેવાય

(૯) નિર્જરા ભાવના.

સકામ નિર્જરા થાય છે. જે લોકોએ વિરતિ ગ્રહણ કરી છે, તેઓજ આ રીતે કર્મની નિર્જરા કરવા તત્પર થાય છે, અને અકામ નિર્જરા તો વિરતિ ભાવ વિના નિષ્કારણ ટાઢ, તડકો, ક્ષુધા વગેરે સહન કરવાથી થાય છે. માટે કષાયની મંદતા કરી તપ કરવો તેજ લાભકારી છે, બાકી ઈચ્છાના રોધ રૂપ સત્ય તપ વિના ઝાઝો લાભ થતો નથી એવી રીતે નિર્જરાનુ સ્વરૂપ વિચારવુ, અને યથાશકિત બાહ્ય તથા અભ્યંતર તપ કરવો.

(૧૦) લોક સ્વભાવ.

પોતાના બે હાથ પોતાની કેડ ઉપર મુકયા હોય, અને પોતાના બે પગ વાંકા પસાર્યા હોય, તેવા માણસને તમારી નજર આગળ કલ્પો, અને તેમને ચૌદ રાજલોકનુ કેવુ સ્વરૂપ હશે તેની ઝાખી થશે. તે લોકને વિષે ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, પુદ્‌ગલાસ્તિકાય, કાળ અને જીવ રૂપ ષટ્ દ્રવ્ય આવી રહેલા છે. જેમ માછલાને હાલવા ચાલવાની ગતિમાં જળ સહાય કરે છે, તેમ ચાલવાને તત્પર થયેલ માણસને ચાલવાના કામમા સહાય કરનાર તત્ત્વ ' ધર્માસ્તિકાય ' કહેવાય છે. માણસને સ્થિર બેસવામાં, અને દરેક વસ્તુને સ્થિરતા આપવામાં સહાય કરનાર તત્ત્વ ' અધર્માસ્તિકાય ' કહેવાય છે. અવકાશ આપવો તે ' આકાશાસ્તિકાય ' નો સ્વભાવ છે. આપણે દુધથી ભરેલા લોટામા નવટાંક યા પાશેર ખાંડ નાખીએ છીએ, છતા લોટામાથી દુધ બ્હાર નીકળી જતુ નથી, કારણ કે દુધના પરમાણુઓની વચ્ચે વચ્ચે જગ્યા રહેલી છે, આ જગ્યામાં આકાશ રહેલુ છે ચેતના લક્ષણવાળો, કર્મનો ભોકતા ' જીવ ' કહેવાય છે પૃથ્વી, વાદળા, પર્વત સઘળાં જેના પરિણામ રૂપે છે તે દ્રવ્ય ' પુદ્‌ગલાસ્તિકાય ' કહેવાય છે, તેનો સ્વભાવ ભરાઇ જવાનો અને હલવાઇ જવાનો છે દરેક વસ્તુને ક્ષણે ક્ષણે બદલનાર નવીન ને જૂનુ કરનાર અને સમયથી મપાનાર ' કાળ ' કહેવાય છે આવી રીતે છ દ્રવ્ય જેમા રહેલા છે, તે ઉર્ધ્વ, અધસ્ અને મધ્ય તીર્છા લોક રૂપ ત્રણ લોકનુ સ્વરૂપ વિચારવુ તે ' લોક-સ્વભાવ ' ભાવના જાણવી

(૧૧) બોધિ દુર્લભ.

ઘણા ઘણાં જન્મો કર્યા પછી આપણે આવી ઉત્તમ સ્થિતિ પ્રાપ્ત કરી છે મનુષ્ય ભવ પ્રાપ્ત થાય, પાંચે ઈંદ્રિયો સંપૂર્ણ હોય, ધર્મ શ્રવણ કરવાની ઇચ્છા હોય, સાભળવાનો લાગ હોય, વગેરે સર્વ સામગ્રીઓ હોય તોપણ ઉત્કૃષ્ટ વિશુદ્ધતાને બતાવનારી, કર્મરૂપ મેલને દૂર કરનારી, અને

સર્વજ્ઞ ભગવાને પ્રરૂપેલી સદ્ વાણીમાં શ્રદ્ધા થવી તે પ્રાયઃ દુર્લભ છે. સદ્‌ને સદ્ તરીકે ઓળખવુ, અને અસદ્‌ને અસદ્ તરીકે જાણવુ એ કામ સહેલુ નથી. ગુરૂ કૃપાથી અને મહા પુણ્યના ઉદયથી તે થઇ શકે છે. કારણ કે એકવાર પણ માણસને સદ્ અસદ્‌નુ વિવેકપૂર્વક ખરૂ જ્ઞાન થાય તો ફરીથી તેનો તે માણસ રહે નહિ, તેના આચાર વિચાર તદ્દન બદલાઇ જાય. સ સાર વ્યહારમાં ભલેને તે ફરીને ગુથાય, પણ કાંઇ ઓર પ્રકારની ઉદાસીનતા તેના કાર્યમા જણાશે.

(૧૨) ધર્મ ભાવના.

આ સ સારમા રઝળતા, અને અજ્ઞાનથી ભવભ્રમણ કરતા પ્રાણીઓને દયા દૃષ્ટિથી તારવાની બુદ્ધિથી સદ્‌જ્ઞાન શિખનાર સર્વજ્ઞ છે એમ વિચારવુ. કેવળજ્ઞાનથી તેમણે સર્વ સ્વરૂપ જોયુ, અને પરોપકાર બુદ્ધિથી તે જ્ઞાન જગતના હિત અર્થે લોકોને ઉપદેશ્યું, તે મહા કૃપાળુ તીર્થંકર મહારાજ છે, અને તેઓએ નિ:સ્વાર્થ બુદ્ધિથી, અને કેવળજ્ઞાનથી ઉપદેશ કરેલો છે, માટે તે સત્ય હોવો જોઇએ તેમની વાણી અતિ ઉત્તમ અને શ્રોતાને લાભકારી છે. રોહણીયા ચોરના કાનમાં વગર ઇચ્છાએ તે વાણીનો એક શબ્દ પડવાથી પણ તેને અત્યત લાભ થયો તો પછી તેનુ શ્રવણ કરી તે પ્રમાણે વર્તનારને કેટલો બધો લાભ થાય તે વિચારવું. સર્વજ્ઞ ભગવાનને દશવિધ યતિ ધર્મ અને બાર વ્રત રૂપ શ્રાવક ધર્મનો ઉપદેશ કર્યો છે, માટે શ્રાવકે બાર વ્રત પાળવા, અને સાધુએ દશવિધ ધર્મ પાળવો. આ રીતે ધર્મ અને **ધર્મનો ઉપદેશ કરનાર** સર્વજ્ઞનો વિચાર કરવો તે બારમી 'ધર્મ ભાવના'

કસોટી યાને પાત્રપરીક્ષા.

---

(૧)

જગલમા સધ્યાસમય થયો હતો, અને તેની છયા ચારે બાજુએ આવેલા વૃક્ષપર જામી રહી હતી પક્ષીઓ કલરવ કરતા પોતાના માળા તરફ પાછા વળતા હતા સૂર્યદેવના કિરણો પશ્ચિમગિરિને ભેટવા તૈયાર થઇ રહ્યા હતા, અને તે જગલમા ચારે બાજુએ શાંતિ પ્રસરી રહી હતી.

આવા શાંત સમયે પદ્માસન વાળી અને પોતાના ઘુંટણ ઉપર પોતાના બને હાથ રાખી માથુ ઉંચુ ધરી, અને દૃષ્ટિ સ્થિર કરીને, જગદ્‌ગુરૂની

નીચે બુદ્ધદેવ સમાધિમા મગ્ન થયા હતા તે કુંજમાં એટલે બધી શાંતિ પ્રસરેલી હતી, અને ત્યાંનું વાતાવરણ પ્રેમપ્રવાહથી એટલુ બધું છવાયું હતુ કે કોઇ અજાણ્યો નાસ્તિક પુરૂષ તે રસ્તેથી કદાચ જતો હોય તો તે પણ પોતાની અશ્રદ્ધા છોડીને ભકિત અને પૂજ્ય ભાવની લાગણીથી જમીનપર નમી પડે. વિકરાળમા વિકરાળ પ્રાણીઓ પણ તે મહાત્માના અદ્ભુત યોગ શકિતના પ્રભાવથી ત્યા આવતા વારજ પોતાનો જાતિ સ્વ ભાવ છોડી દેતાં, અને નમ્ર હરિણુ માફક બની જતા હતાં

તેવામા એક હરણી જે પોતાનાં બચ્ચાને રમાડતી હતી અને જેણે તે મહાત્માના ઝભા નીચે આશ્રય લીધો હતો તેણે ચમકીને ઉંચુ જોયુ.

તેવામાં દૂરથી કાંઇક ખડખડાટ થતો સંભળાયો. કોઇક ત્યા ઉતાવળે પગલે આવતુ જણાયુ. થોડી વારમા એક ટોળી ત્યાં આવી, તે ટોળીનો નાયક એક યુવક હતો; તે દેખાવમા ધઉવર્ણો હતો, પણ તેની મુદ્રા બહુ પ્રતાપી હતી; તેણે કસબી પોશાક પહેર્યો હતો, અને કીંમતી માળા તેના કંઠને શોભાવતી હતી.

તેની સાથે આવેલા લોકોને એક સ્થળે ઉભા રહેવાને આજ્ઞાપૂર્વક સૂચના કરીને તે બુદ્ધદેવ તરફ વળ્યો. જ્યારે તે મહાત્માની ભવ્ય તેજસ્વી અને શાંત મૂર્તિ આગળ આવ્યો ત્યારે તે અત્યત ભક્તિથી તે ગુરુના ચરણે પડયો. પછી તે ઉભો થયો અને નેત્ર નીચાં ઢાળીને, બને હાથ ભેગા કરીને તે ભકિત કરતો હોય તેવી સ્થિતિમા થોડી વાર ઉભો રહ્યો

બુદ્ધદેવ કંઇ પણ બોલ્યા નહિ, પણ તેમની દૃષ્ટિમાંથી પ્રેમપ્રવાહ વહેતો હતો.

તે યુવક આખરે ધૈર્ય લાવીને બોલ્યો, "હે ભગવન્! હે મહાત્મના હુ તમને નમસ્કાર કરૂ છુ, કંચબ નામના દૂર દેશથી હુ અત્રે આવેલો છુ; મારૂ નામ ચંદ્રસિંહ છે. હુ રાજાનો પુત્ર છુ. રાજ વારસ છુ, અને તમારી પાસે એક યાચના કરવા આવ્યો છું. હે ભગવન્! જ્યારથી આપણુ નામ મારા કર્ણે પડયુ ત્યારથી મેં આરામ લીધો નથી. તેમજ મારા ચિત્તને શાંતિ વળી નથી. મારા રાજ્ય મહેલના ભંડારો હવે મને સુખ આપી શકતા નથી. મારા મિત્રો તેમજ મારી સ્ત્રીઓ મારા મન અને ઇન્દ્રિયોને સંતોષ આપતા બધ પડયાં છે હું ઉચ્ચ જીવન ગાળવાને આતુર બન્યો છુ. હે કૃપાળુ ગુરૂદેવ! મને તમારા એક શિષ્ય તરીકે અગીકાર કરો. મારા જેવો ખરો ભકત તમને ભાગ્યેજ જડશે."

બુદ્ધદેવ પોતાની શાંતિ જાળવી રહ્યા, દયાભરી દૃષ્ટિ તે યુવક તરફ ફેરવી. પણ એક પણ અક્ષર તે બોલ્યા નહિ. ચંદ્રસિંહે આગળ ચલાવ્યુ કે.—

"હે દેવ! હે ગુરો! આપ શુ મને ઉત્તર નહિ આપો? શુ હું આ અધિકારને પાત્ર નથી? હે પ્રભુ! મે મારી બાલ્યાવસ્થાથી નિષ્કલંક જીવન ગુજાર્યું છે, સદ્‌ગુરૂનુ સેવન કર્યું છે, અને ધર્મના નિયમો પ્રમાણે વર્ત્યો છુ મારા દેશના ધારા અને નીતિ નિયમોને હું અનુસર્યો છું અને ધર્મશાસ્ત્રોનો ખંતથી મે અભ્યાસ પણ કર્યો છે. શુ આટલાથી હે પ્રભો! આપનુ ધ્યાન મારા તરફ નહિ ખેંચાય? શુ હું તમારો ચેલો ન થઇ શકુ?"

"**ના**" ફકત એટલોજ જવાબ મળ્યો

"હે દેવ! હે! ભગવન્! ત્યારે હવે બોલો, તમારી ઇચ્છાને હુ અનુસરીશ આ ચેલા થવાના અધિકારને સારૂ મારે શુ કરવુ જોઇએ તે કૃપા કરી જણાવો"

"શોધ અને તને જડશે"

"શુ શોધુ?" તે યુવકે દિલગીર અવાજે પુછ્યુ.

ગૌતમ બુદ્ધે કાંઇ પણ જવાબ ન આપ્યો, તોપણ તે યુવકે બોલવાનુ જારી રાખ્યુ, "તથાસ્તુ! હું શોધીશ મારી આ રીતે કાંઇક કસોટી કાઢવાનો કદાચ આપનો આશય હશે"

"કદાચ હોય"

"ફરીથી હુ કયારે આપને મળી શકુ?"

'ચોમાસુ વીત્યા પછી સાતે મહિને"

ચંદ્રસિંહે શીર્ષ નમાવ્યુ, એક પણ શબ્દ બોલ્યા સિવાય તે જમીનપર સૂઇ રહ્યો અને આ સ્થિતિમા તે લાંબા વખત સુધી પડી રહ્યો. પછી તે ધીમેથી ઉભો થયો, અને ત્યાંથી ચાલતો થયો તે નની ટેકરી થોડા સમયમા અદૃશ્ય થઇ ગઇ, તેમનો અવાજ બંધ પડી ગયો, અને તે વિશ્વાસુ હરણી તે મહાત્માના ખોળામા માથુ મુકીને, પોતાના બચ્ચાની પાસે ઉંઘી ગઇ

ફરીથી બુદ્ધદેવ અને શિષ્ય મળ્યા

* * * * * * *

(૨)

વર્ષાઋતુ આવી ચાલી ગઇ, સાત માસ પણ પસાર થઇ ગયા અને તેજ જમ્બુ વૃક્ષ નીચે તેજ કુંજમાં બુદ્ધદેવ બેઠેલા હતા સૂર્ય અસ્ત પામવાની તૈયારીમાં હતો, આકાશમાં વાદળાં ફરી વળ્યાં હતાં, અને તોફાનની નિશાનીઓ દેખાતી હતી. હવા પણ ભારે થઇ હતી, અને બફારો બહુ થતો હતો.

તે જંગલમાં ભારે તોફાન થશે એમ લાગવાથી તે જંગલનાં પ્રાણિઓ તે મહાત્માની સમીપમાં આશ્રય સારૂ આવેલા હતાં પાસે ઉગેલા વૃક્ષોપર પક્ષીઓ ટોળાંબંધ આવી કકળાટ કરી મુકતા હતા એક નાનુ વાઘનુ બચ્ચું તે બુદ્ધદેવના પગ આગળ રમતુ હતુ, અને આવતા તોફાનની જરા પણ તેને ખબર ન હોય, તેમ નિર્ભય પડયુ હતુ. પ્રથમ ભારે વંટોળીયો થયો, અને તે પછી કડાકા અને વીજળીઓના ચમકારા સાથે મૂશળધાર વરસાદ વરસવા લાગ્યો. બધાં વૃક્ષોપર વરસાદ પૂર્ણ જોસથી પડયો પણ જમ્બુ વૃક્ષને તે ભારે મેઘની જરા પણ અસર થઇ નહિ. તે બુદ્ધદેવ ઉપર જળનુ એક બિન્દુ પણ પડયું નહિ.

વરસાદનું તોફાન ચાલ્યું, પણ દૃઢ ઇચ્છાશક્તિવાળો તે પુરૂષ જરા પણ પોતાના પ્રયાસમા ડગ્યો નહિ. જ્યા સંધ્યા સમય થયો કે તે ચંદ્રસિંહ ત્યાં બુદ્ધદેવના સમીપ આવી પહોંચ્યો અને આ પ્રમાણે તેના હૃદયમાંથી ઉદ્ગાર નીકળી પડયાઃ—

"હે ભગવન્! હું આ વખતને વાસ્તે ઘણી અધીરાઇથી વાટ જોઈ રહ્યો હતો તે વખત હવે આવી પહોચ્યો છે. પ્રાત કાળ પછી સંધ્યાકાળ અને સંધ્યાકાળ પછી પ્રાત કાળનો ક્રમ ચાલ્યા કર્યો છે, અત્યારે તે ધારેલો સમય આવ્યો છે. હે ભગવન્! બોલો; તમે મારી કરેલી કસોટીમા હુ નિષ્ફળ નીવડયો નથી. મેં હજુ શુદ્ધ જીવનજ ગાળ્યુ છે, દરેક પ્રકારના મોજશોખ અને વૈભવનો મે નિષેધ કર્યો છે; ઇન્દ્રિયોના વિષયો તરફ મે તદ્દન ઉદાસીન ભાવ રાખ્યો છે, મારા મ્હેલમા મળતા વૈભવ અને સુખ તરફ પણ મેં લક્ષ આપ્યું નથી, મારો સમય કેવળ એકાંતમાં લાંબા સમય સુધી ધ્યાન કરવામાં મેં ગાળ્યો છે. મારામાં કોઇ પણ પ્રકારની અશુદ્ધિ રહેલી નથી. હે પ્રભો! આ વખતે તો મને આપના શિષ્ય તરીકે કબુલ કરશો!"

"ના."

ચંદ્રસિંહ એકદમ ગભરાઈ ગયો. ભારે ખેદ તેના મનમાં વ્યાપી ગયો, અને પોતાના ઝભાનો છેડો પોતાના મુખ ઉપર તે લાવ્યો, તેની આખમાં

આંસુ ભરાઇ આવ્યાં, અને કેટલાક વખત સુધી તે એક પણ શબ્દ બોલી શકયો નહિ પછી ધ્રુજતે સ્વરે તેણે બોલવાનો પ્રારંભ કર્યો.

"હે મહાત્મન્! હે કૃપાળુ દેવ! શુ તમે આ તમારા સેવક સાથે નહિ બોલો? શુ ના પાડવાનુ કારણ નહિ જણાવો?"

બુદ્ધદેવ સમાધિમાથી હમણાજ ઉઠયા હતા. ચંદ્રસિંહને જોઇને ચિત્તા ધ્રુરકવા માડયો હતો, તેને પોતાના પ્રેમાળ હસ્તથી શાત કર્યો, વરસાદની ગર્જના પણ બધ પડી હતી, અને બુદ્ધદેવના મુખમાથી ખરતા શબ્દો સાભળવાને પવન પણ આ સમયે શાત થઇ ગયો હતો. બુદ્ધદેવે મધુર સ્વરે જવાબ આપ્યો

"ઉમદા રાજકુમાર! જે કસોટીઓમાંથી ત્હારે પસાર થવાનુ હતુ, તે કસોટીઓ બાહ્ય જગતમા મળી આવતી કસોટી સમાન નથી મેં તને તારા સુખ વૈભવ અને તારી સ્ત્રીઓને ત્યાગ કરવાને કહ્યુ ન હતુ, તેમજ તદ્દન યતિની માફક શરીરને કષ્ટ આપીને રહેવાનો પણ મારો આદેશ ન હતો જે કસોટીઓમાથી ત્હારે પસાર થવાનુ હતુ, તે કસોટીઓ ત્હારા પૂર્વ જન્મના કેટલાક કાર્યોના પરિણામરૂપે ત્હારા સ્વભાવથી જ આવેલી છે. ત્હારા મહેલમાં પાછો જા, અને એક સદ્ગુણી મનુષ્ય જેવુ જીવન ગાળ; હજુ પણ શિષ્ય થવાને તુ લાયક નથી"

તેના ગાલપર શરમના શેરડા પડયા, અને આતુરતાથી ચંદ્રસિંહે પ્રશ્ન કર્યો—

"હે ભગવન્! કઇ કસોટીઓમા હું નિષ્ફળ નીવડયો છુ, તે કૃપા કરીને આપ સમજાવશો? જો કે તેથી મને વિશેષ શરમ લાગશે, તોપણ તેથી હુ જરા પણ ગભરાઇશ નહિ. હે નાથ! હુ ખરા અંતઃકરણથી પ્રકાશ શોધુ છુ."

બુદ્ધદેવે જવાબ આપ્યો: "હું તને તે જણાવીશ પ્રથમ કસોટી આળ–ખોટા કલકની હતી હે ઉમદા ગુણવાળા રાજકુમાર! ત્હારા પોતા-નાજ મ્હેલમા ત્હારા પિતાની રાજસભામા જે અપરાધ તે નહોતો કર્યો, તેનો ત્હારા ઉપર આરોપ મુકવામા આવ્યો હતો, એ બાબત તને યાદ છે કે? લોકોના મન આ બાબતમા સત્ય શુ છે, તે બરાબર સમજતા થાય, ત્યા સુધી રાહ જોયા સિવાય, અથવા પૂર્વે કરેલા કર્મના પરિણામ રૂપે આ કલક ત્હારા ઉપર આવેલુ છે, માટે તે ધૈર્યથી સહન કરવુ જોઇએ, એવો વિચાર કર્યા સિવાય, તુ તારી જાતનો બચાવ કરવાને આતુર [illegible] હતો, તારી નિર્દોષતા સિદ્ધ કરતો હતે, અને તે [illegible] [illegible] સમે

પગલાં ભરવા પણ તુ તત્પર થયો હતો. આમ તું પ્રથમ કસોટીમાં નિષ્ફળ નીવડયો હતા ”

ચંદ્રસિંહ ફીકો પડી ગયો, અને બોલી ઉઠયો, “ હા, જો હુ તે આરોપને પાત્ર હોત તો મેં તે સહન કર્યા હોત, પણ હુ જાણતો હતો કે હું નિર્દોષ છુ ”

“ સાગ અને સદ્‌ગુણી મનુષ્યે પોતાની નિર્દોષતા સિદ્ધ કરવી જોઇએ અને પોતાનો બચાવ પણ કરવો જોઇએ, પણ જે **મુમુક્ષુના** માર્ગમાં દાખલ થવા ઇચ્છા રાખે છે, જે **મ્હારો શિષ્ય** થવા ઇચ્છે છે, તેણે પોતાને-થતાં અન્યાય અને નિંદા, પોતાના બચાવમાં એક પણ શબ્દ ઉચ્ચાર્યા સિવાય, સાંભળવાં જોઇએ. તેણે કીર્તિનો મુકુટ પહેરવાને તેમજ અપકીર્તિનો ઝભો પહેરવાને એક સરખી રીતે, ઉદાસીન ભાવ રાખી, તૈયાર રહેવુ જોઇએ.”

ચંદ્રસિંહે માથું નમાવ્યું.

બુદ્ધદેવે પોતાની વાણી ચાલુ રાખી.—

“ બીજી કસોટીમાં ત્હારી સ્વાર્થી વૃત્તિ, ત્હારી અહંતા, ત્હારો સ્વાર્થી રાગ વચમાં આવ્યો. તું ત્હારા મિત્ર **યક્ષ**ને તારી જાતની પેઠેજ ચ્હાતો હતો, તમારા બંને વચ્ચે ગાઢો સંબંધ હતો. તેવામા **ભલ્લિક** નામનો કોઇ પુરૂષ ત્હારા પિતાની રાજસભામાં આવી પહોચ્યો તેને તે **યક્ષ**ના કોઇક કારણસર જરૂર હતી; તે તેણે **યક્ષ**નુ હૃદય પોતાના તરફ આકર્ષવા માડયુ, તેની મિત્રતા સંપાદન કરવાને તે અત્યંત આતુર હતો તેથી તને તે તારી પ્રીતિ-માં વિઘ્ન કર્ત્તા લાગ્યો. યક્ષને તુ યક્ષને ખાતર ચહાતો નહતો, પણ યક્ષની ત્હારી સાથેની મૈત્રીથી મળનાર આનંદને ખાતર તુ તેના પર પ્રીતિ રાખતો હતો, ત્હારો તેની ઉપાધી ઉપર રાગ હતો; અને આ રાગનાં મૂળને ઉખેડવાને બદલે અને તે **ભલ્લિક** અને યક્ષની વચ્ચે વધતી જતી પ્રીતિથી આનંદ માનવાને બદલે, ત્હારા હૃદયમાં એક પ્રકારનુ ભારે તોફાન ચાલ્યું **ભલ્લિક**ના માર્ગમાં ત્હારાથી બનતા વિઘ્ન નાખવાને તે પાછી પાની ધરી નહિ, વળી ત્હારા હૃદયમાથી ક્રોધના વિચારનો પ્રવાહ તે તે **ભલ્લિક** તરફ વહેવા દીધો હતો—આ ત્હારી બીજી નિષ્ફળતા. ”

ચંદ્રસિંહે વેગથી જવાબ વાળ્યો:—

“હુ ધારતો હતો કે ભલ્લિક સ્વાર્થની ખાતર યક્ષની પ્રીતી શોધે છે. શુ મારા મિત્રને ચેતવણી આપવી અને ભલ્લિકના કાવતરામાંથી તેનો બચાવ કરવો એ મારૂ કર્તવ્ય ન હતું ? ”

શુ તારી ખાતરી છે કે ભલ્લીકનો સ્વાર્થી પ્રેમ વખત જતાં શુદ્ધ થયો નહોત? તે પ્રીતિ કોઈક દિવસ ખરા અંતઃકરણની ન થાત એવુ શુ તુ ચોક્કસ રીતે કહી શકે છે? વળી હે રાજકુમાર! પોતાની કીર્તિની માફક પોતાના રાગનો પણ સારો અને સદ્‌ગુણી મનુષ્ય બચાવ કરે, પણ જે મુમુક્ષુના માર્ગમા દાખલ થઈ મ્હારો શિષ્ય થવા ઇચ્છે છે, તેને પોતાના અત્યંત રાગની વસ્તુનો સંન્યાસ (ત્યાગ) કરવાને તત્પર રહેવુ જોઇએ. તેણે સ્વાર્થ અને ઇર્ષ્યાના નકામા છોડવા પોતાના હૃદયમાંથી ખેંચી કાઢવા જોઇએ, આમ કરવા જતા હૃદયમાથી લોહી નીકળે અને જગત્ શૂન્ય ભાસે છતા તે સઘળુ તેણે શાંત મનથી સહન કરવુ જોઇએ. ઉમદા રાજપુત્ર! ત્હારા પિતાના ખજાના, ઇન્દ્રિયોના સુખો અને જગતની કીર્તિ–આ સર્વે તને આકર્ષવાને સમર્થ નથી અને તેથી તેમનો ત્યાગ કરવામાં તેં બહુ મહત્વનુ કાર્ય કર્યું નથી જ્યારે ખરો ત્યાગ અને આત્મભોગનો પ્રસંગ આવ્યો તે વખતે ત્હારૂ ધૈર્ય ચાલી ગયુ આત્મભોગનો દિવ્ય ઝભો તુ પ્હેરી શક્યો નહિ, જે પ્રેમ પ્રેમપાત્રનુ જ હમેશા કલ્યાણ ઇચ્છે છે, જે પ્રેમ આપે છે પણ બદલાની આશા રાખતો નથી તેવો પ્રેમ તુ પ્રસંગ આવે દર્શાવી શક્યો નહિ ”

ફરીને ચંદ્રસિંહે પોતાનું માથુ નમાવ્યું ફરીથી શુ કરવુ તે તેને સુઝયું નહિ; પછી તેણે તે ઋષિ તરફ પોતાની નજર ફેરવી અને તે આ પ્રમાણે બોલ્યો.—

“ હે ભગવન્ ! ફરીથી બોલો, મને એકવાર ફરીને શરમમાં નાખો, મારી જ્ઞાનચક્ષુ આડે પડળ વળી ગયેલા છે હાલ જે અંધકાર આપની દૃષ્ટિ આગળ દેખાય છે, તે કરતા પણ ગાઢ અંધકારે મારી દૃષ્ટિને અંધ બનાવી દીધી છે, માટે મને સદ્‌બોધ આપો

વળી તે બુદ્ધદેવે કહ્યુ

“ ત્રીજી વાર તુ પ્રેમની કસોટીમા નિષ્ફળ નીવડ્યો છે નન્દા નામની તારી એક પત્નીએ કાંઇક ભારે અપરાધ કર્યો, તેની બાલાવસ્થા અથવા તેની અજ્ઞાનતાનો લેશ માત્ર પણ વિચાર કર્યા સિવાય, અથવા તે ખાતર જરા પણ દયા દર્શાવ્યા સિવાય તે તેને મ્હેલ બહાર કાઢી મુકાવવી ”

“ હે ભગવન્ ! હુ એવી જુદી રીતે કેમ વર્તી શકુ ? એક સ્નેહાળ અને ચપળ સ્વભાવની સ્ત્રીને સારી [illegible] મ્હારી [illegible], તેના કરતા મારૂ અને મારા મ્હેલનુ માન [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ન હતી ? મારી આંખે [illegible] [illegible] [illegible] હુ [illegible] [illegible] [illegible].

શના નીતિના નિયમોનો મે ભંગ કર્યો ન કહેવાય ? મારી શુદ્ધ જીવની ઉચ્ચ ભાવના વિરૂદ્ધ શુ તે ક્ષમા ન ગણાત ? ”

બુદ્ધદેવે પ્રત્યુત્તર વાળ્યો —

“ હે ઉમદા ગુણવાળા રાજકુમાર ! મારે શુ ફરી ફરીને તને એજ ઉપદેશ આપવો જોઇએ ? સારો અને સદ્‌ગુણી કહેવાતો સાંસારિક મનુષ્ય પોતાના હક્ક સંબધી વિચાર કરે, અથવા તો પોતાની માનકીર્તિ જાળવ વાનો પ્રયત્ન કરે, તે અભિપ્રાય બાંધી શકે, શિક્ષા કરી શકે, અને અયોગ્ય મનુષ્યને પોતાની પાસેથી દૂર પણ કાઢી મૂકે, પણ જે મારા શિષ્ય થવાનો અધિકાર મેળવવા ઇચ્છા રાખે છે, તે કદાપિ કોઇના આશય સંબધી અભિપ્રાય બાધતો નથી, તે દરેક બાબત સમજવા પ્રયત્ન કરે છે, અને ક્ષમા આપે છે, તે દોષ શોધવા મથતો નથી, તે દોષની સારી બાજુ તરફ તેની વિશેષ દૃષ્ટિ રહે છે. સમુદ્રના હૃદયમાં જેટલાં જળનાં બિંદુઓ છે, તેના કરતાં દયાના અને અનુકમ્પાના વિશેષ બિંદુઓ તેના હૃદયમા માલુમ પડે છે. શુદ્ધતા એ કાંઇ સદ્‌ગુણ નથી, તે અશુદ્ધ માર્ગથી નિવૃત્તિરૂપ છે. મારો શિષ્ય તેવી શુદ્ધતાને બહુ મહત્વ આપતો નથી. જીવનની શુદ્ધતાની સાથે જો પ્રેમ અને દયાનું મિશ્રણ ન થયું હોય તો તેજ શુદ્ધતા અભિમાન અને કઠોરતાનું કારણ થઇ પડે છે અને મુમુક્ષુને તેના માર્ગમા અડચણ રૂપ નીવડે છે. તેવે સમયે તે શુદ્ધતા નહિ પણ શુદ્ધતાની છાયા સમજવી. હે પવિત્ર રાજકુમાર ! તુ ત્હારી મુસાફરી દર્મ્યાન સધ્યાકાળે હિમાલય-ના પવિત્ર અને ઉંચા શિખરો તરફ નજર કરતો કરતો તુ અત્રે આવેલો છે તે બરફથી છવાયલાં શિખરો પર દરેક વસ્તુ ઠરી ગયેલી નિર્જીવ ભાસે છે, પણ એકાએક ત્યાં ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારના ચળકતા રંગો પ્રકટ થાય છે અને હૃદય તથા ચક્ષુ બનેને આનદ આપે છે. આનુ નામજ પવિત્રતા ! આજ શુદ્ધતા ! **પ્રેમ** વગરની **પવિત્રતા** તે મૃત શરીરને ઓઢાડેલી સફેદ ચાદર કરતા વિશેષ અગત્યની નથી. પણ જો તેની સાથે પ્રેમ ઝળકી ઉઠે તો, તેજ શુદ્ધતાની પ્રણાલિકા દ્વારા જીવનનો પ્રવાહ ચારે બાજુએ વહેવા લાગે છે.

ચંદ્રસિંહની ચક્ષુ આસુથી ભરાઇ ગઇ, જવાબમા એક પણ શબ્દ બોલ્યા સિવાય, તે જમીનપર પડયો, પછી તે ખોખરા અવાજે બોલ્યોઃ—

“ હે કૃપાળુ ગુરૂદેવ ! હે દીનબધો ! મારાપર એક વાર વિશેષ કૃપા કરો, મને એક વાર ફરીથી પ્રયત્ન કરવા દો લાયક અધિકારીને સારૂ શા સદ્‌ગુણોની જરૂર છે, તે કેટલેક અંશે હે દેવ ! આજ મારા સમજવામા

આવ્યું છે. જ્યા સુધી હું પાછો ન ફરૂ ત્યા સુધી આપનો દયાનો સૂર્ય મારાપર પ્રકાશવા દેશો. આટલી મારી વિનંતી સ્વીકારશો."

"હુ હા પાડું છુ" એમ તે બુદ્ધદેવે જણાવ્યુ, અને તેમના પગ આગળ નીચે પડેલા તે યુવક ભણી તાકીને જોયુ તે વખતે તેમની દૃષ્ટિમાથી એવો તો પ્રેમપ્રવાહનો પ્રકાશ સ્ફુર્યો કે આખી કુજ એક ક્ષણવાર પ્રકાશિત થઇ રહી, અને પ્રભાત થયું છે, એમ સમજી રાત્રિમા પણ પક્ષીઓ પ્રાત કાળના મધુર ગીત ગાવાં લાગી ગયા.

તે યુવક ત્યાથી ઉઠયો, અને પોતાના રસાલાને મળ્યો, અને સાથે લાવેલા હાથીપર બેસી પોતાના નગરભણી તે વિદાય થયો. ફરી વળી તે કુંજમાં જાબુના વૃક્ષ નીચે બુદ્ધ દેવ અત્યત સમાધિમાં મગ્ન થયા.

* * * *

(૩)

ચંદ્રસિહ પોતાના નગર આગળ આવી પહોચ્યો, તેનો પિતા સખ્ત બિમાર થઇ ગયો હતો, અને તેથી રાજ્યની લગામ તેને પોતાને હાથ ધરવી પડી. પોતાને શિરે આવી પડેલી નવી જોખમદારી બહુજ ઉમદા રીતે અત કરણપૂર્વક તેણે અદા કરી, અને દયા અને ન્યાય વાસ્તે સર્વ સ્થળે પ્રખ્યાત થયો

પ્રથમ તો તેણે યક્ષ અને ભલ્લિકને સારા ખીતાબો બક્ષ્યા અને પાસે પાસે આવેલા બે ભવ્ય મહેલો તેમને બેને આપ્યા. તેણે પોતાની સ્ત્રી નન્દાની શોધ કરાવરાવી અને ફરીથી તેને રાજગૃહમા સ્થાપન કરી. આથી લોકોનાં દિલ ખાટાં થયા, તેના પિતાના જૂના નોકરોને બબડવાનુ કારણ મળ્યુ, અને લોકો તેના વિષે ખોટી અફવાઓ ઉરાડવા લાગ્યા એક વાર જાગૃત થયેલી શકા વધવા લાગી અને આખા શહેરમા તેના કાર્યો વાસ્તે ઉપરાઉપરી ટીકા થવા લાગી કેટલીક વખતે અવિચારી પણ વાજબી અને પરોપકારી જે સુધારા તેણે અમલમા મૂકવાને પોતાના અમલદારોને કહ્યુ, તેથી તેનાપર આપખુદી અમલ અને જુલમીપણાનો આરોપ તેઓએ મૂકયો

આવા છુપા આરોપો તેનપર મૂકવામા આવ્યા, છતા ચંદ્રસિહ ડગ્યો નહિ. પ્રથમ જેમ [illegible] તેણે [illegible] કર્યા હતા, તેવી રીતે અત્યારે કાટાથી ભરેલા ઉજ્જડ પણ [illegible] તેણે [illegible] કર્યા આમ છતા સત્તાના લોભી તેના [illegible] તેની [illegible] પક્ષની

પડવાના હેતુથી એક છુપુ મ ડળ ઉભુ કર્યુ હતુ. પ્રથમ તો તે મ ડળે આખા શહેરમાં એવી વાત ફેલાવી કે ચ'દ્રસિ હ આપખુદી અમલને ચાહનારો છે, અને તેણે સુધારો કરવાને કરેલી સઘળી યોજનાઓ છતાં, તે દેશની પાયમાલી કરવા ધારે છે વળી તે સાથે લોકોને એમ પણ ભરમાવવામાં આવ્યું કે એક ભિક્ષુકનો તેને પાસ લાગેલો છે, અને તે જુના રીતરીવાજોને વ શપર પરાથી ચાલી આવેલા નિયમોને દૂર કરી નવો ધર્મ આપણા દેશમા ફેલાવવા માગે છે આવી આવી રીતે તેની વિરુદ્ધ લોકોનાં મન ઉશ્કેરવાને તેના ભાઇએ સ્થાપેલા છુપા મ ડળે પોતાથી બનતુ કર્યું.

એક દિવસે ચ'દ્રસિ હને ખબર પડી કે તેનો પોતાનોજ જીવ લેવાને કાવતરૂ રચાયુ છે. જો કે આ બાબતથી તેને જગ પણ ચિંતા થઇ નહિ. છતા તેના વિશ્વાસુ મિત્રોને તેણે ચેતવણી આપી. તેના ભાઇબ'ધો, તેના વિશ્વાસુ મિત્રો આ બાબતમાં સાવધ રહ્યા અને તેથી જ્યારે હાથમા ખ'જર સહિત ખુની ચ'દ્રસિ'હ ઉપર ધસવાની તૈયારીમા હતો તેવામા તે પકડાયો. તે ખુનીનુ નામ આર્દક હતુ, અને તે ક્ષત્રિય જાતિનો હતો. તે ભયથી ત્રાસ પામી ફીકો પડી ગયો, અને તેને ચ'દ્રસિ'હ સન્મુખ લેઇ જવામા આવ્યો.

" મને મારવાનુ તને કેમ મન થયુ ? " એમ તે રાજાએ પુછ્યુ. તેણે જવાબ વાળ્યો કે " હુ તને દેશના શત્રુ તરીકે લેખું છુ, તુ અમારા જુના રીત રીવાજોની વિરૂદ્ધ છે અને અમારી ધાર્મિક ક્રિયાઓ રદ કરવા માગે છે, અને હમારા દેશના સુખ અને વૈભવને પ્રતિકૂળ એવા કેટલાક સુધારા કરવા માગે છે. માટે જ મે' ત્હારા પ્રાણ લેવા ધાર્યુ હતુ. "

ચ'દ્રસિ હે તેના ભણી દયાની નજર નાખી મનથી વિચાર્યું કે આ ખુની એક નિર્દોષ ગાડા જેવો છે તેણે પોતાના નોકરોને કહ્યુ. " યાદ રાખો કે મારા ઉપર તેણે પ્રાણઘાતક હુમલો કર્યો; છતાં તેનો આશય શુદ્ધ હતો. સીપાઇઓ ! આમ આવો અને તેની બેડીઓ દૂર કરો. " તે સીપાઇઓ પ્રથમ આશ્ચર્ય પામ્યા, છતા તરતજ આજ્ઞાનો અમલ કર્યો.

પછી તેણે આજ્ઞાપૂર્વક સિપાઇઓને કહ્યુ કે " મને આ આર્દક સાથે એકલો થોડીવાર રહેવા દો " તેના મિત્રો અને તેના નોકરો અનિચ્છાએ, અને પાછુ જોતા જોતાં તે હોલમાથી બ્હાર ગયા. તેઓ રાજકુમારના આ સાહસને લીધે ગભરાતા હતા.

અદબ વાળીને આર્દક તિરસ્કારની દૃષ્ટિથી ચ'દ્રસિ હ સામુ જોઈ રહ્યો. તેના આ તિરસ્કાર અથવા અપમાન ભરી વર્ત્તણુક તરફ દૃષ્ટિ ન કરતા

ચંદ્રસિંહ તેની પાસે ગયો અને તાકીને તેની આંખ સામુ જોઇ રહ્યો. તેની આંખમા તિરસ્કાર ન હતો, તેમ દયા પણ ન હતી, તેની આંખ છુપી રીતે આર્દકના ભાવ જાણવા ઇચ્છતી હતી બુદ્ધદેવે કહ્યુ હતુ કે "મારો શિષ્ય દોષ શોધવા કરતા દોષને વાસ્તે કાંઇ બચાવનુ કારણુ હોય તો તે વિશેષ શોધે છે." ચંદ્રસિહ તેનાં પૂર્વ જન્મના કાર્યો તપાસતો હતો એકાએક તેના ઉપર અદ્દ્ભુત અસર થતી હોય એમ લાગ્યુ જેને તે એ કાંતમા પોતાના ગુરૂ તરીકે ઓળખતો, તેનો દિવ્ય આત્મા તેનામા પ્રવેશ કરતો હોય એમ તેને ભાસ્યુ ! તે દિવ્ય આત્માના જ્ઞાનપ્રકાશવડે અંતરની ચક્ષુથી તે જોવા લાગ્યો, અને વસ્તુઓનુ છુપુ રહસ્ય તેના જાણવામા આવ્યુ.

તેણે તે શૂરવીરનો ભૂતકાળ જોયો કર્મને લીધે તેઓ બન્ને એક બીજા સાથે સાકળથી બધાયલા દેખાયા અજ્ઞાનના કારણથી થતી અનેક ભૂલો તેની દૃષ્ટિએ પડી અજ્ઞાનથી ઉદ્દ્ભવતી જુદી જુદી ઇચ્છાઓ અને ઇચ્છાઓના પરિણામરૂપે ઉત્પન્ન થતુ દુ ખ તેને જણાયુ તેની આખ આગળથી આ- ર્દકની મૂર્તિ ખસી ગઇ, પણ તેને સ્થાને આખી મનુષ્યજાતિ તેનામા જન્મ પામતી દેખાઈ મનુષ્યોની અજ્ઞાનતા અને દુ ખ નિહાળી તેને અત્યત ખેદ થયો. તે ખેદની સાથેજ માનવબન્ધુઓ તરફ દયાભાવના તેના હૃદયમા વિકાસી નીકળી. આ દુ ખી મનુષ્યજાતને તેના પ્રેમની બાથમા લેવાને, અને તેનુ દુ ખ પોતાની દિલસોજીથી બને તેટલુ ઓછુ કરવાને તેના મનમા ઇચ્છા થઇ ગઇ પોતાની શુદ્ધતાથી તેને શુદ્ધ કરવાને, પોતાના પ્રેમથી તેને નવુ જીવન આપવાને અને પોતાના આત્મભોગથી તે મનુષ્યજાતિને એક પગલુ આગળ ભરવાને તેનામા ઉત્કટ ઇચ્છા વ્યાપી ગઇ

સ્વપ્નમાથી પાછો ફરતો હોય, તેમ તે ભવ્ય દેખાવમાથી તે પાછો વળ્યો શુ બોલવુ તે તેને સૂઝયુ નહિ છના ભાગ્યા તુટ્યા શબ્દો આ પ્રમાણે તેના મુખમાથી નીકળ્યા —

પડવાના હેતુથી એક છુપુ મડળ ઉભુ કર્યું હતુ. પ્રથમ તો તે મંડળે આખા શહેરમાં એવી વાત ફેલાવી કે ચંદ્રસિહ આપખુદી અમલને ચાહનારો છે, અને તેણે સુધારો કરવાને કરેલી સઘળી યોજનાઓ છતાં, તે દેશની પાયમાલી કરવા ધારે છે. વળી તે સાથે લોકોને એમ પણ ભરમાવવામા આવ્યું કે એક ભિક્ષુકનો તેને પાસ લાગેલો છે, અને તે જુના રીતરીવાજોને વશપરપરાથી ચાલી આવેલા નિયમોને દૂર કરી નવો ધર્મ આપણા દેશમા ફેલાવવા માગે છે આવી આવી રીતે તેની વિરૂદ્ધ લોકોનાં મન ઉશ્કેરવાને તેના ભાઇએ સ્થાપેલા છુપા મડળે પોતાથી બનતુ કર્યું.

એક દિવસે ચંદ્રસિંહને ખબર પડી કે તેનો પોતાનોજ જીવ લેવાને કાવતરૂ રચાયુ છે. જો કે આ બાબતથી તેને જરા પણ ચિંતા થઇ નહિ. છતા તેના વિશ્વાસુ મિત્રોને તેણે ચેતવણી આપી. તેના ભાઇબધો, તેના વિશ્વાસુ મિત્રો આ બાબતમા સાવધ રહ્યા અને તેથી જ્યારે હાથમા ખંજર સહિત ખુની ચંદ્રસિંહ ઉપર ધસવાની તૈયારીમાં હતો તેવામા તે પકડાયો. તે ખુનીનુ નામ આર્દક હતુ, અને તે ક્ષત્રિય જાતિનો હતો. તે ભયથી ત્રાસ પામી ફીકો પડી ગયો, અને તેને ચંદ્રસિંહ સન્મુખ લેઇ જવામા આવ્યો.

“ મને મારવાનુ તને કેમ મન થયુ ? ” એમ તે રાજાએ પુછ્યુ તેણે જવાબ વાળ્યો કે “ હુ તને દેશના શત્રુ તરીકે લેખું છું, તુ અમારા જુના રીત રીવાજોની વિરૂદ્ધ છે અને અમારી ધાર્મિક ક્રિયાઓ રદ કરવા માગે છે, અને હમારા દેશના સુખ અને વૈભવને પ્રતિકૂળ એવા કેટલાક સુધારા કરવા માગે છે. માટે જ મે ત્હારા પ્રાણ લેવા ધાર્યું હતુ. ”

ચંદ્રસિહે તેના ભણી દયાની નજર નાખી મનથી વિચાર્યું કે આ ખુની એક નિર્દોષ ગાંડા જેવો છે તેણે પોતાના નોકરોને કહ્યું. “ યાદ રાખો કે મારા ઉપર તેણે પ્રાણઘાતક હુમલો કર્યો; છતાં તેનો આશય શુદ્ધ હતો સીપાઇઓ ! આમ આવો અને તેની બેડીઓ દૂર કરો. ” તે સીપાઇઓ પ્રથમ આશ્ચર્ય પામ્યા, છતાં તરતજ આજ્ઞાનો અમલ કર્યો

પછી તેણે આજ્ઞાપૂર્વક સિપાઇઓને કહ્યુ કે “ મને આ આર્દક સાથે એકલો થોડીવાર રહેવા દો ” તેના મિત્રો અને તેના નોકરો અનિચ્છાએ, અને પાછુ જોતા જોતા તે હોલમાથી બ્હાર ગયા. તેઓ રાજકુમારના આ સાહસને લીધે ગભરાતા હતા.

અદબ વાળીને આર્દક તિરસ્કારની દૃષ્ટિથી ચંદ્રસિહ સામુ જોઈ રહ્યો. તેના આ તિરસ્કાર અથવા અપમાન ભરી વર્ત્તણુક તરફ દૃષ્ટિ ન કરતાં

ચંદ્રસિંહ તેની પાસે ગયો અને તાકીને તેની આંખ સામુ જોઇ રહ્યો. તેની આંખમાં તિરસ્કાર ન હતો, તેમ દયા પણ ન હતી, તેની આંખ છુપી રીતે આર્દકના ભાવ જાણવા ઇચ્છતી હતી બુદ્ધદેવે કહ્યુ હતું કે "મારો શિષ્ય દોષ શોધવા કરતા દોષને વાસ્તે કાંઇ બચાવનુ કારણ હોય તો તે વિશેષ શોધે છે " ચંદ્રસિહ તેનાં પૂર્વ જન્મનાં કાર્યો તપાસતો હતો એકાએક તેના ઉપર અદ્ભુત અસર થતી હોય એમ લાગ્યુ જેને તે એકાતમા પોતાના ગુરૂ તરીકે ઓળખતો, તેનો દિવ્ય આત્મા તેનામા પ્રવેશ કરતો હોય એમ તેને ભાસ્યુ ! તે દિવ્ય આત્માના જ્ઞાનપ્રકાશવડે અંતરની ચક્ષુથી તે જોવા લાગ્યો, અને વસ્તુઓનુ છુપુ રહસ્ય તેના જાણવામા આવ્યુ.

તેણે તે શૂરવીરનો ભૂતકાળ જોયો કર્મને લીધે તેઓ બન્ને એક બીજા સાથે સાકળથી બધાયલા દેખાયા અજ્ઞાનના કારણથી થતી અનેક ભૂલો તેની દૃષ્ટિએ પડી અજ્ઞાનથી ઉદ્ભવતી જુદી જુદી ઇચ્છાઓ અને ઇચ્છાઓના પરિણામરૂપે ઉત્પન્ન થતુ દુ ખ તેને જણાયુ તેની આખ આગળથી આર્દકની મૂર્તિ ખસી ગઇ, પણ તેને સ્થાને આખી મનુષ્યજાતિ તેનામા જન્મ પામતી દેખાઈ મનુષ્યોની અજ્ઞાનતા અને દુ ખ નિહાળી તેને અત્યત ખેદ થયો તે ખેદની સાથેજ માનવબધુઓ તરફ દયાભાવના તેના હૃદયમા વિકાસી નીકળી. આ દુ ખી મનુષ્યજાતને તેના પ્રેમની બાથમા લેવાને, અને તેનુ દુ ખ પોતાની દિલસોજીથી બને તેટલુ ઓછુ કરવાને તેના મનમા ઇચ્છા થઇ ગઇ પોતાની શુદ્ધતાથી તેને શુદ્ધ કરવાને, પોતાના પ્રેમથી તેને નવુ જીવન આપવાને અને પોતાના આત્મભોગથી તે મનુષ્યજાતિને એક પગલુ આગળ ભરવાને તેનામા ઉત્કટ ઇચ્છા વ્યાપી ગઇ

સ્વપ્નમાથી પાછો ફરતો હોય, તેમ તે ભવ્ય દેખાવમાથી તે પાછો વળ્યો શુ બોલવુ તે તેને સુઝયુ નહિ. છતા ભાગ્યા તુટયા શબ્દો આ પ્રમાણે તેના મુખમાથી નીકળ્યાઃ—

" હે ભાઇ ! તને મારા ભાઇ સિવાય બીજી કોઇ રીતે ઓળખતો નથી, હું તને ચાહું છુ. હે ભાઇ ! મને તુ ભેટી લે, અને હુ જેવી રીતે તારી અપકીર્તીમા ભાગ લઉં છુ તેવી રીતે તુ મારી કીર્તીમા ભાગ લે "

બહુ વખત સુધી ચાલેલી શાતતાથી ગભરાટ પામેલા તે સીપાઇઓ જ્યારે ત્યા અદર દાખલ થયા, ત્યારે આર્દકને રાજકુમારના ખભા ઉપર રડતો, અને ચંદ્રસિહનુ મુખ આનદથી છવાયલુ તે સીપાઇઓએ નિહાળ્યુ.

(૪)

સૂર્યના તેજથી જ પ્રકાશિત થયેલી કુંજમાં બુદ્ધદેવ સમાધિમાં મગ્ન થયેલા હતા. તેમના વ્હાલા જાંબુના ઝાડ નીચે તે પદ્માસન વાળીને બેઠેલા હતા. તેમણે આખી રાત તે રાજકુમારની રાહ જોઈ હતી, કારણ કે પોતાનુ વચન પાળવાને તે જરૂર આવશે. પ્રથમ પ્રાતઃકાળના ઝળઝળીયાં દેખાવા લાગ્યા પછી પ્રભાત થવા લાગ્યુ, આખરે જમીનપર ચારે બાજુએ પોતાનાં કિરણ પ્રસારતો સૂર્ય વૃક્ષોની ડાળીઓમાં થઈ પ્રકાશવા લાગ્યો.

જાંબુના ઝાડ ઉપર બેસીને બુદ્ધદેવના ન્હાના ભક્તો—પક્ષીઓ પ્રાતઃકાળનુ મધુર અને આનંદજનક ગીત સંભળાવતા હતા હરણી પોતાના બચ્ચા સાથે ત્યા આવી પહોંચી હતી. ચિત્તાઓ અને નાના સિંહના બચ્ચાઓ તેમની પાસે આળોટતા હતા, અથવા તેમના પગ ચાટતા હતા, કારણ કે તે કુંજમાં તે બુદ્ધદેવના પ્રેમપ્રવાહથી સઘળા પ્રાણીઓ પોતાનો સ્વાભાવિક વૈર વિરોધ ભૂલી જતાં હતા.

એવામાં જરા ખડખડાટ થયો, કોઇના આવવાનાં પગલાંના અવાજ જેવો તે લાગ્યો. તે **ચંદ્રસિંહ** ત્યા આવી ઉભો હતો. તે એકલો જ આવ્યો હતો, તેનો રસાલો આ વખતે તેની સાથે ન હતો અને તેણે એક ભિક્ષુકનો વેષ ધારણ કર્યો હતો. તે આવીને જમીનપર નમી પડયો, અને ગૌતમ બુદ્ધને અંતઃકરણથી સાષ્ટાંગ નમસ્કાર કર્યા રસ્તાની મુસાફરીથી થાકી આવેલો તે જ્યારે મહાકષ્ટે ઉભો થયો, ત્યારે આશીર્વાદ આપનાર પોતાના હાથ તેના પર ફેરવીને અત્યંત માયાળુ અવાજે તે કૃપાળુ દેવ બોલ્યા.—

" વ્હાલા **ચંદ્રસિંહ** ! મ્હારા શિષ્ય ! આવ, આજ તુ અધિકારી બન્યો છે. "

ચંદ્રસિંહ બુદ્ધદેવના ચરણકમળ આગળ બેસી ધર્મનુ રહસ્ય સમજવા લાગ્યો, તે વખતે પથરાઇ રહેલી શાંતિ અપૂર્વ હતી, તે વખતનો દેખાવ ખરેખર રમણીય હતો, અને તે વખતનો આનંદ અકથ્ય હતો. એવું આપણુ ભાગ્ય કયારે ઉઘડશે કે આપણે પણ એવા મહાત્માની પાસે બેસી સત્ય તત્ત્વો ગ્રહણ કરીશુ ?

શ્રી વૈરાગ્ય શતક.

આ રોગ અને દુ:ખથી ભરપુર એવા અસાર સંસારમાં સુખ નથી; આ બાબત જાણવા છતા જીવ જીનેશ્વરે કહેલો ધર્મ આચરતો નથી. ૧.

આજ, કાલ, પોર, પરાર ધન મળશે એમ મનુષ્યો ચિંતવે છે, પણ ખોબામા રહેલા જળની માફક આયુષ્ય ગળે છે તે જોતા નથી! ૨.

હે મનુષ્યો! જે કાલે કરવાનુ હોય તે ત્વરાથી આજે કરો. કાળ બહુ વિઘ્નવાળો છે. માટે બીજા પહોરની પણ રાહ જોતા નહિ. ૩.

સંસારના સ્વરૂપનુ વર્તન તો જુઓ! રાગ અને સ્નેહમાં લાગેલા પુરૂષો જે સવારમાં જોવામાં આવ્યા હતા તે સાજે જણાતા નથી ૪.

હે લોકો! જાગવાને ઠેકાણે સુઈ ન રહો! નાસવાની જગ્યાએ વિશ્રામ ન કરો, રોગ, જરા (વૃદ્ધાવસ્થા) અને મૃત્યુ આ ત્રણ તમારી પુઠે લાગેલા છે. ૫.

ચંદ્ર અને સૂર્ય રૂપ બળદ રાત્રિદિવસ રૂપ ઘડાની હારવડે જીવનુ આયુષ્ય રૂપ જળ ગ્રહણ કરીને કાળરૂપ અરહટ્ટને ફેરવે છે ૬.

કાળ રૂપ સર્પથી ખવાતી કાયા જેથી ધારી રખાય તેવી કોઇ કળા નથી, તેવુ કોઇ ઔષધ નથી, તેમજ તેવી કોઈ હીકમત નથી ૭.

મોટા શેષ નાગ રૂપી જેનુ નાળવુ છે, પર્વતો જેવા જેનાં કેસર છે, દિશાઓ રૂપી જેના પાદડા છે, એવા પૃથ્વી રૂપ કમળમાથી મનુષ્ય રૂપી રસને કાળરૂપી ભમર પી જાય છે એ ખેદની વાત છે ૮ ૮.

શરીરની છાયાના બ્હાના વડે સકળ જીવોના છિદ્રને શોધતો કાળ કોઈ પણ પ્રકારે મનુષ્યની બાજુ છોડતો નથી, તેટલા માટે ધર્મમાં ઉદ્યમ કરવો. ૯.

આ અનાદિ કાળ વિષે જુદી જુદી જાતના કર્મને વશ થયેલા જીવોને એવી એક પણ સ્થિતિ નથી કે જે ન સંભવે, (અર્થાત્ સઘળી સ્થિતિઓમાં આ જીવ જઇ આવ્યો છે.) ૧૦.

સર્વ બાંધવો, મિત્રો, પિતા, માતા, પુત્ર, સ્ત્રી વગેરે મનુષ્યો મરેલા સ્વજનને જળની અંજળી આપી સ્મશાનથી પાછા વળે છે. ૧૧

રે! જીવ! પુત્ર તથા પુત્રીઓનો વિયોગ થાય છે, બાંધવોનો વિયોગ થાય છે, સ્ત્રીઓનો વિયોગ થાય છે, ફક્ત એકનોજ વિયોગ થતો નથી અને તે જીનેશ્વરે કહેલો ધર્મ છે. ૧૨.

આઠ કર્મના પાશથી બંધાયેલો જીવ આ સંસાર રૂપી કેદખાનામાં રહે છે, અને આ આઠ કર્મના પાસથી છુટો થયેલો આત્મા શિવ મંદિરમાં રહે છે. ૧૩.

વૈભવ, સગાં સ્નેહીનો સંબંધ અને વિલાસથી મનોહર એવા વિષય સુખ; આ સર્વ કમળના પાંદડાની કિનાર પર રહેલા પાણીનાં બિંદુના જેવા ચંચળ છે. ૧૪

હે મનુષ્યો ! તે બળ ક્યાં ગયુ ? તે યૌવન ક્યાં ચાલ્યુ ગયુ ? તે શરીરની શોભા ક્યા જતી રહી ? આ સર્વ અનિત્ય છે, કાળે આ સર્વ હતુ નહતુ કરી દીધુ તે જુઓ અને વિચારો. ૧૫

ભારે કર્મ બંધથી બંધાયેલો જીવ આ સંસાર રૂપી નગરના ચૌટા વિષે વિવિધ પ્રકારનુ દુ:ખ પામે છે, અહી તેનુ કોણ શરણ છે ? ૧૬.

આ જીવ કર્મોને લીધે અશુદ્ધ, અપવિત્ર અને અશુચિ દ્રવ્યથી ભરેલા ગર્ભવાસમાં અનંતવાર વસેલો છે. ૧૭

આ સંસારમા જીવોને ઉત્પન્ન થવાના સ્થાન ચોરાશી લાખ કહેલા છે અને એકેક સ્થાનમા આ જીવ અનંતવાર ઉત્પન્ન થયેલો છે. ૧૮.

જુદા જુદા ઉત્પતિ સ્થાનમા ઉત્પન્ન થયેલા અને સંસારમા રહેલા માતા, પિતા, બંધુ વગેરેથી આ આ જગત્ ભરાએલુ છે; પણ તે લોકો તારૂ રક્ષણ કરે તેમ નથી, તેમજ તને શરણ રૂપ થઈ શકે તેમ નથી. ૧૯.

દુ:ખથી ઘેરાએલો જીવ જળ વગરની જગ્યા ઉપર માછલી જેમ તરફડે તેમ તરફડે છે, બધા જીવો તે જુએ છે, પણ તેનુ દુ:ખ દૂર કરવા કોઇ સમર્થ નથી ૨૦.

હે જીવ ! પુત્ર સ્ત્રી વીગેરે મને સુખના હેતુ થશે એમ તુ જાણીશ નહિ; સંસારમાં વસતા જીવોને એજ ગાઢ બંધન રૂપ થાય છે ૨૧.

માતા બીજા ભવમાં સ્ત્રી થાય, અને સ્ત્રી મરીને માતા પણ થાય. પિતા મરીને પુત્ર થાય અને પુત્ર મરીને પિતા થાય. કર્મને વશ સર્વ જીવોની આ સંસારમા એક સરખી સ્થિતિ નથી. ૨૨.

એવી એક પણ જાતિ નથી, એવુ એક પણ ઉત્પત્તિ સ્થાન નથી, એવી એક પણ જગ્યા નથી, એવુ એક પણ કુળ નથી કે જ્યાં સર્વે જીવો અનંતવાર જન્મ કે મરણ પામ્યા ન હોય. ૨૩.

વાળના અગ્ર ભાગ જેવુ એક પણ સ્થાન આ જગતમાં નથી, કે જ્યા જીવો અનેક પ્રકારના સુખ દુ:ખ ઘણીવાર પામ્યા ન હોય. ૨૪.

આ સસારમા બધી રીદ્ધિઓ તને ઘણી વાર મળી છે, તથા બધા સ્વજન સબધ પણ તુ ઘણી વાર પામ્યો છે, માટે તુ જો આત્માને જાણવા માગતો હોય તો વૈરાગ્ય પામ ૨૬.

જીવ પોતે કર્મ બાધે છે; અને તેજ જીવ એકલો વધ, બધ, મરણ વગેરે દુઃખો અનુભવે છે, અને કર્મથી છેતરાયેલો જીવ એકલો આ સસારમા ભમે છે. ૨૬.

બીજો કોઇ અહિત કરતો નથી, તેમજ બીજો કોઇ હિત પણ કરતો નથી, પણ આત્માજ પોતાનુ અહિત કે હિત કરે છે, અને પોતે કરેલુ સુખ દુઃખ આત્મા ભોગવે છે. છતા પણ તુ દીન મુખ વાળો કેમ બને છે ? ૨૭.

હે જીવ! ઘણા આરંભ કરીને મેળવેલુ ધન તારા સ્વજનો ભોગવે છે પણ તે મેળવતા કરેલુ પાપ તારેજ ભોગવવુ પડશે. ૨૮.

હે જીવ! તુ તારા દુઃખી અને ભુખ્યા બાળકોની જેટલી ચિંતા કરે છે, તેની થોડી પણ તારા આત્માની તું કરતો નથી તો તને શું કહીએ ? ૨૯.

શરીર ક્ષણભગુર છે, અને આત્મા શાશ્વત સ્વરૂપી છે. કર્મને લીધે બન્નેનો સબધ થયેલો છે એવા શરીરમા આટલો બધો મોહ શા માટે રાખે છે ? ૩૦.

હે જીવ ! પુત્ર, માતા અને ભાર્યા વગેરેનુ કુટુંબ કયાંથી આવ્યું ? કયાં જશે ? તુ કયાથી આવ્યો અને કયા જઈશ ? તમે એક બીજાને આ રીતે જાણુતા નથી, ત્યારે આ કુટુબ સઘળું તારૂ શી રીતે ? ૩૧.

આ શરીર ક્ષણભગુર છે, વાદળના સમૂહ જેવો આ મનુષ્ય ભવ ચચળ છે, તે દરમ્યાન જેટલો ધર્મ કરી લીધો એટલોજ ખરો સાર છે. ૩૨.

જન્મ દુઃખનુ કારણ છે, વૃદ્ધાવસ્થા રોગનું કારણ છે, મરણ દુઃખનુ કારણ છે, અરે! આ સસારજ દુઃખમય છે, જેથી જીવો કલેશ પામે છે. ૩૩.

જ્યા સુધી ઇન્દ્રિયો નાશ પામી નથી, જ્યા સુધી ઘડપણ રૂપ રાક્ષસે પોતાનુ જોર દાખવ્યુ નથી, જ્યા સુધી રોગના વિકારો થયા નથી, જ્યાં સુધી મૃત્યુ ભેટવાને તૈયાર થયુ નથી, ત્યા સુધી હે જીવ ! ધર્મ કરી લે. ૩૪.

જ્યારે આગ લાગે છે ત્યારે કુવો ખોદવાને કોઈથી પણ બનતું નથી; તેમ મરણ આવી પહોચે જીવ કેવી રીતે ધર્મ કરી શકશે ? ૩૫

રૂપ અશાશ્વત છે, જગતમા જીદગી વીજળી જેવી ચપળ-અસ્થાયી છે, અને યૌવન સંધ્યા સમયના રગ જેવુ ક્ષણિક રમણીય છે. ૩૬

લક્ષ્મી વીજળીના જેવી ચચળ છે, વિષય સુખ મેઘ ધનુષ્યના રગ જેવું ક્ષણિક છે, માટે હે જીવ! સમજ, સમજ, અને આવી નજીવી બાબતોમાં મુંઝાઇ ન રહે ૩૭.

જેવી રીતે સાંજરે પક્ષીઓનો સંબધ છે, જેવી રીતે મુસાફરોનો રસ્તામાં સંબંધ છે, તેવીજ રીતે હે જીવ! સ્વજનોનો સંબંધ પણ ક્ષણભગુર છે. ૩૮.

રાત્રિ પૂરી થયે મારે વિચાર કરવો જોઇએ કે ઘર લાગ્યુ છે, છતાં હુ કેમ ઉંઘુ છુ? આ કર્મથી બળતા આત્માની કેમ બેદરકારી કરૂ છુ? અને ધર્મ રહિત દિવસો કેમ ગુમાવુ છું? ૩૯.

જે જે રાત્રી દિવસ જાય છે તે તે પાછા આવતા નથી; તેમજ જે જીવ રાત્રી દિવસ અધર્મ કરે છે, તેના રાત્રી દિવસ અફળ જાય છે. ૪૦

જેને મૃત્યુ સાથે મૈત્રી છે, અથવા મૃત્યુથી નાશી છુટવાને જેને બળ છે, અથવા હુ મરીશ નહિ એમ જે નક્કી જાણે છે, તે મનુષ્ય ભવિષ્યમાં ધર્મ કરવાનુ ભલે મુલત્વી રાખે. ૪૧

જેવી રીતે વણકરો લાકડી ઉપરથી સૂતર ઉખેડે છે, તેવીજ રીતે રાત્રી અને દિવસ ચાલ્યા જાય છે, તેઓ આયુષ્યને ઓછુ કરે છે, અને ગયા પછી પાછા આવતા નથી ૪૨

જેવી રીતે સિહ મૃગને ઝાલીને અવશ્ય મારે છે, તેવીજ રીતે મૃત્યુ અંત સમયે મનુષ્ય ઝાલે છે, તે વખતે તેના માતા, પિતા કે ભાઇ તેમા ભાગ પડાવતા નથી. ૪૩.

જીંદગી પાણીના પરપોટા સમાન છે, વૈભવ પાણીના તરંગની માફક અસ્થિર છે, અને રાગ સ્વપ્ન તુલ્ય છે, જો તુ આ યથાર્થ જાણતો હોય તો તે પ્રમાણે વરત. ૪૪.

સધ્યા સમયના રંગ જેવી અને પાણીના પરપોટા સમાન આ જી દગી છે, અને યૌવન નદીના વેગ સમાન છે, છતા હે પાપી જીવ! તુ કેમ સમજતો નથી? ૪૫.

ભૂતને બલી ફેકવામા આવે તેમ મૃત્યુ દેવે કુટુબને જૂદે જૂદે સ્થળે ફેકી દીધુ છે. ૪૬

પુત્ર, પુત્રી આદિ કાઇક ગયા, સ્ત્રી કાઇક ચાલી ગઈ, અને સ્વજનો પણ બીજે સ્થળે ચાલ્યા ગયા. ૪૭.

જૂદા જૂદા ભવોમા જીવે જે શરીરો ધારણુ કર્યા તથા તજ્યાં તેમની સંખ્યા અનત સાગરના બિંદુથી પણુ મપાય તેમ નથી. ૪૮.

જૂદા જૂદા જન્મોની રડતી માતાઓના આસુની સખ્યા સમુદ્રના પાણીના બિન્દુઓ કરતા પણુ વધારે થાય ૪૯.

નરકમા નરકના જીવો જે અનત ઘોર દુ.ખ અનુભવે છે, તેના કરતાં પણુ અનંત ગણુ દુઃખ નિગોદમા જીવ ભોગવે છે. ૫૦.

હે જીવ ! વિવિધ કર્મને લીધે તે નિગોદ મધ્યે અનત પુર્ગલ પરાવર્તન સુધી તીક્ષ્ણુ દુ ખ સહન કરેલ છે ૫૧.

ત્યાથી ઘણી મહેનતે બ્હાર નીકળીને હે જીવ ! તુ મનુષ્યત્વ પામ્યો અને ત્યાં ચિંતામણી રત્ન જેવો જીનવર ધર્મ તને મળ્યો. ૫૨.

હે જીવ ! આવો ધર્મ પામ્યા છતાં જેથી ભવ રૂપી કુવામાં પડીને ફરીથી દુ ખ ભોગવવુ પડે એવો પ્રમાદ તુ કેમ કરે છે ? ૫૩.

હે જીવ ! જૈન ધર્મ પામ્યો, છતાં પ્રમાદ દોષથી તેં તેનું સેવન ન કર્યું હે ! આત્માના વૈરી જીવ ! આગળ ઉપર તારે ઘણો પશ્ચાતાપ કરવો પડશે ૫૪.

પાપ અને પ્રમાદને વશ થઇ જેઓએ જૈન ધર્મનુ પાલન કર્યું નથી, તે બિચારા જીવો મરણુ પાસે આવે ઘણા દિલગીર થાય છે. આ સસારને ધિક્કાર હો, કે જેમા દેવ મરીને તિર્યંચ થાય છે અને ચક્રવર્તી રાજા મરીને નરકાગ્નિમાં બળે છે ૫૫.

ધન, ધાન્ય, આભૂષણુ, ગૃહ અને સ્વજન કુટુબને તજીને કર્મ રૂપી પવનથી હણુાયેલા વૃક્ષના પુષ્પની માફક જીવ અનાથ થઇ જાય છે ૫૬.

આ સસારમા પ્રયાણુ કરતો જીવ પર્વતોમાં, ગુફામા સમુદ્રની મધ્યમા, ઝાડની ટોચે રહેલો છે ૫૭,

હે જીવ ! તુ કેટલીક વાર દેવ, કેટલીક વાર નારકી, કેટલીક વાર કીડો, કેટલીક વાર પતગીયુ, કેટલીક વાર મનુષ્ય, કેટલીક વાર રૂપવાન, કેટલીક વાર બેડોળ, કેટલીક વાર સુખી અને કેટલીક વાર દુ ખી થાય છે. ૫૮.

હે જીવ ! તું રાજા થયો, ભીખારી થયો, ચાડાલ થયો, વેદ જાણુનાર થયો, સ્વામી થયો, દાસ થયો, પૂજ્ય થયો, શઠ થયો, નિર્ધન થયો અને ધનવાન પણુ થયો ૫૯.

આમા કાઈ નિયમ નથી, પણુ પોતાના કર્મની પ્રકૃતિ તેની જેવી ગતિ કરે તેમ જીવ અનેક અનેક વેષ ધારણુ કરી નટની માફક વર્તે છે. ૬૦,

હે જીવ ! નરકમા તને અનત વાર બહુ પ્રકારની, ઉપમા ન આપી શકાય તેવી અને દુ.ખ પૂર્ણુ વેદના મળેલી છે. ૬૧.

દેવપણામા, મનુષ્યપણામા અને પરતંત્રપણુ પામીને અનત વાર બહુ પ્રકારનુ ભયકર દુખ તે અનુભવ્યુ છે. ૬૨.

તિર્યંચ જાતિમાં ઉત્પન્ન થઈ અનેક પ્રકારની ભયકર વેદના હે જીવ! તે અનુભવી છે; જન્મ મરણની રેટ માળમાં તું અનેક વાર ભમ્યો છે. ૬૩.

શરીર સંબંધી અથવા મન સંબધી જે કોઈ દુ:ખ છે, તે આ જીવે આ સંસાર રૂપી અરણ્યમાં અનતવાર અનુભવ્યા છે. ૬૪ ૬૪.

આ સસારમાં તારી એવી તૃષ્ણા અનત વાર હતી કે જે તૃષ્ણા શાંત પમાડવાને સર્વ સમુદ્રોનાં જળ પણ પૂરતા ન થઈ શકે ૬૫.

આ સસારમા અનતવાર તારી ભૂખ એવી બધી હતી કે જે મટાડવાને સર્વ પુદ્‌ગલ (જડ પદાર્થ) સમૂહ પણ પુરતા નથી. ૬૬.

અનેક જન્મ મરણની પરંપરા કરીને મહા મહેનતે મનુષ્ય જન્મ મળે છે, ત્યારે જીવ પોતાનુ ઇચ્છિત કાર્ય (કલ્યાણ) કરી શકે છે ૬૭.

મનુષ્ય જન્મ બહુજ દુર્લભ છે, અને મનુષ્યત્વ વિજળીના ચમકારાની માફક ચપળ છે; છતા જે ધર્મને વિષે આળસુ રહે છે, તે કાયર પુરૂષ છે, પણ સત્પુરૂષ નથી. ૬૮

સસાર સમુદ્રના તટરૂપ મનુષ્ય જન્મ પામીને, જેણે જીનેંદ્ર ભગવાને પ્રરૂપેલો ધર્મ નથી આચર્યો, તે પુરૂષ દોરી તૂટે જેમ ધનુષ્ય ધારીને હાથ ઘસવા પડે છે, તેમ જરૂર હાથ ઘસે છે ૬૯.

હે જીવ! બરાબર શ્રવણ કર, ચચળ સ્વભાવ વાળા સઘળા બાહ્ય પદાર્થો તથા નવ પ્રકારના પરિગ્રહના સમૂહને તારે મકુવા પડશે આ સંસારમાં આ સર્વ ઇંદ્રિજાળ સમાન છે. ૭૦.

હે મૂર્ખ! પિતા, પુત્ર, મિત્ર, સ્ત્રી વગેરેનો સમુદાય આ લોક સબંધી છે, અને સર્વ પોતાનુ સુખ મેળવવાના સ્વભાવવાળા છે, તુ એકલોજ નરક તિર્યંચ વગેરેના દુ:ખ સહન કરીશ, અને તે વખતે તારૂ કોઈ પણ રક્ષણ કરનાર નથી ૭૧.

જેવી રીતે ઝાકળનુ બિન્દુ કુશના અગ્રભાગ પર ઘણોજ થોડો વખત ટકી રહે છે, તેવીજ રીતે આ મનુષ્યોનુ જીવિત છે. માટે **હે ગૌતમ! એક સમય પણ તું પ્રમાદ કરીશ નહિ.** ૭૨.

ભગવાન્ કહે છે કે —

બુઝો. (બોધ પામો!) કેમ બુઝતા નથી? (બોધ પામતા નથી?) મરણ પછી આવુ બોધી જ્ઞાન મળવુ દુર્લભ છે રાત્રિ દિવસ જે ગયા

તે પાછા આવતા નથી. ફરીથી આવુ જીવિત મળવુ સુલભ નથી. હે બાલો ! હે વૃધ્ધો ! આંખ ઉઘાડીને જુઓ ગર્ભમાં રહેલા જીવો પણ મરણ પામે છે. જેવી રીતે બાજ પક્ષી ચકલીને મારે છે, તેમ આયુષ્ય પુરૂ થયે જીદગી નાશ પામે છે ૭૩–૭૪

ત્રણ ભુવનના મનુષ્યોને મરતા જોઈ જે પોતાના આત્માને કલ્યાણ માર્ગમા જોડતો નથી, તેમજ પાપથી પાછો હઠતો નથી, તેના નિર્લજપણાને ધિક્કાર થાઓ. ૭૫.

જેઓ ચિકણા કર્મથી બધાએલા છે, તેમને બહુ ઉપદેશ ન આપો તેમને આપેલી હિત શિખામણ મોટા અનર્થ કે દ્વેષનુ કારણ થાય છે. ૭૬

હે જીવ ! અનત દુખના કારણ એવા ધન, સ્વજન, વૈભવ વગેરેમા તુ મમત્વ ભાવ ધારણ કરે છે, પણ અત સુખરૂપ મોક્ષના માર્ગમાં બહુ શિથિલ દેખાય છે. ૭૭

સસાર દુખનુ કારણ છે, દુખરૂપ ફળવાળો છે, અને દુ.ખે કરીને ભોગવાય એવો દુખ સ્વરૂપી છે, છતાં પણ સ્નેહની સાકળોથી બધાયેલા જીવો આ સસારને ત્યજતા નથી, ૭૮.

પોતાના કર્મરૂપ પવને કરી ચાલેલો જીવ આ ભયંકર સસાર રૂપી વનમા દુખે કરીને ભોગવાય એવી કઈ કઈ વિટબનાઓ નથી અનુભવતો ? ૭૯.

તિર્યંચના ભવમા અરણ્ય વિષે, શિયાળામા શીતળ પવનની લ્હેરોથી ઘણીવાર તારો દેહ ભેદાયો છે, અને આ રીતે અનતવાર તુ મરણ પામ્યો છે ૮૦

તિર્યંચના ભવમા અરણ્યમાં, ઉનાળાના સખ્ત તાપથી તપેલા તે બહુ વાર ભૂખ અને તરસના દુખ વેઠયા છે, અને ઘણુ ઝુરી ઝુરીને મરણ દુ.ખ પામ્યો છું ૮૧.

તિર્યંચના ભવમા વર્ષાઋતુમા જઇને, અરણ્યમા પર્વતની નદીથી ખેચાઈ, શીત પવનથી ઠરી જઇને તુ ઘણી વાર મરણ પામ્યો છે. ૮૨.

આ પ્રમાણે તિર્યંચના ભવમા લાખો ગમે દુખ સહન કરતો તુ અનતવાર આ ભયકર સસાર રૂપી અરણ્યમાં ભટક્યો છુ. ૮૩.

હે જીવ ! દુષ્ટ આઠ કર્મરૂપી પ્રલય કાળના પવનથી પ્રેરાયેલા અને આ ભકર સંસાર રૂપી અરણ્યમા ફરતા તે અનતવાર નરકમા દુઃખ અનુભવ્યા છે. ૮૪

સાત નરકોમાં વજ્રાગ્નિ જેવી ગરમીથી અને અતિ શીતળતાથી ઉત્પન્ન થતી વેદનાઓમા કરૂણ શબ્દો વડે વિલાપ કરતો તુ અનંતવાર વસ્યો છુ. ૮૫.

આ સંસારમાં મનુષ્ય ભવમા પણ પિતા, માતા કે સ્વજન વગેરેનો થઇને અથવા ભારે પીડા સહન કરીને તે ઘણીવાર વિલાપ કર્યો છે, આ બધુ તુ કેમ સંભારતો નથી? ૮૬.

આ સસાર રૂપી વનમા ધન, સ્વજન વગેરેનો ત્યાગ કરીને, આકાશમાર્ગમા ન દેખાતા પવનની માફક, આ જીવ એક સ્થાનથી બીજા સ્થાનમાં ભટકે છે. ૮૭.

જન્મ, જરા અને મરણ રૂપ તીક્ષણ ભાલાએ કરી અનેકવાર વિધાયેલા જીવો, સંસારમા ફરતાં અનેક ભયકર દુઃખ અનુભવે છે. ૮૮.

છતાં પણ અજ્ઞાન રૂપી સર્પથી ડખ પામેલા મૂઢ મનવાળા જીવો એક ક્ષણ વાર પણ આ સસાર રૂપ બદિખાના તરફ વૈરાગ્ય ધરાવતા નથી! ૮૯.

જ્યાં દરેક ક્ષણે કાળરૂપ રેટ તેની ઘડીઓ વડે શરીર રૂપી વાવમાંથી જીંદગી રૂપી જળ ખેંચી લે છે, ત્યા તુ કેટલો વખત ક્રીડા કરી શકીશ? ૯૦.

હે જીવ! બોધ પામ! હે પાપી જીવ! પ્રમાદ ન કર! રે અજ્ઞાની જીવ! પરલોકમાં મહા દુઃખનુ ભાજન (પાત્ર) તુ કેમ થાય છે? ૯૧

રે જીવ! બોધ પામ! અને જીન મત જાણીને મુઝાઈ ન જા. હે જીવ! ફરીથી આવી સામગ્રી મળવી બહુ દુર્લભ છે ૯૨.

જીન ધર્મ દુર્લભ છે તુ પ્રમાદની ખાણ છે અને સુખની ઇચ્છા કરે છે. નરક દુઃખ અતિ દુઃસહ છે આ કારણથી તારૂં સારૂ શુ થશે તે અમે જાણુતા નથી. ૯૩.

રે જીવ! અસ્થિર, મળ સહિત અને રોગાદીને આધિન એવા શરીર વડે સ્થિર, નિર્મળ અને સ્વાધીન એવો જો ધર્મ મળતો હોય તો શું ખામી રહી? ૯૪.

તુચ્છ વૈભવ વાળાને ચિંતામણી રત્ન મળવુ દુર્લભ છે, તેમ ગુણ વૈભવ રહિત જીવોને ધર્મ રત્ન મળવુ દુર્લભ છે. ૯૫.

જન્મથી અધ પુરૂષોને જેમ દષ્ટીનો સયોગ—એટલે દેખવુ અશક્ય છે, તેમ મિથ્યાત્વથી અધ જીવોને જીન મત સયોગ અશક્ય છે. ૯૬.

અનંત ગુણ યુક્ત જીન ધર્મમાં દોષનો લેશ પણ અંશ નથી તો પણ હે ભવ્ય જીવો! અજ્ઞાનથી અંધ થઈ તમે તે જીન ધર્મમાં કેમ જોડાતા નથી? ૯૭.

મિથ્યાત્વમા (અસત્ય મતમા) અનત દોષ પ્રગટપણે દેખાય છે. ત્યાં જરા પણ ગુણનો ભાસ નથી, તોપણ મોહાંધ જીવો તે મિથ્યાત્વનુ સેવન કરે છે એ આશ્ચર્ય છે ૯૮.

જે લોકો સુખરૂપ, સત્યમય ધર્મ રત્નની પરીક્ષા જાણતા નથી, તે મનુષ્યોની કળા અને ગુણો સબંધી ચતુરાઇને ધિક્કાર હો! ૯૯.

આ **જીન** ધર્મ જીવોને અપૂર્વ કલ્પ વૃક્ષ સમાન છે, અને સ્વર્ગ તથા મોક્ષ રૂપ ફળ આપવા વાળો છે. ધર્મ એજ બધુ છે; ધર્મ એજ સુમિત્ર છે ૧૦૦.

ધર્મ એજ પરમ ગુરૂ છે, અને મોક્ષ માર્ગમાં પ્રવૃત થયેલાને ધર્મ એજ પરમ રથ છે. ૧૦૧.

હે જીવ! ચતુર્ગતિના અનત દુઃખરૂપી અગ્નિએ સળગાવેલ સંસાર રૂપી ભયકર વનમા અમૃતના કુડ સમાન જીન વચન છે, માટે તેનુ તુ સેવન કર ૧૦૨.

અનત દુઃખ રૂપ ગ્રીષ્મ ઋતુના તડકાથી તપેલા આ સસાર રૂપી મારવાડ દેશમા **જીન** ધર્મ એજ કલ્પવૃક્ષ સમાન છે તે શિવ સુખને આપનાર **જીન** ધર્મનુ તુ સેવન કર. ૧૦૩

હે જીવો! વધારે કહેવાથી શુ? તમારે **જૈન** ધર્મમા એવી રીતે શ્રમ લેવો જોઇએ કે જેથી તમે આ સસાર રૂપી ભયકર સમુદ્રને જલ્દીથી તરીને અનત સુખરૂપ શાશ્વત સ્થાન પામો ૧૦૪

"જીવન સાફલ્ય."

ઘણા યુવકો જીવનનૌકા કેવી રીતે ચલવવી તે બાબતના જ્ઞાનના અભાવે, તે નૌકાને અનેક પ્રકારના તરગો ઉપર ઉછાળી, અથવા સંસાર સમુદ્રમા પળે પળે મળી આવતા ખરાબાઓ સાથે અથડાવી, સુખરૂપે દૃષ્ટિબિંદુ પ્રાપ્ત કરે, તે પ્હેલા તેનો અંત લાવે છે અભણ ખલાસીની માફક, સસારના અનુભવ વગરના, તેઓ ગમે તેમ નૌકાને હકારે છે વિવિધ પ્રકારના દુખો સહન કરી, સિદ્ધે માર્ગે તે નૌકા ચલવતા તેઓ શિખે છે, પણ તેવામા મરણ સમય નજદીક આવે છે, અને જીવન સાફલ્ય કર્યા સિવાય તેઓ મૃત્યુના પાશમા ફસાય છે. તેવા યુવાનોને અનુભવથી જાણેલો રસ્તો વૃદ્ધ પુરૂષો બતાવે, તો તેથી તેઓના ઉપર મોટામા મોટો ઉપકાર

કરેલો ગણી શકાય, કારણ કે સિદ્ધા માર્ગના જ્ઞાનથી, તરંગો અને ખરાબા સાથે અથડાયાના પ્રસંગ અનુભવ્યા સિવાય, તેઓ પોતાની જીવનનૌકા સમુદ્રની પેલી પાર લેઇ જવા સમર્થ થશે. માટે આ લેખમાં તેવો માર્ગ બતાવવાને પ્રયત્ન આદરવામા આવે છે.

(૧) **આરોગ્યઃ**—નિરોગી શરીરમાંજ સમર્થ મન વાસ કરી શકે. જીવન–સાફલ્યતા મેળવવાના માર્ગમાં તન્દુરસ્ત શરીર પ્રથમ સાધન કહી શકાય. કારણ કે દરેક પ્રકારના કર્તવ્યમા આરોગ્યની ખાસ જરૂર લેખાય છે. આપણે કેટલુ કામ કરી શકીશુ તેનો આધાર આપણા શરીર અને મગજના સામર્થ્યપર રહેલો છે, એ વાત વિસરવી જોઈતી નથી. તેટલા માટે તેમની યોગ્ય પુષ્ટિની જરૂર છે.

(અ) સાત્વિક અને પુષ્ટિ આપે તેવા ખોરાકથી અને સ્વચ્છ શુદ્ધ જળથી, આપણા શરીર અને મગજને બલિષ્ટ બનાવવાં જોઇએ. કારણ કે સખ્ત કામ તેઓ તેથીજ કરી શકશે

(બ) આપણી આરોગ્યતાનો આધાર આપણે જે કસરત કરીએ છીએ, તેનાપર રહેલો છે. માનસિક તેમજ શારીરિક કેળવત અર્થે, કોઈ પણ પ્રકારના આરામની પણ જરૂર છે. ઘણા વિદ્યાર્થીઓ શરીરે ખીનતાકાતવાળા, માદા અને અસમર્થ જણાય છે, તેનુ મુખ્ય કારણ એ છે કે જો કે તેઓ મનથી સખ્ત મહેનત કરે છે, પણ કોઇ પ્રકારની શારીરિક કસરત કરતા નથી. બેઠે બેઠે કામ કરવાથી તેઓની તન્દુરસ્તી બગડે છે, અને તેઓ નિર્બળ બને છે.

(ક) શરીરને નિરોગી રાખવાના બીજા નિયમોમા, પુરતી ઉંઘ, આરોગ્યવાળા ઘર અને આસપાસની જગ્યા, સારી ખુલ્લી હવા, સ્વચ્છતા, આનદી અને સદાચારી મિત્રો, અને વિદ્યાર્થી અવસ્થામા **નિષ્કલંક બ્રહ્મચર્યવ્રત** ખાસ કરીને ધ્યાન આપવા લાયક છે.

(૨) સમયનો ઉપયોગ કરવામાં કરકસર અને ઉદ્યોગઃ—જેઓ જીદગીને અર્થવતી માને છે, અને તેમા વિજય મેળવવા ઇચ્છા ધરાવે છે, તેઓએ **લોંગ** ફેલોના શબ્દો યાદ રાખવા જોઇએ કે "જીંદગી ચાલી જાય છે, અને સાધ્ય વસ્તુ બહુ દૂર છે" તેટલા સારૂ કરકસર કરવી, અને સમયને જરા પણ નિરર્થક ગુમાવવો નહિ. નેપોલીઅન જેવા નિયમસર અને વખતસર કાર્ય કરનારા જગતમાં વિજયવન્ત નીવડે છે, તેનો ઇતિહાસ અનેકધા પુરાવો આપે છે. તે સાથે સાથે ઉદ્યોગ અને ખંતને પણ ગ્રહણ કરવા જોઇએ, કારણ કે સારી રીતે કરેલી મહેનત કદાપિ નિષ્ફળ જતી નથી તેમ તેના સિવાય કોઇ પણ વસ્તુની પ્રાપ્તિ થવી

અસભવિત લાગે છે " માણસનો કટ્ટામા કટો શત્રુ પ્રવૃત્તિ નહિ પણુ આલસ્ય છે " એ ડો. સ્માઈલ્સનુ કથન અક્ષરસઃ સત્ય છે. કારણુ કે જેઓ ઉદ્યમી છે, તેઓ પોતાનાપર આધાર રાખતા શિખે છે, અને તે સાથે તેઓ સ્વ સામર્થ્યમા શ્રદ્ધાવાળા થાય છે, જે ગુણુ ખાસ કરીતે ફતેહને વાસ્તે જરૂરનો છે. આપણે જે કામ કરવાનુ હોય છે, તેમાનો ઘણોખરો ભાગ વેતરા જેવો હોય છે પણુ જેઓને સ્વશક્તિમાં વિશ્વાસ છે, અને જેઓ ઉદ્યમી છે, તેઓ વૈતરૂ કરીને પણુ ઇચ્છિત લાભ મેળવવા ભાગ્યશાળી નીવડે છે

(૩) ઉત્તમ ચારિત્ર-વર્તન:—જેઓ જગતમા કોઇ પણુ રીતે કામ કરવાને સમર્થ થયા છે, તેઓના ચારિત્ર તપાસતા, એટલુ તો સ્પષ્ટ ભાસે છે કે, તેઓમાં કોઇ પણુ પ્રકારનો ઉચ્ચ ગુણુ હોવો જોઇએ જેઓ સદ્‌ગુણી છે, તેઓજ ખરૂ સુખ, માનસિક શાન્તિ અને આતરિક સન્તોષ પ્રાપ્ત કરી શકે છે. કોઇ પણુ બાબતમાં વિજય ઇચ્છનારમા આ ત્રણુ ગુણો હોવા જોઇએ. (૧) આત્મ પ્રતિષ્ટા, (૨) આત્મસયમ, અને (૩) આત્મનિરીક્ષણુ. રાજકવિ ટેનિશનના કથન પ્રમાણે જગતમા એવી એક પણુ વસ્તુ નથી કે જે ઉપર જણુાવેલા ત્રણુ ગુણુવાળાથી પ્રાપ્ત ન થઇ શકે જો કે દરેકમા તે ગુણો સપૂર્ણુ રીતે ન હોઈ શકે, તોપણુ જેટલે અશે તે ગુણો પ્રાપ્ત થાય, તેટલે અશે તે વિજયી નીવડે છે આ સબધમા સીડની સ્મીથનો ઉત્તમ ઉપદેશ યાદ રાખવાની જરૂર છે કે ' મનુષ્યના વિજયની ખરી કુચી **તેની પાસે શુ**' છે તેમા નહિ પણુ તે **કેવો** છે તેમા રહેલી છે.'

આપણે ઉત્તમ પ્રકારનુ' ચારિત્ર બાંધી શકીએ તે સારૂ નીચે જણાવેલી ઉપયોગી બાબતો લક્ષમા લેવી જોઇએ.

(અ) આપણી ઇચ્છા શકિતને કેળવવાની, અને આપણી વાસનાઓ અને વિચારોને નિગ્રહમા રાખવાની જરૂર છે એક સ્થળે લખેલુ છે કે " તારા વિચારોનુ રક્ષણુ કર," કારણુ કે વિચારો તો સ્વર્ગમા સભળાય છે, આપણી વાસનાઓ અને મનોવિકારોને બરોબર નિયમમા લવાય તો હાલ આનદ અને સન્તોષ મળે તે ઉપરાત ભવિષ્યમા પણુ ઉત્તમ પ્રકારના ચારિત્ર સહિત આપણે જન્મ પામીએ આપણે મનને કેળવવુ જોઇએ, પણુ મનના તરગો પ્રમાણે નહિ વર્તતા અદર બેઠેલા આત્માના ઝીણા પણુ સ્પષ્ટ અવાજને અનુસરતા શિખવુ જોઇએ. કારણુ કે તે અવાજ કદાપિ ભૂલ ખાતો નથી મનુષ્યનુ મન પતાકાના પટ, કુજરના કાન, અને શરદઋતુના વાદળા જેવુ' ચચળ અને અસ્થિર છે. તે ઘડીકમા આ વિષયમા,

અને બીજી ઘડીએ અન્ય વિષયમા રમતુ જણાય છે. નિરંકુશ ઘોડાને લગામમાં નાંખતાં જેમ તે ચારે પગે કુદે તેમ મનોનિગ્રહ કરતાં મન આડુ અવળું ભમવા માડે છે પણ સતત અભ્યાસ કરનાર તેને નિગ્રહમાં લાવી શકે છે. માટે જે જે કામ આપણે કરતા હોઇએ તેમાં એકાગ્ર થવુ. જે કર્તવ્ય હોય તે નાનું છે કે મોટુ તેનો વિચાર નહિ કરતા, તેમાં આપણા મનનુ સઘળું જોર વાપરવુ, તેથી મન એકાગ્ર થશે. અને એકાગ્ર થયેલુ મન મનુષ્યને દરેક પ્રસંગે અત્યન્ત સહાયકારી થશે.

(ખ) આપણાં કર્તવ્યનુ ભાન, અને તે કર્તવ્ય અદા કરવામા આનંદ, જે મનુષ્યોમાં છે, તેઓજ ખરેખર જગતમા વિજયી નીવડે છે કર્તવ્ય પરાયણ પુરૂષોનાજ લલાટમાં સુખ સોનેરી અક્ષરે લખેલુ જણાય છે. પોતાના કાર્યથી કદાચ ઇચ્છિત વસ્તુ પ્રાપ્ત ન થાય, તોપણ પોતે પોતાનું કર્તવ્ય યથાશકિત યથામતિ કર્યું છે, તે બાબતનુ ભાન તેને જે આન્તરિક આનંદ આપે છે તેનુ વર્ણનજ શબ્દોમા શી રીતે થઈ શકે ? તે તો તેના અનુભવી પુરૂષોજ સમજે છે.

(ક) કોઈ મહાન્ પુરૂષ જેના ભણી સ્વાભાવિક રીતે તેનું હૃદય પૂજ્યભાવથી જોતુ હોય, તેવા પુરૂષને પોતાની ઉચ્ચ ભાવનારૂપ (ideal) તેણે ગણવો જોઇએ અને તે પ્રાપ્ત થાય તે માટે તે ઉચ્ચભાવનાને અનુસરવુ જોઇએ, અને તે દિશામા પ્રયત્ન કરવો જોઇએ વિષયને પ્રેરનારાં અને મનોબળને અશક્ત બનાવનારાં નોવેલો વાચવાથી નિરંતર વિમુખ રહેવું જરૂરનુ છે. તેને બદલે મહાન્ પુરૂષોના જીવનચરિત્રો વાચવા જોઇએ અને તેમનો અભ્યાસ કરવો જોઇએ

(ડ) નમ્રતા, આજ્ઞાપાલન અને સભ્યતાની ટેવ પાડવી જોઇએ. જો તમારે હુકમ કરનાર થવુ હોય તો પ્રથમ હૂકમ માનતા શિખો, એ સત્ય વાત કદાપિ ભૂલવી જોઇતી નથી. તે સાથે મગરૂરી અને અભિમાનનો સર્વદા સંહાર કરવો. શિષ્યવૃત્તિવાળા જીજ્ઞાસુઓજ ખરૂ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી શકે છે, અને અભિમાની લોકો તો પોતાના હુંપદમા મરડાઈ મરે છે

(ઇ) ખરાબ સાથીઓ અને ટેવોને ત્યાગ કરવો, કારણ કે તેથી આપણુ ચારિત્ર હલકુ થાય છે; તે સાથે મોજશોખની વૃત્તિને સંયમમા રાખવી, કારણ કે તે વિજય મેળવવામા મોટી વિઘ્નરૂપ નીવડે છે.

(ફ) છેવટમા સદ્‌ગુણી જીવન ગાળવુ, અને ઈશ્વર ઉપર આધાર રાખી વર્તવું. 'Trust in God do the right' ઇશ્વરમાં વિશ્વાસ રાખવો અને સન્માર્ગે વર્તવું. જેઓ આ નિયમ પ્રમાણે ચાલે છે, તેઓ અંતે વિજયની પરિસિમાએ પહોચે છે

ज्ञानदीपक.

॥ मंगलाचरणम् ॥

ज्ञानी क्रियापरः शान्तो भावितात्मा जितेन्द्रियः ॥
स्वयं तीर्णो भवांभोधेः परं तारयितुं क्षमः ॥ १ ॥

(ज्ञानसार.)

अर्हद्वक्त्रप्रसूतं गणधररचितं द्वादशांगं विशालं ।
चित्रं बह्वर्थयुक्तं मुनिगणवृषभैर्धारितं बुद्धिमद्भिः ॥
मोक्षाग्रद्वारभूतं व्रतचरणफलं ज्ञेयभावप्रदीपं ।
भक्त्या नित्यं प्रपद्ये श्रुतमहमखिलं सर्वलोकैकसारम् ॥ २ ॥

स ब्रह्मनिष्ठः सममित्रशत्रुः ।
विद्याविनिर्वान्तकषायदोषः ॥
लब्धात्मलक्ष्मीरजितो जितात्मा ।
जिनः श्रियं मे भगवान् विधत्ताम् ॥ ३ ॥

(सामन्त भद्राचार्य.)

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया ॥
चक्षुरुन्मिलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ ४ ॥

प्रयोजन.

ज्ञान ! पवित्र ज्ञान ! उच्च धार्मिक ज्ञान ! मोक्ष तक ले जानेवाले सद्ज्ञान ! तेरे फायदे, तेरा लाभ, तेरी कीर्ति, शब्दोंमें किस प्रकार बताना, इस स्थूल वाचा द्वारा किस प्रकार कहना, वे इस लेखकको सूझ नहीं पडती ! लेखककी शक्ति मर्यादित होनेसे, वह तेरे अमर्यादित गुणोंका वर्णन करने किस प्रकार प्रयत्न करे ? तो भी "**शुभे यथाशक्ति यतनीयम्**" (अर्थात् शुभ कार्यमें यथाशक्ति प्रयत्न

करना) इस महान् पुरूषोंके वाक्यका अनुसरण कर, तत्संबंधी अल्पमति अनुसार कुछ निवेदन करने प्रयत्न किया है; और परमात्माकी परम कृपासे वे प्रयास सफल हो, ऐसा चाहकर–ऐसी प्रार्थना कर, ये लेख लिखना उचित समझा है।

विषय.

इस लेखमें ज्ञानके अगम्य लाभ संबंधी विद्वान् क्या कह गये हैं, ज्ञानी किस रीतिसे प्रशंसाके पात्र हैं, और उनोंका जीवन अनुकरण करने वालेको ज्ञान समीप किस प्रकार ले जाता है, वे वताकर, वैसा उत्तम पंक्तिका ज्ञान प्राप्त करनेके कौनसे मार्ग है, और वे प्राप्त करनेवालेमें खास कर कौनसे गुणोंकी सामग्रीकी आवश्यकता है, उस तरफ वाचक वर्गका ध्यान दिलाने प्रयत्न करनेमें आवेगा।

पाश्चात्य वैसेही पौर्वात्य विद्वान् ग्रंथकारोंने–महात्माओंने–ऋषियोंने–मुनिओंने ज्ञानको जो उच्चपद दिया है, वह वास्तविक रीतिसे योग्य है। सवव कि जिसमें ज्ञानका माहात्म्य वतानेमें आया है, उसके लेखक आपखुद विद्वान–बुद्धिवान् थे। और जिससे खुद ज्ञानीपदके योग्य वने, उसकी प्रशंसा उनोंकी वाणीमेंसे स्फुरायमान हो यह स्वाभाविक है। जैनशास्त्र ज्ञानको आतमाका स्वाभाविक गुण मानते हैं। और कहते हैं कि, कर्मरूपी पड़देसे आत्माकी शुद्ध प्रभा छिप गई है, वह जव दूर हो जॉयगे तव आत्मा आप ज्योतिरूप वनकर, अपने तेजस्वी रूपमें प्रकाशमान् होकर, अंधकारमे डूवते–गोथे खाते अन्य भाईयोंका अज्ञान दूर कर शुद्ध मार्गमें प्रेरेगा। **तत्त्वार्थ सूत्र** और **प्रशमरति** आदि अनेक सच्छास्त्रके रचयिता **उमास्वाति** स्वामी विरचित **तत्त्वार्थ सूत्र** जो कि, जैनधर्मके सकल सिद्धांतके संग्रह रूप है। उसमें कहते है कि, **ज्ञानदर्शनचारित्राणि मोक्ष मार्गः** ज्ञान, दर्शन और चारित्र ये तीन मोक्षके मार्ग रूप है। इन तीनोंमेंभी

ज्ञानको प्रथम पद दिया है, और वह सर्वथा योग्यही है। सबब कि जहांतक वस्तुमात्रका सच्चा ज्ञान न हो, वहांतक उस पर श्रद्धा (दर्शन) भी न हो, और जहांतक संपूर्णपने श्रद्धा उत्पन्न न हो, वहां तक उस प्रकारका चारित्र-वर्तनकी भी संभावना न हो सके। वास्ते सद्वर्तन अथवा शुद्ध क्रियाके लिये भी सद्ज्ञान और उससे उत्पन्न होते हुए सद्दर्शनकी आवश्यकता है।

राल्फ वॉल्डोट्राइन नामक सुप्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता एमर्सनका शिष्य कहता है कि, First thought, then action and than habit. प्रथम विचार फिर विचार अनुसार कार्य और कार्य करनेसे वे करनेकी आदत पडती है। वास्ते हरेक प्रकारका शुद्ध वर्तन तथा कार्यके लिये उसही प्रकारका ज्ञान तथा विचारकी आवश्यकता है। उसही बाबतका जैन सिद्धांतभी समर्थन करते कहता है किः-

पढमं नाणं तओ दया।

अर्थात् प्रथम ज्ञान और पश्चात् अहिंसा। ऐसा कथन करनेका सबब थोडेमें समजा जाय वैसा है। यह होना संभवित है कि, जिस मनुष्यको सम्यग् अर्थात् यथार्थ ज्ञान नहीं है, वे दया करते कदाचित् अदयाका कार्य कर बैठे! वास्ते ज्ञानको प्रथम पद देना आवश्यक है। **क्रिया ज्ञानकी दासी रे.** यह जैनसिद्धांतान्तर्गत वाक्यभी उसही विषयको सरल भाषामेंभी समर्थ रीतिसे पुष्टि देता है।

ज्ञानका फल।

अज्ञानी मनुष्यकी अंध मनुष्यके साथ तुलना करनेमें आती है। परंतु ज्ञान विवेक दृष्टि खोलता है, और उसके द्वारा भला-बुरा, सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म-पाप-पुण्य, इत्यादि बातें समजाता है। कौनसी बात 'हेय' अर्थात् त्याग करने योग्य है, और कौनसी बात आदेय (ग्रहण करने योग्य) है, वे बतानेवाला भी ज्ञान है। इस

विश्वमें मेरे जन्मका क्या प्रयोजन है, मेरे जन्मका सार्थक किसमें रहा है, मेरा केवल जगत्के अन्य मनुष्योंके साथ नहीं परंतु हलके प्राणीके साथ क्या संबंध है, मैं मेरा वर्तन इस विश्वमे किस प्रकार चलावुं कि इष्ट सिद्धि हो सके, वे सब बातें पूरे तौरसे बतानेवाला ज्ञान सूर्य समान है। सूर्य तो दिनके समयमेंही अपनेको बाह्य पदार्थ बता सक्ता है, परंतु ज्ञान तो दिनमे, वैसेही रात्रिमें, हरेक समयमें अपने ज्ञान चक्षु जागृत कर अपनेको वस्तु मात्रका भान करवाता है। वास्ते ज्ञान है वे तो सूर्यसे भी अधिक है।

ज्ञान अपूर्व शक्ति है।

पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं कि, Knowledge is Power, ज्ञान वे अपूर्व शक्ति है, और वे कथन वस्तुतः सत्य है, विद्वान् ज्ञानी अपने विद्याके बलसे क्या क्या करगये हैं, और अभी—इस समयमें क्या क्या कर रहे हैं, उस तरफ दृष्टि फिरानेवालेको यह विना मालुम हुए नहीं रहेगा कि, ज्ञानकी अपूर्व शक्ति है। आत्मिक ज्ञान बाबत अभी ध्यानमें न लें तो भी बाह्य सृष्टिके पदार्थके विशेष ज्ञानसे विद्वान्—रसायन शास्त्री—सायन्टीस्ट जो कुछ करते हैं, वे सामान्य मनुष्यको तो प्रथम दर्शनमेंही चमत्काररूपही मालूम होते हैं। मनुष्यकी बुद्धिका बल कितना है, वह बतानेके लिये स्थूल जगत्के सूक्ष्म ज्ञानसे उत्पन्न किये हुए परिणामोंकी संक्षिप्त यादी लेनेमें आवे तो वे अप्रा-संगिक नहीं गिनी जायगी।

उसके उदाहरण रूप भापका प्रताप।

भाप और बिजली जैसी महान् दो शक्तियोंको मनुष्यने अपने ज्ञान बलसे आधीन की है, उसके द्वारा अभी जगत्में जोर कार्य होते हैं, उसका वर्णन करते एक नये पुस्तककी रचना करनी पडे! तथापि प्रसंगानुसार कहनेकी आवश्यकता है कि, रेलगाडी सुगम रीतिसे एक

स्थानसे दूसरे स्थानपर थोड़े समयमें और थोडे खर्चेमें डाकुओंके भय सिवाय, विना मार्गकी बाधाके लेजाती है। वे रेलगाडीको गतिमें रखनेवाले इंजन, जो आगवोट थोडे समयमें निर्भय रीतिसे एक देशके मनुष्यको दुनियाके चाहे जिस दिशाके देशमें लेजाता है, और जलसे भिन्न पड़ गये हुए विविध देशोंका जोड़ देनेवाला स्टीमरमें रहा हुआ वॉइलर, रुई, रेशम, सण, उन इत्यादिका जो कपडा बनात अनेक दिवस व्यतीत होतेथे, तौभी विन सफाईदार मालूम होताथा। वे कपडेको थोडे समयमे सफाईदार और थोकवंद उत्पन्न करनेवाला मिलमें रहा हुआ वॉइलर, वैसेही अनेक प्रकारके यंत्रोंको चलानेवाले भिन्न भिन्न वॉइलर, वे सब भाप उपर मनुष्यने मिलाया हुआ आधिपत्य उसका परिणाम है।

बिजलीका प्रताप।

असलके समयमें एक देशकी खबर पासके गामवालोंको पडते अनेक दिवस लगतेथे तो फिर एक खंडकी बात दूसरे खंडके लोगोंको जानते बहुत वर्ष व्यतीत होवे, वे स्वाभाविक है। प्रिय वाचक वृंद! जरा वर्तमान समय तरफ नज़र करो। वर्तमान पत्रोंके कॉलमोंकी तरफ देखो। और युरप, एशिया, आफ्रिका, अमेरीका, आस्ट्रेलिया आदि पृथ्वीके खंडोंमें कोइभी विभागमें बनी हुइ उसही दिनकी नयी खबरें, समाचार तुमको दिखाइ देंगे। और तुम आनंद और आश्चर्यमें निमग्न होंगे। यह सब किसका प्रभाव? विद्या। ज्ञान। विना तेरे ये सब आश्चर्य कौन उत्पन्न करने समर्थ है? सर्व मनुष्योंको विदीत है कि, यह वश की हुई विद्युत् शक्तिकाही प्रभाव है। तारकी रस्सियां रूप साधनका उपयोग करके जिस शक्तिद्वारा दुनियाके कोइभी विभागमें बहुतही थोडे समयमें अनेक बावतें कहनेमें आती है—वे शक्ति दूसरे किसीकी नहीं परंतु विजलीकीही है। क्या भाप

और विजलीमें प्रथम यह शक्ति नथी ? क्या मनुष्यने उसको नयी शक्ति दी है ? शक्ति तो वेकी वेही है। मनुष्यको केवल उसके सामर्थ्यका—उसके प्रभावका—उसकी इतनी बड़ी भारी शक्तिका ज्ञान न था। जहां मनुष्यको उसका ज्ञान हुआ, वहां वे शक्ति उसके स्वाधीन हुई, यह दृष्टांत अपने हरेक वावतमें घटावें और इस उपरसे दृढतासे तथा निश्चयपूर्वक कहा जा सके कि, ज्ञान वेही अपूर्व शक्ति है। और अज्ञान वे अंधकार और अशक्ति रूप है। यदि जगत्के स्थूल पदार्थके नियमका ज्ञान मनको कितनी शक्ति देता है, तो फिर आत्मिक, धार्मिक, और नैतिक ज्ञान कितनी शक्ति देता है, वे लिखनेके वजाय वांचनेवालेकी कल्पना शक्ति परही सुपुर्द करना उचित समजता हूं। ज्ञानका महात्म्य वताते श्रीमद् भर्तृहरि नीतिशतकमें कहते हैं किः—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तं धनं।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः॥
विद्या बंधुजनो विदेश गमने विद्या परं दैवतम्।
विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्या विहीनः पशुः॥ १॥

सचमुच विद्या मनुष्यको अधिक रूप देती है। वे गुप्त धन है। विद्या भोग, यश और सुखको देनेवाली है। विद्या गुरूका गुरु है। विदेशमें विद्या बन्धुका काम देती है। विद्या परम देव है। राजमें धनकी नहि परंतु विद्याकी पूजा होती है। विद्याहीन मनुष्य पशु तुल्य है। इस श्लोकमें प्रदर्शित किये हुये विद्याके अनेक लाभ है, किन्तु इतनाही नहीं; परन्तु मनुष्यका विद्या यह परम भूपण है। वेही मनुष्यका उत्तम शिंगार है। विद्या यह भूपण है।

केयूरा न विभूपयन्ति पुरुषं हारा न चंद्रोज्ज्वलाः।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजाः॥

वाण्येका समलं करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते ।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग् भूषणम् भूषणम् ॥ १ ॥

मनुष्यको बाजुबंध, चंद्र समान उज्ज्वल हार, विलेपन, पुष्प, अलंकृत केस इत्यादि अनेक बाह्य वस्तु शोभित नहीं करती; परन्तु संस्कार युक्त वाणीही शोभा देती है । दूसरे आभषण क्षय पाते हैं, परन्तु वाचा रूपी आभूषण वे नित्य स्थायी है ।

ज्ञानकी बलीहारी ।

ज्ञानका महात्म्य इतना है कि, साम्प्रत सुधरे हुए समयमेंभी निर्धन परन्तु ज्ञानी पुरुषके पॉव पडते श्रीमन्तभी धोका नहीं खाते। ज्ञान द्वारा मनुष्य यह यथार्थ समज सक्ता है कि, आप–स्वतः में दोष कौनसे रहे हुए हैं, और कौनसे अवगुण हैं । चाहे वे अवगुणोंको त्याग करनेका प्रयत्न न करे, चाहे दोषमय जीवन व्यतीत करे, परंतु जब वह दोपमय अथवा अवगुणसे भरे हुए जीवनके परिणाम रूप दुःख अनुभवेगा, उस समयमें उसका ज्ञान,–जो कि, बुरे मार्ग जाते अटकाने अंतःकरण रूपसे उपदेश देताथा–व्यक्त होगा; और वह मनुष्य सहजमें सुधर जायगा । इस लिये ज्ञानानुसार प्रवृत्ति न हो तो भी **ज्ञानकी तो बलीहारीही है** ।

ज्ञानसे कर्मका क्षय ।

ज्ञानसे मनुष्य अपने कर्मका क्षय कर सक्ता है । मनुष्यको ज्ञान होते अपने दोप मालूम होते हैं । स्वतःकृत अनिष्ट कर्म उसको याद आते हैं । तथा पश्चात्ताप होता है । अतः एव इस भवमें जो अशुभ कर्म किये हो, और उससे सामनेवाले मनुष्यको जो कुछ हानि हुइ हो, उसका योग्य बदला देनेका प्रयत्न करता है । वैसेही जो जो अशुद्ध विचार किये हो उसके बजाय उसके विरुद्ध विचारोंसे मन भरता है, और मनको पवित्र तथा निर्मल बनाता है। जो कि पूर्व

कृतकर्मके उदयसे कितनेक वक्त संकट सहन करना पडे, तोभी वे संकटके कारणभूत अपनी–खुदकी प्रवृत्तिहीथी, एवं यथार्थ समजता होनेसे वे सहनशीलतासे सहन करता है। और आपत्ति रूप सद्गुरु जो बोध देते हैं वह सहर्ष स्वीकार करता है। यह संकट दाता और कोई अन्य होतो भी उस पर क्रोध नहीं करता, सबब कि दूसरे तो केवल निमित्त मात्र हैं; परन्तु आपके सच्चे सुख दुःखका सच्चा कारण तो आप खुदही है। इस मुताबिक पुराने कर्मोंको धैर्यसे भोगव कर उनोंका क्षय करता है, और खुदको मिले हुए ज्ञानसे ऐसी प्रवृत्ति करना है कि नये कर्म उपार्जन न हो। इस मुताबिक नये कर्मोंके प्रवाहको अटकाता है; और पुरानेका क्षय करता है, और अंतमें मोक्ष दशा प्राप्त कर सक्ता है। कहा है कि **ज्ञानाग्निर्भस्मसात्कुरुते कर्माणि** मनुष्य ज्ञान रूपी अग्निसे चाहे जैसे कर्मोंको क्षणभरमें भस्मीभूत कर सक्ता है।

ज्ञान और धन.

कितनेक ऐसा कहते हैं कि, "ज्ञान कुछ धन नहीं, और ज्ञानी भूखे मरते मालूम पडते हैं"। एवं कथन करनेवाले पुरुष केवल अज्ञानी है। सबब कि धन यह–एक सुख प्राप्त करनेका–मिलानेका साधन है, परन्तु उसकी प्राप्तिमेंही जीवितव्यका सार्थक्य नहीं है। धनका किस प्रकार व्यय करता है, उस बाबतपर सुखका आधार है। मनुष्यके पास प्रभूत धन हो, परन्तु जो वे अधिक तृष्णा रखता हो तो वे तृष्णाको लेकर उसका मन चिंतातुर होता है; और जहां चिंता हो, वहां सुख कहांसे संभवे? फिर धन स्थायी पदार्थ नहीं है। उसमें अनेक संकट रहे हुएं हैं, जो कि विद्याका कुछ नहीं करसक्ते॥

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा।
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्॥

कल्पान्तेप्यपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनम् ।
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः कस्तैः सह स्पर्धते ॥ ३ ॥

विद्यारूपी जो धन है वे चोरोंके हाथमे नहीं आता, जो कल्याणका पोषक है, जो विद्यार्थीओको देनेमे आता है तो भी बढता है, और कल्पके अन्तमेभी जिसका नाश नहीं है। वैसे ज्ञानवान् मनुष्योंके आगे हे राजा! तुम तुमारा मान छोड दो—सबब कि साथ ज्ञानीओके कौन स्पर्धा कर सके? कहा है कि:—

ज्ञान समो कोई धन नहीं, समता सम नहीं सुख ॥
जीवित सम आशा नहीं, लोभ समो नही दुःख ॥

सुखका साधन।

सुख मनपर रहा है, अतःएव विद्यासे संस्कारित भया हुआ मन जो सुख प्राप्त कर सक्ता है, वे केवल-मात्र धनसे प्राप्त नहीं होता। विद्याको धन प्राप्त करनेकी शक्तिका तोल करनेमे अपने बड़ी भारी भूल करते हैं, सबब कि, ज्ञानमें नया तत्त्व शोध निकालनेमें, कुदरतका गुप्त रहस्य दृष्टिगोचर होता है, वैसेही अपना जीवन उन्नत हो वैसी विचार श्रेणि आते ज्ञानीओंको जो आनंद, संतोष, उच्चभावना और मनःशुद्धि होती है, उसके साथ केवल धनसे होते हुए सुखकी तुलना न हो सके। इस संबंधमें कवि शेक्सपीअर लिखता है कि:—

Labour to learn before you grow old,
Because learning is more precious than silver or gold.
Silver and gold would vanish away,
But acquired knowledge will not decay.

"तुम वृद्ध हो उसके प्रथम ज्ञान प्राप्त करने श्रम लो। सबब कि चांदी तथा सोनेके बजाय भी ज्ञान अधिक मूल्यवान् है। चांदी तथा सोना नाश पॉयगा, परन्तु मिलाया हुआ ज्ञान सर्वथा रहेगा। वास्ते ज्ञानका धनके धोरणसे तोल करते उसमें स्थित अपूर्व लाभके ओर दृष्टि करो"।

ज्ञानरूपी सन्मित्र ।

ज्ञान यह सन्मित्र समान है । जब-मनुष्यको किसी बाबतमें समज न पडती हो,-तब-मित्रकी सलाह लेता है, परन्तु जो ज्ञानी हैं उनोंका बहारके मित्रकी जरूरत नहीं पड़ती । उनोंका ज्ञान बुद्धिको सत्तेजित करता है, और उनोके प्रश्नोंका उत्तर देकर उनोंकी शंकाका समाधान करता है । ज्ञानरूपी सन्मित्र पाप करने नहीं देता, हितकारक कार्यमें प्रेरणा करता है । गुह्य बात गुप्त रखता है, गुणोंको प्रगट करता है, आपत्तिके समयमें त्याग नहीं करता और योग्य समयमें सहाय देता है ।

ज्ञान और गर्व ।

इस संबंधमें इतना लिखना आवश्यक है कि, ज्ञानकी ऐसी एक स्थिति है कि जिसमें मद अथवा मानके लिये प्रसंग होते हैं, वह स्थिति अर्धदग्धकी है । जो अज्ञानी है उसको मद-मान करनेका कोई सबब नहीं है। सबब कि वे किसका मद करे ? वैसेही जो संपूर्ण ज्ञान है उसकोभी गर्वका अवकाश नहीं है । सबब कि वे मनुष्य तो ज्ञानको आत्माका गुणरूप जानता है और अनुभवता है । परन्तु संपूर्ण ज्ञान प्राप्त होनेके प्रथम एक स्थिति आती है कि, जिस समयमें मनुष्य अपने अल्पज्ञानको संपूर्ण ज्ञानरूप मानने चाहता है । ओरोंको अपनेसे हलके मानकर उनोंकी अवगणना करता है । उस समयमें वे अन्यका उपदेश ग्रहण नहीं कर सक्ता और मदोन्मत्तपनेसे वर्तता है । खुदको शंका पडे तो उसका समाधान प्राप्त करने ओरोंके सामने नहीं कह सक्ता । सबब कि शंका प्रदर्शित करे तो स्वतः मनमानित सर्वज्ञपनेमें दूषण आवे ! इस संबंधमें प्रख्यात ग्रंथकार शेक्सपीअर लिखता है किः—

Little learning is a dangerous thing,
Drink deep or taste not the Piarian spring

Th [illegible]
But drinking [illegible]

" अल्पज्ञता ये भयंकर वस्तु है। सरस्वती झीलका जल अधिक पीओ अथवा उस जलका स्वाद भी मत लो, सबब कि वे झीलका थोडा जलभी मनुष्यके दिमागको भ्रमित करता है, परन्तु अधिक जल पुनः दिमागको ठिकाने करता है।" इसी बातको अनुमोदन देकर समर्थन करते श्री भर्तृहरिने लिखा है कि:–

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम् ।
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ॥
यदा किंचिद् किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं ।
तदा मूर्खोस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥ ४ ॥

" जब मैं कुछ जानने लगा तब हाथीके माफिक मदान्ध हुआ, तब मैं सर्वज्ञ हूं एवं मेरे मनमें मद हुआ। जब विद्वानोंके पाससे कुछ अधिक जानने लगा तब मैं मूर्ख हूं ऐसा मुझे लगा और ज्वर (बुखार) के समान मेरा दर्प चला गया।" वास्ते ज्ञानीकी पूर्वावस्था प्राप्त हो, उसके प्रथम इस दशामें पात न हो, इस लिये सर्वज्ञ ज्ञानाभिलाषीओंने साथ ज्ञानके नम्रताभी रखना चाहिये। राजकवि टेनीसनभी वह ही सिद्धांतकी सत्यताको सिद्ध करते लिखता है कि:–

Let knowledge grow from more to more
But more of reverence in us dwell

" चाहे अपने अधिकाधिक ज्ञान मिलावें परन्तु उसके साथ अपने हृदयमें नम्रता–पूज्यभावभी वढना चाहिये।" टेनिसनकी यह उक्ति हरेक ज्ञानाभिलाषीओंने हृदयमें लिख रखना चाहिये। सबब कि हरेक प्रकारके मदका संहार कर्त्ता ज्ञान है। परंतु जिस समय ज्ञानका मद हुआ, उस समयमें उसकी औषधि कहांसे लाना यह विचारवान् प्रश्न है। विना सद्गुरूकी कृपाके वे मद उतरेही नहीं।

गौतम आदि ग्यारह भाइयोंको गणधर होनेके प्रथम इसही प्रकारके ज्ञानमदका विष रोम रोममें व्याप रहा था। परम कृपालु श्री वीर-प्रभुका उनोंके पुण्योदयसे समागम न हुआ होता तो, निश्चित वह अपने मन मानित सर्वज्ञपनेके नशेमें नष्ट हो जाते; ज्यों ज्यों ज्ञान वढे, त्यों त्यों अधिक नम्रता रखना।

विद्या विनयेन शोभते।

विद्या विनयसे शोभती है। ज्ञान मिलानेकी इच्छा रखनेवालेने शिष्यवृत्ति रखना। बालकके पाससेभी सद्बोध ग्रहण करने किंचित्‌भी शरम न रखना और सर्वथा लघुता रखना। कहा है कि:—

लघुतासे प्रभुता मिले, प्रभुतासे प्रभु दूर ॥
कीड़ी जो मिसरी चुगे, गज शिर डारे धूल ॥

पूज्य पुरुषोंके ओर भक्ति रखनेसे और उनोंके गुणोंकी महत्त्व-ताका विचार करते मानवृत्ति नष्ट होती है। तुमारेसे उच्च पुरुषोंकी ओर नज़र करो, तुमको तुमारी सत्य स्थितिका भान आवेगा। और तुमारेमें जो ज्ञान अथवा गुण न हो वे प्राप्त करने प्रयास करनेकी तुमारी रुचि होगी।

ज्ञानके साधन।

ज्ञान प्राप्त करनेके साधन कौनसे? हरेक मनुष्य हरेक पदार्थ, हरेक प्रसंग जो लाभ लेनेकी इच्छा अपने रखें तो अपनेको कोइभी प्रकारका बोध देकर अपने ज्ञानमें वृद्धि करता है। परंतु इस स्थानमें ज्ञान प्राप्त करनेके साधनोंमें पुस्तक सत्समागम, गुरु, देशाटन और भिन्न भिन्न प्रसंगोको मुख्य गिनकर उसपर विवेचन करेंगे।

पुस्तकरूपी शिक्षक।

पुस्तक वे महान् पुरुषोके स्थित भये हुए विचार हैं। कालक्रममें सर्व नष्ट होता है। उस नियमानुसार वड़े वड़े ग्रंथकार कि, जो अपनी हैयातिमें चाहे जैसे वादीका गर्व—दर्प उतारने समर्थ थे वे मरणके शरण

हये; परंतु उन्होंने [illegible] उनके रचित ग्रंथोंमें है। पूर्वके महान पुरुष अपनेको [illegible] पर देकर गये है. उनका सदुपयोग करना ये अपना [illegible] कर्तव्य है। उनके बारेमें एक ग्रंथकार लिखता है कि—

"These are the [illegible] us without rods or ferules, [illegible] without clothes or money [illegible] they are not asleep, if [illegible] interrogate them, they conceal nothing, if [illegible] they never grumble, if you are [illegible] not laugh at you.'

"ग्रंथ ये बडेमें बडे शिक्षक है। वे विना छडी अथवा चाबुक मारे, क्रोध अथवा सख्त शब्दोंका उपयोग किये सिवाय, पैसा अथवा वस्त्र लिये विना, अपनेको उपदेश देते है। यदि तुम उनोंके पास जाओं तो, अन्य शिक्षकोंके मुताबिक वे कभी निद्रित मालुम न पडेंगे। यदि तुम शोध करते उनोंको कुछ पुछोगे तो कोईभी बात तुमसे गुप्त न रखेंगे। यदि तुम भूल करोगे तो वे कदापि बोलेंगे नहीं। यदि तुम ज्ञान रहित होंगे तो तुमको हसकर न निकालेंगे"।

सिसेरो नामक इटालियन विद्वान् कहता है कि "A Room without Books is a body without a soul." अर्थात् विना पुस्तकका कमरा वे विना आत्माके शरीर समान है। वास्ते उसके विचार अनुसार हरेक स्थानमें पुस्तक मिलने चाहिये। फिर अेक ग्रंथकार लिखता है कि "देशके लिये मरनेवालोंके रुधिरकी अपेक्षासे विद्वानोंने पुस्तक लिखनेमें वर्ती हुई स्याही अधिक मूल्यवाली है"॥ सबब कि देशके लिये एक मनुष्य मरे उससे देशको जितना लाभ होता है, उसकी अपेक्षासे सच्चे विद्वान्के हाथसे लिखी हुइ पुस्तकसे अनन्त गुनालाभ होता है। पुस्तकोंकी जितनी प्रशंसा करें, उतनी थोडी है। तो भी एक महाशयके विचार प्रदर्शित करनेकी आवश्यकता है कि:—

"Books make a young man old without wrinkles or gray hairs, privileging him with the experience of age without either the infirmities or inconvenience there of." पुस्तक युवकको कपालमें आंटीआ अथवा विना श्वेत वालके अनुभव वृद्ध वनाते हैं। वृद्धपनेकी वाधा अथवा अशक्ति सिवाय मनुष्यको वृद्धने मिलाया हुआ अनुभव देते हैं।

थोडेमें कहेंतो उत्तम पुस्तकोंका पुस्तकालय सर्व प्रकारके धनसे अधिक मूल्यवान् है, और दुनिया-सृष्टिका कोईभी पदार्थ उसकी तुलनामें नहीं टिक सक्ता। इस लिये कोइभी मनुष्य जो सत्यका, सुखका, ज्ञानका और अन्तमें धर्मका चुस्त भक्त होनेका दावा करता हो तो, उसने पुस्तकोंका भक्त होना यह आवश्यक है।

पुस्तकोंकी पसंदगी।

असलमे ऐसा समय थाकि पुस्तक मिलना मुश्किल होजाताथा। अभी-वर्तमान समयमें मुद्रणकलाकी शोधसे पुस्तक इतने सस्ते और थोकबंध प्रतिदिन प्रगट होने लगे हैं कि, उनोंमेंसें वांचनेके लिये कौनसी पुस्तक पसंद करना मुश्किल होगया है। इस वातका निर्णय करते आर्य शास्त्रकार फरमाते हैं किः-

अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं।
स्वल्पं तथायुर्बहवश्च विघ्नाः॥
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु।
हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥

"शब्दशास्त्रका पार आनेवाला नहीं है। आयुष्य अल्प है, और उसमें विघ्न अनेक हैं। वास्ते जिस प्रकार हंस जलमेंसे क्षीर (दूध) को ग्रहण करता है, उस प्रकार निरुपयोगी ग्रंथोंका त्यागकर सारभूत ग्रहण करना"। जो मनुष्य उत्तम प्रकारका ज्ञान मिलानेकी इच्छा रखते हो, उनोंने जिस पुस्तकोंमें आत्माके नित्य गुणको लाभ-

वलिपलितकायेऽपि कर्तव्यः श्रुतसंग्रहः ।
न तत्र धनिनो यान्ति यत्र यान्ति बहुश्रुताः ॥ ६ ॥
श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम् ॥
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षं च गच्छति ॥ ७ ॥
पदं पदार्धं पादं वा आहरेच्च सुभाषितम् ॥
मूर्खोऽपि प्राज्ञतां याति नदीभिः सागरो यथा ॥ ८ ॥

त्वचामें आंटीयां पडी हो, अथवा धोले वाल आये हो, तो भी ज्ञानका संग्रह करना । जहां ज्ञानी जाता है वहां धनवानको गति नहीं है । श्रवण करनेसे धर्म मालुम होता है । दुर्मतिका त्याग होता है, ज्ञान प्राप्त होता है, और मोक्षभी मिलसक्ता है । भले वचनका (सुभाषितका) एक पद आधा पद अथवा पदका चौथा हिस्साभी ग्रहण करता रहे तो जैसे-समुद्र नदीओंसे विशाल वनता है-वैसे मूर्खभी ज्ञानी वनता है ।

पुस्तक इस प्रकार वांचना कि, जिससे अपनेको कर्त्ताके रहस्यका ज्ञान हो, और साथ उसके अपनी मानासिक शक्तियांभी खीले और अपने वे ज्ञानको अपना-खुद्का वनासकें ।

॥ इति प्रथमखण्डः ॥

महामहोपाध्यायान्नंभट्टविरचितः

तर्कसंग्रहः ।

तत्कृतदीपिकया सहितः ।
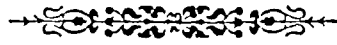
काशीनाथ पाण्डुरङ्ग परब

इत्यनेन संस्कृतः ।

चतुर्थं संस्करणम् ।

स च

शाके १८२१ वत्सरे सनाब्दाः १८९९.

मुम्बय्यां

निर्णयसागरयन्त्रालयाधिपतिना मुद्रितः ।

मूल्यं सार्धो रूप्यकचतुष्पादः ।

अथ

तर्कसंग्रहः ।

दीपिकया सहितः ।

विश्वेश्वरं साम्बमूर्तिं प्रणिपत्य गिरं गुरुम् ।
टीकां शिशुहितां कुर्वे तर्कसंग्रहदीपिकाम् ॥

चिकीर्षितस्य ग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं शिष्टाचारानुमितश्रुतिबोधितकर्तव्यताकमिष्टदेवतानमस्कारलक्षणं मङ्गलं शिष्यशिक्षार्थं निबध्नंश्चिकीर्षितं ग्रन्थादौ प्रतिजानीते—निधायेति ।

निधाय हृदि विश्वेशं विधाय गुरुवन्दनम् ।
बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः ॥

ननु मङ्गलस्य समाप्तिसाधनत्वं नास्ति । मङ्गले कृतेऽपि किरणावल्यादौ निर्विघ्नपरिसमाप्त्यदर्शनात् । मङ्गलाभावेऽपि कादम्बर्यादौ समाप्तिदर्शनात् ॥ अन्वयव्यतिरेकव्यभिचारादिति चेन्न । किरणावल्यादौ विघ्नबाहुल्यात्समाप्त्यभावः । कादम्बर्यादौ तु ग्रन्थाद्बहिरेव मङ्गलं कृतमतो न व्यभिचारः ॥ ननु मङ्गलस्य कर्तव्यत्वे किं प्रमाणमिति चेन्न । शिष्टाचारानुमितश्रुतेरेव प्रमाणत्वात् । "समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेत्" इति श्रुतेः । तथाहि । मङ्गलं वेदबोधितकर्तव्यताकमलौकिकाविगीतशिष्टाचारविषयत्वाद्दर्शादिवत् । भोजनादौ व्यभिचारवारणायालौकिकेति । रात्रिश्राद्धादौ व्यभिचारवारणायाविगीतेति । शिष्टपदं स्पष्टार्थम् । "न कुर्यान्निष्फलं कर्म" इति जलताडनादेरपि निषिद्धत्वादिति ॥ तर्क्यन्ते प्रतिपाद्यन्त इति तर्का द्रव्यादिसप्तपदार्थास्तेषां संग्रहः संक्षेपेण स्वरूपकथनं क्रियत इत्यर्थः ॥ कस्मै प्रयोजनायेत्यत आह—सुखबोधायेति । सुखेनानायासेन बोधः पदार्थज्ञानं तस्मा इत्यर्थः ॥ ननु बहुषु तर्कग्रन्थेषु सत्सु किमर्थमपूर्वग्रन्थः क्रियत इत्यत आह—बालानामिति । तेषामतिविस्तृतत्वाद्बालानां बोधो न भवतीत्यर्थः ग्रहणधारणपटुर्बालः । न तु स्तनंधयः ॥

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्तपदार्थाः ॥ १ ॥

पदार्थान्विभजते—द्रव्येति । पदस्यार्थः पदार्थ इति व्युत्पत्त्याभिधेयत्वं पदार्थसामान्यलक्षणं लभ्यते ॥ ननु विभागादेव सप्तत्वे सिद्धे सप्तग्रहणं व्यर्थमिति चेन्न । न्यूनाधिकसंख्याव्यवच्छेदार्थत्वात् ॥ ननु सप्तव्यतिरिक्तः पदार्थः प्रमितो न वा । नाद्यः प्रमितस्य निषेधायोगात् । नान्त्यः प्रतियोगिप्रमितिं विना निषेधानुपपत्तेरिति चेन्न । पदार्थत्वं द्रव्यादिसप्तान्यतमत्वव्याप्यमिति व्यवच्छेदार्थत्वात् ॥ ननु सप्तान्यतमत्वं सप्तभिन्नभिन्नत्वमिति वक्तव्यम् । एवं च सप्तभिन्नस्याप्रसिद्धत्वात्सप्तान्यतमत्वं कथमिति चेन्न । द्रव्यादि सप्तान्यतमत्वं द्रव्यादिभेदसप्तकाभाववत्त्वमिति विवक्षितत्वात् ॥ एवमग्रेऽपि द्रष्टव्यम् ॥

तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव ॥ २ ॥

द्रव्यं विभजते—तत्रेति । तत्र द्रव्यादिमध्ये द्रव्याणि नवैवेत्यन्वयः । कानि तानीत्यत आह—पृथिवीत्यादीनि ॥ ननु तमसो दशमद्रव्यस्य विद्यमानत्वात्कथं नवैव द्रव्याणि ॥ तथाहि । "तमः खलु चलं नीलं परापरविभागवत् । प्रसिद्धद्रव्यवैधर्म्यान्नवेभ्यो भेत्तुमर्हति" ॥ नीलं तमश्चलतीत्यबाधितप्रतीतिबलान्नीलरूपाधारतया क्रियाधारतया च द्रव्यत्वं तावत्सिद्धम् । तत्र तमसो नाकाशादिपञ्चकेऽन्तर्भावो रूपवत्त्वात् । अत एव न वायौ सदागतिमत्त्वाभावाच्च । नापि तेजसि भास्वररूपाभावादुष्णस्पर्शाभावाच्च । नापि जले शीतस्पर्शाभावान्नीलरूपाश्रयत्वाच्च । नापि पृथिव्या गन्धवत्त्वाभावात्स्पर्शरहितत्वाच्च । तस्मात्तमो दशमद्रव्यमिति चेन्न । तमसस्तेजोभावरूपवत्त्वात् ॥ तथाहि । तमो हि न रूपिद्रव्यमालोकासहकृतचक्षुर्ग्राह्यत्वात् । आलोकाभाववत् । रूपिचाक्षुषप्रमायामालोकस्य कारणत्वात् । तस्मात्प्रौढप्रकाशकतेजःसामान्याभावस्तमः । तत्र नीलं तमश्चलतीति प्रत्ययो भ्रमः । अतो नव द्रव्याणीति सिद्धम् ॥ द्रव्यत्वजातिमत्त्वं गुणवत्त्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम् ॥ लक्ष्यैकदेशावृत्ति-

त्वमव्याप्तिः । यथा गोः कपिलत्वम् ॥ अलक्ष्यवृत्तित्वमतिव्याप्तिः । यथा गोः शृङ्गित्वम् ॥ लक्ष्यमात्रावर्तनमसंभवः । यथा गोरेकशफत्वम् ॥ एतद्दूषणत्रयरहितो धर्मो लक्षणम् । यथा गोः सास्नादिमत्त्वम् । स एवासाधारणधर्म इत्युच्यते ॥ लक्ष्यतावच्छेदकसमनियतत्वमसाधारणत्वम् । व्यावर्तकस्यैव लक्षणत्वे व्यावृत्तावभिधेयत्वादौ चातिव्याप्तिवारणाय तद्भिन्नत्व धर्मविशेपण देयम् । व्यवहारस्यापि लक्षणप्रयोजनत्वे तु न देयम् । व्यावृत्तेरपि व्यवहारसाधनत्वात् ॥ ननु गुणवत्त्वं न द्रव्यसामान्यलक्षणम् ॥ आद्यक्षणे उत्पन्नविनष्टद्रव्ये चाव्याप्तेरिति चेन्न । गुणसमानाधिकरणसत्ताभिन्नजातिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात् ॥ नन्वेवमप्येकं रूपं रसात्पृथगिति व्यवहाराद्रूपादावतिव्याप्तिरिति चेन्न । एकार्थसमवायादेव तादृशव्यवहारोपपत्तौ गुणे गुणानङ्गीकरणात् ॥

रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरुत्वद्रवत्वस्नेहशब्दबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराश्चतुर्विंशतिगुणाः ॥ ३ ॥

गुणं विभजते—रूपेति । द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवान्गुणः । गुणत्वजातिमान्वा ॥ ननु लघुत्वमृदुत्वकठिनत्वादीना विद्यमानत्वात्कथं चतुर्विंशतिगुणा इति चेन्न । लघुत्वस्य गुरुत्वाभावरूपत्वात् । मृदुत्वकठिनत्वयोरवयवसंयोगविशेषरूपत्वात् ॥

उत्क्षेपणापक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणगमनानि पञ्चैव कर्माणि ॥ ४ ॥

कर्म विभजते—उत्क्षेपणेति । सयोगभिन्नत्वे सति संयोगासमवायिकारणं कर्म । कर्मत्वजातिमद्वा । भ्रमणादीनामपि गमनेऽन्तर्भावात् । न पञ्चविधत्वविरोधः ॥

परमपरं चेति द्विविधं सामान्यम् ॥ ५ ॥

सामान्यं विभजते—परेति । परमधिकवृत्ति । अपरं न्यूनवृत्ति । सामान्यादिचतुष्टये जातिर्नास्ति ॥

नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेपास्त्वनन्ता एव ॥ ६ ॥

विशेपं विभजते—नित्येति । पृथिव्यादिचतुष्टयस्य परमाणव आकाशादिपञ्चक च नित्यद्रव्याणि ॥

समवायस्त्वेक एव ॥ ७ ॥

समवायस्य भेदो नास्तीत्याह—समवायेति ॥

अभावश्चतुर्विधः । प्रागभावः प्रध्वंसाभावोऽत्यन्ताभावोऽन्योन्याभावश्चेति ॥ ८ ॥

अभावं विभजते—अभावेति ॥

तत्र गन्धवती पृथिवी । सा द्विविधा नित्यानित्या चेति । नित्या परमाणुरूपा । अनित्या कार्यरूपा । सा पुनस्त्रिविधा रीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरमस्मदादीनाम् । इन्द्रियं गन्धग्रा घ्राणं नासाग्रवर्ति । विषयो मृत्पाषाणादिः ॥ ९ ॥

तत्रोद्देशादिक्रमानुसारात्पृथिव्या लक्षणमाह—तत्रेति ॥ नाम्ना पद संकीर्तनमुद्देशः । उद्देशक्रमे च सर्वत्रेच्छैव नियामिका ॥ ननु सुरभ्य रभ्यवयवारब्धे द्रव्ये परस्परविरोधेन गन्धानुत्पादादव्याप्तिः । न च गन्धप्रतीत्यनुपपत्तिरिति वाच्यम् । अवयवगन्धस्यैव तत्र प्रतीतिसं चित्रगन्धानङ्गीकारात् ॥ किं चोत्पन्नविनष्टघटादावव्याप्तिरिति चे गन्धसमानाधिकरणद्रव्यत्वापरजातिमत्त्वस्यैव विवक्षितत्वात् ॥ ननु दावपि गन्धप्रतीतेरतिव्याप्तिरिति चेन्न । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां पृथिवी स्यैव तत्र संयुक्तसमवायेन भानाङ्गीकारात् ॥ ननु तथाहि कालस्य स धारतया सर्वेषां लक्षणानां कालेऽतिव्याप्तिरिति चेन्न । सर्वाधारताप्रयो कसंबन्धभिन्नसंबन्धेन लक्षणत्वस्याभिमतत्वात् ॥ पृथिवीं विभजते—सा द्विविधेति । नित्यत्वं ध्वंसाप्रतियोगित्वम् । ध्वंसप्रतियोगित्वमनित्यत्वम् ॥ प्रकारान्तरेण विभजते—सा पुनरिति । आत्मनो भोगायतनं शरीरम् । यदवच्छिन्नात्मनि भोगो जायते तद्भोगायतनम् । तदेव शरीरम् । सुखदुःखसाक्षात्कारो भोगः । शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयत्वमिन्द्रियत्वम् । शरीरेन्द्रियभिन्नो विषयः । एवं च गन्धवच्छरीरं पार्थिवशरीरम् । गन्धवदिन्द्रियं पार्थिवेन्द्रियम् । गन्धवान्विषयः पार्थिवविषय इति तत्तल्लक्षणं बोध्यम् ॥ पार्थिवशरीरं दर्शयति—शरीरमिति ॥ इन्द्रियं दर्शयति—इन्द्रियमिति ॥ गन्धग्राहकमिति प्रयोजनकथनम् । घ्राणमिति संज्ञा । नासाग्रेत्याश्रयोक्तिः । एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम् ॥ पार्थिवविषयं दर्शयति—विषयेति ॥

शीतस्पर्शवत्य आपः । ताश्च द्विविधा नित्या अनित्याश्चेति ।

नित्याः परमाणुरूपाः । अनित्याः कार्यरूपाः । ताः पुनस्त्रिविधाः शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरं वरुणलोके । इन्द्रियं रसग्राहकं रसनं जिह्वाग्रवर्ति । विषयः सरित्समुद्रादिः ॥ १० ॥

अपां लक्षणमाह—शीतेति । उत्पन्नविनष्टजलेऽव्याप्तिवारणाय शीतस्पर्शसमानाधिकरणद्रव्यत्वापरजातिमत्त्वे तात्पर्यम् ॥ शीतं शिलातलमित्यादौ जलसंबन्धादेव शीतस्पर्शभानमिति नातिव्याप्तिः । अन्यत्सर्वं पूर्वरीत्या व्याख्येयम् ॥

उष्णस्पर्शवत्तेजः । तद्द्विविधं नित्यमनित्यं च । नित्यं परमाणुरूपम् । अनित्यं कार्यरूपम् । पुनस्त्रिविधं शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरमादित्यलोके प्रसिद्धम् । इन्द्रियं रूपग्राहकं चक्षुः कृष्णताराग्रवर्ति । विषयश्चतुर्विधः । भौमदिव्यौदर्याकरजभेदात् । भौमं वन्ह्यादिकम् । अबिन्धनं दिव्यं विद्युदादि । भुक्तस्य परिणामहेतुरौदर्यम् । आकरजं सुवर्णादि ॥ ११ ॥

तेजसो लक्षणमाह—उष्णेति । उष्णं जलमिति प्रतीतेस्तेजःसवन्धानुविधायित्वान्नातिव्याप्तिः ॥ विषयं विभजते—भौमेति । ननु सुवर्णं पार्थिवं पीतत्वाद्गुरुत्वाद्धरिद्रादिवदिति चेन्न ॥ अत्यन्तानलसंयोगे सति घृतादौ द्रवत्वनाशदर्शनेन जलमध्यस्थघृते द्रवत्वनाशादर्शनेनासति प्रतिवन्धके पार्थिवद्रव्यद्रवत्वनाशाग्निसंयोगयोः कार्यकारणभावावधारणात्सुवर्णस्यात्यन्तानलसयोगे सत्यनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वेन घृतवत्पार्थिवत्वानुपपत्तेः । तस्मात्पीतद्रव्यद्रवत्वनाशप्रतिवन्धकतया द्रवद्रव्यान्तरसिद्धौ नैमित्तिकद्रवत्वाधिकरणतया जलत्वानुपपत्तेः रूपवत्तया वाय्वादिष्वनन्तर्भावात्तैजसत्वसिद्धिः । तत्रोष्णस्पर्शभास्वररूपयोरुपष्टम्भकपार्थिवरूपस्पर्शाभ्यां प्रतिवन्धादनुपलब्धिः । तस्मात्सुवर्णं तैजसमिति सिद्धम् ॥

रूपरहितस्पर्शवान्वायुः । स द्विविधो नित्योऽनित्यश्च । नित्यः परमाणुरूपः । अनित्यः कार्यरूपः । पुनस्त्रिविधः शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरं वायुलोके । इन्द्रियं स्पर्शग्राहकं त्वक्सर्वशरीरवर्ति । विषयो वृक्षादिकम्पनहेतुः ॥ १२ ॥

वायुं लक्षयति—रूपेति । आकाशादावतिव्याप्तिवारणाय स्पर्शवानिति । पृथिव्यादावतिव्याप्तिवारणाय रूपरहित इति ॥

शरीरान्तःसंचारी वायुः प्राणः । स चैकोऽप्युपाधिभेदात्प्राणापानादिसंज्ञां लभते ॥ १३ ॥

ननु प्राणस्य कुत्रान्तर्भाव इत्यत आह— शरीरेति । एक एव प्राणः स्थानभेदात्प्राणापानादिशब्दैर्व्यवह्रियत इत्यर्थः । स्पर्शानुमेयो वायुः । तथाहि । योऽयं वायौ वाति सत्यनुष्णाशीतस्पर्शो भासते स स्पर्शः । क्वचिदाश्रितो गुणत्वाद्रूपवत् । न चास्य पृथिव्याश्रयः । उद्भूतस्पर्शवत्पार्थिवस्योद्भूतरूपवत्त्वनियमात् । न जलतेजस्यनुष्णाशीतत्वात् । न विभुचतुष्टयं सर्वत्रोपलब्धिप्रसङ्गात् । न मनः परमाणुस्पर्शस्यातीन्द्रियत्वात् । तस्माद्यः प्रतीयमानस्पर्शाश्रयः स वायुः ॥ ननु वायुः प्रत्यक्षः । प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वाद्घटवदिति चेन्न । उद्भूतरूपवत्त्वस्योपाधित्वात् । यत्र द्रव्यत्वे सति बहिरिन्द्रियप्रत्यक्षत्वं तत्रोद्भूतरूपवत्त्वमिति घटादौ साध्यव्यापकत्वम् । पक्षे साधनाव्यापकत्वम् । न चैवं तप्तवारिस्थतेजसोऽप्यप्रत्यक्षत्वापत्तिरिष्टत्वात् । तस्माद्रूपरहितत्वाद्वायुरप्रत्यक्षः ॥ इदानीं कार्यरूपपृथिव्यादिचतुष्टयस्योत्पत्तिविनाशक्रमः कथ्यते । ईश्वरस्य चिकीर्षावशात्परमाणुषु क्रिया जायते । ततः परमाणुद्वयसंयोगे सति द्व्यणुकमुत्पद्यते । त्रिभिर्द्व्यणुकैस्त्र्यणुकम् । एवं चतुरणुकादिक्रमेण महती पृथिवी महत्य आपो महत्तेजो महान्वायुरुत्पद्यते । एवमुत्पन्नस्य कार्यद्रव्यस्य संजिहीर्षावशात्क्रियया परमाणुद्वयविभागे सति द्व्यणुकनाशः । समवायिकारणनाशात्त्र्यणुकनाशः । ततश्चतुरणुकस्येत्येवं पृथिव्यादिनाशः । असमवायिकारणनाशाद्द्व्यणुकनाशः । समवायिकारणनाशात्त्र्यणुकनाश इति सम्प्रदायः । सर्वत्रासमवायिकारणनाशात्कार्यद्रव्यनाश इति नवीनाः ॥ किं पुनः परमाणुसद्भावे प्रमाणम् । उच्यते । जालसूर्यमरीचिस्थं सूक्ष्मतमं यद्रज उपलभ्यते तत्सावयवम् । चाक्षुषद्रव्यत्वात्पटवत् । त्र्यणुकावयवोऽपि सावयवो महदारम्भकत्वात्तन्तुवत् । यो द्व्यणुकावयवः स परमाणुः । स च नित्यः । कार्यत्वेऽनवस्थाप्रसङ्गात् । तथा च मेरुसर्षपयोरपि समानपरिमाणत्वापत्तिः । सृष्टिप्रलयसद्भावे किं मानम् । "धाता यथा पूर्वमकल्पयत्" इत्यादिश्रुतिः प्रमाणम् । सर्वकार्यद्रव्यध्वंसोऽवान्तरप्रलयः । सर्वभावकार्यध्वंसो महाप्रलय इति विवेकात् ॥

शब्दगुणमाकाशम् । तच्चैकं विभु नित्यं च ॥ १४ ॥

आकाशं लक्षयति—शब्देति ॥ नन्वाकाशमपि किं पृथिव्यादिवन्नाना । नेत्याह—तच्चैकमिति । भेदे प्रमाणाभावादित्यर्थः ॥ एकत्वादेव सर्वत्रोपलब्धेर्विभुत्वमङ्गीकर्तव्यमित्याह—विभ्विति । सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वं विभुत्वम् । मूर्तत्वं परिच्छिन्नपरिमाणवत्त्वं क्रियावत्त्वं वा ॥ विभुत्वादेवात्मवन्नित्यमित्याह—नित्यं चेति ॥

अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः । स चैको विभुर्नित्यश्च ॥१५॥

कालं लक्षयति—अतीतेति । सर्वाधारः कालः सर्वकार्यनिमित्तकारणं च ॥

प्राच्यादिव्यवहारहेतुर्दिक् । सा चैका नित्या विभ्वी च॥१६॥

दिशो लक्षणमाह—प्राचीति । दिगपि कार्यमात्रे निमित्तकारणम् ॥

ज्ञानाधिकरणमात्मा । स द्विविधो जीवात्मा परमात्मा च । तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मैक एक सुखदुःखादिरहितः । जीवात्मा प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च ॥ १७ ॥

आत्मनो लक्षणमाह—ज्ञानेति ॥ आत्मानं विभजते—स विविध इति ॥ परमात्मनो लक्षणमाह—तत्रेति । नित्यज्ञानाधिकरणत्वमीश्वरत्वम् ॥ नन्वीश्वरस्य सद्भावे किं प्रमाणम् । न तावत्प्रत्यक्षम् । तद्धि बाह्यमान्तरमिन्द्रियं वा । नाद्योऽरूपिद्रव्यत्वात् । नान्त्य आत्मसुखादिव्यतिरिक्तत्वात् । नाप्यनुमानं लिङ्गाभावात् । नाप्यागमस्तथाविधागमाभावादिति चेन्न । अङ्कुरादिकं कर्तृजन्यं कार्यत्वाद्घटवदित्यनुमानस्य प्रमाणत्वात् । उपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्त्वं कर्तृत्वम् । उपादान समवायिकारणम् । सकलपरमाण्वादिसूक्ष्मदर्शित्वात्सर्वज्ञत्वम् । "यः सर्वज्ञः स सर्ववित्" इत्याद्यागमोऽपि तत्र प्रमाणम् ॥ जीवस्य लक्षणमाह—जीव इति । सुखादिकं जीवलक्षणम् ॥ ननु "मनुष्योऽहं ब्राह्मणोऽहम्" इत्यादौ सर्वत्राहप्रत्यये शरीरस्यैव विषयत्वाच्छरीरमेवात्मेति चेन्न । शरीरस्य करपादादिनाशे सति शरीरनाशादात्मनोऽपि नाशप्रसङ्गात् । नापीन्द्रियाणामात्मत्वम् । तथात्वे "योऽहं घटमद्राक्ष सोऽहमिदानीं त्वचा स्पृशामि" इत्यनुसंधानाभावप्रसङ्गात् । अन्यानुभूतेऽन्यस्यानुसंधानायोगात् । तस्मा-

देहेन्द्रियव्यतिरिक्तो जीवः । सुखदुःखवैचित्र्यात्प्रतिशरीरं भिन्नः । स च न परमाणुः । शरीरव्यापिसुखाद्यनुपलब्धिप्रसङ्गात् । न मध्यपरिमाणः । तथा सत्यनित्यत्वप्रसङ्गेन कृतनाशाकृताभ्यागमप्रसङ्गात् । तस्मान्नित्यो विभुर्जीवः ॥

सुखदुःखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः । तच्च प्रत्यात्मनियतत्वादनन्तं परमाणुरूपं नित्यं च ॥ १८ ॥

मनसो लक्षणमाह—सुखेति । स्पर्शरहितत्वे सति क्रियावत्त्वं मनसो लक्षणम् ॥ मनो विभजते—तच्चेति । एकैकस्यात्मन एकैकं मन इत्यात्मनामनेकत्वान्मनसोऽप्यनेकत्वमित्यर्थः ॥ परमाणुरूपमिति । मध्यमपरिमाणत्वेऽनित्यत्वप्रसङ्गादित्यर्थः ॥ ननु मनो विभुस्पर्शरहितत्वादाकाशवदिति चेन्न । मनसो विभुत्वे आत्ममनःसंयोगस्यासमवायिकारणस्याभावाज्ज्ञानानुत्पत्तिप्रसङ्गात् । न च विभुद्वयसंयोगोऽस्तीति वाच्यम् । तत्संयोगस्य नित्यत्वेन सुषुप्त्यभावप्रसङ्गात् । पुरीतद्व्यतिरिक्तप्रदेशे आत्ममनःसंयोगस्य सर्वदा विद्यमानत्वात् । अणुत्वे तु यदा मनः पुरीततिं प्रविशति तदा सुषुप्तिः । यदा निःसरति तदा ज्ञानोत्पत्तिरित्यणुत्वसिद्धिः ॥

चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम् । तच्च शुक्लनीलपीतरक्तहरितकपिशचित्रभेदात्सप्तविधं पृथिवीजलतेजोवृत्ति । तत्र पृथिव्यां सप्तविधम् । अभास्वरं शुक्लं जले । भास्वरं शुक्लं च तेजसि ॥ १९ ॥

रूपं लक्षयति—चक्षुरिति । संख्यादावतिव्याप्तिवारणाय मात्रपदम् । रूपत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गुणपदम् । प्रभाभित्तिसंयोगेऽतिव्याप्तिवारणाय चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमत्त्वं वाच्यम् ॥ नन्वव्याप्यवृत्तिनीलादिसमुदाय एव चित्ररूपमिति चेन्न । रूपस्य व्याप्यवृत्तित्वनियमात् ॥ ननु चित्रपटेऽवयवरूपस्य प्रतीतिरस्त्विति चेन्न । रूपरहितत्वेन पटस्याप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात् । न च रूपवत्समवेतत्वं प्रत्यक्षप्रयोजकं गौरवात् । तस्मात्पटस्य प्रत्यक्षत्वानुपपत्त्या चित्ररूपसिद्धिः ॥ रूपस्याश्रयमाह—पृथिवीति ॥ आश्रयं विभज्य दर्शयति—तत्रेति ॥

रसनग्राह्यो गुणो रसः । स च मधुराम्ललवणकटुकषायतिक्तभेदात्षड्विधः पृथिवीजलवृत्तिः । पृथिव्यां षड्विधः । जले मधुर एव ॥ २० ॥

रस लक्षयति—रसनेति । रसत्वेऽतिव्याप्तिपरिहाराय गुणपदम् ॥ रसस्याश्रयमाह—पृथिवीति ॥ आश्रयं विभज्य दर्शयति—पृथिव्यामिति ॥

घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः । स च द्विविधः सुरभिरसुरभिश्च पृथिवीमात्रवृत्तिः ॥ २१ ॥

गन्ध लक्षयति—घ्राणेति । गन्धत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गुणपदम् ॥

त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणः स्पर्शः । स च त्रिविधः शीतोष्णानुष्णाशीतभेदात्पृथिव्यप्तेजोवायुवृत्तिः । तत्र शीतो जले । उष्णस्तेजसि । अनुष्णाशीतः पृथिवीवाय्वोः ॥ २२ ॥

स्पर्शं लक्षयति—त्वगिति । स्पर्शत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गुणपदम् । संयोगादावतिव्याप्तिवारणाय मात्रपदम् ॥

रूपादिचतुष्टयं पृथिव्यां पाकजमनित्यं च । अन्यत्रापाकजं नित्यमनित्यं च । नित्यगतं नित्यम् । अनित्यगतमनित्यम् ॥ २३ ॥

रूपादीति । पाकस्तेजःसयोगः तेन पूर्वरूपं नश्यति । रूपान्तरमुत्पद्यत इत्यर्थः ॥ अत्र परमाणुष्वेव पाकः । न द्व्यणुकादौ । ततश्चामपाकनिक्षिप्ते घटे परमाणुषु रूपान्तरोत्पत्तौ श्यामघटनाशे पुनर्द्व्यणुकादिक्रमेण रक्तघटोत्पत्तिः । तत्र परमाणवः समवायिकारणम् । तेजःसंयोगोऽसमवायिकारणम् । अदृष्टादिकं निमित्तकारणम् । द्व्यणुकादिरूपे कारणरूपमसमवायिकारणमिति पीलुपाकवादिनो वैशेषिका. । पूर्वघटस्य नाशं विनैवावयविन्यवयवेषु परमाणुपर्यन्तेषु युगपद्रूपान्तरोत्पत्तिरिति पिठरपाकवादिनो नैयायिकाः । अत एव पार्थिवपरमाणुरूपादिकमनित्यमित्यर्थः ॥ अन्यत्रेति । जलादावित्यर्थः ॥ नित्यगतमिति । परमाणुगतमित्यर्थः ॥ अनित्यगतमिति । द्व्यणुकादिनिष्ठमित्यर्थः ॥ रूपादिचतुष्टयमुद्भूतं प्रत्यक्षम् । अनुद्भूतमप्रत्यक्षम् । उद्भूतत्व प्रत्यक्षप्रयोजको धर्म । तदभावोऽनुद्भूतत्वम् ॥

एकत्वादिव्यवहारासाधारणहेतुः संख्या । सा नवद्रव्यवृत्तिः। एकत्वादिपरार्धपर्यन्ता । एकत्वं नित्यमनित्यं च । नित्यगतं नित्यम् । अनित्यगतमनित्यम् । द्वित्वादिकं तु सर्वत्रानित्यमेव ॥ २४ ॥

संख्यां लक्षयति—एकत्वेति ॥

मानव्यवहारासाधारणं कारणं परिमाणं नवद्रव्यवृत्ति । तच्च चतुर्विधम् । अणु महद्दीर्घं ह्रस्वं चेति ॥ २५ ॥

परिमाणं लक्षयति—मानेति ॥ परिमाणं विभजते—तच्चेति । भावप्रधानो निर्देशः । अणुत्व महत्त्वं दीर्घत्वं ह्रस्वत्वं चेत्यर्थः ॥

पृथग्व्यवहारासाधारणं कारणं पृथक्त्वं सर्वद्रव्यवृत्ति ॥ २६ ॥

पृथक्त्वं लक्षयति—पृथगिति । इदमस्मात्पृथगिति व्यवहारकारणमित्यर्थः ॥

संयुक्तव्यवहारासाधारणो हेतुः संयोगः सर्वद्रव्यवृत्तिः ॥ २७ ॥

संयोगं लक्षयति—सयुक्तेति । इमौ संयुक्ताविति व्यवहारहेतुरित्यर्थः । सख्यादिलक्षणेपु सर्वत्र दिक्कालादावतिव्याप्तिवारणायासाधारणेति ॥ संयोगो द्विविधा । कर्मजः संयोगजश्च । आद्यो हस्तक्रियया पुस्तकसंयोगः । द्वितीयो हस्तपुस्तकसंयोगात्कायपुस्तकसंयोगः । स चाव्याप्यवृत्तिः संयोगः । स्वात्यन्ताभावसमानाधिकरणत्वमव्याप्यवृत्तित्वम् ॥

संयोगनाशको गुणो विभागः सर्वद्रव्यवृत्तिः ॥ २८ ॥

विभागं लक्षयति—संयोगेति । कालादावतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय सयोगनाशक इति ॥ विभागोऽपि द्विविधः कर्मजो विभागजश्च । आद्यो हस्तक्रियया पुस्तकविभागः । द्वितीयो हस्तपुस्तकविभागात्कायपुस्तकविभागः ॥

परापरव्यवहारासाधारणकारणे परत्वापरत्वे पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिनी । ते द्विविधे दिक्कृते कालकृते च । दूरस्थे दिक्कृतं परत्वम् । समीपस्थे दिक्कृतमपरत्वम् । ज्येष्ठे कालकृतं परत्वम् । कनिष्ठे कालकृतमपरत्वम् ॥ २९ ॥

परत्वापरत्वयोर्लक्षणमाह—परेति । परव्यवहारकारणं परत्वम् । अपरव्यवहारकारणमपरत्वमित्यर्थः ॥ परापरत्वे विभजते—ते द्विविधे इति ॥ दिक्कृतयोरुदाहरणमाह—दूरस्थ इति ॥ कालकृत उदाहरति—ज्येष्ठ इति॥

आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वं पृथिवीजलवृत्ति ॥ ३० ॥

गुरुत्व लक्षयति—आद्येति । द्वितीयादिपतनस्य वेगासमवायिकारणत्वाद्वेगेऽतिव्याप्तिवारणायाद्येति ॥

आद्यस्यन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वं पृथिव्यप्तेजोवृत्ति । तद्द्विविधं सांसिद्धिकं नैमित्तिकं च । सांसिद्धिकं जले । नैमित्तिकं पृथिवीतेजसोः । पृथिव्यां घृतादावग्निसंयोगजन्यं द्रवत्वम् । तेजसि सुवर्णादौ ॥ ३१ ॥

द्रवत्व लक्षयति—आद्यस्यन्दनेति । स्यन्दनं स्रवणम् । तेजःसयोगजन्यं नैमित्तिकद्रवत्वम् । तद्भिन्नं सासिद्धिकद्रवत्वम् ॥ पृथिव्यां नैमित्तिकद्रवत्वमुदाहरति—घृतादाविति ॥ तेजसि तदाह—सुवर्णादाविति ॥

चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहो जलमात्रवृत्तिः ॥ ३२ ॥

स्नेहं लक्षयति—चूर्णेति । कालादावतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । गुणादावतिव्याप्तिवारणाय पिण्डीभावेति ॥

श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्द आकाशमात्रवृत्तिः । स द्विविधो ध्वन्यात्मको वर्णात्मकश्चेति । ध्वन्यात्मको भेर्यादौ । वर्णात्मकः संस्कृतभाषादिरूपः ॥ ३३ ॥

शब्दं लक्षयति—श्रोत्रेति । शब्दत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्तिवारणाय श्रोत्रेति ॥ शब्दस्त्रिविधः संयोगजो विभागजः शब्दजश्चेति । तत्राद्यो भेरीदण्डसयोगजन्यः । द्वितीयो वंश उत्पाट्यमाने दलद्वयविभागजन्यश्चटचटाशब्दः । भेर्याकाशमारभ्य श्रोत्रपर्यन्त द्वितीयादिशब्दाः शब्दजाः ॥

सर्वव्यवहारहेतुर्ज्ञानं बुद्धिः । सा द्विविधा स्मृतिरनुभवश्च । संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः । तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः । स द्विविधो यथार्थोऽयथार्थश्च । तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः। यथा रजत इदं रजतमिति ज्ञानम् । सैव प्रमेत्युच्यते । तदभा-

ववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः । यथा शुक्ताविदं रजतमिति ज्ञानम् । सैवाप्रमेत्युच्यते ॥ ३४ ॥

बुद्धेर्लक्षणमाह—सर्वेति । जानामीत्यनुव्यवसायगम्यज्ञानत्वमेव लक्षणमित्यर्थः ॥ बुद्धिं विभजते—सेति ॥ स्मृतेर्लक्षणमाह—संस्कारेति । भावनाख्यः संस्कारः । संस्कारध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय ज्ञानमिति । घटादिप्रत्यक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय सस्कारजन्यमिति ॥ अनुभवं लक्षयति—तद्भिन्नमिति । स्मृतिभिन्नं ज्ञानमनुभव इत्यर्थः ॥ अनुभवं विभजते—स द्विविध इति ॥ यथार्थानुभवस्य लक्षणमाह—तद्वतीति ॥ ननु घटे घटत्वमिति प्रमाणमव्याप्तिः । घटत्वे घटाभावादिति चेन्न । यत्र यत्संबन्धोऽस्ति तत्र तत्संबन्धानुभव इत्यर्थात् । घटत्वेऽपि घटसंबन्धोऽस्तीति नाव्याप्तिः ॥ सेति । यथार्थानुभव एव शास्त्रे प्रमेत्युच्यत इत्यर्थः ॥ अयथार्थं लक्षयति—तदभाववतीति ॥ नन्विदं संयोगीति प्रमायामतिव्याप्तिरिति चेन्न । यदवच्छेदेन यत्संबन्धाभावस्तदवच्छेदेन तत्संबन्धज्ञानस्य विवक्षितत्वात् । संयोगाभावावच्छेदेन संयोगज्ञानस्य भ्रमत्वात् । संयोगावच्छेदेन संयोगज्ञानस्य प्रमात्वान्नातिव्याप्तिः ॥

यथार्थानुभवश्चतुर्विधः प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाब्दभेदात् । तत्करणमपि चतुर्विधं प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात् ॥ ३५ ॥

यथार्थानुभवं विभजते—यथार्थेति ॥ प्रसङ्गात्प्रमाकरणं विभजते—तत्करणमिति । प्रमाकरणमित्यर्थः । प्रमाकरणं प्रमाणमिति प्रमाणसामान्यलक्षणम् ॥

व्यापारवदसाधारणं कारणं करणम् । अनन्यथासिद्धकार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम् । कार्यं प्रागभावप्रतियोगि ॥ ३६ ॥

करणलक्षणमाह—असाधारणेति । साधारणकारणे दिक्कालादावतिव्याप्तिवारणायासाधारणेति ॥ कारणलक्षणमाह—कार्येति । पूर्ववृत्ति कारणमित्युक्ते रासभादावतिव्याप्तिः स्यादतो नियतेति । तावन्मात्रे कृते कार्येऽतिव्याप्तिः । अतः पूर्ववृत्तीति ॥ ननु तन्तुरूपमपि पटं प्रति कारणं स्यादिति चेन्न । अनन्यथासिद्धत्वे सतीति विशेषणात् । अनन्यथासिद्धत्वमन्यथासिद्धिविरहः । अन्यथासिद्धिश्च त्रिविधा । येन सहैव यस्य यं

प्रति पूर्ववृत्तित्वमवगम्यते तं प्रति तदन्यथासिद्धम् ॥ यथा तन्तुना तन्तुरूपम् । तन्तुत्वं च पटं प्रति । अन्य प्रति पूर्ववृत्तित्वे ज्ञात एव यस्य यं प्रति पूर्ववृत्तित्वमवगम्यते तं प्रति तदन्यथासिद्धम् । यथा शब्दं प्रति पूर्ववृत्तित्वे ज्ञात एव घटं प्रत्याकाशस्य । अन्यत्र क्लृप्तनियतपूर्ववर्तिनैव कार्यसंभवे तत्सहभूतमन्यथासिद्धम् । यथा पाकजस्थले गन्धं प्रति रूपप्रागभावस्य । एवं चान्यथासिद्धनियतपूर्ववृत्तित्वं कारणत्वम् ॥ कार्यलक्षणमाह—कार्येति ॥

कारणं त्रिविधं समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदात् । यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम् । यथा तन्तवः पटस्य । पटश्च स्वगतरूपादेः । कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति कारणमसमवायिकारणम् । यथा तन्तुसंयोगः पटस्य । तन्तुरूपं पटरूपस्य । तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम् । यथा तुरीवेमादिकं पटस्य । तदेतत्त्रिविधकारणमध्ये यदसाधारणं कारणं तत्करणम् ॥ ३७ ॥

कारणं विभजते—कारणमिति ॥ समवायिकारणलक्षणमाह—यत्समवेत । यस्मिन्समवेतमित्यर्थः ॥ असमवायिकारणं लक्षयति—कार्येणेति कार्येणेत्येतदुदाहरति—तन्तुसंयोग इति । कार्येण पटेनैकस्मिस्तन्तौ समवेतत्वात्तन्तुसंयोगः पटस्यासमवायिकारणमित्यर्थः ॥ कारणेन सहेत्येतदुदाहरति—तन्तुरूपमिति । कारणेन पटेन सहैकस्मिस्तन्तौ समवेतत्वात्तन्तुरूपं पटरूपस्यासमवायिकारणमित्यर्थः ॥ निमित्तकारणं लक्षयति—तदुभयेति । समवाय्यसमवायिभिन्न कारण निमित्तकारणमित्यर्थः ॥ करणलक्षणमुपसंहरति—तदेतदिति ॥

तत्र प्रत्यक्षज्ञानकरणं प्रत्यक्षम् । इन्द्रियार्थसंनिकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् । तद्द्विविधं निर्विकल्पकं सविकल्पकं च । तत्र निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम् । यथेदं किंचित् । सप्रकारकं ज्ञानं सविकल्पकम् । यथा डित्थोऽयं ब्राह्मणोऽयं श्यामोऽयमिति ॥ ३८ ॥

प्रत्यक्षलक्षणमाह—तत्रेति । प्रमाणचतुष्टयमध्य इत्यर्थः ॥ प्रत्यक्षज्ञानस्य लक्षणमाह—इन्द्रियेति । इन्द्रिय चक्षुरादिकम् । अर्थो घटादिः ।

तयोः संनिकर्षः संयोगादिः । तज्जन्यं ज्ञानमित्यर्थः ॥ निर्विकल्पकस्य लक्षणमाह—निष्प्रकारकमिति । विशेषणविशेष्यसंबन्धानवगाहि ज्ञानमित्यर्थः ॥ ननु निर्विकल्पके किं प्रमाणमिति चेन्न । गौरिति विशिष्टज्ञान विशेषणज्ञानजन्यं विशिष्टज्ञानत्वात् । दण्डीति ज्ञानवदित्यनुमानस्य प्रमाणत्वात् । विशेषणज्ञानस्य सविकल्पकत्वेऽनवस्थाप्रसङ्गान्निर्विकल्पसिद्धिः ॥ सविकल्पकं लक्षयति—सप्रकारकमिति । नामजात्यादिविशेषणविशेष्यसंबन्धावगाहि ज्ञानमित्यर्थः ॥ सविकल्पकमुदाहरति—यथेति ॥

प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसंनिकर्षः षड्विधः । संयोग-संयुक्तसमवाय-संयुक्तसमवेतसमवाय-समवाय-समवेतसमवाय-विशेषणविशेष्यभावा इति । चक्षुषा घटप्रत्यक्षजनने संयोगः संनिकर्षः । घटरूपप्रत्यक्षजनने संयुक्तसमवायः संनिकर्षः । चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपस्य समवायात् । रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसमवायः संनिकर्षः । चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपं समवेतं तत्र रूपत्वस्य समवायात् । श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः संनिकर्षः । कर्णविवरवृत्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वाच्छब्दस्याकाशगुणत्वाद्गुणगुणिनोश्च समवायात् । शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवायः संनिकर्षः । श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात् । अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावः संनिकर्षः । घटाभाववद्भूतलमित्यत्र चक्षुःसंयुक्ते भूतले घटाभावस्य विशेषणत्वात् । एवं संनिकर्षषट्कजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् । तत्करणमिन्द्रियम् । तस्मादिन्द्रियं प्रत्यक्षप्रमाणमिति सिद्धम् ॥ ३९ ॥

इन्द्रियार्थसंनिकर्षं विभजते—प्रत्यक्षेति ॥ संयोगसंनिकर्षमुदाहरति—चक्षुषेति । द्रव्यप्रत्यक्षे सर्वत्र संयोगसंनिकर्ष इत्यर्थः । आत्मा मनसा संयुज्यते । मन इन्द्रियेण । इन्द्रियमर्थेन । ततः प्रत्यक्षज्ञानमुत्पद्यते ॥ संयुक्तसमवायमुदाहरति—घटरूपेति ॥ तत्र युक्तिमाह—चक्षुःसंयुक्त इति ॥ सयुक्तसमवेतसमवायमुदाहरति—रूपत्वेति ॥ समवायमुदाहरति—श्रोत्रेणेति ॥ तदुपपादयति—कर्णेति ॥ ननु दूरस्थशब्दस्य कथं श्रोत्रसंबन्ध इति चेन्न । वीचितरङ्गन्यायेन कदम्बमुकुलन्यायेन वा

शब्दाच्छब्दान्तरोत्पत्तिक्रमेण श्रोत्रदेशे जातस्य श्रोत्रसंबन्धात्प्रत्यक्षत्वसंभवात् ॥ समवेतसमवायमुदाहरति—शब्दत्वेति ॥ विशेषणविशेष्यभावमुदाहरति—अभावेति । अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावः सन्निकर्षः ॥ तदुपपादयति—घटाभाववदिति । भूतलं विशेष्यं घटाभावो विशेषणम् । भूतले घटो नास्तीत्यत्र घटाभावस्य विशेष्यत्वं द्रष्टव्यम् । एतेनानुपलब्धेः प्रमाणान्तरत्वं निरस्तम् ॥ यद्यत्र घटोऽभविष्यत्तर्हि भूतलमिवाद्रक्ष्यत् । दर्शनाभावान्नास्तीति तर्कितप्रतियोगिसत्त्वविरोध्यनुपलब्धिसहकृतेन्द्रियेणैवाभावज्ञानोपपत्तावनुपलब्धेः प्रमाणान्तरत्वासंभवात् । अधिकरणज्ञानार्थमपेक्षणीयेन्द्रियस्यैव करणत्वोपपत्तावनुपलब्धेः करणत्वस्यायुक्तत्वात् ॥ विशेषणविशेष्यभावो विशेषणविशेष्यस्वरूपमेव नातिरिक्तः सबन्धः ॥ प्रत्यक्षज्ञानमुपसंहरस्तस्य करणमाह—एवमिति । असाधारणकारणत्वादिन्द्रिय प्रत्यक्षज्ञानकरणमित्यर्थः ॥ प्रत्यक्षमुपसंहरति—तस्मादिति ॥

अनुमितिकरणमनुमानम् । परामर्शजन्यं ज्ञानमनुमितिः । व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मता ज्ञानं परामर्शः । यथा वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत इति ज्ञानं परामर्शः । तज्जन्यं पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानमनुमितिः । यत्र यत्र धूमस्तत्राग्निरिति साहचर्यनियमो व्याप्तिः । व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता ॥ ४० ॥

अनुमानं लक्षयति—अनुमितिकरणमिति ॥ अनुमितेर्लक्षणमाह—परामर्शेति ॥ ननु संशयोत्तरप्रत्यक्षेऽतिव्याप्तिः । स्थाणुपुरुषसंशयानन्तर पुरुषत्वव्याप्यकरादिमानयमिति परामर्शे सति पुरुष एवेति प्रत्यक्षजननात् । न च तत्रानुमितिरेवेति वाच्यम् । "पुरुष साक्षात्करोमि" इत्यनुव्यवसायविरोधादिति चेन्न । पक्षतासहकृतपरामर्शजन्यत्वस्य विवक्षितत्वात् । सिषाधयिषाविरहसहकृतसिद्ध्यभावः पक्षता । साध्यसिद्धिरनुमितिप्रतिबन्धिका । सिद्धिसत्त्वेऽप्यनुमिनोमीतीच्छायामनुमितिदर्शनात् । सिषाधयिषोत्तेजिका । ततश्चोत्तेजिकाभावविशिष्टमण्यभावस्य दाहकरणत्ववत् । सिषाधयिषाविरहसहकृतसिद्ध्यभावस्याप्यनुमितिकरणत्वम् ॥ परामर्श लक्षयति—व्याप्तीति । व्याप्तिविषयक यत्पक्षधर्मताज्ञानं स परामर्श इत्यर्थः ॥ परामर्शमभिनीय दर्शयति—यथेति ॥ अनुमितिमभिनीय दर्शयति—तज्जन्यमिति । परामर्शजन्यमित्यर्थ. ॥ व्याप्तेर्लक्षणमाह—यत्रेति । यत्र धूम-

स्तत्राग्निरित्यभिनयः । साहचर्यनियम इति लक्षणम् । साहचर्यं सामानाधिकरण्यं तस्य नियमः । हेतुसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिरित्यर्थः ॥ पक्षधर्मतास्वरूपमाह—व्याप्यस्येति ॥

अनुमानं द्विविधं स्वार्थं परार्थं च । स्वार्थं स्वानुमितिहेतुः । तथा हि स्वयमेव भूयो भूयो दर्शनेन यत्र यत्र धूमस्तत्राग्निरिति महानसादौ व्याप्तिं गृहीत्वा पर्वतसमीपं गत्वा तद्गते चाग्नौ संदिहानः पर्वते धूमं पश्यन्व्याप्तिं स्मरति यत्र धूमस्तत्राग्निरिति । तदनन्तरं वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत इति ज्ञानमुत्पद्यते । अयमेव लिङ्गपरामर्श इत्युच्यते । तस्मात्पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानमनुमितिरुत्पद्यते । तदेतत्स्वार्थानुमानम् । यत्तु स्वयं धूमादग्निमनुमाय परं प्रति बोधयितुं पञ्चावयववाक्यं प्रयुङ्क्ते तत्परार्थानुमानम् । यथा पर्वतो वह्निमान्धूमवत्त्वात् । यो यो धूमवान्स स वह्निमान् । यथा महानसः । तथा चायम् । तस्मात्तथेति । अनेन प्रतिपादिताल्लिङ्गात्परोऽप्यग्निं प्रतिपद्यते ॥ ४१ ॥

अनुमानविभागमाह—अनुमानमिति ॥ स्वार्थानुमानं विविच्य दर्शयति—तथाहीति ॥ स्वार्थानुमानं दर्शयति—स्वयमेवेति ॥ ननु पार्थिवत्वलोहलेख्यत्वादौ शतशः सहचारदर्शनेऽपि वज्रादौ व्यभिचारोपलब्धेर्भूयो दर्शनेन कथं व्याप्तिग्रह इति चेन्न । व्यभिचारज्ञानविरहसहकृतसहचारज्ञानस्य व्याप्तिग्राहकत्वात् ॥ व्यभिचारज्ञानं निश्चयः शङ्का च ॥ तद्विरहः क्वचित्तर्कात्क्वचित्स्वतःसिद्ध एव धूमाग्निव्याप्तिग्रहे कार्यकारणभावभङ्गप्रसङ्गलक्षणस्तर्को व्यभिचारशङ्कानिवर्तकः ॥ ननु सकलवह्निधूमयोरसंनिकर्षात्कथं व्याप्तिग्रह इति चेन्न । धूमत्ववह्नित्वरूपसामान्यप्रत्यासत्त्या सकलधूमवह्निज्ञानसंभवात् ॥ तस्मादिति । लिङ्गपरामर्शादित्यर्थः ॥ परार्थानुमानमाह—यत्त्विति । यच्छब्दस्य तत्परार्थानुमानमिति तच्छब्देनान्वयः ॥ पञ्चावयववाक्यमुदाहरति—यथेति ॥

प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि पञ्चावयवाः । पर्वतो वह्निमानिति प्रतिज्ञा । धूमवत्त्वादिति हेतुः । यो यो धूमवा-

निन्युदाहरणम् । तथा चायमित्युपनयः । तस्मात्तथेति निगमनम् ॥ ४२ ॥

अवयवस्वरूपमाह—प्रतिज्ञेति ॥ उदाहृतवाक्ये प्रतिज्ञाविशेषमाह—पर्वतो वह्निमानिति ॥ साध्यवत्तया पक्षवचनं प्रतिज्ञा । पञ्चम्यन्तं लिङ्गप्रतिपादकं वचनं हेतुः । व्याप्तिप्रतिपादकमुदाहरणम् । पक्षधर्मताज्ञानमुपनयः । अबाधितत्वादिकं निगमनप्रयोजनम् ॥

स्वार्थानुमितिपरार्थानुमित्योर्लिङ्गपरामर्श एव कारणम् । तस्माल्लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम् ॥ ४३ ॥

अनुमितिकरणमाह—स्वार्थेति ॥ ननु व्याप्तिस्मृतिपक्षधर्मताज्ञानाभ्यामेवानुमितिसंभवे विशिष्टपरामर्शः किमर्थमङ्गीकर्तव्य इति चेन्न । वह्निव्याप्यधूमवानयमिति शाब्दपरामर्शस्थले परामर्शस्यावश्यकतया लाघवेन सर्वत्र परामर्शस्यैव कारणत्वात् । लिङ्गं न करणम् । अतीतादौ व्यभिचारात् । व्यापारवत्कारणं करणमिति मते परामर्शद्वारा व्याप्तिज्ञानं पक्षज्ञानं साध्यज्ञानं लिङ्गज्ञानं यत्किंचिज्जन्यज्ञानमात्रं वा परामर्शव्यापारकं करणम् । तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनको व्यापारः ॥ अनुमानमुपसंहरति—तस्मादिति ॥

लिङ्गं त्रिविधम् । अन्वयव्यतिरेकि केवलान्वयि केवलव्यतिरेकि चेति । अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्तिमदन्वयव्यतिरेकि । यथा वह्नौ साध्ये धूमवत्त्वम् । यत्र धूमस्तत्राग्निर्यथा महानस इत्यन्वयव्याप्तिः । यत्र वह्निर्नास्ति तत्र धूमोऽपि नास्ति यथा महाह्रद इति व्यतिरेकव्याप्तिः । अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयि । यथा घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात्पटवत् । अत्र प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिर्नास्ति । सर्वस्य प्रमेयत्वादभिधेयत्वाच्च । व्यतिरेकमात्रव्याप्तिकं केवलव्यतिरेकि । यथा पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात् । यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद्गन्धवत् । यथा जलम् । न चेयं तथा । तस्मान्न तथेति । अत्र यद्गन्धवत्तदितरभिन्नमित्यन्वयदृष्टान्तो नास्ति । पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वात् ॥ ४४ ॥

लिङ्गं विभजते—लिङ्गमिति ॥ अन्वयव्यतिरेकि लक्षयति—अन्व-येति । हेतुसाध्ययोर्व्याप्तिरन्वय । तदभावयोर्व्याप्तिर्व्यतिरेकव्याप्तिः ॥ केव-लान्वयिनो लक्षणमाह—अन्वयेति । केवलान्वयिसाध्यकं केवलान्वयि । अत्यन्ताभावाप्रतियोगित्व केवलान्वयित्वम् । ईश्वरप्रमाविषयत्व सर्वपदाभि-धेयत्व च सर्वत्रास्तीति व्यतिरेकाभाव. ॥ व्यतिरेकमुदाहरति—पृथि-वीति ॥ नन्वितरभेदः प्रसिद्धो वा न वा । आद्ये यत्र प्रसिद्धस्तत्र हेतु-सत्त्वेऽन्वयित्वम् । असत्त्वेऽसाधारण्यम् । द्वितीये साध्यज्ञानाभावात्कथं तद्विशिष्टानुमितिः । विशेषणज्ञानाभावे विशिष्टज्ञानानुदयात् । प्रतियोगि-ज्ञानाभावाद्व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानमपि न स्यादिति चेन्न । जलादित्रयोदशा-न्योन्याभावाना त्रयोदशसु प्रत्येकं प्रसिद्धाना मेलन पृथिव्या साध्यते । त्रयोदशत्वावच्छिन्नसाध्यस्यैकाधिकरणवृत्तित्वाभावात् । नान्वयित्वासाधा-रण्ये प्रत्येकाधिकरणप्रसिद्ध्या साध्यविशिष्टानुमितिर्व्यतिरेकव्याप्तिनि-रूपणं चेति ॥

संदिग्धसाध्यवान्पक्षः । यथा धूमवत्त्वे हेतौ पर्वतः । निश्चित-साध्यवान्सपक्षः । यथा तत्रैव महानसः । निश्चितसाध्याभाव-न्विपक्षः । यथा तत्रैव महाह्रदः ॥ ४९ ॥

पक्षलक्षणमाह—संदिग्धेति ॥ ननु श्रवणानन्तरभाविमननस्थलेऽ-व्याप्तिः । तत्र वेदवाक्यैरात्मनो निश्चितत्वेन संदेहाभावात् । किं च प्र-त्यक्षेऽपि वह्नौ यत्रेच्छयानुमितिस्तत्राप्यव्याप्तिरिति चेन्न । उक्तपक्षताश्रय-त्वस्य पक्षलक्षणत्वात् ॥ सपक्षलक्षणमाह—निश्चितमिति ॥ विपक्षलक्षण-माह—निश्चितेति ॥

सव्यभिचारविरुद्धसत्प्रतिपक्षासिद्धबाधिताः पञ्च हेत्वाभासाः । सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः । स त्रिविधः । साधारणासाधारणा-नुपसंहारिभेदात् । तत्र साध्याभाववद्वृत्तिः साधारणोऽनैकान्तिकः । यथा पर्वतो वह्निमान्प्रमेयत्वादिति । प्रमेयत्वस्य वह्न्यभाववति ह्रदे विद्यमानत्वात् । सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तोऽसाधारणः । यथा शब्दो नित्यः शब्दत्वादिति । शब्दत्वं सर्वेभ्यो नित्येभ्योऽनित्ये-भ्यश्च व्यावृत्तं शब्दमात्रवृत्ति । अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितोऽनुप-

संसर्गः । यथा सर्वमनित्यं प्रमेयत्वादिति । अत्र सर्वस्यापि पक्षत्वाद्दृष्टान्तो नास्ति । साध्याभावव्याप्यो हेतुर्विरुद्धः । यथा शब्दोऽनित्यः कृतकत्वादिति । कृतकत्वं हि नित्यत्वाभावेनानित्यत्वेन व्याप्तम् । साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य विद्यते स सत्प्रतिपक्षः । यथा शब्दो नित्यः श्रावणत्वाच्छब्दत्ववदिति । शब्दोऽनित्यः कार्यत्वाद्घटवदिति । असिद्धस्त्रिविधः । आश्रयासिद्धः स्वरूपासिद्धो व्याप्यत्वासिद्धश्चेति । आश्रयासिद्धो यथा गगनारविन्दं सुरभ्यरविन्दत्वात् । सरोजारविन्दवत् । अत्र गगनारविन्दमाश्रयः । स च नास्त्येव । स्वरूपासिद्धो यथा शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वात् । अत्र चाक्षुषत्वं शब्दे नास्ति शब्दस्य श्रावणत्वात् । सोपाधिको हेतुर्व्याप्यत्वासिद्धः । साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापक उपाधिः । साध्यसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं साध्यव्यापकत्वम् । साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं साधनाव्यापकत्वम् । पर्वतो धूमवान्वह्निमत्त्वादिति । अत्रार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः । तथाहि । यत्र धूमस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोग इति साध्यव्यापकता । यत्र वह्निस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोगो नास्ति । अयोगोलक आर्द्रेन्धनसंयोगाभावादिति साधनाव्यापकता । एवं साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वादार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः । सोपाधिकत्वाद्वह्निमत्त्वं व्याप्यत्वासिद्धम् ॥ यस्य साध्याभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः स बाधितः । यथा वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वादिति । अत्रानुष्णत्वं साध्यं तदभाव उष्णत्वं स्पार्शनप्रत्यक्षेण गृह्यत इति बाधितत्वम् ॥ ४६ ॥

एव सद्धेतु निरूप्यासद्धेतुं निरूपयति—सव्यभिचारेति । अनुमितिप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्व हेत्वाभासत्वम् ॥ सव्यभिचार विभजते—स त्रिविध इति ॥ साधारण लक्षयति—तत्रेति ॥ उदाहरति—यथेति ॥ असाधारण लक्षयति—सर्वेति ॥ अनुपसहारिणो लक्षणमाह—अन्वयेति ॥ विरुद्धं लक्षयति—साध्येति ॥ सत्प्रतिपक्षं लक्षयति—य-

स्येति ॥ असिद्धं विभजते—असिद्ध इति ॥ आश्रयासिद्धमुदाहरति—गगनेति ॥ स्वरूपासिद्धमुदाहरति—शब्देति ॥ व्याप्यत्वासिद्धस्य लक्षणमाह—सोपाधिक इति ॥ उपाधिलक्षणमाह—साध्येति । उपाधिश्चतुर्विधः । केवलसाध्यव्यापकः पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकः साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापक उदासीनधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकश्चेति । आद्य आर्द्रेन्धनसंयोग. । द्वितीयो यथा । वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वादिति । अत्र बहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वव्यापकमुद्भूतरूपवत्त्वम् । तृतीयो यथा । प्रध्वंसो विनाशी जन्यत्वादिति । अत्र जन्यत्वावच्छिन्नानित्यत्वव्यापक भावत्वम् । चतुर्थो यथा प्रागभावो विनाशी प्रमेयत्वादिति । अत्र जन्यत्वावच्छिन्नानित्यत्वव्यापकं भावत्वम् ॥ बाधितस्य लक्षणमाह—यस्येति ॥ अत्र बाधस्य ग्राह्याभावनिश्चयत्वेन सत्प्रतिपक्षस्य विरोधिज्ञानसामग्रीत्वेन साक्षादनुमितिप्रतिबन्धकत्वम् । इतरेषा तु परामर्शप्रतिबन्धकत्वम् । तत्रापि साधारणस्याव्यभिचाराभाववत्तया विरुद्धस्य सामानाधिकरण्याभाववत्तया व्यापकत्वासिद्धस्य विशिष्टव्याप्त्यभाववत्तयासाधारणानुपसंहारिणोर्व्याप्तिसंशयाधायकत्वेन न च व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धकत्वम् । आश्रयासिद्धिस्वरूपासिद्धयोः पक्षधर्मताज्ञानप्रतिबन्धकत्वम् । उपाधिस्तु व्यभिचारज्ञानद्वारा व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धकः । सिद्धसाधनं तु पक्षताविघटकतयाश्रयासिद्धेऽन्तर्भूतमिति न निग्रहस्थानान्तरमिति नवीना ॥

उपमितिकरणमुपमानम् । संज्ञासंज्ञिसंबन्धज्ञानमुपमितिः । तत्करणं सादृश्यज्ञानम् । अतिदेशवाक्यार्थस्मरणमवान्तरव्यापारः । तथाहि । गवयशब्दवाच्यमजानन्कुतश्चिदारण्यकपुरुषाद्गोसदृशो गवय इति श्रुत्वा वनं गतो वाक्यार्थं स्मरन्गोसदृशपिण्डं पश्यति । तदनन्तरमसौ गवयशब्दवाच्य इत्युपमितिरुत्पद्यते ॥ ४७ ॥

उपमानं लक्षयति—उपमितीति ॥

आप्तवाक्यं शब्दः । आप्तस्तु यथार्थवक्ता । वाक्यं पदसमूहः । यथा गामानयेति । शक्तं पदम् । अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरेच्छासंकेतः शक्तिः ॥ ४८ ॥

शब्द लक्षयति—आप्तेति ॥ पदलक्षणमाह—शक्तमिति । अर्थस्मृत्यनुकूलः पदपदार्थसंबन्धः शक्तिः । सा च पदार्थान्तरमिति मीमांसकाः ॥ तन्निरासार्थमाह—अस्मादिति । डित्थादीनामिव घटादीनामपि संकेत एव शक्तिः । न तु पदार्थान्तरमित्यर्थः । गवादिशब्दाना जातावेव शक्तिः । विशेषणतया जातेः प्रथममुपस्थितत्वात् । व्यक्तिलाभस्त्वाक्षेपादिनेति केचित् । तन्न । गामानयेत्यादौ वृद्धव्यवहारात्सर्वत्रानयनादेर्व्यक्तावेव संभवे जातिविशिष्टव्यक्तावेव शक्तिकल्पनात् । शक्तिग्रहस्तु वृद्धव्यवहारेण । व्युत्पित्सुर्बालो गामानयेत्युत्तमवृद्धवाक्यश्रवणानन्तर मध्यमवृद्धस्य प्रवृत्तिमुपलभ्य गवानयनं दृष्ट्वा मध्यमवृद्धप्रवृत्तिजनकज्ञानस्यान्वयव्यतिरेकाभ्या वाक्यजन्यत्वं निश्चित्याश्वमानय गा बधानेति वाक्यान्तर आवापोद्वापाभ्यां गोपदस्य गोत्वविशिष्टे शक्तिः । अश्वशब्दस्याश्वत्वविशिष्टे शक्तिरिति व्युत्पद्यते ॥ ननु सर्वत्र कार्यपरत्वाद्व्यवहारस्य कार्यवाक्य एव व्युत्पत्तिर्न सिद्धपर इति चेन्न । काश्यां त्रिभुवनतिलको भूपतिरित्यादौ सिद्धेऽपि व्यवहाराद्विकसितपद्मे मधुकर इत्यादौ सिद्धपदसमभिव्यवहारात्सिद्धेऽपि मधुकरादिपदे व्युत्पत्तिदर्शनाच्च ॥ लक्षणापि शब्दवृत्तिः । शक्यसबन्धो लक्षणा । गङ्गाया घोष इत्यत्र गङ्गापदवाच्यप्रवाहसबन्धादेव तीरोपस्थितौ तीरेऽपि शक्तिर्न कल्प्यते । सैन्धवादौ लवणाश्वयोः परस्परसंबन्धाभावान्नानाशक्तिकल्पनम् ॥ लक्षणा त्रिविधा । जहल्लक्षणाजहल्लक्षणा जहदजहल्लक्षणा चेति । यत्र वाच्यार्थस्यान्वयाभावस्तत्र जहदिति । यथा मञ्चाः क्रोशन्तीति । यत्र वाच्यार्थस्याप्यन्वयस्तत्राजहदिति । यथा छत्रिणो गच्छन्तीति । यत्र वाच्यैकदेशत्यागेनैकदेशान्वयस्तत्र जहदजहदिति । यथा तत्त्वमसीति ॥ गौण्यपि लक्षणैव । लक्ष्यमाणगुणसबन्धरूपा । अग्निर्माणवक इति ॥ व्यञ्जनापि लक्षणान्तर्भूतार्थशक्तिमूला च । अनुमानादिनान्यथासिद्धा । तात्पर्यानुपपत्तिर्लक्षणाबीजम् । तत्प्रतीतीच्छयोच्चरितत्वं तात्पर्यम् । तात्पर्यज्ञानं च वाक्यार्थज्ञाने हेतुः । नानार्थानुरोधात्तु प्रकरणादिकं तात्पर्यग्राहकम् । द्वारमित्यादौ पिधेहीति शब्दाध्याहारः ॥ नन्वर्थज्ञानार्थत्वाच्छब्दस्यार्थमविज्ञाय शब्दाध्याहारासभवादर्थाध्याहार एव युक्त इति चेन्न । पदविशेष्यजन्यपदार्थोपस्थितौ शाब्दज्ञानहेतुत्वात् । अन्यथा घटः कर्मत्वमानयन कृतिरित्यत्रापि शाब्दज्ञानप्रसङ्गात् । पङ्कजादिपदेषु योगरूढिः । अवयवशक्तिर्योग । समुदायशक्ती रूढिः । नियतपद्मत्वज्ञानार्थं

समुदायशक्तिः । अन्यथा कुमुदेऽपि प्रयोगप्रसङ्गः । इतरान्विते शक्तिरिति प्राभाकराः ॥ अन्वयस्य वाक्यार्थतया भानसंभवादन्वयांशेऽपि शक्तिर्न कल्पनीयेति गौतमीया. ॥

आकाङ्क्षा योग्यता संनिधिश्च वाक्यार्थज्ञानहेतुः । पदस्य पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्तान्वयाननुभावकत्वमाकाङ्क्षा । अर्थाबाधो योग्यता । पदानामविलम्बेनोच्चारणं संनिधिः ॥ ४९ ॥

आकाङ्क्षेति । आकाङ्क्षादिज्ञानमित्यर्थः । अन्यथाकाङ्क्षादिभ्रमाच्छाब्दभ्रमो न स्यात् ॥ आकाङ्क्षां लक्षयति—पदस्येति ॥ योग्यतालक्षणमाह—अर्थेति ॥ संनिधिलक्षणमाह— पदानामिति । अविलम्बेन पदार्थोपस्थितिः सनिधिः । उच्चारणं तु तदुपयोगितया युक्तम् ॥

आकाङ्क्षादिरहितं वाक्यमप्रमाणम् । यथा गौरश्वः पुरुषो हस्तीति न प्रमाणमाकाङ्क्षाविरहात् । अग्निना सिञ्चेदिति न प्रमाणं योग्यताविरहात् । प्रहरे प्रहरेऽसहोच्चारितानि गामानयेत्यादिपदानि न प्रमाणं सांनिध्याभावात् ॥ ५० ॥

गौरश्व इति । घटः कर्मत्वमित्यनाकाङ्क्षोदाहरण द्रष्टव्यम् ॥

वाक्यं द्विविधम् । वैदिकं लौकिकं च । वैदिकमीश्वरोक्तत्वात्सर्वमेव प्रमाणम् । लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणम् । अन्यदप्रमाणम् ॥ ५१ ॥

वैदिकस्य विशेषमाह—वैदिकमीश्वरोक्तत्वादिति ॥ ननु वेदस्यानादित्वात्कथमीश्वरोक्तत्वमिति चेन्न । वेदः पौरुषेयो वाक्यसमुदायत्वाद्भारतादिवत् । न च स्मर्यमाणकर्तृत्वमुपाधिः ॥ गौतमादिभिः शिष्यपरंपरया वेदेऽपि कर्तुः स्मर्यमाणत्वेन साधनव्यापकत्वात् । "तस्मात्तेऽपानात्त्रयो वेदा अजायन्त" इति श्रुतेश्च ॥ ननु वर्णा नित्याः । स एवाय गकार इति प्रत्यभिज्ञाबलात् । तथा च कथं वेदस्यानित्यत्वमिति चेन्न । उत्पन्नो गकारो नष्टो गकार इति प्रतीत्या वर्णानामनित्यत्वात् । सोऽयं गकार इति प्रत्यभिज्ञायाः सोऽय दीप इति प्रत्यभिज्ञानवज्जात्यालम्बनत्वात् । वर्णानां

नित्यत्वेऽप्यानुपूर्वीविशिष्टवाक्यस्यानित्यत्वाच्च । तस्मादीश्वरोक्तो वेदः ॥ मन्वादिस्मृतीनामाचाराणां च वेदमूलकतया प्रामाण्यम् । स्मृतिमूलवाक्यानामिदानीमनध्ययनात्तन्मूलभूता काचिच्छाखोत्पन्नेति कल्प्यते ॥ ननु पठ्यमानवेदवाक्योत्सादस्य कल्पयितुमशक्यतया विप्रकीर्णवादस्यायुक्तत्वान्नित्यानुमेयो वेदो मूलमिति चेन्न । तथा सति वर्णानुपूर्वीज्ञानाभावेन बोधकत्वासंभवात् । नन्वेतानि पदानि स्वस्मारितार्थसंसर्गवन्त्याकाङ्क्षादिमत्पदकदम्बकत्वात्सद्वाक्यवदित्यनुमानादेव संसर्गज्ञानसंभवाच्छब्दो न प्रमाणान्तरमिति चेन्न । अनुमित्यपेक्षया शाब्दज्ञानस्य विलक्षणस्य शब्दात्प्रत्येमीत्यनुव्यवसायसाक्षिकस्य सर्वसंमतत्वात् ॥ नन्वर्थापत्तिरपि प्रमाणान्तरमस्ति । पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते इति दृष्टे श्रुते वा पीनत्वान्यथानुपपत्त्या रात्रिभोजनमर्थापत्त्या कल्प्यत इति चेन्न । देवदत्तो रात्रौ भुङ्क्ते दिवाभुञ्जानत्वे सति पीनत्वादित्यनुमानेनैव रात्रिभोजनस्य सिद्धत्वात् । अनुपलब्धिर्न मानम् । परिशेषोऽप्यनुमान्यैव । शते पञ्चाशदिति संभवोऽप्यनुमानमेव । इह वटे यक्षस्तिष्ठतीत्यैतिह्यमज्ञातमूलवक्तृकः शब्द एव ॥ चेष्टापि शब्दानुमानद्वारा व्यवहारहेतुरिति न मानान्तरम् । तस्मात्प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाश्चत्वार्येव प्रमाणानि । सर्वेषां ज्ञानानां तद्वति तत्प्रकारकत्वं स्वतो ग्राह्यं परतो वेति विचार्यते ॥ अत्र विप्रतिपत्तिः । ज्ञानप्रामाण्यं तदप्रामाण्याग्राहकयावज्ज्ञानग्राहकसामग्रीग्राह्यं वा । अत्र विधिकोटिः स्वतस्त्वम् । निषेधकोटिः परतस्त्वम् । अनुमानग्राह्यत्वेन सिद्धसाधनतावारणाय यावदिति । इदं ज्ञानमप्रमेति ज्ञाने प्रामाण्यग्राहकत्वाद्बाधवारणायाप्रामाण्याग्राहकेति । इदं ज्ञानमप्रमेत्यनुव्यवसायनिष्ठप्रामाण्यग्राहकस्याप्रामाण्याग्राहकत्वाभावात्स्वतस्त्वं न स्यादतस्तदिति । तस्मिन्प्रामाण्याश्रयेऽप्रामाण्याग्राहक इत्यर्थः । उदाहृतस्थले व्यवसायेऽप्रामाण्यग्राहकस्याप्यनुव्यवसाये तदग्राहकत्वात्स्वतस्त्वसिद्धिः ॥ ननु स्वत एव प्रामाण्यं गृह्यते । घटमहं जानामीत्यनुव्यवसायेन घटघटत्वयोरिव नियतसंबन्धस्यापि विषयीकरणात् । व्यवसायरूपप्रत्यासत्तेस्तुल्यत्वात् । पुरोवर्तिनि प्रकारसंबन्धस्यैव प्रमात्वपदार्थत्वादिति चेन्न । स्वतः प्रामाण्यग्रहे जलज्ञानं प्रमाणं न वेत्यनभ्यासदशायां प्रमात्वसंशयो न स्यात् । अनुव्यवसायेन प्रामाण्यस्य निश्चितत्वात् । तस्मात्स्वतोऽग्राह्यत्वाभावात्परतो ग्राह्यत्वम् । तथाहि प्रथमं जलज्ञानानन्तरं प्रवृत्तौ सत्यां जललाभे सति पूर्वोत्पन्नं जलज्ञानं प्रमा ।

समर्थप्रवृत्तिजनकत्वाद्यन्नैवं तन्नैवम् । यथाप्रमेति व्यतिरेकिणा प्रमात्वं निश्चीयते । द्वितीयादिज्ञानेषु पूर्वज्ञानदृष्टान्तेन तत्सजातीयत्वलिङ्गेन चान्वयव्यतिरेकिणा गृह्यते । प्रमाया गुणजन्यत्वमुत्पत्तौ परतस्त्वम् । प्रमासाधारणकारणं गुणः । अप्रमासाधारणकारणं दोषः । तत्र प्रत्यक्षेऽपि विशेषणवद्विशेष्यसंनिकर्षो गुणः । अनुमितौ व्यापके सति व्याप्यज्ञानम् । उपमितौ यथार्थसादृश्यज्ञानम् । शाब्दज्ञाने यथार्थयोग्यताज्ञानमित्यादि बोध्यम् ॥ पुरोवर्तिनि प्रकाराभावस्य व्यवसायेनानुपस्थितत्वादप्रमात्वं परत एव गृह्यते । पित्तादिदोषजन्यत्वादुत्पत्तौ परतस्त्वम् ॥ ननु सर्वज्ञानानां यथार्थत्वादयथार्थज्ञानमेव नास्ति न च शुक्ताविदं रजतमिति ज्ञानात्प्रवृत्तिदर्शनादन्यथाख्यातिसिद्धिरिति वाच्यम् । रजतस्मृतिपुरोवृत्तिज्ञानाभ्यामेव प्रवृत्तिसंभवादुपस्थिते भेदाग्रहस्यैव सर्वत्र प्रवर्तकत्वेनेदं रजतमित्यादावतिप्रसङ्गाभावादिति चेन्न । सत्यरजतस्थले पुरोवर्तिविशेष्यरजतत्वप्रकारकज्ञानस्य लाघवेन प्रवृत्तिजनकतया शुक्तावपि रजतार्थिप्रवृत्तिजनकत्वेन विशिष्टज्ञानस्यैव कल्पनात् ॥

वाक्यार्थज्ञानं शाब्दज्ञानम् । तत्करणं शब्दः ॥ ५२ ॥

अयथार्थानुभवस्त्रिविधः । संशयविपर्ययतर्कभेदात् । एकस्मिन्धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानं संशयः । यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वेति । मिथ्याज्ञानं विपर्ययः । यथा शुक्ताविदं रजतमिति । व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः । यथा यदि वह्निर्न स्यात्तर्हि धूमोऽपि न स्यादिति ॥ ५३ ॥

अयथार्थानुभवं विभजते—अयथार्थेति । स्वप्नस्य मानसविपर्ययरूपत्वान्न त्रैविध्यविरोधः ॥ संशयलक्षणमाह—एकेति । घटपटाविति समूहलम्बनेऽतिव्याप्तिवारणायैकेति । घटो द्रव्यमित्यादावतिव्याप्तिवारणाय विरुद्धेति । पटत्वविरुद्धघटत्ववानित्यत्रातिव्याप्तिवारणाय नानेति ॥ विपर्ययलक्षणमाह—मिथ्येति । तदभाववति तत्प्रकारकनिश्चय इत्यर्थः ॥ तर्कं लक्षयति—व्याप्येति । यद्यपि तर्को विपर्ययेऽन्तर्भवति तथापि प्रमाणानुग्राहकत्वाद्भेदेन कीर्तितः ॥

स्मृतिरपि द्विविधा । यथार्थायथार्था च । प्रमाजन्या यथार्था । अप्रमाजन्यायथार्था ॥ ५४ ॥

स्मृतिं विभजते—स्मृतिरिति ॥

सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम् ॥ ५५ ॥

सुखं लक्षयति—सर्वेषामिति । सुख्यहमित्याद्यनुव्यवसायगम्यं सुखत्वादिकमेव लक्षणम् । यथा श्रुतं स्वरूपकथनमिति द्रष्टव्यम् ॥

प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम् ॥ ५६ ॥

इच्छा कामः ॥ ५७ ॥

क्रोधो द्वेषः ॥ ५८ ॥

कृतिः प्रयत्नः ॥ ५९ ॥

विहितकर्मजन्यो धर्मः ॥ ६० ॥

निषिद्धकर्मजन्यस्त्वधर्मः ॥ ६१ ॥

बुद्ध्यादयोऽष्टावात्ममात्रविशेषगुणः ॥ ६२ ॥

बुद्धीच्छाप्रयत्ना द्विविधाः । नित्या अनित्याश्च । नित्या ईश्वरस्य अनित्या जीवस्य ॥ ६३ ॥

संस्कारस्त्रिविधः । वेगो भावना स्थितिस्थापकश्चेति । वेगः पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिः । अनुभवजन्या स्मृतिहेतुर्भावनात्ममात्रवृत्तिः । अन्यथाकृतस्य पुनस्तदवस्थापादकः स्थितिस्थापकः । कटादिपृथिवीवृत्तिः ॥ ६४ ॥

संस्कारं विभजते—संस्कार इति । संस्कारत्वजातिमान्संस्कारः ॥ वेगस्याश्रयमाह—वेग इति । वेगत्वजातिमान्वेगः ॥ भावनां लक्षयति—अनुभवेति । स्मृतेरपि संस्कारजनकत्वं नवीनैरुक्तम् ॥ आत्मादावतिव्याप्तिवारणायानुभवेति । अनुभवविध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय स्मृतीति ॥ स्थितिस्थापकं लक्षयति—अन्यथेति । संख्यादयोऽष्टौ नैमित्तिकद्रवत्ववेगस्थितिस्थापकाः सामान्यगुणाः । अन्ये रूपादयो विशेषगुणाः । द्रव्यविभाजकोपाधिद्वयसमानाधिकरणावृत्ति द्रव्यकर्मावृत्ति जातिमत्त्वं विशेषगुणत्वम्

चलनात्मकं कर्म । ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुरुत्क्षेपणम् । अधोदेशसंयोगहेतुरपक्षेपणम् । शरीरस्य संनिकृष्टसंयोगहेतुराकुञ्चनम् ।

विप्रकृष्टसंयोगहेतुः प्रसारणम् अन्यत्सर्वं गमनम् । पृथिव्यादि चतुष्टयमनोमात्रवृत्ति ॥ ६५ ॥

कर्मलक्षणमाह—चलनेति ॥ उत्क्षेपणादीनां कार्यभेदमाह—ऊर्ध्वेति ॥ वक्रत्वसंपादकमाकुञ्चनम् । ऋजुतासंपादकं प्रसारणमित्यर्थः ॥

नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यं द्रव्यगुणकर्मवृत्ति । तद्द्विविधं परापरभेदात् । परं सत्ता अपरं जातिर्द्रव्यत्वादिः ॥ ६६ ॥

सामान्यं लक्षयति—नित्यमिति । संयोगादावतिव्याप्तिवारणाय नित्य-मिति । परमाणुपरिमाणादावतिव्याप्तिवारणायानेकेति । अनुगतत्वं समा-वेतत्वं तेन नाभावादावतिव्याप्तिः ॥

नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषाः ॥ ६७ ॥

विशेषं लक्षयति—नित्येति ॥

नित्यसंबन्धः समवायोऽयुतसिद्धवृत्तिः । ययोर्द्वयोर्मध्ये एक-मपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुतसिद्धौ । अवयवावयविनौ गुणगु-णिनौ क्रियाक्रियावन्तौ जातिव्यक्ती विशेषनित्यद्रव्ये चेति ॥ ६८ ॥

समवायं लक्षयति—नित्येति । संयोगादावतिव्याप्तिवारणाय नित्येति । आकाशादावतिव्याप्तिवारणाय संबन्ध इति ॥ अयुतसिद्धलक्षणमाह—ययोरिति । नीलो घट इति विशिष्टप्रतीतिर्विशेषणविशेष्यसंबन्धविषया-विशिष्टप्रत्ययत्वाद्दण्डीति प्रत्ययवदिति समवायसिद्धिः ॥ अवयवावयविना-विति द्रव्यसमवायिकारणमवयवः । तज्जन्यद्रव्यमवयवि ॥

अनादिः सान्तः प्रागभावः । उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य । सादि-रनन्तः प्रध्वंसः । उत्पत्त्यनन्तरं कार्यस्य । त्रैकालिकसंसर्गाव-च्छिन्नप्रतियोगिकोऽत्यन्ताभावः । यथा भूतले घटो नास्तीति । तादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिकोऽन्योन्याभावः । यथा घटः पटो न भवतीति ॥ ६९ ॥

प्रागभावं लक्षयति—अनादिरिति । आकाशादावतिव्याप्तिवारणाय सान्त इति । घटादावतिव्याप्तिवारणायानादिरिति । प्रतियोगिसमवायिका-

रणवृत्ति प्रतियोगिजनको भविष्यतीति व्यवहारहेतुः प्रागभावः ॥ प्रध्वंसं लक्षयति—सादिरिति । घटादावतिव्याप्तिवारणायानन्त इति । आकाशादावतिव्याप्तिवारणाय सादिरिति । प्रतियोगिजन्यः प्रतियोगिसमवायिकारणवृत्तिर्ध्वस्तव्यवहारहेतुर्ध्वंस ॥ अत्यन्ताभाव लक्षयति—त्रैकालिकेति । अन्योन्याभावेऽतिव्याप्तिवारणाय संसर्गावच्छिन्नेति । ध्वंसप्रागभावयोरतिव्याप्तिवारणाय त्रैकालिकेति ॥ अन्योन्याभावं लक्षयति—तादात्म्येति । प्रतियोगितावच्छेदकतयारोपासंसर्गभेदादेकप्रतियोगिकयोरत्यन्ताभावान्योन्याभावयोर्बहुत्वम् । केवलदेवदत्ताभावो दण्ड्यभाव इति प्रतीत्या विशिष्टाभाव । एकसत्त्वे द्वौ न स्त इति प्रतीत्या द्वित्वावच्छिन्नोऽभावः । संयोगसंबन्धेन घटवति समवायसंबन्धेन घटाभावः । तत्तद्घटाभावाद्घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिकसामान्याभावश्चातिरिक्तः । एवमन्योन्याभावोऽपि । घटत्वावच्छिन्नः पटो नास्तीति व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावो नाङ्गीक्रियते । पटे घटत्वं नास्तीति तस्यार्थः । अतिरिक्तत्वे स केवलान्वयी । सामयिकाभावोऽत्यन्ताभाव एव समयविशेषे प्रतीयमानः । घटाभाववति घटानयनेऽत्यन्ताभावस्यान्यत्र गमनाभावेऽप्यप्रतीतेर्घटापसरणे सति प्रतीतिः । भूतले घटसंयोगप्रागभावप्रध्वंसयोरत्यन्ताभावप्रतीतिनियामकत्वं कल्प्यते । घटवति तत्संयोगप्रागभावप्रध्वंसयोरसत्त्वात् । अत्यन्ताभावस्याप्रतीतिः । घटापसरणे च संयोगध्वंससत्त्वात्प्रतीतिरिति । केवलाधिकरणादेव नास्तीति व्यवहारोपपत्तावभावो न पदार्थान्तरमिति गुरवः । तन्न । अभावानङ्गीकारे कैवल्यस्य निर्वक्तुमशक्यत्वात् । अभावाभावो भाव एव नातिरिक्तोऽनवस्थाप्रसङ्गात् ॥ ध्वंसप्रागभावः प्रागभावध्वंसश्च प्रतियोग्येव । अभावाभावोऽतिरिक्त एव । तृतीयाभावस्य प्रथमत्वान्नानवस्थेति नवीनाः ॥

सर्वेषां पदार्थानां यथायथमुक्तेष्वन्तर्भावात्सप्तैव पदार्था इति सिद्धम् ॥ ७० ॥

ननु प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानाना तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगम इति न्यायशास्त्रे षोडशपदार्थानामुक्तत्वात्कथं सप्तैवेत्यत आह—सर्वेषामिति । सर्वेषां सप्तस्वेवान्तर्भाव इत्यर्थ. ॥ आत्मशरीरेन्द्रियार्थमनोबुद्धिप्रवृत्तिदो-

षप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयमिति द्वादशविधं प्रमेयम् । प्रवृत्तिर्ध-
र्माधर्मौ । रागद्वेषमोहा दोषाः । राग इच्छा । द्वेषो मन्युः । मोहः शरी-
रादावात्मभ्रमः । प्रेत्यभावो मरणम् । फलं भोगः । अपवर्गो मोक्षः । स
च स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावासमानकालीनो दुःखध्वंसः । प्रयोजनं
सुखदुःखहानिश्च । दृष्टान्तो महानसादिः । प्रामाणिकत्वेनाभ्युपगतोऽर्थः
सिद्धान्तः । निर्णयो निश्चयः प्रमाणफलम् । तत्त्वबुभुत्सोः कथा वादः ।
उभयसाधनवती विजिगीषुकथा जल्पः । स्वपक्षस्थापनहीना वितण्डा ।
कथा नाम नानावक्तृकः पूर्वोत्तरपक्षवाक्यसंदर्भः । अभिप्रायान्तरेण प्रयुक्त-
स्यार्थान्तरं प्रकल्प्य दूषणं छलम् । असदुत्तरं जातिः । साधर्म्यवैधर्म्योत्क-
र्षापकर्षवर्ण्यावर्ण्यविकल्पसाध्यप्राप्त्यप्राप्तिप्रसङ्गप्रतिदृष्टान्तानुपपत्तिसंशय-
प्रकरणाहेत्वर्थापत्त्यविशेषोपपत्त्याविशेषोपलब्ध्यनुपलब्धिकारण नित्यानित्य-
कार्यसमजातिः । वादिनोपजयहेतुर्निग्रहस्थानम् । प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञान्तरं
प्रतिज्ञाविरोधः प्रतिज्ञासंन्यासो हेत्वन्तरमर्थान्तरं निरर्थकमविज्ञातार्थमपार्थ-
कमप्राप्तकालं न्यूनमधिकं पुनरुक्तमननुभाषणमज्ञानमप्रतिभाविक्षेपोऽमता-
नुज्ञपर्यनुयोज्योऽपेक्षणं निरनुयोज्यानुयोगोऽपसिद्धान्तो हेत्वाभासश्च निग्रह-
स्थानानि । शेषं सुगमम् ॥ ननु करतलानलसंयोगे सत्यपि प्रतिबन्धे
सति दाहानुत्पत्तेः शक्तिः पदार्थान्तरमिति चेन्न । प्रतिबन्धकाभावस्य
कार्यमात्रे कारणत्वेन शक्तेरनुपयोगात् । कारणस्यैव शक्तिपदार्थत्वमिति ।
ननु भस्मादिना कांस्यादौ शुद्धिदर्शनादाधेयशक्तिरङ्गीकार्येति चेन्न । भस्मा-
दिसंयोगसमानकालीनास्पृश्यस्पर्शप्रतियोगिक्रिया तदभावसहितभस्मादिसं-
योगध्वंसस्य शुद्धिपदार्थत्वात् । स्वत्वमपि न पदार्थान्तरम् । यथेष्टविनियोग-
योग्यत्वस्य स्वत्वस्वरूपत्वात् । तदवच्छेदकं च प्रतिग्राहादिलब्धत्वमेवेति ॥

अथ विधिर्निरूप्यते— प्रत्यवायजनकचिकीर्षाजनकज्ञानविषयो विधिः ।
तत्प्रतिपादको लिङादिर्वा । कृत्यसाध्ये प्रवृत्त्यदर्शनात्कृतिसाध्यताज्ञान-
प्रवर्तकम् । न च विषभक्षणादौ प्रवृत्तिप्रसङ्गः । इष्टसाधनतालिङ्गकृति-
साध्यताज्ञानस्य काम्यस्थले नित्यनैमित्तिकस्थले च विहितकालजी-
वित्वनिमित्तकज्ञानजन्यत्वस्यैव प्रवर्तकत्वात् । न चानुगमः । स्ववि-
शेषणवत्ताप्रतिसंधानजन्यत्वस्यानुगतत्वादिति गुरवः । तन्न । लाघवेन
कृतिसाध्येष्टसाधनताज्ञानस्यैव चिकीर्षाद्वारा प्रयत्नजनकत्वात् । न च
नित्येष्टसाधनत्वाज्ञानाभावादप्रवृत्तिप्रसङ्गः । तत्रापि प्रत्यवायपरिहारस्य पा-

[illegible] च [illegible] , [illegible] कृति [illegible] मेव लिङार्थः ॥ नतु "ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत" इत्यत्र लिङा स्वर्गसाधनकार्यं प्रतीयते । यागस्याशुविनाशिनः कालान्तरभाविस्वर्गसाधनत्वायोगात् योग्यं स्थायि-कार्यमपूर्वमेव लिङर्थः । कार्यं कृतिसाध्यं कृतेः सविषयत्वात् । विषयाकाङ्क्षाया यागो विषयत्वेनान्वितस्य कार्यमिति नियोज्याकाङ्क्षाया स्वर्गकामपद नि-योज्यत्वेनान्वितकार्यबोद्धा नियोज्य । तेन ज्योतिष्टोमनामकयागविषयकं स्वर्गकामस्य कार्यमिति वाक्यार्थः सपद्यते । वैदिकालिङित्वात् "यावज्जी-वमग्निहोत्र जुहुयात्" इति नित्यवाक्ये सत्यपूर्वमेव वाच्य कल्प्यते ॥ "आ-रोग्यकामो भेषजपानं कुर्यात्" इत्यादौ लौकिकलिङ्कार्ये लक्षणेति चेन्न । आतुरस्याप्यारोग्यतानिश्चयाभावेन साधनतया प्रतीत्यनन्तरं निर्वाहार्थमवा-न्तरव्यापारतयापूर्वस्य कल्पनात् । कीर्तनादिना न श्रुतेस्तेन यागध्वंसो व्यापारो लोकव्युत्पत्तिबलात् । क्रियायामेव कृतिसाध्येष्टसाधनत्वं लिङा बोध्यत इति लिङत्वेन रूपेण विध्यर्थत्वम् । आख्यातत्वेन प्रयत्नार्थकत्वम् । पचति पाक करोतीति विवरणदर्शनात् । किं करोतीति प्रश्ने पचतीत्युत्त-राच्चाख्यातस्याप्रयत्नार्थत्वार्थत्वनिश्चयात् । रथो गच्छतीत्यादावनुकूलव्यापारे लक्षणा । "देवदत्तः पचति तण्डुलाः । देवदत्तेन पच्यते तण्डुलः" इत्यत्र कर्तृकर्मणोर्नाख्यातार्थत्वम् । किंतु तद्गतैकत्वादीनामेव । तयो-राक्षेपादेव लाभः । प्रजयतीत्यादौ धातोरेव प्रकर्षे शक्तिः । उप-सर्गाणा द्योतकत्वमेव न तत्र शक्तिरस्ति ॥ पदार्थज्ञानस्य परमं प्रयो-जन मोक्षः । तथाहि । "आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्या-सितव्यः" इति श्रुत्या श्रवणादीनामात्मसाक्षात्करहेतुत्वबोधनात् । श्रुत्या देहादिविलक्षणात्मज्ञानेऽप्यसंभवादिनिवृत्तेर्युक्त्यनुबन्धानुरूपं मनःसाध्यत्वा-न्मननोपयोगिपदार्थनिरूपणद्वारा शास्त्रस्यापि मोक्षोपयोगः । तदनन्तरं श्रुत्युपदिष्टयोगविधिना निदिध्यासने कृते तदनन्तरं देहादिविलक्षणात्मसा-क्षात्कारे सति देहादावहमभिमानरूपमिथ्याज्ञाननाशे सति दोषाभावात्प्रवृत्त्य-भावे धर्माधर्मयोरभावाज्जन्माभावे पूर्वधर्माधर्मयोरनुभवेन नाशे चरमदुःखध्वं-सलक्षणो मोक्षो जायते । ज्ञानमेव मोक्षसाधनं मिथ्याज्ञाननिवृत्तेर्ज्ञानमात्र-

साधनत्वात् । "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति । नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" इति साधनान्तरनिषेधाच्च । ननु "तत्प्राप्तिहेतुर्विज्ञानं कर्म चोक्तं महामुने:" इति कर्मणोऽपि मोक्षसाधनत्वस्मरणाज्ज्ञानकर्मणोः समुच्चय इति चेन्न । "नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् । ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन च पाचयेत् । अभ्यासात्पक्वविज्ञानं कैवल्यं लभते नरः" इत्यादिना कर्मणो ज्ञानसाध्यत्वप्रतिपादनात् ॥ ज्ञानद्वारैव मोक्षसाधनं न साक्षात् । तस्मात्पदार्थज्ञानस्य मोक्षः परम प्रयोजनमिति सर्वं रमणीयम् ॥

कणादन्यायमतयोर्बालव्युत्पत्तिसिद्धये ।
अन्नंभट्टेन विदुषा रचितस्तर्कसंग्रहः ॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायान्नंभट्टविरचितः स्वकृतदीपिकासमेतस्तर्क-संग्रहः समाप्तः ।

TRANSLATION

'Having placed in my heart the Lord of the world, [having meditated on God], and having saluted my preceptor, I compose this Compendium of Logical results for the pleasant comprehension of the uninstructed'

1 'There are seven Categories,—Substance, quality, Action, Genus, Difference, Co-inherence and Non-existence'

2 'Amongst those (categories), Substances [the abodes of Qualities] are nine —Earth, water, Light, Air, Ether, Time, Place, Soul and Mind'

3 'There are twenty-four Qualities,—Colour, Savour, Odour, Tangibility, Number, Dimension, Severalty, Conjunction, Disjunction, Priority, Posteriority, Weight, Fluidity, Viscidity, Sound, Understanding, Pleasure, Pain, Desire, Aversion, Effort, Merit, Demerit and Faculty'

4 'There are five Actions,—Throwing upwards, Throwing downwards, Contraction, Expansion and Going'

5 'Genus [a common nature] is of two kinds,—Higher and Lower'

6 'Differences, which reside in eternal substances, are endless'

7. 'Co-inherence is one only'

8 'Non-existence is of four kinds,—Antecedent non-existence, Destruction, Absolute non-existence and mutual non-existence'

9. 'That is earth, in which there is the quality Odour It is of two kinds,—Eternal and Non-eternal In its atomic character it is Eternal, and when some product arises out of those atoms, then that is called Non-eternal This [earth in the character of a product] is of three kinds, through the differences of body, organ of sense and mass The body is that of us men The organ is the apprehender of odour, called the Smell, which resides in the fore-part of the nose And the masses [what have parts] are clods, stones, &c.'

10 'That is Water, which, appears cold on touching it And it is of two kinds,—Eternal and Non-eternal In the form of atoms, it is Eternal and when a product is produced by those atoms, then that is called Non-eternal This [water in the form of products] is of three kinds, through the differences of body, organ of sense and mass The body exists in the world of *varuna* The sense is the percipient of savour, which is called the Taste, and which resides in the fore-part of the tongue The masses are rivers, seas, &c'

11. 'That is Light; the sensation by touch of which is warm This is of two kinds,—Eternal and Non-eternal It is Eternal in the form of atoms, and in the form of products it is Non-eternal This [light in the form of a product] is of three kinds, through the differences of body, organ of sense and mass That the body exists in the Solar realm, is well-known The sense the percipient of colour, which is called the Sight, resides in the fore-part of the pupil of the eye Masses are of four kinds through these differences,—Produced in earth, Produced in the sky, Produced in the stomach, and Produced in mines Produced in earth, it is fire, &c Produced in the sky, it is lightning &c., the fuel of which is water Produced in the stomach it is the cause of the digestion of things eaten Produced in mines, it is gold &c'

12. 'That is Air, which has not colour, and has tangibility It is of two kinds,—Eternal and Non-eternal In the form of atoms it is Eternal, and in the form of products it is Non-eternal This [air in the form of products] is of three kinds, through the differences of body, organ of sense and mass The body is in the aerial world The sense is the Touch, the apprehender of tangibility, existing throughout the whole body The mass is that which is the cause of the shaking of trees &c

13 'Air circulating within the body is called *Prána* Although it is but one, yet, from the difference of its accidents, it is called by Breath, Flatulence &c [Breath, Flatulence, Cerebral pulsation, General pulsation and Digestion]'

14 'That is Ether, in which there resides the quality of sound It is one, all-pervading and eternal.'

15 'That is Time, which is the cause of the employment of

18 'That is Mind, whose sense is the cause of the perception of pleasure, pain, &c It is innumerable, for it remains with each Soul It is in the form of an atom and is eternal'

19 'That quality which is apprehended only by the sense of Sight, is called Colour And it is of seven kinds, through the differences of White, Blue, Yellow, Red, Green, Brown and Variegated, residing in earth, water and light In earth, colour of all the seven kinds resides, in water, white colour not lustrous resides, and in light, lustrous white colour resides'

20 'That quality which is known through the sense of Taste, is called Savour And it is of six kinds, through the differences of Sweet, Sour, Saline, Bitter, Astringent and Pungent, residing in earth and water In earth, there is savour of the six kinds, and in water, there is only the sweet savour'

21 'The quality which is apprehended by the sense of Smell, is called Odour And it is of two kinds—Fragrance and Stench, residing in earth alone'

22 'That quality which is perceived only by the organ of Touch, is called Tangibility And it is of three kinds, through the differences of Cold, Warm and Temperate This quality resides in earth, water, light and air Coldness resides in water, Warmth in light, and Temperateness in earth and air'

23 'The four of which colour is the first [Colour, Savour, Odour and Tangibility] may be produced in Earth [in earthy things] by maturation [a special conjunction of Heat], and they are then Transient In others [in water, Light and Air] Colour &c are not produced by maturation They are then

Eternal or Transient When they reside in eternal things they are Eternal, and when they reside in things not eternal they are said to be Transient'

24. 'That quality, which is the peculiar cause of the conception of Unity, &c, is called Number This resides in the nine substances Reckoning from Unity, it is as far as a *Parárdha* [100,000,000,000,000,000] Unity is both Eternal and Non-eternal. In an eternal thing, it is Eternal, and in a non-eternal thing it is Non-eternal. But Duality, &c, is everywhere Non-eternal

25 The peculiar cause of the conception of Bulk, is called Measure. It resides in the nine substances And it is of four kinds,—Small, Great, Long and Short'

26 'The peculiar cause of the conception of distinct things is called Severalty. It resides in all the substances'

27. 'The peculiar cause of the conception of conjoined things is called Conjunction It resides in all the substances'

28 'That quality which annihilates Conjunction, is called Disjunction. It resides in all the substances'

29 'The peculiar cause of the conception of things Far and Near, is called Remoteness and Proximity. These reside in the four substances beginning with earth, [earth, water, light, air] and mind. They are of two kinds,—Made by Space and Made by Time Remoteness made by Space is in that thing which remains in a distant place, and Proximity made by Space is in that thing which remains in a place near In the person who is elder, there is Remoteness made by Time, and in the person who is younger there is Proximity made by Time.'

30. 'The quality which is the non-intimate cause of incipient falling, is called Weight It resides in earth and in water'

31 'The quality which is the non-intimate cause of incipient tricking, is called Fluidity. It affects earth, water and light It is of two kinds,—Natural [established by its own nature], and Adscititious [produced by some cause] Natural fluidity resides in water, and Adscititious fluidity resides in earth and light. In earthy substances, such as butter &c, flu-

34 'Knowledge, which is the cause of every conception (that can be put in words) is called Understanding It is of two kinds,—Remembrance and Notion The knowledge which is produced only by its own antecedence, is called Remembrance, and knowledge which is different from that, is called Notion It is of two kinds,—Right and Wrong Of whatever description any thing is, when our idea of that thing is of that same description, it is called a Right notion, as, in the case of silver, the idea of its being silver This is called *pramâ* [commensurate with its object] The supposing a thing to be as the thing is not, is called a Wrong notion, as, in the case of a shell, the notion of its being silver This is called *Apramâ*'

35 'Right notion is of four kinds, through the divisions of Perceptions, Inferences, Conclusions from similarity and authoritative Assertions understood The efficient [peculiar] cause of those, also is of four kinds, through the divisions of Perception, Inference, Recognition of similarity and authoritative Assertion'

36. 'Whatever thing, through its operating, is the cause, not common to all effects, of some given effect, that is the instrumental cause thereof That which is invariably antecedent to some product, and is not otherwise constituted [is not by any thing else—except the result in question—constituted a cause] is the cause (of that product) That which annuls its own antecedent non-existence is called an Effect

37 'Cause is of three kinds, through the distinctions of Intimate, Non-intimate and instrumental That in which an effect intimately relative to it takes its rise, is an Intimate

cause, as, threads are of cloth, and the cloth itself of its own colour &c Where this intimate relation exists, that cause which is associated in one and the same object with such effect or cause, is Non-intimate, as, the conjunction of the threads is the non-intimate cause of the cloth, and the colour of the threads, that of the colour of the cloth The cause which is distinct from both of these is the Instrumental cause, as, the weaver's brush, the loom &c are of cloth Among these thre kinds of causes, that only is called an instrumental cause whic is not a universally concurrent cause or condition (of all effect as God, time &c are)'

38 'The cause of the knowledge, called sensation is a organ of sense, knowledge produced by the conjuction of an or gan of sense and its object, is sensation It is of two kinds,— Where it does not pay regard to an alternative, and Where does. The knowledge which does not pay regard to an alter native is that which involves no specification, as in the simpl cognition that 'this is something that exists' The knowledge which contemplates as alternative is that which includes specification, as, This is *Dittha,*' 'This is *Brâhmana,*' 'This i black'

39 'The relative proximity of a sense and its object which is the cause of perception, is of six kinds,—Conjunction, Intimate union with that which is in conjunction, Intimate union with what is intimately united with that which is in conjunction, Intimate union, Intimate union with that which is intimately united, and the Connection which arises from the relation between that which qualifies and the thing qualified When a jar is perceived by the eye, there is (between the sense and the object) the proximity of Conjunction. In the perception of the colour of the jar, there is the proximity of Intimate union with that which is in conjunction, because the colour is intimately united with the jar, which is in conjunction, with the sense of vision. In the perception of the fact that colour generically is present, there is the proximity of intimate union with what is intimately united with that which is in conjunction because the generic property of being a colour is intimately united with the particular colour which is intimately united with the jar

[]mity is dependent on the relation between a distinctive [q]uality and that which is so distinguished, because when the [g]round is (perceived to be) possessed of non existence of a jar, [t]he non-existence of a jar distinguishes the ground which is in [c]onjunction with the organ of vision Knowledge produced by [t]hese six kinds of proximity is Perception Its instrumental [c]ause is Sense Thus it is settled that an organ of sense is what [g]ives us the knowledge called sensation

40 'The instrument (in the production) of an inference is a [g]eneralized Fact An inference is the knowledge that arises [f]rom deduction Deduction is the ascertaining that the sub-[j]ect possesses that character which is invariably attended [by [w]hat we then predicate of it] For example, the knowledge [t]hat 'this hill is characterized by smoke, which is always attended by fire,' is a deductive application of a general principle, the knowledge produced from which, *viz* 'that the hill is fiery,' is an inference Invariable attendedness is the fact of being constantly accompanied, as,—in the example 'Wherever there is smoke, there is fire [by which it is invariably attended' By 'the subject's possessing a character &c.,' is meant that in [] mountain &c there is present that which is invariably attended'

41 'A general principle is of two kinds, in so far as it may be useful for One's self, and for Another That which is employed for One's self is the cause of a private conclusion in one's own mind For example, having repeatedly and personally observed in the case of culinary hearths &c, that where there is smoke there is fire, having assumed that the concomitancy is invariable, having gone near a mountain and be-

to the forest Remembering the purport of what he has been told, he sees a body like that of a cow Then this inference from similarity arises (in his mind), that 'this is what is meant by the word *gavaya*.'

48 'A word [right assertion] is the speech of one worthy (of confidence) One worthy, is the speaker of the truth A speech [sentence] is a collection of significant sounds, as, for example, 'Bring the cow.' A significant sound is that which is possessed of power (to convey a meaning) The power (of a word) is the appointment, in the shape of God's will, that such and such an import should be recognizable from such and such a significant sound'

49 'The cause of the knowledge of the sense of a sentence is the Inter-dependance, Compatibility and Juxta-position (of the words). Inter-dependance means the inability in a word to indicate the intended sense in the absence of another word. Compatibility consists in (a word's) not rendering futile the sense (of a sentence) Juxta-position consists in the enunciation of the words without a (long) pause between each'

50 'A collection of words devoid of inter-dependence &c is no valid sentence—for example 'cow, horse, man, elephant,' gives no information, the words not looking out for one another The expression 'He should irrigate with fire' is no cause of right knowledge, for there is no compatibility (between fire and irrigation) The words 'Bring—the—cow,' not pronounced close together but with an interval of some three hours between each, are not a cause of correct knowledge, from the absence of (the requisite closeness of) juxta-position'

51 'Speech is of two kinds,—Sacred and Profane The former being uttered by God, is all authoritative but the latter, only if uttered by one who deserves confidence, is authoritative, any other is not so'

52 'The knowledge of the meaning of speech is verbally communicated knowledge, its instrumental cause is language

53 'Incorrect knowledge is of three sorts, through the divisions of Doubt, Mistake, and (such opinion as is open to) *Reductio ad absurdum*. The recognition, in one (and the

55 'What all perceive to be agreeable is Pleasure'

56 'What appears disagreeable is Pain'

57 'Desire means wishing'

58 'Aversion means disliking'

59 'Effort means action'

60 'Merit arises from the performance of what is enjoined'

61 'But Demerit (arises) from the performance of what is forbidden

62 'The eight qualities—Understanding and the rest [Understanding, Pleasure, Pain, Desire, Aversion, Effort, Merit and Demerit] are distinctive of soul alone.

63 Understanding, Desire and Effort are of two kinds, Eternal and Transient Eternal in God, and Transient in mortals'

64 'Faculty is of three kinds,—Momentum, Imagination and Elasticity. Momentum resides in the four beginning with Earth, [Earth, Water, Light, and Air] and in Mind Imagination, the cause of memory, and arising from notion, resides only in the Soul Elasticity is that which restores to its former position what had been altered It resides in things like mats &c formed of the earthy element'

65 'Action consists in motion Throwing upwards is the cause of conjunction with a higher place Throwing downwards is the cause of conjunction with a lower place Contraction is the cause of conjunction with what is near the body Expansion is the cause of conjunction with what is distant

Going is every other variety Action resides only in the four beginning with Earth [Earth, Water, Light and Air] and in Mind'

66. 'Genus is eternal, one, belonging to more than one, and residing in Substance, Quality and Action It is of two kinds — Higher and Lower The higher Genus (the *summum genus*) is existence. The lower Genus is such a one as Substantiality [the common nature of what are called Substances]'

67 'Differences residing in eternal substances, are excluders each from genus of nature with the others)'

68 'Intimate relation is Co-inherence It exists in things which cannot exist separately Two things which cannot exist separately are those of which two, the one exists only as lodged in the other. Such pairs are, parts and what is made up of the parts, qualities and the thing qualified, action and agent, species and individual, and difference and eternal substances'

69 'Antecedent non-existence is without beginning, and has no end Such is the non-existence of an effect previously to its production Destruction has a beginning, and has no end (Such is the non-existence) of an effect subsequently to its production Absolute non-existence is that of which the counter-entity is considered independently of the three times [past, present and future] For example,—(Such is the non-existence in the instance where it is remarked that) there is not a jar on the ground Mutual non-existence is that of which the counter-entity is considered with reference to the relation of identity For example,—(Such difference is referred to when it is remarked that) a jar is not a web of cloth'

70 'Since every thing is properly included under the categories that have been now stated, it is established that there are only seven categories'

'This Compendium of Logical results was composed by the learned Annam Bhatta, in order to perfect the acquaintance of students with the opinions of *Kanâda* and of the *Nyâya*'